अहिर्बुध्न्यसंहिता

(श्रीपाञ्चरात्रागमान्तर्गता)

'सरला' हिन्दीटीकोपेता

(प्रथम भाग)

सम्पादकः व्याख्याकारश्च

डॉ. सुधाकर मालवीयः

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

।। श्रीः ।।

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
120

—*—

अहिर्बुध्न्यसंहिता

(श्रीपाञ्चरात्रागमान्तर्गता)

'सरला' हिन्दीटीकोपेता

(प्रथमो भागः)

सम्पादकः व्याख्याकारश्च
डॉ. सुधाकर मालवीयः
एम. ए. पीएच्. डी., साहित्याचार्य
संस्कृत-विभाग : कला-संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

अहिर्बुध्न्यसंहिता

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. जवाहरनगर, बंगलो रोड
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली-110007
दूरभाष : 23856391; 41530902

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
प्रथम संस्करण 2007
मूल्य 1200.00
(1-2 भाग, सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069
वाराणसी-221001
दूरभाषा : 2420404

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129
वाराणसी-221001
दूरभाषा : 2335263

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाषा : 32996391

मुद्रक
ए. के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

The
VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA
120

AHIRBUDHNYA-SAṂHITĀ

OF THE
PĀÑCARĀTRĀGAMA

With the Sarala Hindi Translation

Edited & Translated by
Dr. SUDHAKAR MALAVIYA
M. A., Ph. D. Sahityacarya
Department of Sanskrit : Arts Faculty,
Banaras Hindu University
Varanasi - 5

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
DELHI

Publishers:
© CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 23956391

Also can be had of
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37 / 117, Gopal Mandir Lane
Post Box No.1129
VARANASI 221001
Telephone : 2335263; 2333371

*

Sole Distributors :
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
CHOWK (Behind The Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
Telephone : 2420404

Computer Type-setters :
Malaviya Computers
Varanasi

Printers :
A. K. Lithographers
Delhi

काशी के पाञ्चरात्र आगम के एकमात्र

पारदृश्वा विद्वान् मेरे गुरुकल्प

प्रोफेसर व्रजवल्लभ द्विवेदी

के कर कमलों में सादर

समर्पित

सुधाकर मालवीय

प्राक्कथन

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ —यजुर्वेद ३१.१८

उन्हीं आदित्य (सूर्य मण्डलस्थ) रूप परम पुरुष को जानकर कोई भी मृत्यु का उल्लङ्घन कर सकता है क्योंकि मोक्ष के लिए कोई अन्य मार्ग नहीं है।

यह तभी सम्भव है जब हम भगवान् विष्णु के स्वरूप, उनके गुण तथा ऐश्वर्य का चिन्तन करें। भगवान् विष्णु की शक्ति महालक्ष्मी हैं। यह चन्द्रमा में रहने वाली चन्द्रिका के समान भावाभाव रूप दोनों अवस्थाओं में उनका अनुगमन करने वाली महान् पतिव्रता हैं। इस प्रकार महालक्ष्मी विष्णु से अभिन्न होते हुए भी भिन्न रूपा हैं। यह ज्ञान, आनन्द एवं क्रियामयी हैं। अनासक्त होते हुए भी यह आसक्त रहने वाली हैं। यह सन्मात्र, पूर्णा, रिक्ता एवं ऋतम्भरा हैं। यद्यपि समस्त प्रपञ्च का भेद उनमें अस्त हो जाता है जब कि सारे भेद उन्हीं से प्रगट होते हैं। वे षडध्व विषय से परे होने पर भी षडध्वविषयात्मिका हैं। इस प्रकार की महालक्ष्मी का स्वरूप, गुण एवं वैभव का वर्णन प्रस्तुत पाञ्चरात्र आगम गत अहिर्बुध्न्य संहिता में हुआ है।

भगवान् विष्णु की उत्प्रेक्षारूपिणी शक्ति, जिसका दूसरा नाम 'सुदर्शन' है, वही ब्रह्मदेव की पङ्कजा शक्ति हैं। भगवान् विष्णु का सङ्कल्प 'सुदर्शन' रूप में, जिसे भावक कहते हैं, स्थित है। अतः जगद्रक्षण रूप मन्त्र, यन्त्र तथा अस्त्र का विस्तार रूप से वर्णन इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है।

अहिर्बुध्न्य संहिता का प्रस्तुत संस्करण इदं प्रथमतया कृत हिन्दी व्याख्या के साथ भगवान् विष्णु एवं उनकी शक्ति महालक्ष्मी के उपासकों के सम्मुख प्रस्तुत है। इस ग्रन्थ का मूल आड्यार संस्करण पर ही आधृत है। 'सरला' हिन्दी व्याख्या में पूर्णरूप से आड्यार संस्करण से सहायता ली गई है। इसके लिए मैं फ्रेडरिक ओटो श्रोडर, पण्डित एम.डी. रामानुजाचार्य एवं पण्डित वी. कृष्णमाचार्य आदि विद्वानों का हृदय से आभारी हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ एवं पाञ्चरात्र सम्प्रदाय पर कार्य करने के लिए मुझे प्रथमतः प्रोफेसर जी.सी. पाण्डेय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, ने ही प्रोत्साहित किया था। १९८० के दशक में प्रोफेसर पाण्डेय जी हमारे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कार्यकारिणी के सदस्य थे।

बाद में कुछ वर्षों तक ये मानित यू.जी.सी. प्रोफेसर भी थे। १९८५ से लेकर मैंने पाञ्चरात्र आगम के अनेक ग्रन्थों के अनुवाद कर डाले और इसी कड़ी में प्रथम तन्त्र ग्रन्थ लक्ष्मीतन्त्र २००३ में चौखम्बा से प्रकाशित हुआ। अब अहिर्बुध्न्य संहिता का हिन्दी अनुवाद चौखम्बा से ही प्रकाशित हो रहा है। इस प्रकार आगम शास्त्र के कार्य में संलग्न कराने वाले गुरुकल्प प्रोफेसर जी.सी. पाण्डेय का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

गुरुकल्प प्रोफेसर व्रजवल्लभ द्विवेदी की मेरे ऊपर १९७२ से ही कृपा दृष्टि बनी हुई है। काशीस्थ 'तारा प्रेस' कमच्छा में अनेक वर्षों तक सम्पादन के दौरान उनसे शास्त्रचर्चा हुआ करती थी। सम्प्रति काशी में पाञ्चरात्र आगम के ये एकमात्र विद्वान् हैं। सात्वत शास्त्र के निष्णात एवं पारदृश्वा विद्वान् के कर कमलों में यह ग्रन्थ मैं आशीर्वाद की कामना से सादर समर्पित कर रहा हूँ।

तन्त्र एवं पाञ्चरात्र शास्त्र के इस अनुपम ग्रन्थ में जो कुछ भी मेरी गति हो सकी है अथवा मैं इस शास्त्र को जो कुछ समझ सका हूँ, इसमें मेरे पूज्य गुरुवर्य पं० हीरामणि मिश्र का ही कृपा प्रसाद है। उनकी अमोघ कृपा मेरे ऊपर बनी रहे और मुझे आशीर्वाद प्रदान करते रहें। मुझमें किसी भी प्रकार का अहङ्कार कदापि न आवे। इसी कामना के साथ उनके चरणों में शतशः प्रणाम है।

आगमशास्त्र का यह अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ जो आज इस रूप में विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत हो सका है उसके लिए मैं 'चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान' के संचालक श्री वल्लभदास गुप्त का हृदय से आभारी हूँ। मैं अपने सहयोगी सम्पादक श्री चक्रपाणिभट्ट को उनके प्रूफ संशोधन के सहयोग के लिए धन्यवाद प्रकाश करना नहीं भूल सकता। मेरे चिरञ्जीव श्रीरामरञ्जन एवं श्रीचित्तरञ्जन ने कम्प्यूटर कार्य तथा सम्पादन में मेरी भरसक सहायता की है। उनकी स्नेहमयी माता का आध्यात्मिक एवं नैतिक सहयोग ही ग्रन्थ की पूर्णता में कारण है। भगवान् विष्णु एवं भगवती पराम्बा महालक्ष्मी इनका निरन्तर अभ्युदय करें तथा सदैव प्रसन्न रक्खें। अन्ततः भगवान् विष्णु एवं महालक्ष्मी से प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ से मानवमात्र का अजस्र कल्याण करते रहें।

गंगासप्तमी, ४.५.२००६
वैशाख शुक्ल, वि.सं. २०६३
ए, ४/३१, शीशमहल कालोनी
कमच्छा, वाराणसी २२१०१०
दूरभाष : २४५२७०९

विद्वद्वशंवदः
सुधाकर मालवीयः

भूमिका

सानन्दमानन्दवने वसन्तम् आनन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

भगवान् शङ्कर स्वयं आनन्दकन्द हैं और वह आनन्दपूर्वक आनन्दवन (काशी क्षेत्र) में निवास करते हैं। वह पापसमूह का नाश करने वाले हैं। उन अनाथों के नाथ काशीपति श्रीविश्वनाथ की मैं शरण में हूँ।

'आगम' का अर्थ—

आगम शब्द की व्युत्पत्ति वाचस्पति मिश्र ने योगभाष्य की तत्त्ववैशारदी व्याख्या में इस प्रकार किया है—'आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मात् अभ्युदयनिःश्रेयसोपायः स आगमः'—अर्थात् जिससे अभ्युदय (लौकिक कल्याण) तथा निःश्रेयस (मोक्ष) के उपाय बुद्धि में आते हैं वह 'आगम' कहलाता है, अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस के उपायों का प्रतिपादक शास्त्र ही 'आगम' है। इस व्युत्पत्ति से ही निगम से पार्थक्य द्योतित हो जाता है। वस्तुतः 'निगम' कर्म, उपासना तथा ज्ञान का स्वरूप बतलाता है और 'आगम' इनके साधनभूत उपायों का रूप समझाता है। इस प्रकार दोनों ही परस्पर एक दूसरे के उपकारक शास्त्र हैं। जैसे अद्वैत वेदान्त नाना युक्तियों के सहारे अद्वैत तत्त्व की उपपत्ति करता है उसी प्रकार आगम शास्त्र उसी अद्वैत तत्त्व की साधना का प्रकार बतलाता है। 'आगम' के सात लक्षण इस प्रकार हैं—

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवातानां यथार्चनम् ।
साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च ॥
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः ।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद् विदुर्बुधाः ॥ (वाराहीतन्त्र)

१. सृष्टि—विश्व का प्रपञ्च किस प्रकार उदित हुआ।

२. प्रलय—विश्व का तिरोभाव किस प्रकार होता है।

३. देवार्चन—देवताओं की सर्वाङ्गपूर्ण पूजा का विधान।

४. सर्वसाधन—सब सिद्धियों की प्राप्ति के उपाय।

५. पुरश्चरण—मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाओं को सम्पन्न करना।

६. षट्कर्म— शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण कर्मों का साधन।

७. ध्यानयोग—अभीष्ट देवता के स्वरूप का एकाग्र मन से चिन्तन, जिससे देवता का प्राकट्य सम्पन्न होता है।

इस प्रकार वैदिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट ज्ञान का क्रियात्मक रूप या विधानात्मक आचार ही आगमों का मुख्य विषय है। क्रिया के बिना ज्ञान भार स्वरूप है—'ज्ञानं भारः क्रियां विना।'

तन्त्र में प्रथमतः देवता के स्वरूप, गुण एवं कर्म आदि का चिन्तन किया जाता है और तद्विषयक मन्त्रों का उद्धार किया जाता है, तब उन मन्त्रों को यजन में संयोजित कर देवता के ध्यान और उपासना का वर्णन किया जाता है। यह उपासना पाँचों अङ्गों से समन्वित होने पर पुष्ट मानी जाती है—पटल, पद्धति, कवच, स्तोत्र तथा सहस्रनाम। इस प्रकार तन्त्रों का वैशिष्ट्य 'क्रिया' है, जैसे वेदों का वैशिष्ट्य 'ज्ञान' है। आगम में दोनों ही हैं। तन्त्रों में सामान्य रूप से सृष्टि और प्रलय का प्रतिपादन नहीं होता है क्योंकि उसका मुख्य विषय 'क्रिया' है।

तन्त्र का प्राधान्य कलि में क्यों ?

जहाँ जप, तप आदि की सिद्धि के लिए सत्य युग में तीन हजार छह सौ दिन लगते हैं वहाँ कलियुग में एक ही अहोरात्र पर्याप्त है। साधन की सरलता ही कलि की विशिष्टता है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैः त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम्॥

(विष्णुपुराण ६.२.१७)

तन्त्र इसी कलियुग की महिमा का प्रतिपादन कर उसका क्रियान्वयन भी करता है।

कृते श्रुत्व्युक्त आचारः त्रेतायां स्मृति सम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्भवः॥ (कुलार्णव तन्त्र)

सत्य युग में श्रुति (वेद) के द्वारा प्रतिपादित आचार की प्रधानता होती है, त्रेता में स्मृति की, द्वापर में पुराण की और कलियुग में आगम तथा तत्प्रतिपादित आचार की प्रधानता रहती है।

वस्तुतः कलियुग में मानवमात्र की आध्यात्मिक शक्ति में क्षीणता दृष्टिगोचर होती है। इसके लिए त्याग, तितिक्षा तथा धैर्य की आवश्यकता है। साधक को बाह्य और आन्तरिक शुद्धि चाहिए। ये यथेष्ट आचरण कलियुग में सम्भव नहीं हैं। तन्त्र में इसकी इतनी आवश्यकता नहीं है। फिर तन्त्र में तो स्त्री तथा शूद्र दोनों का अधिकार है। निगम के क्रियाकलाप त्रिवर्ण के लिए सीमित हैं और फिर उनमें से अधिकांश कलिवर्ज्य भी हैं। किन्तु आगम ने अपना द्वार प्रत्येक वर्ण के लिए खोल रक्खा है। यहाँ किसी प्रकार का

भेदभाव नहीं, जाति पाँति की विभिन्नता नहीं। अतः तन्त्र या आगम का यह सार्वभौम तथा सार्ववार्णिक रूप उसकी लोकप्रियता का कारण है।

कठिनाई इतनी ही है की तान्त्रिक गुरु प्रयोग के द्वारा अधिकारी शिष्य को ही शास्त्र की सत्यता का प्रमाण देकर उसे 'तन्त्र' की व्यावहारिक शिक्षा देते हैं। योग्य गुरु और योग्य अधिकारी शिष्य ही तन्त्र विद्या की चरितार्थता में प्रधान हेतु हैं। फलतः तन्त्र का मार्ग सर्वसाधारण के लिए उन्मुक्त होने पर भी अधिकारी की अपेक्षा रखता है। योग्य गुरु की शिक्षा की उचित समीक्षा की जाय तो फल की सिद्धि में विलम्ब नहीं होता और इसी प्रयोगात्मकता के कारण तन्त्र भी आधुनिक विज्ञान के समकक्ष ठहरता है। आज दोनों की ही मानव मात्र को आवश्यकता है—व्यवहार में विज्ञान की तथा आध्यात्म विद्या में तन्त्र की। महानिर्वाणतन्त्र में कहा भी है—

विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये।

आशय यह है कि विना आगम (= तन्त्र) मार्ग के कलि में (आध्यात्मिक) गति नहीं होती।

आगम की वेदमूलकता—

इस प्रकार निगम (= वेद या श्रुति) में प्रतिपादित ज्ञान का क्रियात्मक अर्थ एवं विधानात्मक आचार आगमों का प्रधान विषय है। संक्षेपतः भारतीय धर्म निगमागममूलक है। इस प्रकार तन्त्र (= आगम) प्रधान रूप से दो श्रेणियों में विभाजित है—१. वेदानुकूल तथा २. वेदविपरीत। कुछ तन्त्रों का मूल वेद है। उसके सिद्धान्त तथा आचार का मूल स्रोत वेद है।

सामान्यतः तीन प्रकार के आगम ग्रन्थ हैं। १. वैष्णव आगम (पाञ्चरात्र आगम), २. शैवागम (शक्तितन्त्र), तथा ३. शास्त्र आगम। इनमें पाञ्चरात्र तथा शैवागम के कतिपय सिद्धान्त वेदमूलक अवश्य हैं, फिर भी प्राचीन ग्रन्थों में इन्हें वेद बाह्य ही माना गया है।[१] शास्त्र आगम की वेदमूलकता के विषय में जनसाधारण में सन्देह है। वस्तुतः यह शास्त्रों के सप्तविध आचारों में से मात्र एक ही—वामाचार—की घृणित पूजा पद्धति के कारण सम्पूर्ण शास्त्र आगम को लोग अवैदिक ठहराते हैं, परन्तु शास्त्रों के सिद्धान्त और आचार के परिशीलन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनमें महती संख्या वेदानुकूल तन्त्रों की ही है। शक्ति की कल्पना यहाँ वैदिक सिद्धान्तों के ही आधार पर की गई है।[२] अतः आगम के सिद्धान्त एवं निगम के सिद्धान्त से किसी भी प्रकार से अलगाव नहीं है। अनेक शास्त्राचार वैदिक हैं। भेद इतना ही है कि निगम तीन वर्णों (ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) में ही सीमित रहता है और आगम सभी शूद्र तथा स्त्रीजनों के लिए भी उन्मुक्त है। निगम ज्ञान प्रधान है और आगम क्रिया प्रधान है।

---

१. माहेश्वर तन्त्र।

२. ऋग्वेद का वागाम्भृणीसूक्त (१०.१२५)। शक्ति तन्त्र इसी सूक्त के भाष्य रूप में प्रस्तुत है।

ईश्वर के निःश्वासभूत होने से वेदों की प्राणाणिकता है। अतः सूत्र रूप से वेदों में और विशद रूप से तन्त्र शास्त्रों में तान्त्रिक साधना के क्रम का विवेचन है और तन्त्र में उनकी पद्धति का विस्तार है। तन्त्र में मन्त्र की प्रमुखता होती है और ये तान्त्रिक मन्त्र वेदों से कभी तो साक्षात् रूप से लिए गए हैं और कभी इन्हें वेदों में 'भूर्भुवः स्वः' आदि व्याहृतियों के समान बीजाक्षरों से संयोजित किया गया है। वैदिक मन्त्रों में 'त्र्यम्बकं यजामहे' आदि मन्त्र से शिव स्वरूप महामृत्युञ्जय (सञ्जीविनी विद्या) की उपासना होती है और अथर्ववेदीय आसुरी मन्त्र से आसुरी विद्या (शक्ति स्वरूपा दुर्गा) की उपासना होती है। महामृत्युञ्जय मन्त्र में भी व्याहृतियों को वैदिक कर्मकाण्ड की पद्धति के अनुसार मन्त्र के आगे और पीछे रक्खा गया है। ऋग्वैदिक गायत्री मन्त्र को भी व्याहृतियों से सम्पुटित कर उपासना की जाती है। आसुरी (दुर्गा) के नवार्ण मन्त्र का दिग्दर्शन हमें उपनिषद में होता है। सम्भवतः मन्त्रोद्धार (संकेत के माध्यम से मन्त्र को श्लोक में प्रस्तुत करने) की पद्धति प्रथमतः यहीं हमें दृष्टिगोचर होती है। बाद में मन्त्र को तन्त्र ग्रन्थों में भी संगोपित करने की प्रक्रिया आचार्यों ने की है जैसा कि अहिर्बुध्न्यसंहिता में हमें प्राप्त होता है।

ऋग्विधान में शौनक ने सर्वप्रथम ऋक् मन्त्रों का काम्य प्रयोग के अनुसार विधान किया है। बाद में अग्नि पुराण में चारों वेदों के मन्त्रों का काम्य प्रयोग के अनुसार विधान प्राप्त होता है। नारद पुराण में तान्त्रिक पद्धति और मन्त्र के निर्देश हैं। पुराण वेदों के उपबृंहण हैं। वेदों को समझने के लिए षडङ्ग की आवश्यकता होती है। उनमें पुराण भी एक अंग माना जाता है। इस प्रकार 'मन्त्र' वेद से उपनिषद के मार्ग से पुराणों में प्रविष्ट होकर अन्ततः तान्त्रिक विस्तार को प्राप्त कर लेते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आचार्यों ने बहुत परिश्रम करके इन्हे संजोया है। उनके अनुभव इसमें निहित हैं। श्रीविद्या के ही अनेक स्वरूप हमें तन्त्र ग्रन्थों में मिलते हैं। इनमें क से प्रारम्भ होने वाली (कादि मन्त्र की मन्त्रकूट) विद्या और ह से आरम्भ होने वाली (हादि मन्त्र का मन्त्रकूट) विद्या ही अनेक प्रकार से वर्ण विपर्यय करके मन्त्रमहोदधि में ३२ प्रकार की बताई गई है। वसिष्ठ, दुर्वासा, दत्तात्रेय आदि अनेक आचार्यों द्वारा श्रीविद्या की उपासना की गई है। जिससे श्रीविद्या के भेद उनके अनुभव के कारण हो गए हैं। नीलसरस्वती तन्त्र में वसिष्ठ के द्वारा श्रीविद्या की उपासना की बात कही गई है।

तन्त्र के अनुसार 'हृत्–प्रदेश' कमल के समान है। जहाँ पर आत्मस्वरूप परतत्त्व परमात्मा का वास है। इस हृत्कमल पर ईष्टदेव को पहचान कर पूजन करना चाहिए। मानसिक पूजा का संकेत ऐतेरेय ब्राह्मण में किया गया है और इसे श्रेष्ठ भी माना गया है। तान्त्रिक पद्धति के अनुसार सगुण स्वरूप की उपसना हमें हृत्कमल पर करनी होती है। इसी हृत्कमल को सगुण रूप से यन्त्र बनाकर हम दृष्टिपथ में ला देते हैं। यन्त्र में मुख्य रूप से कमल पर पूजा की जाती है। यह कमल पङ्खुड़ियों के आवरण वाला होता है। अतः सभी पङ्खुड़ियों के अलग-अलग आवरणों में आवरण पूजा का विधान तन्त्र में किया गया है।

पाञ्चरात्र आगमों का प्रयोजन—

पाञ्चरात्रागमों में प्रधानतया ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या—इन्हीं चार प्रकार के विषयों का ही विवेचन होता है। १. ज्ञान—ब्रह्म, जीव तथा जगत् तत्व के आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन तथा सर्ग अर्थात् सृष्टि का विशेष निरूपण। २. योग—मुक्ति के साधनभूत योग एवं योग से सम्बन्धित प्रक्रियाओं का वर्णन। ३. क्रिया—देवालय का निर्माण, मूर्ति की प्रतिष्ठा एवं मूर्ति के विभिन्न आकार प्रकार का साङ्गोपाङ्ग वर्णन। ४. चर्या—आह्निक क्रिया, यन्त्रों के निर्माण की प्रक्रिया तथा मूर्तियों एवं यन्त्रों के पूजन का विस्तृत विवेचन, वर्णाश्रम का परिपालन, पर्व तथा उत्सव के अवसर पर विशिष्ट पूजा का विधान। इन चारों में से आधे से भी अधिक भाग में चर्या का ही वर्णन होता है। शेष आधे भाग में से सबसे अधिक क्रिया, क्रिया से कम ज्ञान और सबसे कम योग का विवेचन है। अतः 'चर्या' और 'क्रिया' का व्यावहारिक प्रतिपादन ही पाञ्चरात्रागमों का मुख्य प्रयोजन है। यहाँ प्रमेयों की मीमांसा गौड़ तथा प्रासङ्गिक है। आगमों (तन्त्रों) की शैली के अनुसार हमें सृष्टि एवं आध्यात्म तत्त्व का एक साथ मिश्रित रूप से दिग्दर्शन होता है।

अहिर्बुध्न्य संहिता की तत्त्व मीमांसा—

पाञ्चरात्रागम के अनुसार परब्रह्म अद्वितीय दुःखरहित, निःसीम, सुखानुभवरूप, अनादि, अनन्त, सभी प्राणिजात में निवास करने वाला, समस्त जगत् में व्याप्त होकर स्थित रहने वाला, निर्वद्य एवं निर्विकार है। इस विषय में उस परब्रह्म की समता उस महासागर से दी जाती है जो तरङ्गरहित होने से नितान्त रूप से प्रशान्त है अर्थात् अतरङ्गार्णवोपम है। वह प्राकृतगुणस्पर्शहीन तथा अप्राकृत गुणों का आस्पद है। वह आकार, देश तथा काल से निरवच्छिन्न होने के कारण पूर्ण, नित्य तथा व्यापक है। वह देय-उपादेय से रहित है तथा इदन्ता (स्वरूप) ईश्वरत्व, और इयत्ता (परिमाण) इन तीनों से अनवच्छिन्न है। वह षाड्गुण्य योग से 'भगवान्' हैं। समस्त भूतवासी होने से वही 'वासुदेव' हैं तथा समस्त आत्माओं में श्रेष्ठ होने के कारण वही 'परमात्मा' हैं। इसी प्रकार गुणों की विशेषता के कारण वह अव्यक्त, प्रधान, अनन्त, अपरिमित, अचिन्त्य, ब्रह्म, हिरण्यगर्भ तथा शिव आदि नामों से प्रसिद्ध है।

पाञ्चरात्रागम में परब्रह्म के उभय-निर्गुण तथा सगुणभाव स्वीकृत हैं। परमात्मा त्रिविध परिच्छेद शून्य है वह न भूत है, न वर्तमान है और न भविष्य, न ह्रस्व है, न दीर्घ, न स्थूल है, न अणु, न आदि है, न मध्य है और अन्तविहीन भी है। इस प्रकार वह सब द्वन्द्वों से विनिर्मुक्त, सर्व उपाधि से विवर्जित सब कारणों का कारण, षाड्गुण्यरूप परब्रह्म है।[१]

षाड्गुण्य—

विष्णु 'निर्गुण' होकर भी 'सगुण' हैं। वह अप्राकृत गुणों से रहित होने के

---

१. सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वोपाधिविवर्जितम्।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्वकारणकारणाम्॥ —अहि०सं० २.५३

कारण 'निर्गुण' है और षड्गुण युक्त होने से 'सगुण' हैं। जगत् के व्यापार के लिए कल्पित इन छह गुणों के नाम—१. ज्ञान, २. शक्ति, ३. ऐश्वर्य, ४. बल, ५. वीर्य एवं ६. तेज हैं।

१. अजड़, स्वात्म सम्बोधी (=स्वप्रकाश), नित्य सर्वापगाही गुण को 'ज्ञान' कहते हैं। ज्ञान ब्रह्म का स्वरूप भी है तथा उसका गुण भी है।

२. शक्ति से अभिप्राय है जगत् का उपादान कारण।

३. ऐश्वर्य का अर्थ है स्वातन्त्र्यपरिबृंहितं जगत्कर्तृत्व।

४. जगत् का निर्माण करने में भगवान् नारायण को तनिक भी आभास नहीं होता। इस श्रमाभाव को 'बल' कहते है।

५. जगत् के उपादान होने पर भी विकार राहित्य की पाञ्चरात्रगत शास्त्रीय संज्ञा 'वीर्य' है। कार्यावस्था में जगत् के समस्त उपादान कारणों में विविध विकार दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु निर्विकार ब्रह्म (=भगवान्) में जगदुपादान होने पर भी किसी प्रकार के विकार का उदय नहीं होता। यही विकार राहित्य है।

६. जगत् की सृष्टि में सहकारी की अपेक्षा न होना अर्थात् अनावश्यकता को 'तेज' कहते हैं।

पाञ्चरात्र की ब्रह्मकल्पना—

इस प्रकार ब्रह्म में जगत् की उभयविध कारणता (=अर्थात् उपादान कारणता तथा निमित्त कारणता) है। ब्रह्म बिना किसी सहायता के स्वतन्त्रतापूर्वक अपने से ही इस दृष्टि का उत्पादक है। 'सर्वकारणकारण' विशेषण इसी सर्वशक्तिमत्ता तथा स्वतन्त्रता को द्योतित करता है।[१] वासुदेव का ज्ञान ही उत्कृष्ट रूप है, शक्त्यादि अन्य पाँच गुण ज्ञान के गुण भगवान की शक्ति होने से सर्वदा तत्सम्बद्ध रहते है।

भगवान् की शक्ति—

भगवान् की शक्ति को सामान्यतः 'लक्ष्मी' नाम से अभिहित किया गया है।[२] भगवान् शक्तिमान हैं तथा लक्ष्मी उनकी शक्ति हैं। भगवान् तथा लक्ष्मी का पारस्परिक सम्बन्ध आपाततः अद्वैत प्रतीत होता है। परन्तु दोनों में अद्वैत नहीं है।

नारायणी शक्ति का रूप—

प्रलय दशा में जब प्रपञ्च का क्षय हो जाता है तब भी भगवान् तथा लक्ष्मी का नितान्त ऐक्य नहीं होता। उस समय भी नारायण तथा नारायणी शक्ति मानो[३] एकत्व धारण करते हैं।

---

१. सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वोपाधिविवर्जितम्।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्वकारणकारणाम्॥ —अहि०सं० २.५३

२. अहि०सं० ८.१४-१५।

३. व्यापकावति संश्लेषादेकं तत्त्वमिव स्थितौ। अहि०सं० ४.७८

शक्ति तथा शक्तिमान का सम्बन्ध—

धर्म तथा धर्मी, अहन्ता तथा अहं, चन्द्रिका तथा चन्द्रमा, आतप तथा सूर्य के समान ही शक्ति तथा शक्तिमान् में अविनाभाव या समभाव सम्बन्ध स्वीकृत किया गया है। किन्तु मूल में तो भेद रहता ही है।[१]

भगवान् की शक्ति—

भगवान् की आत्ममूला शक्ति आरम्भकाल में किसी अचिन्त्य कारण के वश कहीं उन्मेष प्राप्त करती है, वह जगद् रचना व्यापार में प्रवृत्त होती है।[२] विष्णु की स्वातन्त्र्य रूपी शक्ति भिन्न-भिन्न गुणों के कारण विभिन्न नामों से पुकारी जाती है। आनन्दा, स्वतन्त्रा, लक्ष्मी, श्री, पद्मा आदि उसी के नामान्तर हैं। उसी लक्ष्मी के सृष्टिकाल में दो रूप हो जाते हैं—१. क्रियाशक्ति, तथा २. भूतशक्ति।

भगवान् की जगत् सिसृक्षा (जगत् उत्पन्न करने के संकल्प) को क्रियाशक्ति कहते हैं[३] और जगत् की परिणति (भवनं भूतिः) की संज्ञा 'भूतशक्ति' है। अहिर्बुध्न्य संहिता में ही लक्ष्मी को इच्छाशक्ति तथा सुदर्शन को 'क्रियाशक्ति' कहा गया है।[४] इन दोनों शक्तियों के अभाव में भगवान् स्वयं अकिञ्चित्कर हैं। शक्तिद्वय के सद्भाव में ही भगवान् जगत् की सृष्टि, स्थिति, तथा संहृति व्यापार के उत्पादक हैं। लक्ष्मी शक्ति के उस प्रथम आविर्भाव को 'शुद्ध-सृष्टि' या गुणोन्मेष कहते हैं। तब तरङ्गरहित प्रशान्त समुद्र में प्रथम बुद्बुद् के समान परब्रह्म में ज्ञानादि षड्गुणों का प्रथम उदय होता है।[५] इसी शक्ति के विकास से जगत् की सृष्टि सम्पन्न होती है। सृष्टि शुद्ध और शुद्धेतर भेद से दो प्रकार की होती है। इसी के भीतर जयाख्य संहितानुसार शुद्ध सर्ग, प्राधानिक सर्ग तथा ब्रह्म सर्ग का अन्तर्भाव किया जाता है।

शुद्ध सृष्टि—

भगवान् जगत् के परम मङ्गल के लिए अपने ही आप चार रूपों की सृष्टि करते हैं—१. व्यूह, २. विभव, ३. अर्चावतार तथा ४. अन्तर्यामी अवतार।

(१) व्यूह—पूर्वोक्त षड्गुणों में से दो-दो गुणों की प्रधानता होने पर तीन व्यूहों की सृष्टि होती है—

सङ्कर्षण में ज्ञान तथा बल गुण का प्राधान्य रहता है।

---

१. देवाच्छक्तिमतो भिन्न ब्रह्माणः परमेष्ठिनः। अहि० सं० ३.२५-२७

२. स्वातन्त्र्यादेव कस्माच्चित् क्वचित् सोन्मेषमृच्छति।
आत्मभूता हि या शक्तिः परस्य ब्रह्मणो हरेः॥ अहि०सं० ५.४

३. क्रियाख्यो योऽयमुन्मेषः स भूतिपरिवर्तकः।
लक्ष्मीर्मयः प्राणरूपो विष्णोः संकल्प उच्यते॥ अहि०सं० ३.२९-३०

४. अहि०सं० ३६.५५।

५. निस्तरङ्गदशायां ते निःसत्ता सत्तचिन्मयाः।
शक्त्यात्मका गुणोन्मेषदशायां ते व्यवस्थिताः। अहि०सं० ५.४२-४३।

प्रद्युम्न में ऐश्वर्य तथा वीर्य गुणों का आधिक्य रहता है।

अनिरुद्ध में शक्ति तथा तेज का उद्रेक विद्यमान रहता है।

इन तीनों के सर्जनात्मक तथा शिक्षणात्मक द्विविध कार्य होते हैं[१]—

(क) सङ्कर्षण का कार्य जगत् की सृष्टि करना तथा ऐकान्तिक मार्ग (=पाञ्चरात्र तत्त्व) का उपदेश करना है।

(ख) प्रद्युम्न का कार्य ऐकान्तिक मार्ग सम्मत क्रिया की शिक्षा देना है।

(ग) अनिरुद्ध का कार्य क्रियाफल (मोक्ष तत्त्व) का शिक्षण करना है।

वैषम्य दशा में गुण-प्रधान भाव से षड्गुणों की व्यवस्था की जाती है। षाड्गुण्य चारों व्यूहों में सामान्यतः विद्यमान रहता है। वासुदेव को मिलाकर इन्हें 'चतुर्व्यूह' कहते हैं। चतुर्व्यूह भगवद्रूप ही है। परन्तु शङ्कराचार्य के अनुसार[२] वासुदेव से सङ्कर्षण अर्थात् जीव की उत्पत्ति होती है। सङ्कर्षण से प्रद्युम्न अर्थात् मन की तथा प्रद्युम्न से अनिरुद्ध अर्थात् अहंकार की सृष्टि होती है। यही चतुर्व्यूह सिद्धान्त पाञ्चरात्र का विशिष्ट सिद्धान्त माना जाता है। जयाख्य आदि संहिताओं में यह मत नहीं मिलता। परन्तु महाभारत के नारायणीयोपाख्यान[३] तथा लक्ष्मीतन्त्र[४] में निर्दिष्ट होने से यह पाञ्चरात्र का एकदेशीय मत ही प्रतीत होता है।

(२) **विभव**—विभव का अर्थ है 'अवतार'। ये संख्या में ३९ माने जाते हैं[५]। विभव (= अवतार) मुख्य तथा गौड़ दो प्रकार के होते हैं—

(क) मुख्य—जिनकी उपासना भुक्ति के लिए की जाती है।

(ख) गौड़—जिनकी पूजा मुक्ति के लिए की जाती है।

ये ३९ विभव इस प्रकार है—१. पद्मनाभ, २. ध्रुव, ३. अनन्त, ४. शक्त्यात्मा, ५. मधुसूदन, ६. विद्याधिदेव, ७. कपिल, ८. विश्वरूप, ९. विहङ्गम, १०. क्रोडात्मा, ११. वडवावक्त्र, १२. धर्म, १३. वागीश्वर, १४. एकाम्भोनिधिशायी, १५, भगवान् कमठेश्वर, १६. वराह, १७. नरसिंह, १८. पीयूषहरण, १९. श्रीपतिभगवान् देव, २०. कान्तात्मा, २१. अमृतधारक, २२. राहुजित्, २३. कालनेमिघ्न, २४. पारिजातहर, २५. लोकनाथ, २६. शान्तात्मा, २७. महाप्रभु दत्तात्रेय, २८. न्यग्रोधशायी, २९. भगवान् एकशृङ्गतनु, ३०. वामनदेह, ३१. सर्वव्यापी त्रिविक्रम, ३२. नर, ३३. नारायण, ३४. हरि, ३५. कृष्ण, ३६. ज्वलत्परशुधृक्-राम (=परशुराम), ३७. धनुर्धर राम, ३८. वेदविद् भगवान् कल्की, ३९. पातालशयन।

---

१. अहि० सं० ५.१७-६०।
२. ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य २.२.४२-४५।
३. शान्तिपर्व ३३९.४०-४२।
४. लक्ष्मीतन्त्र ५. ९-१४।
५. अहि० सं० ५.५०।

(३) **अर्चावतार**—पाञ्चरात्र विधि से पवित्रित किए जाने पर भगवान् की प्रस्तर आदि की मूर्तियाँ भी भगवान् का अवतार मानी जाती हैं। सर्वसाधारण की पूजा में इनका उपयोग होता है। इन्हीं का नाम 'अर्चावतार' है।

(४) **अन्तर्यामी**—भगवान् सब प्राणियों के हृत्पुण्डरीक में वास करते हुए वे उनके समस्त व्यापारों के नियामक हैं। इस रूप का नाम 'अन्तर्यामी' रूप है। यह कल्पना उपनिषदों के आधार पर ही है।[१]

शुद्धेतर सृष्टि—

शुद्ध सृष्टि के आधार पर शुद्धेतर सृष्टि की सत्ता है। इस सृष्टि का क्रम[२] निम्नलिखित है—

प्रद्युम्न → कूटस्थ पुरुष → मायाशक्ति → नियति → काल → सत्वगुण → रजोगुण → तमोगुण → बुद्धि →

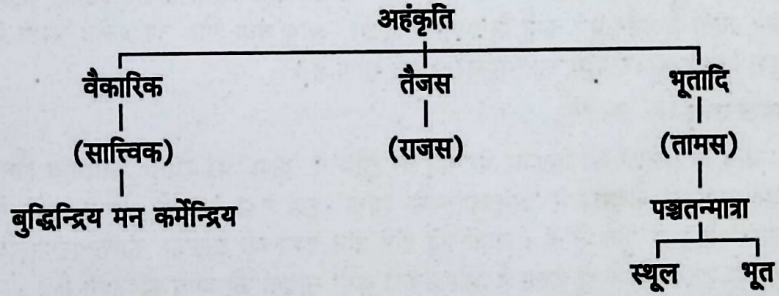

यह क्रम अहिर्बुध्न्यसंहिता में जैसा है वैसा क्रम जयाख्य संहिता का नहीं है। वहाँ वासुदेव से अच्युत और अच्युत से अनन्त की उत्पत्ति मानी गई है। वासुदेव में जब क्षोभ उत्पन्न होता है तो उस उद्वेलन रूप लहर से जो फेन उठता है वही 'अच्युत' हैं। वासुदेव समुद्र रूप हैं। अच्युत सूर्य रूप हैं और 'अनन्त' बादल रूप हैं। 'पुरुष' सत्य और अच्युत भगवान् वासुदेव के अवतार हैं। भगवान् स्थूल रूप से जगत् की सृष्टि करते हैं और सूक्ष्म रूप से जीव में विद्यमान रहते हैं।

इस प्रकार पाञ्चरात्र का सिद्धान्त यद्यपि सांख्य दर्शन से मिलता जुलता है। किन्तु यह क्रम उसके अनेक सिद्धान्तों से भिन्न है। पाञ्चरात्र के अनुसार प्रकृति पुरुष की अध्यक्षता में सृष्टि करती है। सांख्य प्रकृति को स्वतः प्रवृत्त मानता है। परन्तु यहाँ आगम में चुम्बक के सान्निध्य से लोहे की गति की भाँति आत्मच्छुरता से यह प्रकृति कार्य में प्रवृत्त होती है। पाञ्चरात्र मत में तीनों गुणों की सृष्टि क्रमशः एक से दूसरे की होती है। किन्तु सांख्यशास्त्र में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

---

१. यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो, यं पृथिवी न वेद, यस्य पृथिवी शरीरम्, यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष स आत्माऽन्तर्याम्यमृतः (बृह०उ० ३.७.३)।

२. अहि०सं० ६.५-१८।

अहिर्बुध्न्यसंहिता में जीव-तत्त्व का सिद्धान्त—

इस जगत् के अधिपति भगवान् नारायण हैं। उनका स्वातन्त्र्य अलौकिक होता है। समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेने पर भी वही वासुदेव राजा के समान लीलापूर्वक क्रीडा किया करते हैं। यह जगत् उन्हीं परतत्त्व वासुदेव की लीला का विलास है। भगवान् के 'संकल्प' अथवा 'इच्छाशक्ति' का नाम 'सुदर्शन' है। यह इच्छाशक्ति अनन्त होने पर भी प्रधानरूप से पाँच प्रकार की है—१. उत्पत्ति, २. स्थिति, ३. विनाशकारिणी शक्तियाँ, ४. विग्रहशक्ति (माया, अविद्या आदि नामधारिणी तिरोधान शक्ति) तथा ५. अनुग्रहशक्ति।[१]

जीव स्वभावतः सर्वशक्तिशाली, व्यापक तथा सर्वज्ञ तो है, परन्तु सृष्टिकाल में भगवान् की तिरोधान शक्ति जीव के विभुत्व, सर्वशक्तिमत्त्व और सर्वज्ञत्व का तिरोधान कर देती है, जिससे जीव क्रमशः अणु, किञ्चित्कर तथा किञ्चिदज्ञ बन जाता है। इन्हीं अणुत्वादिकों को पाञ्चरात्र सम्प्रदाय में 'मल' नाम से अभिहित करते हैं। इन्हीं से 'जीव' बद्ध बन जाता है और पूर्व कर्मों के अनुसार जाति, आयु तथा भोग की प्राप्ति करता है तथा इस विकट भावचक्र में वह निरन्तर घूमता रहता है।

शक्तिपात तत्त्व—

जीव के क्लेशों को देखकर भगवान् के हृदय में 'कृपा' का स्वतः अविर्भाव होता है। इसी कृपा को पाञ्चरात्र में 'अनुग्रहात्मिका शक्ति' कहा गया है जिसे आगम शास्त्र में 'शक्तिपात' नाम से पुकारते हैं। जीवों की दीन हीन दशा को देखकर करुणावरुणालय भगवान् का हृदय द्रवित हो जाता है और उनकी कृपा साधक को प्राप्त हो जाती है।

पाञ्चरात्र आगम के प्रधान देवता—

विष्णु को परदेवता मानकर जो उनकी उपासना करते हैं, वे 'वैष्णव' कहलाते हैं। परतत्त्व का स्वरूप, उसकी प्राप्ति का उपाय, निःश्रेयस् का स्वरूप आदि का निश्चय वैष्णवमत से श्रुति, स्मृति तथा पाञ्चरात्र आगम के द्वारा होता है। इस आगम में यह निर्णय किया गया है कि विष्णु ही देवताओं मे अग्रणी हैं, दूसरे देवता उनकी अपेक्षा अवर (गौड़) हैं। 'विप्लृ व्याप्तौ' धातु से विष्णु पद निष्पन्त हुआ है। इस व्याप्त्यर्थक धातु से सर्वत्र गुणों से, स्वरूप से तथा गुण गणों से विष्णु की व्याप्ति का बोध होता है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि विश्व-ब्रह्माण्ड में जो देवता, जीव तथा पदार्थ समूह हैं, वे सब बाहर और भीतर सर्वत्र श्रीभगवान् के द्वारा व्याप्त हैं। अन्तरात्मा के रूप में भगवान् उनके नियन्ता हैं। परम पुरुष का माहात्म्य, गृह एवं मन्दिर में उनकी अर्चा विधि, उनके मन्दिर निर्माण की विधि आदि विषयों को लेकर आलोचना करने वाले पाञ्चरात्र आदि आगम विष्णु को ही प्रधान देवता के रूप में स्वीकार करते हैं।

विश्वरूप विष्णु और आगमगत विष्णु—

ऋग्वेद में उपलब्ध 'एकं वा इदं विबभूव सर्वम्', के अनुसार एक ही तत्त्व दृश्यमान

---

१. अहि० सं० १४.१२-१४।

विश्व के अनेक रूपों में परिणत हो गया है। इस विश्व में परज्योतिरूप एक ही देवता हैं जिसको 'परम पुरुष' कहते हैं। वह अपनी ही 'माया' शक्ति से अवच्छिन्न (युक्त) होकर जगत् रूप विविध भावों में परिणत हो गया है। अपने में लीन (प्रसुप्त) मायाशक्ति को प्रकट (=उद्बुद्ध) करके ही वह परम पुरुष सर्वप्रथम पुरुष (=शक्तिमान्) एवं माया (शक्ति)—इन दो रूपों में प्रकट हुआ।

शक्तितत्त्व (i) एक तत्त्व से चार तत्त्व—

(१) वेदों मे आनन्द, ज्ञान, इच्छा, क्रिया एवं आवरण इन पाँच गुणों का समुदाय 'शक्ति' शब्द से अभिहित होता है। उसी को आगमों में ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज—इन षड्गुणों के समुदाय को 'शक्ति' कहा गया है।[१] (२) इनमें अवच्छेद रूप–आवरणशक्ति 'माया' है। माया रूप अवच्छेद से अवच्छिन्न, अखण्ड खण्डवत्, शान्त अशान्तवत्, अद्वय द्वयवत् रूप से भासता है, परन्तु वह प्रतिभान मिथ्या नहीं है। (३) माया (प्रकृति) के गुण भेद से वह तीन रूपों में—सत्त्वगुण से विष्णु, रजोगुण से ब्रह्मा एवं तमोगुण से शिवरूप में प्रकट होता है। इनके कार्य क्रमशः स्थिति, उत्पत्ति एवं प्रलय हैं। (४) धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य इन चार गुणों के योग से वह एक ही क्रमशः वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इन चार रूपों में प्रकट हुआ है।

(ii) चार से लेकर सोलह तत्त्व—

वासुदेव आदि वही चार रूप, चार वर्ण, चार आश्रम, चार युग एवं चार पुरुषार्थ आदि परमात्मा के चार–चार रूप हैं। (५) शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—इन पाँच गुणों के कारण क्रमशः परमेष्ठि, पुमान, विश्व, निवृत्ति एवं सर्व—ये परमात्मा के पाँच रूप है। (६) श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, त्वक् एवं मन—ये परमात्मा के ही छह रूप है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त एवं शिशिर—इन छह ऋतुओं के रूप में भी वह प्रजापति ही परिणत हुआ है। (७) भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्य—इन सात व्याहृतियों में वही परिणत हुआ है। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती—ये सात छन्द भी उसके ही रूप हैं। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, वाजपेय, अतिरात्र और ज्योतिष्टोम—ये सात रूप हैं, उन रूपों में भी परमात्मा ही परिणत हुए हैं। (८) अव्यक्त, महत्, अहंकार तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—इन आठ रूपों में परमात्मा ही परिणत होते है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य एवं यजमान—इस आठ मूर्तियों के रूप में वही ईश्वर परिणत हुआ है। इसी प्रकार आठ दिक्पाल, आठ गुण एवं आठ सिद्धियाँ आदि रूपों में भी वही चैतन्य स्थित हैं। (९) नरसिंह, वराह, वामन, राम, कृष्ण, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य और चन्द्र—ये नौ रूप भी उन्हीं विश्वात्मा की विभूति है। (१०) इन्द्र, अग्नि, यम, निकृति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त–नाग—इन दस रूपों में भी वही विद्यमान है। (११) पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय एवं मन—ये ग्यारह भी भगवान् विष्णु के ही रूप हैं। (१२)

---

१. अहि० सं० २.५३।

इन्द्र, भग, पूषा, पर्जन्य, अंशु, विष्णु, त्वष्टा, धाता, विवस्वान्, वरुण, अर्यमा, भिन्न— ये बारह आदित्य भी परमात्मा के ही विभिन्न रूप हैं। (१३) विश्वदेव, (१४) चौदह मनु[१] (१५) पन्द्रह तिथि एवं (१६) सोलह दिशा–विदिशाओं के रूप में वहीं एक तत्त्व परिणत हुआ है। इस प्रकार सभी देवों के आश्रय एवं उपादान कारण विष्णु हैं। विष्णु ही सब देवता हैं। सम्पूर्ण चराचर विष्णु से व्याप्त है।[२] फिर जिनसे सारी सृष्टि हुई है एवं अन्त में जिनमें लीन हो जायेगी, उन पुण्डरीकाक्ष को छोड़कर दूसरा कौन विश्व को व्याप्त करके रह सकता है।

भगवान् विष्णु के व्यूह का रहस्य—

परब्रह्म परमात्मा प्रकृति परे हैं। वह मानव–मनोभूमि से अतीत हैं। किन्तु वह प्रकृति से परे हैं और परे भी नहीं है। परमात्मा प्रकृति से परे भी है और प्रकृति में भी है।[३] त्रिपाद् रूप से वे प्रकृति से परे है[४] और एकपाद्रूप से प्रकृति में हैं। इस प्रकार परमात्मा की दो विभूतियाँ हैं—

१. त्रिपाद्विभूति और २. एकपाद्विभूति।

त्रिपाद्विभूति को 'नित्यविभूति' कहते है और एकपाद्विभूति को 'लीलाविभूति' कहते हैं। इस एकपाद्विभूति में भगवान् विष्णु जगत् के उदय, विभव और लय की लीला किया करते है। आत्माराम, आप्तकाम परमात्मा का प्रकृति के साथ यह विहार चिरन्तन है, अनादि तथा अनन्त भी। इस विहारस्थली के देश–काल का ज्ञान मानव मनीषा में नहीं समाता। मनुष्य यह जान नहीं सकता कि भगवान् जिस प्रकृति–नटी के साथ अपना महारास कर रहे हैं उसका परिमाण केवल इतना है। वस्तुतः प्रकृति के असंख्य ब्रह्माण्ड भाण्डों को अहर्निश बनाने बिगाडने के अनवरत कार्य को समग्ररूप में जानने की शक्ति किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में नहीं है। यह जानना भी कठिन है कि प्रकृति के साथ भगवान् का यह विहार कब प्रारम्भ हुआ और कब तब चलेगा।

इस जगत् की तीन अवस्थाएँ हैं—सृष्टि, स्थिति और प्रलय। जड प्रकृति में परमात्मा के ईक्षण से—संकल्प[५] से कभी तो विकासोन्मुख परिणाम हुआ करता है, जिसे 'सृष्टि' कहते हैं और कभी विनाशोन्मुख, जिसे 'प्रलय' कहते हैं। सृष्टि और प्रलय के मध्य की दशा का नाम 'स्थिति' है। जब परमात्मा जगत् की रचना करते हैं, तब वे 'प्रद्युम्न' होते हैं और जब पालन करते हैं तब 'अनिरुद्ध' और जब संहार करते है तब 'सङ्कर्षण' कहलाते है—इन रूपों की संज्ञा 'व्यूह' है।

---

१. कूटस्थो यः पुरा प्रोक्तः पुमान् व्योम्नः परादधः।
मनवो देवताद्याश्च तद्यष्टय इतीरिताः॥—अहि०सं० ७.५८।

२. जीवभेदा मुने सर्वे विष्णुमूर्त्यंशकल्पिताः— वही ५९।

३. भगवान् वासुदेवः स परमा प्रकृतिश्च सा।

४. तत्र शुद्धमयं सर्गं विभूतेः प्रथमं शृणु। अहि० सं० ५.१५।
युगैस्तस्य त्रिभिः शुद्धा सृष्टिमूर्तेः प्रवर्तते॥ वही ५.१६।

५. संकल्पनिर्मिता शक्तिर्या तत्तत्कार्यगोचरा। वही ५.५९।

सङ्कर्षण—

भगवान् विष्णु में यद्यपि अनन्त कल्याण गुण हैं तथापि उनमें छह मुख्य हैं। उन्हीं छह गुणों में से जब वे 'ज्ञान' और 'बल' का प्रकाशन करते हैं,[१] तब उनका नाम 'सङ्कर्षण' होता है। सङ्कर्षण मे अन्य चार गुणों अर्थात् वीर्य, ऐश्वर्य, शक्ति और तेज का निगूहन होता है, अभाव नहीं।

सङ्कर्षण का वर्ण पद्मराग के समान है। ये नीलाम्बरधारी हैं। ये अपने चार कर कमलों में क्रमशः हल, मूसल, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। ताल इनकी ध्वजा का लक्षण है। ये जीव के अधिष्ठाता होकर भी 'ज्ञान' गुण से शास्त्र का प्रवर्तन करते हैं और 'बल' नामक गुण से जगत् का संहार करते हैं।

प्रद्युम्न—

जब वे ही विष्णु 'वीर्य' और 'ऐश्वर्य' का प्रकाशन करते हैं तब उनका नाम 'प्रद्युम्न' होता है।[२] इनमें ज्ञान, बल, शक्ति और तेज का निगूहन होता है, अभाव नहीं।

प्रद्युम्न का वर्ण रवि किरण के समान है। ये रक्ताम्बरधारी हैं। इनके चार हाथ में धनुष, बाण, शङ्ख और अभयमुद्रा विद्यमान है। इनकी ध्वजा का चिह्न 'मकर' है। ये मनस्तत्त्व के अधिष्ठाता होते हुए भी 'वीर्य' नामक गुण से धर्म का प्रवर्तन करते हैं और 'ऐश्वर्य' नामक गुण से जगत् की सृष्टि भी करते हैं।

अनिरुद्ध—

जब परब्रह्म परमात्मा 'शक्ति' और 'तेज' का प्रकाशन करते है तब उनका नाम अनिरुद्ध होता है।[३] इनमें ज्ञान, बल, वीर्य, और ऐश्वर्य का निगूहन होता है, अभाव नहीं।

अनिरुद्ध का वर्ण नील है। ये शुक्लाम्बरधारी हैं। इनके चार कर कमलों में खड्ग, खेट, शङ्ख और अभयमुद्रा रहती है। इनकी ध्वजा का चिह्न मृग है। अहंकार के अधिष्ठाता होते हुए भी ये 'तेज' नामक गुण से आत्मतत्त्व का प्रवर्तन करते हैं और शक्ति नामक गुण से जगत् का भरण-पोषण भी करते हैं।

परब्रह्म के व्यूहान्तर—

इस प्रकार त्रिव्यूह का प्रतिपादन हुआ। कभी-कभी षाड्गुण्य मूर्ति परतत्त्व श्रीभगवान् विष्णु भी व्यूहों में सम्मिलित होते हैं। उस समय वे 'व्यूह-वासुदेव' के नाम से अभिहित होते हैं।[४]

---

१. तत्र ज्ञानबलद्वन्द्वाद् रूपं सांकर्षणं हरेः। अहि०सं० ५.१७।
२. ऐश्वर्यवीर्यसंभेदाद् रूपं प्राद्युम्नमुच्यते। वही ५.१७।
३. शक्तितेजःसमुत्कर्षादानिरुद्धो तनुर्हरेः। अहि०सं० ५.१८।
४. भगवान् वासुदेवश्च व्यूहाश्चैते त्रयो मुने॥
चातुरात्म्यमिदं विद्धि व्यक्ताव्यक्तस्वलक्षणम्॥ अहि०सं० ५.२५-२६।

ये शशिगौर और पीताम्बरधारी हैं। ये चार कर कमलों में शङ्ख, चक्र, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। इनकी ध्वजा का चिह्न 'गरुड' है। इस प्रकार भगवान् के चार व्यूह होते हैं।[१]

उपरोक्त व्यूहों के अतिरिक्त अन्य भी व्यूहान्तर हैं।[२]

(१) केशव, नारायण और माधव—ये तीन वासुदेव के विलास हैं।[३] इनमें केशव स्वर्णाभ हैं और चार चक्र धारण करते हैं। नारायण श्याम वर्ण हैं और चार शङ्ख धारण करते हैं। माधव इन्द्रनील के समान वर्ण वाले हैं और चार गदाएँ धारण करते हैं।

(२) गोविन्द, विष्णु और मधुसूदन—ये तीन सङ्कर्षण के विलास हैं।[४] गोविन्द चन्द्र गौर हैं और चार शार्ङ्ग धनुष धारण करते हैं। विष्णु पद्म किञ्जल्क वर्ण हैं और चार हल धारण करते हैं। मधुसूदन अब्ज वर्ण हैं और चार मूसल धारण करते हैं।

(३) त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर—ये तीन प्रद्युम्न के विलास हैं।[५] त्रिविक्रम अग्निवर्ण हैं और चार शङ्ख धारण करते हैं। वामन बालसूर्याभ हैं और चार वज्र धारण करते हैं। श्रीधर पुण्डरीक वर्ण हैं और चार पट्टिश धारण करते हैं।

(४) हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर—ये तीन अनिरुद्ध के विलास हैं।[६] हृषीकेश तडिदाभ हैं और चार मुद्गर धारण करते हैं। पद्मनाभ सूर्याभ हैं और शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष तथा खड्ग धारण करते हैं। दामोदर इन्द्रगोप वर्षा हैं और चार पाश धारण करते हैं।

संक्षेप में हम यह जान लें कि एकपाद्विभूति में लीला निमित्त रूप धारण किए हुए परब्रह्म के अनुक्त रूप 'व्यूह' कहलाते है। यही पाञ्चरात्र में वर्णित व्यूह का रहस्य है।

अहिर्बुध्न्य के लिए ऋग्वेद में मात्र कुछ ऋचाओं में ही स्तवन प्राप्त है। निरुक्तकार के अनुसार यह एक अन्तरिक्ष के देवता हैं।[७] वाजसनेयी संहिता[८], ऐतरेय ब्राह्मण[९] और तैत्तिरीय ब्राह्मण[१०] के अनुसार यह एक गार्हपत्य अग्नि का नाम है। महाभारत में एकादश रुद्रों में से एक अहिर्बुध्न्य कहे गये हैं।[११] भागवत में रुद्र के नामों में परिगणित

---

१. भगवान् वासुदेवश्च व्यूहाश्चैते त्रयो मुने ॥
चातुरात्म्यमिदं विद्धि व्यक्ताव्यक्तस्वलक्षणम् ॥ अहि०सं० ५.२५–२६।
२. व्यूहान्तरं दश द्वे च केशवाद्याः प्रकीर्तिता। अहि०सं० ५.४६।
३. केशवादि त्रयं तत्र वासुदेवाद् विभाव्यते। अहि०सं० ५.४६।
४. संकर्षणाच्च गोविन्दपूर्वं त्रितयमद्भुतम् ॥ अहि०सं० ५.४७।
५. त्रिविक्रमाद्यं त्रितयं प्रद्युम्नादुदितं मुने। अहि०सं० ५.४७।
६. हृषीकेशादिकं तत्त्वमनिरुद्धान्महामुने। अहि०सं० ५. ४८।
७. निरुक्त० ५.४।
८. वा०सं० ५.३३।
९. ऐ०ब्रा० ३.३६। एष ह वा अहिर्बुध्न्यो मदाग्निर्गार्हपत्यः।
१०. तै०ब्रा० ११.१०.३।
११. महाभारत आ० ५०.१–३।

हैं।[१] स्कन्द पुराण[२] के अनुसार ये दुष्ट राक्षसों के संहारार्थ सुदर्शन चक्र की आराधना कर रहे थे। इनके संहारार्थ राक्षसों के आते ही चक्र के प्रगट होने से राक्षसों का नाश हुआ। शिव पुराण की शतरुद्रिय संहिता में इन्हें कश्यप तथा सुरभि का पुत्र कहा गया है।[३] इन्हीं एकादश रुद्रों में से एक अहिर्बुध्न्य ने इस संहिता का प्रवचन किया है।

सुदर्शन सहस्रनाम समालोचन—

अनन्त प्रकार के नाम और रूप के साथ इस नानात्वमय जगत् में उस एक तत्त्व की ही अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार स्वणनिर्मित सभी आकार-प्रकार की वस्तुएँ स्वर्ण ही हैं, उसी प्रकार यह विभिन्नरूपमय जगत् उन 'परतत्त्व' की ही आत्माभिव्यक्ति है।

वस्तुतः जो परिच्छिन्न है, वही इच्छा होने से इन्द्रियगम्य हो सकता है उसी को मानव मन और बुद्धि द्वारा प्रत्यक्ष कर सकता है। महर्षियों ने उस 'परतत्त्व' का अनुभव तो किया और उस अनन्त, असीम प्रभु को बतलाने के लिए परिच्छिन्न व्यक्त जगत् की जिन वस्तुओं के द्वारा उन्होंने निर्देश किया है वे उनकी विभूतिमात्र हैं। पुराण, आगम एवं तन्त्र ग्रन्थों में भगवान् का पवित्र 'नाम' माना गया है। वस्तुतः विष्णु रमा आदि देवी देवताओं के 'सहस्रनाम' उनके गुणों के निर्देशक चिह्न हैं। आध्यात्मिक साधक इन्हीं गुणों के संकेतक नामों के माध्यम से उसी 'परतत्त्व' की उपासना करता है। इन नामों के झरोखे से वह उस परमात्मा के विभिन्न अलौकिक कार्यों का स्मरण करके चिन्तन करते हुए उसमें अपनी आस्था दृढ़ कर लेता है। उसका ज्ञान परिपक्व होता है और तभी भक्ति तत्त्व का उसमें उद्रेक होता है। पुराणों में या आगम साहित्य में जहाँ भी भगवान् के एक रूप की अपेक्षा उनके दूसरे रूप की प्रशंसा की गई है। वहाँ उपासक के भक्तिभाव का पोषण ही मुख्य उद्देश्य है। वस्तुतः 'विष्णु-तत्त्व' एक है किन्तु वह अपने विलास में अनेक भी हो जाता है। वही त्रिगुणात्मक प्रपञ्च में प्रविष्ट है और वही त्रिगुणातीत भी है। वह 'महतो महीयान्' भी है एवं प्रकृति के अणु-अणु में और प्रत्येक चेतन जीवात्मा में भी अन्तर्यामी रूप से व्यापक है, क्योंकि वह 'अणोरणीयान्' भी है। इसी व्यापकता की अनुभूति साधक को सहस्रनामों के माध्यम से होती है। ये सहस्रनाम साधक को एक सहस्र आश्रय प्रदान करते हैं और उसे प्रत्येक पद से प्रेरणा मिलती है। इसी प्रेरणा के बल से वह बुद्धि को ज्ञान के शिखर पर ले जाने में सफल हो जाता है।

देवी-देवताओं के सहस्रनामों में 'विष्णु सहस्रनाम' ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है। किन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक सहस्रनाम हमें प्राप्त होते हैं जैसे—शिवसहस्रनाम, ललितासहस्रनाम, श्रीरामसहस्रनाम आदि। भगवान् के ये सहस्रनाम ऋषियों द्वारा विरचित और साधक के कल्याण के लिए प्रदत्त हैं। आत्मदर्शी कवि भगवान् व्यास द्वारा श्रद्धा और भक्ति की माला के रूप में विष्णु आदि देवों के अह्लादकारी स्तवन में संग्रहीत हैं।

---

१. भाग० ६.६.१८।
२. स्क०पु० ३.१.२३।
३. शिव०शत०सं० १८।

सहस्रनाम की आलोचना की दृष्टि से इन सभी सहस्रनामों की एक सूची आवश्यक है। सर्वप्रथम वाल्मीकीय–रामायण और महाभारत तथा पुराणों एवं आगम या तन्त्र ग्रन्थों के क्रम से यह सूची होनी चाहिए।

इन सहस्रनामों का दो प्रकार क्रम हमें ग्रन्थों में प्राप्त है एक तो यह कि नामों को जैसे–तैसे रख दिया गया है और दूसरा यह कि सभी नामों को अकारादि क्रम से रक्खा गया है। एक ही नाम की पुनरावृत्ति भी होती है। यह पुनरावृत्ति गलत नहीं है अपितु पुनः जिन पदों की अवृत्ति होती है वह दृढ़ के लिए प्रयुक्त होते हैं। ऐसी पुनरावृत्ति वैदिक सूक्तों में तथा पुराणों में भी विद्यमान है।

प्रायः तन्त्रों और आगमों में प्राप्त सहस्रनाम मातृका क्रम से ही पाए जाते हैं। देवी भागवत में भी यही क्रम मिलता है। शेष सभी पुराणों में प्राप्त सहस्रनाम अकारादि क्रम से न होकर जैसे–तैसे रख दिए गए हैं। रुद्रायामल में प्राप्त कुमारी के सहस्रनाम वर्ण क्रम (कादि) से आरम्भ होते हैं बाद में स्वरों को रक्खा गया है। किन्तु देवी भागवत में स्वरों को पहले स्थान दिया गया है। अहिर्बुध्न्य संहिता में सुदर्शन के सहस्रनाम का एक परिशिष्ट है। इसका क्रम भी वर्ण क्रम (क) से आरम्भ होता है किन्तु ठ के लिए कोई नाम नहीं है। यहाँ ५६० नाम ही प्राप्त होते हैं। शेष की खोज अत्यन्त आवश्यक है।

यह उत्तम संहिता साठ अध्यायों में कही गई है जिसको जान लेने पर पुरुष सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है। परा और मध्यमा नाम की जो दो संहितायें हैं, उन दोनों संहिताओं का सभी अर्थ इसमें संक्षेप रूप से प्रदर्शित किया गया है।

ॐ नमो विष्णुपत्न्यै च यस्या नारायणः प्रियः।
नमो नित्यानवद्याय जगतः सर्वहेतवे।
ज्ञानाय निस्तरङ्गाय लक्ष्मीनारायणात्मने॥

(लक्ष्मीतन्त्र ५७.५५)

जिन वासुदेव की प्रिया श्रीलक्ष्मी हैं। उन विष्णुपत्नी को नमस्कार है, जिनको नारायण प्रिय हैं। उनको नमस्कार है, जो नित्य हैं, जो अनिर्वचनीय हैं और जो संसार का कारण हैं, जो ज्ञानस्वरूप हैं और जो शान्त हैं, जो लक्ष्मीनारायण स्वरूप हैं उनको नमस्कार है।

गंगासप्तमी, ४.५.२००६
वैशाख शुक्ल, वि.सं. २०६३
ए, ४/३१, शीशमहल कालोनी
कमच्छा, वाराणसी २२१०१०
दूरभाष : २४५२७०९

विद्वद्वशंवदः
सुधाकर मालवीयः

विषयानुक्रमणिका

प्रथमोऽध्यायः १-१२

शास्त्रावतारः

मङ्गलाचरणम् १

भरद्वाजस्य दुर्वाससं प्रति सुदर्शनमाहात्म्यकारणप्रश्नः २

दुर्वाससः प्रश्नप्रशंसापूर्वकं तत्प्रतिवचनम् ४

पक्वकषायस्यैव परतत्त्वजिज्ञासोदयः ४

अत्र ब्रह्मादीनामपि संशयः ४

स्वस्याहिर्बुध्न्यात् तत्त्वनिर्णयप्राप्तिः ४

नारदस्योत्कर्षः ४

कैलासवर्णनम् ५

अहिर्बुध्न्यवर्णनम् ५

नारदकृताहिर्बुध्न्यस्तुतिः ६

कालनेमिसंग्रामे नारदस्य सुदर्शनमहिमदर्शनम् ८

सर्वास्त्राणां सुदर्शनेन पराभवः १०

अत्यद्भुतमहिमदर्शनात् संशयोदयः ११

संहितावतरणम् ११

द्वितीयोऽध्यायः १३-२२

षाड्गुण्यब्रह्मविवेकः

अहिर्बुध्न्यं प्रति नारदप्रश्नः १३

अहिर्बुध्न्येन सङ्कर्षणात् स्वस्य ज्ञानप्राप्तिकथनम् १३

परब्रह्मस्वरूपसंक्षेपः १४

सुदर्शनशब्दार्थनिरूपणम् १४

सर्वस्य सुदर्शनाधीनत्वम् १४

पुरर्नारदकृताः प्रश्नाः १५

विस्तरेण परब्रह्मस्वरूपनिरूपणम् १६

परब्रह्मणः हेयप्रतिभटत्वं कल्याणगुणाकारत्वं च १६

परब्रह्मणः परमात्मादिसकलशब्दवाच्यत्वम् १७

प्रतिबन्धविगमे ब्रह्मानुभवसम्भवः १९

ब्रह्मणः प्रयत्नलभ्यत्वविरहः १९

ब्रह्मणः त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वम् १९

ब्रह्मणः षाड्गुण्यप्रपञ्चकथनम् २१

ज्ञानस्वरूपनिरूपणम् २१

शक्तिस्वरूपनिरूपणम् २१

ऐश्वर्यस्वरूपनिरूपणम् २१

बलस्वरूपनिरूपणम् २१

वीर्यस्वरूपनिरूपणम् २१

तेजःस्वरूपनिरूपणम् २२

शक्त्यादिगुणपञ्चकस्य ज्ञानगुणप्रकारत्वम् २२

तृतीयोऽध्यायः २३-३१

वैश्वरूप्यसंक्षेपः

सर्ववस्तूनां शक्तिरपृथक्सिद्धविशेषणम् २३

शक्तीनामपर्यनुयोज्यत्वम् २३

परब्रह्मणोऽपि शक्तिरपृथक्सिद्धविशेषणम् २३

भगवच्छक्तेरानन्दादिशब्दाभिधेयत्वम् २४

शक्तिमतः शक्तिर्भिन्ना २६

शक्तेः द्वैविध्यम्; भूतिशक्तेः त्रैविध्यम् २७

क्रियाशक्तेः भूतिशक्ति प्रवर्तकत्वम् २७

क्रियाशक्तेः वैविध्येन सर्वभावानुयायित्वम् २८

वैविध्यप्रपञ्चनम् २८
चतुर्थोऽध्यायः ३२-४२
प्रतिसञ्चरवर्णनम्
प्राकृतप्रलयवर्णनम् ३२
प्रतिसञ्चरकालपरिमाणम् ३३
सर्वस्य पृथिव्यां लयः ३३
पृथिव्या अप्सु लयः ३४
अपां तेजसि लयः ३४
तेजसो वायौ लयः ३४
वायोराकाशे लयः ३५
आकाशस्याहङ्कारे लयः ३५
अहङ्कारस्य बुद्धौ लयः ३६
बुद्धेस्तमसि लयः ३६
इन्द्रियाणां भूतैः सह तत्तत्कारणेषु लयः ३६
तमसो रजसि लयः ३७
रजसः सत्त्वे लयः ३७
सत्त्वस्य काले लयः ३७
कालस्य नियतौ लयः ३८
नियतेः शक्तौ लयः ३८
शक्तेः कूटस्थपुरुषे लयः ३९
कूटस्थपुरुषस्यानिरुद्धे लयः ३९
अनिरुद्धस्य प्रद्युम्ने लयः ४०
प्रद्युम्नस्य सङ्कर्षणे लयः ४०
सङ्कर्षणस्य वासुदेवे लयः ४०
पञ्चमोऽध्यायः ४३-५१
शुद्धसृष्टिवर्णनम्
प्रलयावस्थब्रह्मस्वरूपम् ४३
शक्तिरूपाया लक्ष्म्याः क्वचिदुन्मेषः ४३
शक्तेर्विविधभावव्यञ्जकत्वम् ४४
शुद्धसृष्टिप्रपञ्चनम् ४५
गुणयुग्मत्रयात् व्यूहत्रयाविर्भावः ४५
व्यूहत्रयेऽपि षाड्गुण्यानुवृत्तिः ४५
त्रिधा चातुरात्म्यस्थितिः ४५
सङ्कर्षणस्य कृत्यम् ४५
प्रद्युम्नस्य कृत्यम् ४६
अनिरुद्धस्य कृत्यम् ४६
परवासुदेवेन सह व्यूहस्य चातुरात्म्यम् ४६
गुणोन्मेषस्वरूपप्रदर्शनम् ४६
सिसृक्षोर्वासुदेवात् सङ्कर्षणाविर्भावः ४७
तस्य षोडशशतवर्षप्रतीक्षणम् ४७
प्रद्युम्नाविर्भावः ४७
अनिरुद्धाविर्भावः ४८
व्यूहस्य षोडशशतवर्षानन्तरं सृष्टौ व्यापृतिः ४८
व्यूहानां हेयप्रतिभटत्वमनादित्वं च ४८
चातुरात्म्यस्य मनआलम्बनार्थत्वम् ४८
व्यूहात् व्यूहान्तराविर्भावः ४९
द्वादश व्यूहान्तराणि ४९
वासुदेवात् केशवादित्रयम् ४९
सङ्कर्षणात् गोविन्दादित्रयाविर्भावः ४९
प्रद्युम्नात् त्रिविक्रमादित्रयाविर्भावः ४९
व्यूहान्तरस्य त्रैविध्यम् ४९
अनिरुद्धात् हृषीकेशादित्रयाविर्भावः ४९
विभवा एकोनचत्वारिंशत् ५०
तेषामुत्पत्त्यादिकं सात्त्वतादौ ज्ञेयम् ५०
अध्यायार्थोपसंहारः ५१
षष्ठोऽध्यायः ५२-६१
शुद्धेतरसृष्टिवर्णनम्
शक्तितद्वतोर्भेदवदभेदस्याप्युपपत्तिः ५२
शक्तितद्वतोरपृथक्स्थितिः ५२
भगवतो लक्ष्म्याश्च प्रत्येकं जगत्कारणत्वव्यवहारकथनम् ५२
शुद्धेतरसृष्टिकथनप्रतिज्ञा ५२
भूतिशक्तेः स्वसङ्कल्परूपक्रियाशक्ति-प्रवर्त्यत्वम् ५३
योगालम्बनभूतव्यूहविभवादेः शुद्धिमयस्फूर्तिरूपत्वम् ५३
शुद्धेतरसृष्टेः व्यूहविभवमूलकत्वम् ५३

तस्यास्त्रैविध्यम् ५३
प्रद्युम्नात् मिथुनचतुष्टयोत्पत्तिः ५३
कालप्रकृतिसृष्टिः ५४
अनिरुद्धाय पालनाज्ञादानम् ५४
तेन तद्वर्धनम् ५४
नियतिकालयोरुदयः ५४
गुणमय्याः प्रकृतेस्त्रैविध्यम् ५४
सत्त्वादिभ्यो रजआद्युत्पत्तिः ५४
पुनर्विस्तरेण सृष्टिप्रपञ्चनप्रश्नः ५५
तत्प्रपञ्चनम् ५५
परवासुदेवस्य नित्यविभूतिमत्ता-प्रतिपादनम् ५५
मुक्तानां स्वरूपम् ५६
तेषामपुनरावृत्तिः ५६
तेषां यथोपासनं फलप्राप्तिः ५६
परमव्योम्नोऽशक्यवर्णनत्वम् ५६
जीवसमष्टिपुरुषस्यार्वाचीनस्थान-वर्तित्वम् ५७
तिरोहितस्वरूपाणां चातूरूप्यम् ५७
तेषां कर्मपारवश्यात् पृथिव्या-मवतरणम् ५७
अवतीर्णानां प्रजास्रष्टृत्वम् ५८
अनिरुद्धात् शक्त्युत्पत्तिः ५८
शक्तौ कूटस्थमनूनामवतरणम् ५८
शक्तितो नियतेरुत्पत्तिः ५८
तत्र मनूनां स्थितिः ५९
नियतितः कालस्योत्पत्तिः ५९
तत्र मनूनां स्थितिः ५९
कालात् क्रमेण गुणमयरूपोत्पत्तिः ५९
तत्र प्रथमं सत्त्वोत्पत्तिः ५९
आनिरुद्ध्या वैष्णवमूर्त्या तस्याधिष्ठानम् ५९
तत एव तस्य सुखरूपत्वं स्वच्छत्वं च सत्त्वाद्रजगुणोत्पत्तिः ५९
तत्र मनूनां स्थितिः ६०
तस्यानिरुद्धाधिष्ठितब्रह्मरूपत्वम् ६०
अतस्तस्य दुःखरूपत्वम् ६०
रजसस्तमउत्पत्तिः ६०
तत्र मनूनां स्थितिः ६०
तस्यानिरुद्धाधिष्ठितरुद्ररूपत्वम् ६०
अतस्तस्य मोहनादिरूपत्वम् ६१
अंशतो गुणत्रयसाम्यापत्तिः ६१
प्रकृतिपर्यायशब्दाः ६१
सप्तमोऽध्यायः ६२-७३
शुद्धेतरसृष्टिवर्णनम्
प्रकृतिपुरुषकालानां समष्टिः ६२
प्रकृतिः स्वरूपतः स्वभावतश्च परिणामिनी ६२
पुरुषः स्वरूपतोऽपरिणामी ६३
कालस्य प्रकृतिपुरुषपाचकत्वम् ६३
प्रकृतेर्महत्तत्त्वोत्पत्तिः ६३
महत्तत्त्वपर्यायाः ६३
महतस्त्रैविध्यम् ६३
तत्र सात्त्विकस्य चातुर्विध्यम् ६३
तामसस्यापि चातुर्विध्यम् ६४
महत्तत्त्वे मनूनामवस्थितिः ६४
तत्र बुद्ध्युत्पत्तिः ६४
महतोऽहङ्कारोत्पत्तिः ६४
अहङ्कारपर्यायाः ६४
अहङ्कारस्य त्रैविध्यम् ६४
अहङ्कारस्य रूपभेदाः ६५
अहङ्कारे मनूनामवस्थितिः ६५
अहङ्कारात् मनउत्पत्तिः ६५
भूतादेः शब्दतन्मात्रोत्पत्तिः ६५
तस्मादाकाशोत्पत्तिः ६५
आकाशस्य गुणकर्मणी ६५
आकाशे मनूनां स्थितिः ६५
श्रोत्रवाचोरुत्पत्तिः ६५
मनूनां तद्वैशिष्ट्यम् ६६
अथ स्पर्शतन्मात्रोत्पत्तिः ६६
तस्माद्वायूत्पत्तिः ६६
वायोः क्रियाभेदाः ६६

त्वक्पाण्योरुत्पत्तिः ६६
वायौ मनूनां स्थितिः ६६
रूपतन्मात्रतेजसोरुत्पत्तिः ६६
तेजसः क्रियाभेदाः ६७
चक्षुः पादयोरुत्पत्तिः ६७
तेजसि मनूनां स्थितिः ६७
तेषां चक्षुःपादवैशिष्ट्यम् ६७
रसतन्मात्राम्भसोरुत्पत्तिः ६७
तत्क्रियाभेदाः ६७
रसनोपस्थेन्द्रियोत्पत्तिः ६७
अप्सु मनूनां स्थितिः ६७
तेषां रसनोपस्थवैशिष्ट्यम् ६८
गन्धतन्मात्रमह्योरुत्पत्तिः ६८
पार्थिवगुणभेदाः ६८
घ्राणपाय्वोरुत्पत्तिः ६८
तेषां घ्राणपायुवैशिष्ट्यम् ६८
सङ्कल्पाद्युत्पत्तिः ६८
एवं मनूनां सर्वावयवपूर्णता ६८
सृष्टिप्रलयकालयोस्तुल्य-परिमाणत्वम् ६९
मनुविभागः ६९
मनुभिर्गर्भोत्पादनम् ६९
तेषां ब्राह्मणादिसंज्ञा ६९
तदुत्पन्नानां मानवमानवादिसंज्ञा ६९
तेषां भगवत्कैंकर्यकारित्वम् ७०
भागवतकैंकर्यकारिणां मोक्ष-सम्पत्तिः ७०
अन्येषां संसारप्राप्तिः ७०
कर्महेतुकदेवादिसृष्टिः ७०
मनूनां देवादीनां च कूटस्थपुरुष-व्यष्टिरूपत्वम् ७१
जीवानां भगवद्विभूतित्वम् ७१
महतो मेघात्मना परिणामः ७१
जीवानां ज्ञानभ्रंशहेतुकथनम् ७१
ततः शास्त्रप्रवृत्तिः ७१
अध्यायद्वयार्थसंक्षेपः ७१
सुदर्शनानधीनस्य वस्तुनस्तुच्छता ७३
अष्टमोऽध्यायः ७४-८२
जगदाधारनिरूपणम्
सृष्टौ वादिनां बहुधा विप्रतिपत्तिः ७४
तत्र तत्त्वजिज्ञासया प्रश्नः ७५
तदुत्तरकथनारम्भः ७५
वेदवाचोऽपि कात्स्न्येन तत्त्वावगाहनासामर्थ्यम् ७५
विप्रतिपत्तौ हेतुकथनम् ७५
एकस्या अपि लक्ष्म्या नानाशब्द-गोचरत्वम् ७६
तत्त्वविदां स्वस्वदृष्टार्थवादित्वम् ७६
भगवत्प्रकारानन्त्यम् ७७
वादिनामेकैकप्रकारवादित्वम् ७७
अतः शास्त्रवैविध्यम् ७७
ब्राह्मकल्पानां नानारूपत्वम् ७७
श्रुतार्थानुवादः ७८
द्वितीयप्रश्नस्मारणम् ७८
सुदर्शनस्य जगदाधारत्वम् ७८
तत्र महारात्रिधरचक्रं प्रथमम् ७९
उषश्चक्रं द्वितीयम् ७९
उदयचक्रं तृतीयम् ८०
ऐश्वर्यचक्रं चतुर्थम् ८०
शक्तिमहाचक्रं पञ्चमम् ८०
षडरचक्रं षष्ठम् ८०
महासुदर्शनचक्रं सप्तमम् ८१
सहस्रारचक्रमष्टमम् ८१
नवमोऽध्यायः ८३-८९
अशुद्धजगदाधारनिरूपणम्
प्रथमं पौरुषचक्रम् ८३
शक्त्यादिचक्राणि ८३
महाविभूतिचक्रम् ८४
संहृतिचक्रम् ८७
चलनचक्रम् ८८
तस्य त्रैविध्यम् ८८

दशमोऽध्यायः ९०-९६
अर्थात्मकप्रमाणनिरूपणम्
प्रमाणनिरूपणप्रतिज्ञा ९०
प्रमाणस्वरूपनिरूपणम् ९१
प्रमाणविभागः ९१
समष्टिप्रमाणस्वरूपम् ९१
व्यष्टिप्रमाणस्वरूपम् ९१
तस्यैव विस्तरेण प्रतिपादनम् ९२
शस्त्रव्यूहप्रतिपादनम् ९५
अस्त्रव्यूहप्रतिपादनम् ९५
एकादशोऽध्यायः ९७-१०५
शब्दात्मकप्रमाणव्यूहनिरूपणम्
शब्दात्मकप्रमाणप्रश्नः ९७
तत्प्रतिविवक्षयोपोद्घातः ९७
आदिसर्गे भगवतश्चिन्ताप्रकारः ९७
सत्त्वविवृद्ध्या परमपुरुषप्राप्तिपूर्वकं स्वरूपाविर्भावः ९८
रजस्तमोविवृद्ध्या सत्त्वह्रासः ९८
तदा दैत्याद्याविर्भावः ९८
तैर्वैदिकमर्यादाविलोपनम् ९८
ज्ञानप्रमोषात् धर्मतिरोधानम् ९८
ततः प्रजाक्षोभः ९८
तदा भगवदवताराणां लब्धावकाशता ९८
धर्मस्थापननिश्चयः ९८
अधर्मनिरास साधनद्वैविध्यम् ९९
भगवत्सङ्कल्पात् तदुभयोत्पत्तिः ९९
आदिशास्त्रस्वरूपवर्णनम् ९९
तस्य सर्वशास्त्रार्थगर्भितत्वम् १००
तस्य शास्त्रस्य भगवत्प्रीतिहेतुत्वम् १०३
तस्य शास्त्रस्य मन्दप्रचारता १०३
वाच्यायनादिभिस्तच्छास्त्रविभजनम् १०३
तत्र वाच्यायनेन वेदविभजनम् १०४
कपिलेन सांख्यविभजनम् १०४
हिरण्यगर्भेण योगशास्त्रविभजनम् १०४
शिवेन पाशुपतविभजनम् १०४
भगवता पाञ्चरात्रविभजनम् १०५
अध्यायार्थनिगमनम् १०५
द्वादशोऽध्यायः १०६-११३
शब्दात्मकप्रमाणव्यूहविशेषस्वरूप-निरूपणम्
वृत्तानुवादः १०६
त्रय्यादिस्वरूपप्रश्नः १०६
तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा १०६
त्रयीस्वरूपनिरूपणम् १०६
अथर्वणां पृथक्करणे हेतुः १०७
ऋगादीनां शाखासङ्ख्या १०७
इयतामेव वेदानां प्रत्यक्षत्वम् १०७
कल्पादीनि षडङ्गानि १०७
मीमांसान्यायश्चोपाङ्गम् १०७
उपवेदादिकम् १०८
सांख्यस्वरूपवर्णनम् १०८
प्राकृतमण्डलवर्णनम् १०८
वैकृतमण्डलवर्णनम् १०९
योगशास्त्रस्वरूपवर्णनम् ११०
योगे संहिताद्वयम् ११०
निरोधसंहिताया द्वादशविधत्वम् ११०
कर्मसंहितायाश्चातुर्विध्यम् ११०
पाशुपतस्वरूपवर्णनम् १११
पाशुपतस्याष्टकाण्डत्वम् १११
पाञ्चरात्रस्वरूपवर्णनम् १११
शास्त्राभासप्रवृत्तौ कारणम् ११२
उक्तार्थनिगमनम् ११२
सुदर्शनपर्यायशब्दाः ११२
पञ्चानामपि शास्त्राणां भगवति निष्ठा ११३
त्रयोदशोऽध्यायः ११४-१२१
प्रमाणार्थनिरूपणम्
प्रमाणार्थविषयकः प्रश्नः ११४
तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा ११४
प्रमाणशब्दनिर्वचनम् ११४

प्रमाणार्थस्वरूपम् ११५
तस्य द्वैविध्यम् ११५
हितस्वरूपम् ११५
साधनस्वरूपम् ११५
हितस्वरूपयाथात्म्यम् ११५
साधनद्वैविध्यम् ११६
तयोर्हेतुहेतुमद्भावः ११६
ज्ञानद्वैविध्यम् ११६
तयोरपि हेतुहेतुमद्भावः ११६
कर्मणां ज्ञानहेतुत्वम् ११६
कर्मणां द्वैराश्यम् ११६
व्यवहितकर्मस्वरूपम् ११६
अव्यवहितधर्मस्वरूपम् ११७
पाञ्चरात्रस्याव्यवहितधर्मपरत्वम् ११७
सशिरस्कस्य वेदस्य व्यवहित-धर्मपरत्वम् ११७
पाशुपतस्यैकविभूतिविषयक-धर्मपरत्वम् ११७
सांख्यस्य परोक्षज्ञानफलकत्वम् ११७
वेदान्तानामपरोक्षज्ञानफलकत्वम् ११८
योगस्यापरोक्षज्ञानाङ्गयमादिपरत्वम् ११८
गुणप्रधानभावेन सर्वत्र सर्वोपदेशः ११८
लौकिकपुरुषार्थद्वयोपक्षेपः ११९
त्रिवर्गस्य मिथः साध्यसाधन-भावविवेकः ११९
मोक्षस्य सर्वदा साध्यत्वमेव ११९
अर्थकामयोः प्रमाणनिरूपणम् ११९
इतिहासादेस्तत्त्वज्ञानसहकारित्वम् १२०
धर्मादीनामन्तरङ्गसाधनानि १२०
तेषामेव बहिःसाधनानि १२०
अध्यायार्थोपसंहारः १२१
चतुर्दशोऽध्यायः १२२-१२८
जीवस्य संसारहेतुतदुद्धरण-प्रकारवर्णनम्
तत्रादौ मुक्तिविषयः पुनः प्रश्नः १२२
जीवस्वरूपसंक्षेपः १२३
जीवस्य भगवच्छक्त्यंशलेशत्वम् १२३
तस्य कालवश्यत्वात् संसारप्राप्तिः १२३
साधननिष्पत्त्या स्वरूपाविर्भावः १२३
तत्र पुनः प्रश्नः १२३
भगवत्स्वातन्त्र्यस्यापर्यनुयोज्यत्वम् १२४
भगवत्सङ्कल्पस्य पञ्चधा विभागः १२४
तिरोधायकपर्यायशब्दाः १२४
जीवाणुत्वादि १२५
अणुत्वादेर्मलत्वं बन्धत्वं च १२५
अविद्यादिभिर्मलविवृद्धिः १२५
इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारेच्छा १२५
कर्मवशात् जात्यायुर्भोगप्राप्तिः १२५
तिरोधाने सहकारिकारणम् १२६
सृष्ट्यादीनां सञ्चितकर्ममूलकत्वम् १२६
सहेतुकस्य बन्धस्यानादित्वम् १२६
बद्धजीवे भगवत्कृपाविर्भावः १२६
कृपाया अनुग्रहशक्तिपातरूपत्वम् १२६
कृपाविषयस्य जीवस्य कर्मसाम्य-प्राप्तिः १२७
मुमुक्षोर्मोक्षोपायप्राप्तिप्रकारः १२७
लब्धज्ञानस्य मोक्षप्राप्तिः १२८
पञ्चदशोऽध्यायः १२९-१४१
अधिकारिनिरूपणम्
अधिकारिविषयः प्रश्नः १२९
मनुसन्ततिजानां पाञ्चरात्राधिकारः १३०
तेषां तन्निष्ठया भगवत्प्राप्तिः १३०
तेषु त्रैवर्णिकानां चातुराश्रम्यम् १३०
तेषां शुश्रूषया शूद्रस्य भगवत्प्राप्तिः १३०
अन्यतमाश्रमस्थानामपि तेषां मोक्षसिद्धिः १३०
गार्हस्थ्यस्याश्रमान्तरोपजीव्यत्वम् १३१
सात्त्विकरीतिनिगमनम् १३१
त्रय्यादिरीतिकथनारम्भः १३२
मुखबाहूरुपज्जानां त्रय्याद्यधिकारः १३२
सांख्यानां नैष्कर्म्यम् १३२
योगनिष्ठानां वैदिककर्मानुष्ठातृत्वम् १३२

वर्णाश्रमतद्धर्माणां निरूपणम् १३३
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा, एक-
जातित्वं च १३३
याजनाध्यापनप्रतिग्रहा ब्राह्मणस्यैव १३३
शस्त्रधारणादिकं क्षत्रियस्य १३३
कृष्यादिकं वैश्यस्य १३३
इज्याध्ययनदानानि त्रयाणां तुल्यानि १३४
शुश्रूषा शूद्रस्य धर्मो वृत्त्यर्था च १३४
चतुर्णां सामान्यधर्माः १३४
ब्राह्मणोत्तमक्षत्रिययोश्चातुराश्रम्यम् १३४
क्षत्रियवैश्ययोराद्यमाश्रमत्रयम् १३४
त्रैवर्णिकानां प्रागुपनयनात्
कामचारः १३४
उपनयने द्वितीयं जन्म १३४
यज्ञदीक्षायां तृतीयम् १३५
तेषां स्वाध्यायनिष्ठानां देवतुल्यत्वम् १३५
आश्रमधर्माः १३५
उपकुर्वाणब्रह्मचारिधर्माः १३५
नैष्ठिकब्रह्मचारिधर्माः १३६
गृहस्थधर्माः १३६
गृहस्थस्यापि पाञ्चरात्रधर्मावश्यकता १३६
निष्कामकर्मिणो गृहस्थस्यापि
मोक्षप्राप्तिः १३६
सकामस्य गृहस्थस्य ब्रह्मलोक-
प्राप्तिः १३७
वानप्रस्थधर्माः १३७
वानप्रस्थस्यापि निष्कामकर्मिणो
मोक्षप्राप्तिः १३७
सकामस्य तस्य ब्रह्मलोकप्राप्तिः १३८
संन्यासिधर्माः १३८
सन्यासिनः परमपुरुषोपासना-
न्मोक्षप्राप्तिः १३९
अध्यायार्थनिगमनम् १४०
षोडशोऽध्यायः १४१-१५७
वर्णोत्पत्तिनिरूपणम्
रक्षा तदधिकारिविषयकः प्रश्नः १४१
तत्प्रतिवचनारम्भः १४१
वस्तुनिष्ठसामर्थ्यस्य
सुदर्शनात्मकत्वम् १४१
शस्त्रास्त्रव्यूहस्य रक्षासाधनत्वम् १४२
मन्त्रग्रामस्यापि रक्षासाधनत्वम् १४२
मन्त्रमयरक्षायां ब्राह्मणस्यैवाधिकारः १४२
ब्राह्मणस्यापि राजानवष्टब्धस्य
रक्षायामसामर्थ्यम् १४३
राजप्रशंसा १४३
राजद्विषां दृष्टादृष्टयोः प्रत्यवायः १४३
अतो राजा अवश्यं बहु मन्तव्यः १४४
केवलयोर्ब्राह्मणनृपयोर्लक्ष्म्या
अस्थिरत्वम् १४४
संसृष्टयोस्तयोर्लक्ष्म्याः स्थैर्यम् १४४
तत्र हेतुः १४४
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तत्र
दृष्टान्तकथनम् १४४
राजार्थं प्रयुक्ताया अपि क्रियाशक्तेः
सर्वप्रजोपकारकत्वकथनम् १४५
चक्रवर्त्यादीनां
क्रियाशक्तावधिकारतारतम्यम् १४५
क्रियाशक्तिस्वरूपकथनारम्भः १४५
सामान्यतः शक्तेर्द्वैविध्यम् १४६
शक्तेः पर्यायशब्दाः १४६
भावकस्य भूत्यंशप्रवर्तकत्वम् १४६
क्रियाशक्तेर्नादात्मकत्वम् १४६
नादस्य दीर्घघण्टाध्वनिसाम्यम् १४६
तस्य योगिमात्रप्रत्यक्षविषयत्वम् १४६
क्वचिदुन्मेषात् तस्य बिन्दुरूपत्वम् १४७
बिन्दोर्नामनामिरूपेण द्वैविध्यम् १४७
नाम्नः शब्दब्रह्मत्वम् १४७
नामिनो भूतिरूपत्वम् १४७
वर्णोत्पत्तिकथनारम्भः १४७
बिन्दोर्द्वैविध्यम् १४७
अकारात्मना तस्य समुन्मेषः १४८
अकारस्य सर्ववाग्रूपत्वम् १४८

बिन्दोरिकारोकारात्मना समुन्मेषः १४८
यथोक्तवर्णत्रयस्य सर्वस्वर-
विभावकत्वम् १४८
तेषां दीर्घतापत्तिः १४८
एषामुत्पत्तिः १४८
तेषां सन्ध्यक्षरत्वम् १४९
तेषामवयवार्थाविष्करणम् १४९
ऋलृवर्णोत्पत्तिः १४९
नाभौ कुण्डल्याः पश्यन्तीत्वम् १५०
तस्या हृदब्जे विस्तारः १५०
तस्याः कण्ठदेशे विसर्गात्मना
परिणामः १५१
स्वराणामवान्तरभेदनिरूपणम् १५१
स्वराणां सूर्यचन्द्रकिरणात्मता १५२
तयोरहोरात्रप्रवर्तकत्वम् १५२
परशक्तेः सुषुम्नासञ्चारित्वम् १५३
व्यञ्जनसृष्टिकथनारम्भः- १५३
विसर्गस्य वासुदेवमूर्तित्वम् १५३
क्षकारसहितानां तेषां ब्रह्मशब्द-
वाच्यत्वम् १५४
अन्तःस्थानामुत्पत्तिस्तेषां
संज्ञात्रयं च १५४
मकारोत्पत्तिः १५४
तस्य सर्वचेतनसमष्टिरूपत्वं
जीववाचित्वं च १५४
भकारोत्पत्तिस्तस्य च प्रकृति-
वाचित्वम् १५५
बादिटान्तत्रयोदशवर्णोत्पत्तिः १५५
बादित्रयस्य महदहङ्कारमनोवाचित्वम्;
तवर्गस्य ज्ञानेन्द्रियवाचित्वम् १५५
टवर्गस्य कर्मेन्द्रियवाचकत्वम् १५५
चवर्गोत्पत्तिः; तस्य तन्मात्र-
वाचित्वम् १५५
कवर्गोत्पत्तिः; तस्य महाभूत-
वाचित्वम् १५५
ळकारोत्पत्तिः १५६
व्यञ्जनानां वैविध्यम् १५६
वर्णमातृकाया भगवच्छक्ति-
प्रोतत्वम् १५६
भगवदाज्ञया रुद्रांशस्यापि
वर्णमातृकाधिष्ठातृत्वम् १५७
सप्तदशोऽध्यायः १५८-१६५
वर्णसंज्ञानिरूपणम्
वर्णमातृकाधिष्ठातृरूपप्रश्नः १५८
तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा १५८
वर्णाधिष्ठातृवैष्णवरूपाणि १५८
वर्णाधिष्ठातृरौद्ररूपाणि १६२
वर्णचक्रपद्मनिरूपणम् १६३
वर्णमातृकात्मकवैष्णवशक्ति-
स्वरूपवर्णनम् १६३
वैष्णवरूपैरेव वैष्णवमन्त्रोद्धरणम् १६४
रौद्रमन्त्राणां रौद्ररूपैरुद्धरणम्;
शक्तिमन्त्राणां शक्तिरूपैः १६४
उक्तक्रमोल्लङ्घने प्रत्यवायः १६४
अनुल्लङ्घनेऽभ्युदयः १६५
अष्टादशोऽध्यायः १६६-१७३
मन्त्रोद्धारः
शक्तिमन्त्रोद्धारः १६६
संक्षेपतस्तत्प्रभावः १६६
सुदर्शनदशाक्षरमन्त्रोद्धारः १६७
संक्षेपतस्तत्प्रभाववर्णनम् १६८
त्रेधा पञ्चमबीजकथनम् १६९
त्रेधा षष्ठबीजकथनम् १६९
सुदर्शनगायत्री १७०
पुनः शक्तिमन्त्रवैभवः १७०
शक्तिमन्त्रस्य प्रथमद्वितीयाक्षराभ्यां
पुरुषसूक्तश्रीसूक्तयोराविर्भावः १७१
संक्षेपतो मन्त्रार्थवर्णनम् १७१
सुदर्शनसप्ताक्षरी १७२
सुदर्शनाष्टाक्षरी १७२
सुदर्शननवाक्षरी १७२

अथाङ्गसिद्ध्यर्थाङ्गमन्त्रः १७२
एकोनविंशोऽध्यायः १७४-१८२
अङ्गोपाङ्गमन्त्रोद्धारः
हृदयमन्त्रः १७४
शिरोमन्त्रः १७५
शिखामन्त्रः १७५
कवचमन्त्रः १७६
अस्त्रमन्त्रः १७७
नेत्रमन्त्रः १७७
उपाङ्गमन्त्रः १७८
चक्रगायत्री १७९
चक्राद्यस्त्रमन्त्राः १७९
शङ्खादिमन्त्राः १८०
दण्डाद्यस्त्रमन्त्राः १८१
अत्रानुक्तस्य संहितान्तरात् ग्रहणम् १८२
विंशोऽध्यायः १८३-१९१
मन्त्रग्रहणादिदीक्षाविधानम्
आचार्यलक्षणम् १८३
शिष्यलक्षणम् १८४
दीक्षाक्रमः १८४
अङ्गन्यासकरन्यासौ १८५
ऋष्यादीनां स्थानभेदः १८५
परसूक्ष्मस्थूलमन्त्राणामृषयः १८५
सुदर्शनमन्त्रस्याथर्वणवेद-
सारतमत्वम् १८६
सङ्कर्षणाज्ञया अहिर्बुध्न्येन
तदुद्धरणम् १८६
देहे संहारन्यासक्रमः १८६
अङ्गोपाङ्गन्यासः १८७
देहस्य त्रेधा विभावनम् १८७
सृष्टिन्यासः १८७
शिष्यावेक्षणम् १८८
शिष्यस्य संहारन्यासः १८८
सृष्टिन्यासः १८८
मन्त्रोपदेशः १८८
शिष्यकृत्यम् १८९
क्षुद्रार्थं मन्त्रो न प्रयोज्यः १८९
मन्त्रप्रयोगविषयाः १८९
पुरश्चरणार्थप्रदेशविधिः १९०
कृच्छ्रादिभिः शरीरशोधनम् १९०
पुरश्चरणाङ्गनियमाः १९०
मन्त्रजपादिसंख्या १९०
मन्त्रसिद्धिः, तेन लोकसंरक्षा १९०
मन्त्रानधिकारिणः १९१
एकविंशोऽध्यायः १९२-१९६
ज्योतिर्मयरक्षानिरूपणम्
रक्षाप्रकारप्रश्नः १९२
रक्षाया द्वैविध्यम् १९२
अक्षकल्पनम् १९३
नाभिकल्पनम् १९३
श्रियः षाड्गुण्यपूर्णता १९३
अरकल्पनम् १९४
नेमिकल्पनम् १९४
विभवेशादीनां नेमिबाह्यस्थान-
कल्पनम् १९५
एवं ध्यायिन आनुषङ्गिकं फलम् १९५
मुख्यफलकथनम् १९६
अध्यायार्थनिगमनम् १९६
द्वाविंशोऽध्यायः १९७-२०३
मन्त्रमयरक्षानिरूपणम्
तत्रादौ चतुःब्रह्मचक्रम् १९७
षडरविष्णुचक्रम् १९९
अष्टारनारायणचक्रम् २०१
त्रयोविंशोऽध्यायः २०४-२१७
वासुदेवादियन्त्रनिरूपणम्
द्वादशारचक्रम् २०४
अजिताख्यद्वात्रिंशदरचक्रम् २०६
नारसिंहद्वात्रिंशदरचक्रम् २०८
शतारज्योतिश्चक्रम् २०९
ब्रह्मचक्रम् २१२

सहस्रारमातृकाचक्रम् · २१३
चतुर्विंशोऽध्यायः २१८-२२५
यन्त्रदेवताध्याननिरूपणम्
उक्तानामष्टानां चक्राणां संक्षेपेण फलकथनम् २१८
मातृकाचक्रे लक्ष्म्या ध्येयत्वम् २२१
अङ्गमन्त्रदेवतातद्ध्यानादिप्रपञ्चनम् २२२
सुदर्शनमयसर्वचक्रकूटध्यानम् २२३
सौदर्शनसर्वमन्त्रमूलभूतशक्ति-ध्यानम् २२४
उक्तेषु यन्त्रेषु द्विजस्यैवाधिकारः २२४
सौदर्शनमन्त्रेष्वभिक्रमनाशाद्यभावः २२५
पञ्चविंशोऽध्यायः २२६-२३०
सुदर्शनयन्त्रवैभववर्णनम्
यन्त्रवैभवं प्रदर्शयितुमुक्तार्थानुवादः २२६
संक्षेपतः कलिस्वरूपकथनम् २२७
तादृशे कलौ राज्ञां रक्षाविध्युपाय-प्रश्नः २२७
तत्प्रतिवचनारम्भः २२७
स्वकृतपितामहशिरश्छेदमहा-पापप्रशमाय नारायणात् २२८
सुदर्शनयन्त्रप्राप्तिकथनम् २२८
तन्महिमसंक्षेपः २२८
सुदर्शननारसिंहयन्त्रफलप्रदर्शनम् २२९
विष्णुपञ्जरयन्त्रफलप्रदर्शनम् २२९
महासुदर्शनयन्त्रफलम् २२९
षड्विंशोऽध्यायः २३१-२४६
महासुदर्शनयन्त्रलक्षणम्
विस्तरेण महासुदर्शनयन्त्र-लक्षणप्रश्नः २३१
तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा २३१
यन्त्रनिर्माणद्रव्याणि २३१
यन्त्रलेखनसाधनद्रव्याणि २३२
यन्त्रमध्ये सौदर्शनपुरुषलेखनम् २३२
तत्स्वरूपवर्णनम् २३२
तस्य सर्वशरण्यत्वं निर्दोषत्वं कल्याणगुणाकरत्वं च २३३
तत्पादप्रान्ते साधकनामलेखनम् २३३
ततः पर्यन्ते षट्कोणचक्रलेखनम् २३३
तत्र षडक्षरविन्यासः २३३
अङ्गमन्त्रन्यासः २३३
ततश्चतुर्दलपद्मलेखनम् २३४
तत्र न्यसनीया वर्णाः २३४
अन्तरालेष्वन्तःस्थवर्णविन्यासः २३४
ततः षोडशकेसराष्टदलपद्मलेखनम् २३४
केसरेषु षोडशस्वरविन्यासः २३४
दलेष्वष्टाक्षरमन्त्रन्यासः २३४
द्वात्रिंशत्केसरषोडशदलपद्मलेखनम् २३४
केसरेषु कादिसान्तवर्णविन्यासः २३४
दलेषु षोडशार्णमन्त्रवर्णन्यासः २३४
द्वात्रिंशत्केसरदलपद्मलेखनम् २३४
केसरेषु वाराहनुष्टुभमन्त्रवर्णन्यासः २३५
दलेषु नारसिंहानुष्टुभमन्त्रवर्णन्यासः २३५
चतुःषष्टिदलपद्मलेखनम् २३५
तद्दलेषु पातालनारसिंहमन्त्रन्यासः २३५
पुनरष्टदलपद्मलेखनम् २३५
तद्दलेष्वष्टाक्षरनारसिंहमन्त्रन्यासः २३५
तद्बहिर्महिन्द्रमण्डलकल्पनम् २३५
बहिष्कोणेष्वन्तःस्थवर्णन्यासः २३६
कोणान्तरालेषु तद्बीजन्यासः २३६
तत्परितः स्वराणां प्रातिलोम्येन विन्यासः २३६
तत्परितः सादिकान्ताक्षरविन्यासः २३६
स्वनाम्ना पाशाङ्कुशाभ्यां चावेष्टनम् २३६
भूपुरकल्पनम् २३६
समन्तात् केशवादिमूर्तिन्यासः २३६
(१) केशवस्वरूपवर्णनम् २३६
(२) नारायणस्वरूपवर्णनम् २३७
(३) माधवस्वरूपवर्णनम् २३७
(४) गोविन्दस्वरूपवर्णनम् २३७
(५) विष्णुस्वरूपवर्णनम् २३७

(६) मधुसूदनस्वरूपवर्णनम् २३७
(७) त्रिविक्रमस्वरूपवर्णनम् २३८
(८) वामनस्वरूपवर्णनम् २३८
(९) श्रीधरस्वरूपवर्णनम् २३८
(१०) हृषीकेशस्वरूपवर्णनम् २३८
(११) पद्मनाभस्वरूपवर्णनम् २३८
(१२) दामोदरस्वरूपवर्णनम् २३८
नमोऽन्तानां तत्तन्नाम्नामपि लेखनम् २३८
प्रागादिषु प्रादक्षिण्येन बीजाक्षरन्यासः २३९
ऐशान्यादिष्वप्रादक्षिण्येन बीजाक्षरन्यासः २३९
पुनः पाशाङ्कुशाभ्यां वेष्टनम् २३९
प्रागादिचतुर्दिक्षु विष्णुविन्यास-स्तेषामायुधानि च २३९
आग्नेयादिकोणेषु हृषीकेशन्यासः २३९
तेषामायुधविशेषाः २३९
कोणान्तरालेष्वष्टसु जनार्दन-विन्यासः २४०
तेषामायुधविशेषाः २४०
तत्तत्पार्श्वेषु तत्तत्परिवारलेखनम् २४०
ततो भूमौ भूम्या सह पुरुषोत्तम-स्मरणम् २४०
अम्बरे नरसिंहस्मरणम् २४०
प्रागादिषु चक्रगदाशार्ङ्गखड्ग-स्मरणम् २४०
अस्य यन्त्रस्यापराङ्गकल्पनाय मध्ये चतुर्विंशत्यरचक्रकल्पनम् २४१
तन्मध्ये द्वादशदलपद्मलेखनम् २४१
तत्कर्णिकायामाग्नेयमण्डलन्यासः २४१
तन्मध्ये योगनृसिंहलेखनम् २४१
चक्रस्य प्रागादिष्वष्टशक्तिध्यानम् २४२
यथोक्तलक्षणयन्त्रमहिमा २४२
भूर्जपत्रलिखितस्यापि यन्त्रस्य सर्वफलसाधनता २४३
एतद्यन्त्रशिलाप्रतिष्ठाया मुक्तिसाधनत्वम् २४३
लोहादिभिर्यन्त्रप्रतिमानिर्माणफलम् २४३
कर्षणादिप्रतिष्ठान्तायतननिर्माण-फलम् २४३
भयादिषु यन्त्रस्मरणे फलम् २४३
त्रिसन्ध्यं यन्त्रार्चनं मुक्तिसाधनम् २४३
रक्षाविधौ राज्ञां वैशेषिकविध्यारम्भः २४४
तत्र प्रथममाचार्यपूजाविधिः २४४
ततो भगवदाराधनविधिः २४४
ततो यन्त्रनिर्माणम् २४४
यन्त्रनिर्माणस्य राज्यप्राप्तिहेतुत्वम् २४४
प्रतिष्ठापूर्वकार्चनस्य सप्तद्वीपान्त-भूमिप्राप्तिहेतुत्वम् २४४
अन्ततस्त्रैलोक्यपालयितृत्वसिद्धिः २४५
परकृताभिचारपरावर्तनसिद्धिः २४५
अवग्रहादिपरिहारसिद्धिः २४५
सर्वेषां स्वधर्मप्रवृत्तिसिद्धिः २४५
दुर्वाससा शप्तस्येन्द्रस्य यन्त्रेणानेन पुनः स्वपदप्राप्तिः २४५
चतुर्मुखस्य भगवत्सकाशा-द्यन्त्रप्राप्तिः २४५
चतुर्मुखेन विश्वकर्मणा यन्त्रविमानयोर्निर्मापणम् २४५
तदा प्रभृति यन्त्रस्यैव रक्षा-साधनत्वम् २४६
अध्यायार्थनिगमनम् २४६
सप्तविंशोऽध्यायः २४७-२५४
धारकयन्त्रनिरूपणम्
वृत्तानुवादपूर्वकं धारकयन्त्रविषयकः प्रश्नः २४७
तत्प्रतिवचनारम्भः २४७
प्रथमं माहेन्द्रमण्डलनिर्माणम् २४८
तत्कोणेषु भूबीजाक्षरन्यासः २४८
मण्डलप्राग्भागे शेषगुलिकयोर्न्यासः २४८
दक्षिणभागे वासुकिशङ्खयोः २४८

पश्चिमे तक्षकमहाम्बुजयोः २४८
उत्तरभागे कार्कोटकाम्बुजयोः २४८
मध्ये वह्निमण्डलकल्पना २४८
तन्मध्ये वायुमण्डलविन्यासः २४९
तन्मध्ये दशारचक्रलेखनम् २४९
अरेषु सुदर्शननारसिंहमन्त्रन्यासः २४९
चक्रमध्ये अष्टदलपद्मलेखनम् २४९
कर्णिकायां प्रणवन्यासः २४९
तत्रैवाभीष्टार्थसाध्यनाम्नो-
र्विलेखनम् २४९
यन्त्रेणानेनेन्द्रस्य शत्रुजयप्राप्तिः २५०
अस्यैव यन्त्रस्य पूर्वोक्तमहासुदर्शन-
यन्त्रधारकत्वम् २५०
राजन्वद्देशस्यैव यथोक्तयन्त्र-
भरणक्षमत्वम् २५१
राज्ञो नित्यमेतदभ्यर्चनविधिः २५१
एतन्मन्त्रप्रदातुर्विशेषतः
पूज्यत्वम् २५१
एतन्मन्त्रविधिना कर्षणादि-
प्रतिष्ठान्तकर्मविधिः २५१
तन्त्रस्यास्य सात्त्वतादिभिरेक-
तन्त्रत्वम् २५१
राज्ञामेतदर्चनेन राज्यादिलाभः २५२
नित्यमर्चयतः फलविशेषः २५२
होमार्थं प्रासादकुण्डयोर्निर्माणम् २५२
साधकेन तत्र होमादिनिर्वर्तनम् २५२
वैकल्पिकप्रदेशान्तरविधिः २५२
पुनर्यन्त्रार्चनफलविशेषकथनम् २५२
अस्मिन् मन्त्रे यन्त्रे च राज्ञा-
मेवाधिकारः २५३
एतत्प्रणामादीनामपि तत्तत्फल-
साधनत्वम् २५३
अध्यायार्थनिगमनम् २५४
अष्टाविंशोऽध्यायः २५५-२६६
भगवदाराधनविधिनिरूपणम्
आराधनविधिनिरूपणारम्भः २५५
तस्यैहिकामुष्मिकफल-
साधनत्वम् २५५
तत्रादौ स्नानविधिः २५५
आराधनोपक्रमः २५६
मण्डपवर्णनम् २५६
तत्र वेदिकानिर्माणम् २५७
तत्र सपरिवारभगवद्ध्यानम् २५७
भगवत्प्रार्थना २५८
भूतशुद्धिक्रमः २५८
पात्रादिस्थापनम् २५९
अर्घ्यादिषु प्रक्षेप्यद्रव्याणि २५९
तत्र मन्त्रासनं प्रथमम् २५९
स्नानासनं द्वितीयम् २६०
तृतीयमलङ्कारासनम् २६१
चतुर्थं भोज्यासनम् २६२
हविर्निवेदनम् २६३
पुनर्मन्त्रासनं पञ्चमम् २६३
षष्ठं पर्यङ्कासनम् २६४
दास्यप्रार्थना २६५
एवमनुष्ठितस्याराधनस्य
मोक्षसाधनत्वम् २६५
आनुषङ्गिकफलसाधनत्वं
कैमुतिकम् २६५
परिवाराद्यर्चनविधिः २६५
एकोनत्रिंशोऽध्यायः २६७-२७७
काम्याराधनविधिनिरूपणम्
तत्प्रतिवचनारम्भः २६७
तत्तदाराधनविशेषाणां
तत्तद्दिग्विजयसाधनत्वम् २६७
तत्र प्राचीदिग्विषये २६८
दक्षिणदिग्विषये २६९
पश्चिमदिग्विषये २७०
उत्तरदिग्विषये २७२
विदिशां विषये २७३
ऊर्ध्वलोकस्य विषये २७४
नागलोकस्य विषये २७५

सामान्यपरिभाषा २७६
त्रिंशोऽध्यायः २७८-२८३
अस्त्राणां जन्मनामनिरूपणम्
ब्राह्माद्यस्त्राणां देवपरिवारत्व-कथन्ताप्रश्नः २७८
तेषां जन्मनामप्रश्नः २७८
तत्प्रतिवचनार्थमाख्यायिकारम्भः २७८
लीलार्थं भगवतो बहुभवनम् २७८
पुरुषाधिष्ठितप्रधानसृष्टिः २७८
प्रधानान्महतः सृष्टिः २७९
महतोऽहङ्कारसृष्टिः २७९
सात्त्विकाहङ्कारादेकादशेन्द्रियसृष्टिः २७९
तामसाहङ्कारात् भूतसूक्ष्माणां भूतानां च सृष्टिः २७९
सप्तावरणवेष्टिताण्डसृष्टिः २७९
अण्डे चतुर्मुखसृष्टिः २७९
भगवच्छक्तिभूतस्य कालस्य सृष्टौ सहकारित्वम् २७९
चतुर्मुखव्याजेन भगवत एव विचित्रजगत्स्रष्टृत्वम् २८०
वेदशब्देभ्य एव देवादीनां नामरूपव्याकरणम् २८०
आप्तकामस्यापि स्रष्टृत्वोपपत्तिः २८०
भगवत एव पालकत्वम् २८०
दुष्टनिरसनं विना पालनस्या-शक्यत्वम् २८०
दुष्टनिबर्हणाय भगवत एव चक्रात्मनावस्थानम् २८०
देवादीनां सुदर्शनधारणासामर्थ्यम् २८०
शस्त्रास्त्ररूपेण तस्य विभागः २८१
भगवदात्मकात् सुदर्शनाद-स्त्राणामुत्पत्तिः २८१
तत्र मुखजातान्यस्त्राणि २८१
वक्षोजातान्यस्त्राणि २८१
ऊरुजातान्यस्त्राणि २८२
पादजातान्यस्त्राणि २८२
अपराङ्गजातान्युपसंहारास्त्राणि २८२
अध्यायार्थनिगमनम् २८३
एकत्रिंशोऽध्यायः २८४-२९१
योगाङ्गयमनियमासननिरूपणम्
हृद्यागस्वरूपप्रश्नः २८४
तदुत्तरकथनारम्भः २८४
हृद्यागलक्षणम् २८४
आत्मसमर्पणस्य हृद्यागतुल्यत्वम् २८५
प्रकृतिवियुक्तात्मस्वरूपविषयकः प्रश्नः २८५
तदुत्तरकथनारम्भः २८५
योगकर्मणोर्विविक्तात्मस्वरूप-प्राप्तिसाधनता २८५
तद्विषयकः प्रश्नः २८६
तदुत्तरकथनारम्भः २८६
कर्मणां द्वैविध्यम् २८६
प्रवर्तकनिवर्तककर्मणोः क्रमादभ्युदय-निःश्रेयससाधनत्वम् २८६
जीवपरसंयोगस्याष्टाङ्गयोग-शब्दार्थता २८६
योगाङ्गपरिगणनम् २८६
यमस्वरूपनिरूपणम् २८७
सत्यादीनां स्वरूपनिरूपणम् २८७
नियमस्वरूपनिरूपणम् २८७
सिद्धान्तश्रवणादीनां स्वरूप-निरूपणम् २८८
अथासनानां स्वास्थ्यहेतुत्वम् २८८
मुख्यासनपरिगणनम् २८८
चक्रासनम् २८९
पद्मासनम् २८९
कूर्मासनम् २८९
मयूरासनम् २८९
कुक्कुटासनम् २८९
वीरासनम् २८९
स्वस्तिकासनम् २९०
भद्रासनम् २९०

सिंहासनम् २९०
मुक्तासनम् २९०
गोमुखासनम् २९०
प्राणायामसिद्धये नाडीशुद्ध्यावश्यकता २९१
द्वात्रिंशोऽध्यायः २९२-३०३
नाडीशुद्धिवायुजययोगाङ्गप्राणायामादिनिरूपणम्
नाडीसङ्ख्यास्थानादिप्रश्नः २९२
वायुसङ्ख्यादिप्रश्नः २९२
तदुत्तरकथनारम्भः २९२
शरीरस्य षण्णवत्यङ्गुलपरिमाणत्वम् २९२
शरीरमध्यभागनिर्णयः २९३
शरीरस्थवह्निमण्डलस्वरूपम् २९३
नाडीमूलस्थानम् २९३
नाभिचक्रस्थानम् २९३
नाभिचक्रस्यारेषु सुदर्शनमन्त्रवर्णन्यासः २९३
शिष्टाक्षराणां चक्रमध्ये न्यासः २९३
नाभिचक्रं परितः कुण्डल्यवस्थितिः २९३
चक्रमध्ये अलम्बुसासुषुम्नयोः स्थितिः २९४
अन्यासां द्वादशनाडीनां स्थानभेदाः २९४
मुख्यानां चतुर्दशनाडीनां नामानि २९४
देहवर्तिनाडीसङ्ख्या २९५
मुख्यास्तिस्रो नाड्यः २९५
तास्वपि सुषुम्ना मुख्यतमा २९५
जीवस्य नाडीचक्रे भ्रमणम् २९५
सुषुम्नाया मध्यमरन्ध्रस्य कुण्डल्या पिधानम् २९५
नाडीनां परिमाणनिरूपणम् २९५
इडापिङ्गलयोश्चन्द्रसूर्यावस्थितिः २९६
शारीरवायुवृत्तान्तकथनम् २९६
शरीरे दश वायवः २९६
प्राणादिवायूनां स्थाननिरूपणम् २९६
प्राणादीनां वृत्तिनिरूपणम् २९७
नाडीशोधनविधिः २९८
तच्छोधनप्रकारः २९८
उक्तक्रमेण शोधयतो मासत्रयेण नाडीशुद्धिसिद्धिः २९८
ततो वायुजयः २९८
वायुजयान्मनसः स्थैर्यम् २९८
प्राणायामविधिः २९८
शिखादिस्थानेषु मनोः षडक्षरन्यासः २९९
प्राणायामप्रकारः २९९
प्रत्याहारनिरूपणम् २९९
धारणानिरूपणम् ३००
ध्याननिरूपणम् ३००
ध्यानालम्बनभूतध्येयस्वरूपनिरूपणम् ३००
समाधिनिरूपणम् ३०१
समाधिनिष्ठस्य महिमानुवर्णनम् ३०१
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३०३-३१७
मणिशेखरोपाख्यानवर्णनम्
उक्तार्थानुवादः ३०३
सुदर्शनप्रभावविषयकस्त्रिधा प्रश्नः ३०३
विस्तरेण तदुत्तरकथनारम्भः ३०४
सर्वस्यापि सुदर्शनात्मकत्वम् ३०४
सुदर्शनस्यैव कालचक्रात्मकत्वम् ३०४
कालचक्रस्वरूपनिरूपणम् ३०४
सर्वस्यापि कालचक्रवशवर्तित्वम् ३०४
परमात्मा कालचक्रप्रवर्तकः ३०४
जगच्चक्रनिरूपणम् ३०४
परमात्मनस्तत्प्रेरकत्वम् ३०४
परमात्मनो नाभिचक्रप्रेरकत्वम् ३०५
परमात्मनः सर्वप्रेरकत्वनिगमनम् ३०५
तस्यैव जगत्सर्गस्थितिसंहारहेतुत्वम् ३०५
तस्यैव शिवरूपधरस्य शैवैराराध्यत्वम् ३०५
तस्यैव ब्रह्मरूपेण जगत्स्रष्टृत्वम् ३०५

तस्यैव स्वांशरूपेण जगत्पालकत्वम् ३०५
तस्यैव रुद्ररूपेण संहर्तृत्वम् ३०५
तस्यैव बुद्धरूपत्वम् ३०५
तस्यैव दिगम्बररूपत्वम् ३०६
तस्यैव जिनरूपत्वम् ३०६
तस्यैव यज्ञपुरुषरूपत्वम् ३०६
कापिलमते तस्यैव पुरुषरूपत्वम् ३०६
सर्वस्वरूपत्वात् तस्यैव सर्वफलप्रदत्वम् ३०६
देवादिरूपधारणादपि चक्ररूपधारणं भगवतः प्रियतमम् ३०६
तत्र हेतुनिरूपणम् ३०६
तत्रेतिहासोदाहरणम् ३०७
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३१८-३३३
ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपनिरूपणम्
ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपप्रश्नः ३१८
१. ब्रह्मास्त्रम् ३१९
२. दण्डचक्रम् ३१९
३. कालचक्रम् ३१९
४. धर्मचक्रम् ३१९
५. विष्णुचक्रम् ३२०
६. इन्द्रचक्रम् ३२०
७. वज्रास्त्रम् ३२०
८. त्रिशूलम् ३२०
९. ब्रह्मशिरोऽस्त्रम् ३२१
१०. ऐषीकास्त्रम् ३२१
११. मोदकी ३२१
१२. शिखरी ३२१
१३. धर्मपाशास्त्रम् ३२१
१४. कालपाशास्त्रम् ३२२
१५. वरुणपाशास्त्रम् ३२२
१६. आद्योऽशनिः ३२२
१७. अन्योऽशनिः ३२२
१८. पैनाकास्त्रम् ३२२
१९. नारायणास्त्रम् ३२३
२०. पाशुपतास्त्रम् ३२३
२१. आग्नेयास्त्रम् ३२३
२२. दयितास्त्रम् ३२३
२३. वायव्यास्त्रम् ३२४
२४. हयशिरोऽस्त्रम् ३२४
२५. क्रौञ्चास्त्रम् ३२४
२६. प्रथमा शक्तिः ३२४
२७. द्वितीया शक्तिः ३२५
२८. कङ्कालास्त्रम् ३२५
२९. मुसलास्त्रम् ३२५
३०. कापालास्त्रम् ३२५
३१. कङ्कणी ३२५
३२. वैद्याधरास्त्रम् ३२६
३३. असिरक्तास्त्रम् ३२६
३४. गान्धर्वास्त्रम् ३२६
३५. प्रस्थापनास्त्रम् ३२६
३६. प्रशमनास्त्रम् ३२६
३७. सौर्यास्त्रम् ३२७
३८. दर्पणास्त्रम् ३२७
३९. शोषणास्त्रम् ३२७
४०. सन्तापनास्त्रम् ३२७
४१. विलापनास्त्रम् ३२८
४२. मदनास्त्रम् ३२८
४३. कंदर्पदयितास्त्रम् ३२८
४४. पैशाचास्त्रम् ३२८
४५. तामसास्त्रम् ३२८
४६. सौमनास्त्रम् ३२९
४७. संवर्तास्त्रम् ३२९
४८. मौसलास्त्रम् ३२९
४९. सत्यास्त्रम् ३२९
५०. मायाधरास्त्रम् ३२९
५१. घोरास्त्रम् ३३०
५२. रत्यस्त्रम् ३३०
५३. अघोरास्त्रम् ३३०
५४. सौमास्त्रम् ३३०
५५. त्वाष्ट्रास्त्रम् ३३१

५६. दारुणास्त्रम् ३३१
५७. भगास्त्रम् ३३१
५८. शीतेष्वस्त्रम् ३३१
५९. मानवास्त्रम् ३३२
६०. रौद्रास्त्रम् ३३२
६१. प्रस्वापनास्त्रम् ३३२
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३३४-३४८
संहारास्त्रस्वरूपनिरूपणम्
संहारास्त्रस्वरूपप्रश्नः ३३४
तदुत्तरकथनारम्भः ३३४
१. सत्यवदस्त्रम् ३३४
२. सत्यकीर्त्यस्त्रम् ३३५
३. धृष्टास्त्रम् ३३५
४. रभसास्त्रम् ३३५
५. प्रतीहारतरास्त्रम् ३३५
६. पराङ्मुखास्त्रम् ३३६
७. अवाङ्मुखास्त्रम् ३३६
८. लक्षाक्षास्त्रम् ३३६
९. विषमास्त्रम् ३३६
१०. दृढनाभास्त्रम् ३३७
११. संहारकास्त्रम् ३३७
१२. दशाक्षास्त्रम् ३३७
१३. दशशीर्षास्त्रम् ३३७
१४. शतोदरास्त्रम् ३३८
१५. पद्मनाभास्त्रम् ३३८
१६. महानाभास्त्रम् ३३८
१७. दुन्दुनाभास्त्रम् ३३८
१८. धृतिमाल्यस्त्रम् ३३९
१९. रुचिरास्त्रम् ३३९
२०. पितृसौमनसास्त्रम् ३३९
२१. विधूतास्त्रम् ३३९
२२. मकरास्त्रम् ३४०
२३. करवीरसमास्त्रम् ३४०
२४. धनास्त्रम् ३४०
२५. धान्यास्त्रम् ३४१
२६. ज्यौतिषास्त्रम् ३४१
२७. कृशनास्त्रम् ३४१
२८. नैराश्यास्त्रम् ३४१
२८. विमलास्त्रम् ३४२
३०. योगन्धरास्त्रम् ३४२
३१. विनिद्रास्त्रम् ३४२
३२. नैद्रास्त्रम् ३४३
३३. प्रमथनास्त्रम् ३४३
३४. सार्चिर्माल्यस्त्रम् ३४३
३५. कामरूपास्त्रम् ३४३
३६. कामरुच्यस्त्रम् ३४४
३७. मोहनास्त्रम् ३४४
३८. आवरणास्त्रम् ३४४
३९. जृम्भकास्त्रम् ३४४
४०. सर्वनाभकास्त्रम् ३४५
४१. भृशाश्वतनयास्त्रम् ३४५
४२. सन्धानास्त्रम् ३४५
४३. वारुणास्त्रम् ३४५
अस्त्राणां मूर्तत्वामूर्तत्वजिज्ञासया नारदेनाहिर्बुध्न्यस्तुतिः ३४६
अस्त्राणां मूर्तत्वामूर्तत्वप्रश्नः ३४७
तेषां मूर्तत्वप्रतिपादनम् ३४७
षट्त्रिंशोऽध्यायः ३४९-३५८
राज्ञां सुदर्शनयन्त्राराधनविधान-केशवादिगुणप्रधानभाव-व्यवस्थापनम्
सौदर्शनयन्त्रस्य पूर्वापराङ्गध्यानार्चन-प्रकारप्रश्नः तदुत्तरकथनम् ३४९
तत्र पूर्वाङ्गे यन्त्रमध्ये सुदर्शन-ध्यानम् ३५०
परितः केशवादिद्वादशमूर्ति-ध्यानम् ३५०
ततो विष्ण्वादिषोडशमूर्तिध्यानम् ३५०
परितो मूर्तिमत्संहारास्त्रध्यानम् ३५१
ततो मूर्तिमत्प्रवर्तकास्त्रध्यानम् ३५१
ततो नारसिंहध्यानम् ३५१
अपराङ्गध्यानम् ३५१

अपराङ्गे सर्वास्त्राणां मन्त्रमात्र-ध्यानम् ३५२
एतद्यन्त्राभ्यर्चनाद्राज्ञां चक्रवर्तित्व-लाभः ३५२
अन्यैरपि राजहितैषिभिरेतदर्चनं कार्यम् ३५२
अन्येषामपि श्रीकामानामेत-दभ्यर्चनम् ३५२
द्विमुखयन्त्रार्चने मन्त्रोपदेष्टुर्ब्राह्मणस्यैवाधिकारः ३५३
आदित्यमण्डलाक्ष्यादिस्थानां पुरुषाणामभिन्नत्वम् ३५३
तस्यैव कालचक्रादिप्रवर्तकत्वम् ३५३
विमाने संस्थाप्य तस्यैव समभ्यर्चन-मैहिकामुष्मिकफलसाधकम् ३५३
विमानकरणारम्भस्यापि महाफलकत्वम् ३५४
विमानकरणार्थस्य कर्षणस्यापि सर्वसम्पत्साधनत्वम् ३५४
आरब्धापरिसमाप्तस्यापि विमान-करणस्यान्ततो मुक्तिसाधनता ३५४
साङ्गप्रतिष्ठादिकर्तुः फलपरम्परा-निरूपणम् ३५४
सुदर्शनपुरुषमनाराधयतो नृपत्वं दुर्लभम् ३५५
एतदाराधनतारतम्यात् फल-तारतम्यम् ३५५
तस्माद्राज्ञामन्येषां चैतदाराधना-वश्यकता ३५५
तदुत्तरकथनारम्भः ३५६
तदुपपादनाय परमात्मशक्तेर्द्वैधा विभागः ३५६
तत्रेच्छारूपिण्याः शक्तेर्लक्ष्मी-रूपत्वम् ३५६
क्रियारूपायाः शक्तेः सुदर्शन-रूपत्वम् ३५६
ताभ्यां शक्तिभ्यां विना भगवतोऽप्य-किञ्चित्करत्वम् ३५७
तस्य शक्तिद्वयस्य सृष्टिस्थिति-संहाराद्युपकरणत्वम् ३५७
रक्षकं परमात्मानं प्रति शक्तिद्वय-स्यापि रक्ष्यकोट्यन्तर्भावः ३५७
विशिष्य लक्ष्म्या अपि रक्ष्यकोट्यन्त-र्भावप्रतिपादनम् ३५७
प्रकारान्तरेणापि गुणप्रधान-भावोपपादनम् ३५८
एतद्रहस्यश्रवणादेरपि क्रमशः परमपुरुषार्थसाधनत्वम् ३५८
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३६०-३६९
न्यासापरपर्यायप्रपत्तिनिरूपणम्
उक्तानुवादपूर्वकं सुदर्शनस्य षोडशभुजत्वप्रयोजनादिप्रश्नः ३६०
राज्ञामत्याहितादिनिवारणं षोडश-भुजत्वस्य प्रयोजनम् ३६१
षोडशभुजसुदर्शनविग्रहवर्णनम् ३६१
यथोक्तसुदर्शनध्यानस्य निःसापत्न्यसाधनता ३६२
सुदर्शनमनाराधयतां राज्ञां शत्रुपराभवादिः ३६३
योगेन न्यासेन वा सुदर्शनाराधन-स्यैहिकामुष्मिकफलसाधनता ३६३
उक्तानुवादपूर्वकं न्यासाख्य-प्रपत्तिस्वरूपप्रश्नः ३६३
न्यासस्य परमरहस्यत्वख्यापनम् ३६३
न्यासस्य सर्वफलसाधनत्वो-पपादनम् ३६४
प्रपत्तेः षडङ्गानि ३६४
न्यासप्रकरणे शरणशब्दस्य साधनवाचित्वम् ३६४
प्रपत्तिलक्षणम् ३६४
सुदर्शनप्रपत्तौ मन्त्रविशेषकथनम् ३६५
प्रपन्नस्य कृतकृत्यत्वम् ३६५

न्यासमात्रेण तपोयज्ञादिसिद्धि-
कथन्ताप्रश्नः ३६५
तदुत्तरकथने न्यासस्य सर्वतपोऽति-
रिक्ततपस्त्वकथनम् ३६५
नमःशब्देन कृतात्मन्यासस्य
स्वध्वरत्वोपपादनम् ३६६
न्यासस्य परमधर्मत्वे प्रमाणप्रदर्शनम् ३६६
न्यासस्य सर्वयज्ञसमत्वम् ३६६
न्यासस्य यज्ञत्वनिर्वहणाय यज्ञाङ्ग-
पौष्कल्यनिरूपणम् ३६६
प्रपन्नस्य कृतकृत्यत्वनिगमनम् ३६७
यथोक्तक्रमेण सुदर्शनमनाराधयतां
क्लेशप्राप्तिनिगमनम् ३६७
सुदर्शनमनाराधयतां राज्ये
ब्रह्महत्यादिदोषोत्पत्तिः ३६८
सुदर्शनमनाराधयतां राज्ञां
प्रजानुरागाभावः ३६८
राज्ये सुदर्शनानाराधनात् प्रजाना-
मपि बहुदुःखभागिता ३६८
सुदर्शनसमाराधनस्य
सर्वफलावाप्तिसाधनतानिगमनम् ३६८
अष्टात्रिंशोऽध्यायः ३७०-३७९
ज्वरादिरोगनिवृत्त्युपायविधानम्
उक्तानुवादपूर्वकं रोगमोचनोपाय-
प्रश्नः ३७०
रोगोत्पत्ति तद्विनाशकारणकथनम् ३७०
प्राकृतप्रलये एकाकिनः परम-
पुरुषस्य रमणाभावः ३७१
लीलार्थं पुनः सृष्टिः ३७१
नामरूपव्याकरणम् ३७१
लीलोपकरणभूतप्रकृत्या
परमात्मनो रमणम् ३७१
प्रकृत्या जीवपरयोः स्वरूप-
प्रच्छादनम् ३७२
प्रकृतिपारवश्याज्जीवस्य संसरणम् ३७२
प्रकृतेर्देहात्मभ्रमहेतुत्वम् ३७२
अहङ्कारममकारोत्थवासनादार्ढ्यम् ३७२
तदुत्थवासनानां रागद्वेषद्वारा
पुण्यपापहेतुत्वम् ३७२
प्रारब्धकर्मफलोपभोगायैव शरीर-
सृष्टिः ३७३
रोगाणां पापजन्यत्वम् ३७३
तत्र प्रथमं ज्वरशान्त्युपायः ३७३
राजयक्ष्मशान्तिः ३७५
प्रमेहरोगशान्तिः ३७७
उदररोगशान्तिः ३७७
अपस्माररोगशान्तिः ३७८
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३८०-३८५
सर्वफलसाधनभूतमहाभिषेकविधानम्
केन प्रयोगेण सर्वार्थसिद्धिरिति
प्रश्नः ३८०
तदुत्तरकथनारम्भः ३८०
महाभिषेकाख्यकर्मविधिः ३८१
तदङ्गतया स्थानादिविशेषविधिः ३८१
प्रागादिदिक्षु मध्ये चाग्निकुण्ड-
विधिः ३८२
प्रागाद्यग्निकुण्डानां लक्षणकथनम् ३८२
दिशां होमेषु वैष्णवर्त्विग्वरणम् ३८२
होमे द्रव्यसङ्ख्ययोर्विधिः ३८२
होमे मन्त्रविधिः ३८३
कुम्भाभिमन्त्रणविधिः ३८३
प्रथमं प्रागादिकुम्भजलैरभिषेकः ३८३
ततः पूर्णकुम्भजलेनाभिषेकः ३८३
यथोक्ताभिषेकेण सर्वकामावाप्तिः ३८३
अन्ते साधकार्चनविधिः ३८४
ऋत्विजां ब्राह्मणानां च परि-
तोषणविधिः ३८५
चत्वारिंशोऽध्यायः ३८६-४००
अस्त्रस्वरूपतच्छक्तिनिरूपणम्
उक्तानुवादपूर्वकमस्त्रसंस्थान-
तच्छक्तिस्वरूपप्रश्नः ३८६

अस्त्राणां स्वरूपेण प्रत्यक्षागोचरता ३८७
देवकार्यार्थमिन्द्रं प्रति कदाचित्
तेषां गोचरता ३८७
मन्त्ररूपेणासाध्ये विषये तेषां
स्वस्वरूपाविष्करणम् ३८७
भगवता तेषां स्वरूपेण धारणम् ३८७
तत्स्वरूपतच्छक्तिकथनप्रतिज्ञा ३८७
१. नारायणास्त्रम् ३८७
२. पाशुपतास्त्रम् ३८८
३. ब्राह्मास्त्रम् ३८८
४. ब्रह्मशिरोऽस्त्रम् ३८८
५. विष्णुचक्रास्त्रम् ३८८
६. जृम्भणास्त्रम् ३८८
७. कालपाशास्त्रम् ३८८
८. आग्नेयास्त्रम् ३८९
९. हयशिरोऽस्त्रम् ३८९
१०. प्रस्वापनास्त्रम् ३८९
११. तामसास्त्रम् ३८९
१२. कालास्त्रम् ३८९
१३. दण्डचक्रास्त्रम् ३८९
१४. कालचक्रास्त्रम् ३८९
१५. धर्मचक्रास्त्रम् ३८९
१६. शैवास्त्रम् ३९०
१७. शूलास्त्रम् ३९०
१८. परश्वस्त्रम् ३९०
१९. त्रिशूलास्त्रम् ३९०
२०. घोरास्त्रम् ३९०
२१. अघोरास्त्रम ३९०
२२. सम्मोहनास्त्रम् ३९०
२३. ऐषीकास्त्रम् ३९०
२४. ऐन्द्रचक्रास्त्रम् ३९१
२५. शुष्काशन्यस्त्रम् ३९१
२६. आर्द्राशन्यस्त्रम् ३९१
२७. पैनाकास्त्रम् ३९१
२८. कङ्कालास्त्रम् ३९१
२९. कापालास्त्रम् ३९१
३०. सौरास्त्रम् ३९१
३१. वरुणपाशास्त्रम् ३९२
३२. सन्तापनास्त्रम् ३९२
३३. वारुणास्त्रम् ३९२
३४. धर्मपाशास्त्रम् ३९२
३५-३६. शक्तिद्वयास्त्रम् ३९२
३७. वायव्यास्त्रम् ३९२
३८. मौसलास्त्रम् ३९२
३९. गान्धर्वास्त्रम् ३९२
४०. दर्पणास्त्रम् ३९३
४१. शोषणास्त्रम् ३९३
४२. पैशाचास्त्रम् ३९३
४३. तेजःप्रभास्त्रम् ३९३
४४. ऐन्द्रास्त्रम् ३९३
४५. विलापनास्त्रम् ३९३
४६. वैद्याधरास्त्रम् ३९३
४७. कङ्कालास्त्रम् ३९३
४८. मोदक्यस्त्रम् ३९४
४९. शिखरास्त्रम् ३९४
५०. क्रौञ्चास्त्रम् ३९४
५१. असिरत्नास्त्रम् ३९४
५२. प्रशमनास्त्रम् ३९४
५३. कन्दर्पदयितास्त्रम् ३९४
५४. मदनास्त्रम् ३९४
५५. सौमनास्त्रम् ३९४
५६. सत्यास्त्रम् ३९४
५७. संवर्तकास्त्रम् ३९५
५८. मायाधरास्त्रम् ३९५
५९. सोमास्त्रम् ३९५
६०. त्वाष्ट्रास्त्रम् ३९५
६१. शीतेष्वस्त्रम् ३९५
६२. भगास्त्रम् ३९५
६३. सदामनास्त्रम् ३९५
६४. सत्यवदस्त्रम् ३९५
६५. वारणास्त्रम् ३९५
६६. धृष्टास्त्रम् ३९६

६७. भृशाश्वतनयास्त्रम् ३९६
६८. सत्यकीर्त्यस्त्रम् ३९६
६९. मोहास्त्रम् ३९६
७०. रभसास्त्रम् ३९६
७१. सर्वनाभास्त्रम् ३९६
७२. पराङ्मुखास्त्रम् ३९६
७३. जृम्भकास्त्रम् ३९६
७४. प्रतिहारास्त्रम् ३९७
७५. अवाङ्मुखास्त्रम् ३९७
७६. धनास्त्रम् ३९७
७७. धान्यास्त्रम् ३९७
७८. महाभूतास्त्रम् ३९७
७९. कामरूपास्त्रम् ३९७
८०. दृढनाभास्त्रम् ३९७
८१. कामरुच्यास्त्रम् ३९७
८२. सुनाभास्त्रम् ३९८
८३. मकरास्त्रम् ३९८
८४. दशाक्षास्त्रम् ३९८
८५. वेतालास्त्रम् ३९८
८६. दशवक्त्रास्त्रम् ३९८
८७. रुचिरास्त्रम् ३९८
८८. दशकर्णास्त्रम् ३९८
८९. योगन्धरास्त्रम् ३९८
९०. वारुणास्त्रम् ३९९
९१. अनिद्रास्त्रम् ३९९
९२. कुठारास्त्रम् ३९९
९३. शतोदरास्त्रम् ३९९
९४. सौमनसास्त्रम् ३९९
९५. पद्मनाभास्त्रम् ३९९
९६. महानाभास्त्रम् ३९९
९७. ज्यौतिषास्त्रम् ३९९
९८. क्षेपणास्त्रम् ३९९
९९. त्रैराशिकास्त्रम् ४००
१००. सार्चिर्माल्यस्त्रम् ४००
१०१. विमलास्त्रम् ४००
१०२. धृतिकास्त्रम् ४००

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४०१-४०८
स्वरूपतोऽस्त्रधारणतत्प्रयोजन-प्रतिपिपादयिषया मधुकैटभसंहार-वर्णनम्
भगवता अस्त्राणां स्वरूपतो धारणस्य कालविशेष-प्रयोजनादिप्रश्नः ४०१
पृष्टस्यार्थस्य परमगुह्यत्वख्यापन-मुखेन तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा ४०१
प्रलयावसाने भगवतः सिसृक्षोदयः ४०२
प्रकृतिपुरुषमहदादिविशेषान्त-जगत्सृष्टिः ४०२
अण्डोत्पादनपूर्वकं चतुर्मुखसृष्टिः ४०२
प्रजासृष्ट्यर्थं चतुर्मुखाय वेदोपदेशः ४०२
चतुर्मुखस्य प्रजासृष्ट्यारम्भः ४०२
तत्र बलदर्पितमधुकैटभोत्पत्तिः ४०२
मधुकैटभाभ्यां चतुर्मुखाद्वेदा-पहरणम् ४०३
वेदापहाराच्चतुर्मुखस्य सृष्ट्य-सामर्थ्यम् ४०३
निर्विण्णस्य चतुर्मुखस्य चिन्ता-प्रकारः ४०३
कृतनिश्चयस्य चतुर्मुखस्य क्षीराब्धिगमनम् ४०३
चतुर्मुखेन भगवतः स्तुतिः ४०३
भगवता चतुर्मुखाय दर्शनप्रदानम् ४०४
चतुर्मुखेन स्ववृत्तान्तनिवेदनम् ४०४
भगवता मधुकैटभस्मरणम् ४०५
मधुकैटभयोस्तत्रागमनम् ४०५
मधुकैटभौ प्रति भगवद्वचनम् ४०५
भगवद्वचनतिरस्करणपूर्वकं मधुकैटभयोः प्रतिवचनम् ४०५
भगवता मधुकैटभयोर्हननाय विष्वक्सेनादेशनम् ४०५
ततः समरसन्नहनम् ४०६
द्वयोः सेनयोस्तुमुलसंग्रामः ४०६

विष्वक्सेनेन भगवत्सकाशे मधुकैटभयोरजय्यत्वनिवेदनम् ४०६
भगवतः सर्वास्त्राणां स्वरूपतो धारणपूर्वकं युद्धाय निर्गमनम् ४०६
सर्वास्त्रस्वरूपधारिभगवद्रूपवर्णनम् ४०७
तद्रूपदर्शनाद् दैत्यसैन्यानां निःशेषं विलयः ४०७
चक्रेण मधुकैटभयोः शिरश्छेदः ४०७
ब्रह्मणे वेदप्रदानपूर्वकं भगवत-स्तिरोधानम् ४०८
ब्रह्मणा यथापूर्वं प्रजासृष्टिः ४०८
उपसंहारः ४०८
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४०९-४२२
काशिराजश्रुतकीर्त्युपाख्यानवर्णनम्
अङ्गमन्त्राणामुत्पत्तिदेवताप्रयोजन-शक्तिध्येयप्रश्नाः ४०९
पृष्टस्यार्थस्य गुह्यत्वख्यापनमुखे-नोत्तरकथनारम्भः ४०९
उत्पत्तिप्रश्नस्योत्तरम् ४१०
देवताप्रश्नस्योत्तरम् ४१०
प्रयोजनशक्तिप्रश्नयोरुत्तरम् ४१०
ध्येयप्रश्नस्योत्तरम् ४१०
निवर्तकास्त्रप्रयोगावसरप्रश्नः ४१०
तत्प्रयोगावसरकथनम् ४११
पराभिचाराभिभवज्ञानोपायप्रश्नः ४११
तज्ज्ञानोपायलिङ्गनिरूपणम् ४११
पराभिचारनिवर्तनाय निवर्तकास्त्रधारिसुदर्शनप्रीणनम् ४१३
प्रीतेन सुदर्शनेन पराभिचार-निर्दहनम् ४१३
परप्रयुक्तकृत्यायास्तत्प्रयोक्तुश्च विनाशनम् ४१३
काशीराजेतिहासोदाहरणम् ४१४
श्रुतकीर्त्युपाख्यानोदाहरणम् ४१४
राज्ञा श्रुतकीर्त्तिना धर्मेण सप्तद्वीपमहीपरिपालनम् ४१४
स्वस्तिकनगरवर्णनम् ४१५
युयुत्सुना श्रुतकीर्त्तिना तन्नगरोपरोधः ४१६
गन्धर्वराजेन वाहिनीप्रेषणम् ४१६
तत्र तुमुलसंग्रामः ४१६
श्रुतकीर्त्तिना गन्धर्वसैन्यविद्रावणम् ४१६
क्रुद्धस्य गन्धर्वराजस्य स्वयं युद्धाय निर्गमनम् ४१६
गन्धर्वराजश्रुतकीर्त्योरष्टदिनपर्यन्तं युद्धप्रवृत्तिः ४१७
भूपतिना गन्धर्वराजस्य धनुरादि-च्छेदो बलविद्रावणं च ४१७
गन्धर्वराजस्य विषादः ४१७
गन्धर्वराजेन मानुषबले गान्धर्वास्त्र-प्रयोगः ४१७
तेन मानुषसैन्यविमोहनम् ४१८
तत्प्रतीकाराशक्तस्य श्रुतकीर्त्तेः पुरोधसि स्ववृत्तनिवेदनम् ४१८
तेन जातबलस्य श्रुतकीर्त्तेः पुनर्युद्धायागमनम् ४१९
तेन स्वसैनिकमोहविमोचनम् ४१९
पुनर्युद्धे श्रुतकीर्त्तेर्विजयो गन्धर्वलोक-वशीकरणं च ४१९
ततः स्वपुरप्रत्यागमनम् ४१९
सुदर्शनप्रभावाद्विस्मितस्य पुनः पुरोधसा सह मन्त्रणप्रकारः ४२०
स्वसम्पदो भगवत्प्रसादहेतुकत्व-कथनम् ४२०
भगवत्प्रसादात् स्वस्य मोक्षलाभे संशयाभावकथनम् ४२०
राजानं प्रति पुरोधसा सुदर्शनप्रतिष्ठापनाद्युपदेशः ४२०
राज्ञा तथैवानुष्ठानम् ४२१
तदर्थं राज्ञा द्विजानां वृत्ति-प्रकल्पनम् ४२१
ततो भगवत्प्रसादाद्राज्ञः परम-पुरुषार्थलाभः ४२१

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४२३-४२९
जलन्धरवधोपायचिन्तनम्
कृत्स्नस्य जगच्चक्रमयत्व-कथन्ताप्रश्नः ४२३
दानवादीनां धर्मविघातकत्वम् ४२४
पापिनां विनाशोपायचिन्तया-हिर्बुध्न्यस्य मेरुशिखरगमनम् ४२४
तत्र समाधिमास्थितस्य तस्य तेजोविशेषदर्शनम् ४२४
भीतिवशात् आथर्वणमन्त्रोच्चारण-पूर्वकं पुनस्तद्दर्शनम् ४२४
तेजोमध्ये सुदर्शनपुरुषसाक्षात्कार-पूर्वकं प्रश्नः ४२४
प्रीतेन भगवता स्वस्वरूपख्यापनम् ४२५
ततोऽहिर्बुध्न्येन भगवति स्वाभिप्रेतनिवेदनम् ४२५
दैत्यादिविनाशनप्रार्थना ४२६
भगवता तथेत्युक्ते स्वस्य कैलासगमनम् ४२६
अत्रान्तरे जलन्धरवधार्थमिन्द्रस्य मन्त्रालोचना ४२६
तत्र वायुना स्वाभिप्रायविनिवेदनम् ४२६
वायुवचनमङ्गीकृत्य शङ्करं गन्तुं शक्रेण बृहस्पतिप्रचोदनम् ४२७
इन्द्रवचनात् बृहस्पतेः कैलासगमनम् ४२७
तत्र शङ्करदर्शनम् ४२८
जलन्धरवधार्थं बृहस्पतिना शङ्करस्तुतिः ४२८
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४३०-४३९
सुदर्शनस्वरूपप्रदर्शनम्
स्तुतिप्रीतेन शङ्करेणागमनकारण-प्रश्नः ४३०
बृहस्पतिना शङ्कराय सुरकार्य-निवेदनम् ४३०
शङ्करेण जलन्धरवधप्रतिज्ञा ४३१
स्वस्य दैत्यनिग्रहसामर्थ्ये सुदर्शन-प्रसादस्य हेतुत्वख्यापनम् ४३१
सौदर्शनविद्याग्रहणाय शङ्करं प्रति बृहस्पतेः प्रार्थना ४३२
शङ्करेण तस्मै तदुपदेशः ४३२
लब्धविद्येन बृहस्पतिना हिमवत्तटे तत्पुरश्चरणम् ४३२
बृहस्पतिना सुदर्शनसाक्षात्कारः ४३३
विस्मितेन बृहस्पतिना तस्य द्विभुजत्वकारणप्रश्नः ४३३
सुदर्शनेन प्रतिवचनम् ४३३
अनन्तेषु सौदर्शनव्यूहेषु चतुर्णां प्राधान्यम् ४३३
तेषां परिगणनम् ४३४
व्यूहान्तराणामुपासकानुग्रहार्थत्वम् ४३४
व्यूहचतुष्टयस्य स्वाभाविकत्वं नित्यत्वं सात्त्विकत्वं च ४३४
अन्येषामुपासकानुग्रहार्थत्व-निगमनम् ४३४
स्वस्यात्यद्भुतरूपान्तरास्तित्व-प्रतिपादनम् ४३४
बृहस्पतिना तद्रूपदर्शनप्रार्थना ४३४
भगवता जगच्चक्रात्मकस्व-स्वरूपप्रदर्शनम् ४३५
तद्रूपवर्णनम् ४३५
अदृष्टपूर्वरूपदर्शनात् बृहस्पते-र्मोहाधिगमः ४३६
लब्धसंज्ञेन तेन सुदर्शनस्तुतिः ४३६
बृहस्पति कृता सुदर्शनस्य स्तुतिः ४३६
तद्रूपोपसंहरणप्रार्थना ४३८
सुदर्शनेनाष्टभुजेन भूत्वा स्वस्वरूप-स्यातिगुह्यत्वकथनम् ४३८
सुदर्शनस्य भगवत्क्रियाशक्ति-स्वरूपत्वनिरूपणम् ४३९

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४४०-४४९
कुशध्वजोपाख्यानवर्णनम्
अध्यात्मविद्यादिविषयकः प्रश्नः ४४०
अविद्याकार्यनिरूपणम् ४४०
अध्यात्मज्ञानकार्यनिरूपणम् ४४१
परविद्याकार्यनिरूपणम् ४४१
प्रारब्धकर्मणां भोगैकनाश्यत्वम् ४४१
तत्प्रतिविवक्षया कुशध्वजेतिहासोदाहरणम् ४४१
कुशध्वजस्य महामोहेन भृशं पीडा ४४२
उदासीनस्यापि तस्य मुहुर्मुहुः पीडातिशयः ४४२
नितरां पीडितस्य तस्य चिन्ताप्रकारः ४४२
तस्य स्वकुलगुरुयाज्ञवल्क्याभिगमनम् ४४२
कुशध्वजेन स्ववृत्तान्तनिवेदनम् ४४३
याज्ञवल्क्यस्य प्रतिवचनम् ४४३
शरीरसृष्टेः फलभोगार्थत्वम् ४४३
ब्रह्मविच्छरीरस्यापि तथात्वम् ४४३
महामोहस्य पापफलत्वम् ४४४
तत्कारणभूतपापनिरूपणप्रतिज्ञा ४४४
राज्ञामुन्मादादिदोषोत्पत्तिकारणनिरूपणम् ४४४
युद्धादन्यत्र राजवधात् कुशध्वजस्य महामोहप्राप्तिकथनम् ४४४
सुदर्शनमहिम्नाष्टानामपि दोषाणां निश्चयेन नाश्यत्वम् ४४५
सुदर्शनप्रसादसम्पादनयत्नोपदेशः ४४५
प्रथमं मण्डपादिनिर्माणम् ४४५
सरस्वतीतीरे मण्डपनिर्माणविधिः ४४५
तत्र स्वागमनप्रतिज्ञा ४४६
यथोपदेशं राज्ञोऽनुष्ठानम् ४४६
याज्ञवल्क्यस्य तन्मण्डपगमनम् ४४६
मण्डपस्य पश्चिमभागे राजासनकल्पनम् ४४६
प्राग्भागद्वयमध्ये होमकुण्डकल्पनम् ४४६
मध्ये अष्टदिक्षु च कुण्डकल्पना ४४७
प्रतिकुण्डमेकैकस्य, मध्ये द्वयोश्च कुम्भयोः स्थापनम् ४४७
याज्ञवल्क्येन स्वयं कुम्भार्चनम् ४४७
यन्त्रप्रतिष्ठाविलेखनादि ४४७
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४५०-४५५
सुदर्शनहोमाङ्गद्रव्यपरिमाणादिनिरूपणम्
राज्ञो होममण्डपानागमने कर्तव्यक्रमः ४५०
पुरोहितलक्षणम् ४५०
पुरोधस एव राज्ञः सर्वकार्यकर्तृत्वम् ४५१
तादृशपुरोहिताभावे राज्ञोऽनिष्टकथनम् ४५१
कुम्भादीनां परिमाणादिप्रश्नः ४५२
उत्तमपरिमाणम् ४५२
मध्यमपरिमाणम् ४५२
अधमपरिमाणम् ४५२
यथाविधि स्रुगादिनिर्माणम् ४५२
ऋत्विक्सङ्ख्या ४५२
अङ्गमन्त्रादिविधिः ४५३
होमान्ते राज्ञोऽभिषेकः ४५३
गुर्वादिप्रीणनम् ४५३
प्रधानहोमकर्त्रे विशेषतो दक्षिणादानम् ४५४
ततो ब्राह्मणतर्पणम् ४५४
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४५६-४६६
महाशान्तिविधानम्
ऐहिकामुष्मिकसर्वफलसाधकैकोपायप्रश्नः ४५६
तदुत्तरकथनारम्भः ४५७
वक्ष्यमाणे कर्मविशेषे राज्ञामधिकारः ४५७

अम्बरीषप्रभृतीनामेतदनुष्ठानात् यथोक्तफललाभः ४५७
तत्र राज्ञामधिकारनिगमनम् ४५७
देशविशेषविधिः ४५८
मण्डपनिर्माणक्रमः ४५८
कुण्डकल्पनाक्रमः ४५८
अस्त्रकुण्डकल्पना ४५९
ऋत्विग्वरणम् ४५९
अस्त्रकुण्डेषु ऋत्विगन्तरवरणम् ४५९
कुम्भस्थापनम् ४६०
होमार्थमृत्विगन्तरवरणविधिः ४६०
मध्यमकुण्डे आचार्यकर्तृक-होमविधिः ४६०
होमसङ्ख्याविधिः ४६१
तत्तत्कुम्भेषु तत्तद्देवताभ्यर्चन-विधिः ४६१
होमान्ते कुम्भोदकेन राज्ञोऽभिषेकः ४६१
अस्त्रकुण्डेषु होमविधिः ४६१
उत्तममध्यमाधमभेदेन होम-सङ्ख्याविकल्पः ४६१
नारायणीयाद्यस्त्रवर्गे होमसाधन-द्रव्यविधिः ४६१
कालचक्रादिवर्गे चरुविधिः ४६२
कङ्कालादिवर्गे दधिविधिः ४६२
मदनादिवर्गे पयोविधिः ४६२
रभसादिवर्गे पायसविधिः ४६३
योगन्धरादिवर्गे तिलविधिः ४६३
धनादिवर्गे मधुविधिः ४६३
अन्येष्वस्त्रेषु शालितण्डुलविधिः ४६३
होमान्ते मन्त्रविशेषेण सुदर्शन-तर्पणविधिः ४६४
नारायणीयादितर्पणे मन्त्रविशेषविधिः ४६४
कालचक्रादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः ४६४
मदनादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः ४६४
रभसादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः ४६४
धनादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः ४६५
अन्येष्वस्त्रेषु मन्त्रविशेषविधिः ४६५
तर्पणान्ते सहस्रब्राह्मणभोजनविधिः ४६५
ततोऽस्त्रमन्त्रजलैः राज्ञोऽभिषेक-विधिः ४६५
रुग्णस्य तु राज्ञः प्रोक्षणविधिः ४६६
मण्डपान्तःस्थकुम्भतोयाभिषेचना-वश्यकता ४६६
यथोक्तमहाशान्तिफलकीर्तनम् ४६६
अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ४६७-४८२
श्रीसुदर्शनमहायन्त्रघटितासनादिप्रभाव-वर्णनम्
इष्टार्थसाधने जपादिव्यतिरिक्तोपाय-प्रश्नः ४६७
तत्रासनादीनामुपायत्वकथनम् ४६७
आसनादिभिर्मुक्तापीडादीनामिष्ट-सिद्धिः ४६८
केवलासनादीनामिष्टसाधनत्व-कथन्ताप्रश्नः ४६८
आसनप्रभाववर्णनाय मुक्तापीडो-पाख्यानकथनम् ४६८
मुक्तापीडस्य विषयासक्ततया राज्ये धर्मविच्युतिः ४६८
सपुरोधसाममात्यानां मन्त्रणप्रकारः ४६९
यथोपदिष्टानुष्ठानेन राज्ञो निष्कण्टक-भूमिलाभः ४७३
अङ्गुलीयकप्रभाववर्णनाय विशालो-पाख्यानारम्भः ४७३
विशालगुणवर्णनम् ४७४
तज्जनन्याः स्वपुत्रमरणसूचका-काशवाणीश्रवणाद्विलापः ४७४
राज्ञा मातुः समाश्वासनपूर्वकं पुरोधसः पुलहस्याश्रमगमनम् ४७४
पुलहं प्रति स्ववृत्तान्तनिवेदनम् ४७४
मुनिना तत्प्रतीकारोपायोपदेशनम् ४७५
राज्ञा यथोपदिष्टानुष्ठानम् ४७५
ततश्च राज्ञो यमकिङ्करैः समागमः ४७५

अङ्गुलीयप्रभावात् किङ्कराणां दूरात् पलायनम् ४७५
राज्ञोऽपमृत्युजयात् यमादीनां विस्मयः ४७५
दर्पणप्रभाववर्णनाय सुनन्दोपाख्यानम् ४७६
सुमतिनाम्नस्तत्पुत्रस्य नागकन्यया नागलोके नयनम् ४७६
पुत्रविरहात् खिद्यता राज्ञा चारैः पुत्रान्वेषणम् ४७७
अलब्धपुत्रवृत्तान्तेन राज्ञा अनशनव्रतस्वीकरणम् ४७७
पुरोधसा कण्वाश्रमगमनपूर्वकं तस्मिन् राजवृत्तस्य निवेदनम् ४७८
कण्वमुनिना राजकुमारवृत्तान्तस्याविष्करणम् ४७८
कुमारप्रत्याहरणे सुदर्शनयन्त्रघटितदर्पणस्यैव साधनत्वोपदेशः ४७९
यथोपदिष्टानुष्ठानात् राज्ञो नागलोकगमनसिद्धिः ४७९
अत्यद्भुतनागलोकदर्शनात् राज्ञो विस्मयातिशयः ४८०
राज्ञा सदारस्य कुमारस्य स्वपुरीं प्रति प्रत्यानयनम् ४८०
ततः क्रुद्धस्य वासुकेर्युद्धसमुद्योगः ४८०
सुदर्शनयन्त्रघटितदर्पणप्रभावात् राज्ञो विजयलाभः ४८०
पराजितेन वासुकिना शरणागतिपूर्वकं राजाभ्यर्हणम् ४८१
ततो राज्ञः सपरिकरस्य स्वपुरप्रवेशः ४८१
एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ४८३-४९३
सुदर्शनमहायन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपणम्
सुदर्शनयन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपण ४८३
चित्रशेखराधिष्ठितभद्रवाटीनगरवर्णनम् ४८३
तत्पित्रोपरिचरेण कदाचिद् द्वन्द्वयुद्धे शङ्कुकर्णाख्यासुरहननम् ४८४
अमर्षणनाम्ना शङ्कुकर्णसुतेन चित्रशेखरपीडनम् ४८४
चित्रशेखरस्य तेन सह घोरयुद्धम् ४८५
दिनत्रयं युध्यमानस्यापि विजयालाभः ४८५
श्रान्तसेनयोर्द्वयोरपि युद्धात् प्रतिनिवृत्तिः ४८५
एवं सप्तदशवारं युध्यमानस्यापि विजयासिद्धिः ४८५
खिन्नस्य राज्ञः चिन्ताप्रकारः ४८५
कृतनिश्चयस्य कैलासगमनम् ४८६
गगने गच्छतोऽस्य मन्दरोपरि स्यन्दनगतिप्रतिरोधः ४८६
तत्कारणजिज्ञासया चरतस्तत्र कुबेरदर्शनम् ४८६
तेन समं संलापः ४८७
राज्ञा कुबेरे स्ववृत्तान्तस्य निवेदनम् ४८७
कुबेरवचनात् तत्र गिरौ लक्ष्मीनिवासपरिज्ञानम् ४८७
लक्ष्मीप्रसादनोपदेशपूर्वकं कुबेरान्तर्धानम् ४८८
राजसाहाय्यार्थं कुबेरप्रहितपुरुषसमागमः ४८८
तद्वचनात् तत्रैव स्थाने तद्रात्रियापनम् ४८८
प्रभाते राज्ञा लक्ष्मीनिवासस्थानजिज्ञासया गुह्यकं प्रति प्रश्नः ४८८
गुह्यकस्य प्रतिवचनम् ४८८
ततो गुह्यकेन सह लक्ष्मीमन्दिरगमनम् ४८९
गुहाद्वारदेशे गुह्यकस्यावस्थानम् ४८९

राज्ञो मन्दिरान्तःस्थरत्नमण्डपे प्रवेशः ४८९
मण्डपवर्णनम् ४८९
मण्डपमध्यस्थरत्नपर्यङ्के अब्जासनस्थ-महालक्ष्मीदर्शनम् ४९०
तत्पादोदकप्राशनपरिपूतेन राज्ञा तत्स्तुतिकरणम् ४९०
तत्र लक्ष्म्याः उभयविभूत्यैश्वर्य-प्रतिपादनम् ४९१
लक्ष्म्या एव निर्व्याजपुरुषकारत्व-समर्थनम् ४९१
लक्ष्म्याः पारमार्थिकमङ्गलगुणा-करतया श्रुतिशिरोभूषणत्वम् ४९२
उमाशचीप्रभृतीनां महालक्ष्मी-विभूतित्वम् ४९२
स्तुतिप्रीतया लक्ष्म्या राजाभीष्टस्य प्रश्नः ४९२
लक्ष्मीदत्तध्वजमहिम्ना शत्रुजयपूर्वकं राज्ञो निष्कण्टकराज्यलाभः ४९३
पञ्चाशोऽध्यायः ४९४-५१२
कीर्तिमाल्युपाख्यानवर्णनम्
वक्ष्यमाणार्थसूचनम् ४९४
भद्रशृङ्गनाम्ना राज्ञा भूमण्डलस्य परिपालनम् ४९४
तत्पुत्रस्य कीर्तिमालिनो गुण-वर्णनम् ४९४
पितुरनन्तरं तेनापि धर्मतो राज्यस्य पालनम् ४९५
कदाचित् निशीथे गूढं सञ्चरतस्तस्य पुराद् बहिर्विप्रदर्शनम् ४९५
तद्वृत्तान्तजिज्ञासोः राज्ञस्तं प्रति प्रश्नः ४९६
योगारूढस्य तस्य राजप्रश्नम-जानतो मौनीभावः ४९६
बलाद् ग्रहीतुमुद्युक्तस्य राज्ञो विप्र-प्रभावात् स्तम्भीभावः ४९६
विस्मितेन राज्ञा स्तुतिभिर्विप्रस्य प्रसादनम् ४९६
प्रसन्नेन विप्रेण स्ववृत्तान्तस्या-विष्करणम् ४९७
विदितवृत्तान्तेन राज्ञा स्वपुरं प्रति ब्राह्मणस्यानयनम् ४९७
हितमुपदेष्टुं राजप्रार्थना ४९७
तेन राज्ञे साङ्गसौदर्शनमहा-मन्त्रस्योपदेशः ४९८
राज्ञा गुरवे दक्षिणयाः प्रदानम् ४९८
गुरुणा तदग्रहणपूर्वकं स्वाभिमत-देशस्य गमनम् ४९९
राज्ञा धर्मतो राज्यस्य प्रशासनम् ४९९
मन्त्रिणां प्रतिवचनम् ५००
कृत्स्नस्यापि भूमण्डलस्य वश्यत्व-प्रतिपादनम् ५००
देवादीनां वश्यत्वाभावप्रतिपादनम् ५००
पुनरमात्यान् प्रति राज्ञो देवादि-विजयोपायप्रश्नः ५०१
अमात्यानां प्रतिवचनम् ५०१
स्वपक्षे बलसमृद्धिनिरूपणपूर्वक-मभिषेणनोद्योगजननम् ५०१
मन्त्रिवचनात् प्रथमं राज्ञो नागलोकाभिगमनम् ५०२
गारुडास्त्रप्रभावेण तत्र राज्ञो विजय-प्राप्तिः तथा दैत्यविजयः ५०३
यक्षगन्धर्वादिजयपूर्वकं राज्ञः स्वनगरागमनम् ५०३
तत्र स्वपरिवारेषु देवानामदर्शना-दिन्द्रं प्रति सन्देशप्रेषणम् ५०३
राजसन्देशात् मनोजवनाम्नो दूतस्यामरावतीगमनम् ५०४
तत्रास्थानमण्डपे वासवदर्शनम् ५०४
वासवेन दूतस्याभिनन्दनम् ५०४
दूतेनेन्द्राय राजसन्देशस्य निवेदनम् ५०४
दूतेन राजोक्तसन्देशस्यानुवादः ५०५

सन्देशश्रवणात् कुपितस्येन्द्रस्य तत्प्रतिक्रियाचरणम् ५०५
सवज्रेणैरावतेन राजसैन्यस्य विनाशनम् ५०५
भीतैर्जानपदैः राज्ञे तद्वृत्तान्तस्य निवेदनम् ५०६
सैन्यविनाशश्रवणात् दुःखितेन राज्ञा पुरोधसं प्रति प्रश्नः ५०६
पुरोधसा देवकोपस्यैव तत्कारणत्वेन निवेदनम् ५०६
अत्रान्तरे मनोजवसमागमः ५०७
मनोजवं प्रति राज्ञः प्रश्नः ५०७
मनोजवेन राज्ञे निवेदनम् ५०७
तच्छ्रुतवता वासवेन युद्धार्थं देवसैन्यस्य प्रेषणम् ५०७
ततो देवमानुषसेनयोर्घोरयुद्ध-प्रवृत्तिः ५०८
प्रवृत्तयुद्धवर्णनम् ५०८
तत्र जिगीषुणेन्द्रेण स्वसेनाधि-पतीनां प्रचोदनम् ५०९
देवसेनापतीनां तात्कालिकजय-प्राप्तिः ५०९
राज्ञा दिव्यास्त्रस्य विमोचनम् ५०९
राजप्रयुक्तेन वैष्णवचक्रेण देव-सैन्यस्य प्रतिहतिः ५१०
वासवप्रयुक्तानां दिव्यास्त्राणामपि तस्मिन् विष्णुचक्रे विलयः ५१०
अन्ततो वज्रस्याप्यकिञ्चित्करत्वम् ५१०
स्वपराजयात् विस्मितस्य शक्रस्य राज्ञा सह संलापः ५११
राजशक्रयोः सख्यकरणपूर्वकं स्वस्वस्थानगमनम् ५११
एकपञ्चाशोऽध्यायः ५१३-५२६
तारादिबीजाक्षरस्वरूपार्थवर्णनम्
तारादिमन्त्रार्थप्रश्नः ५१३
उत्तरकथनारम्भः ५१४
तारकस्य सर्वश्रैष्ठ्यप्रतिपादनम् ५१४
मन्त्रसामान्येऽप्यर्थस्य त्रैविध्यम् ५१४
स्थूलादीनां सामान्यतो लक्षणम् ५१४
स्थूललक्षणम् ५१५
सूक्ष्मलक्षणम् ५१५
परलक्षणम् ५१५
तारस्य स्थूलार्थप्रदर्शनम् ५१५
क्रमेण तेषां प्रणवाक्षरत्रयप्रति-पाद्यत्वम् ५१६
तेषामेकैकस्य विश्वतैजसप्राज्ञरूपै-कैकसंज्ञाभागित्वम् ५१६
विश्वाख्यानिरुद्धरूपप्रदर्शनम् ५१७
अनिरुद्धस्यैव स्थानविशेषनिर्देश-पूर्वकं भोग्यविशेषनिरूपणम् ५१७
प्रद्युम्नस्य भोग्यविशेषस्थान-विशेषनिरूपणम् ५१७
सङ्कर्षणस्य भोग्यविशेषस्थान-विशेषनिरूपणम् ५१७
अनिरुद्धस्य स्थूलदेहाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः ५१७
प्रद्युम्नस्य सूक्ष्मदेहाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः ५१८
सङ्कर्षणस्यानन्दाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः ५१८
अनिरुद्धस्य बहिःप्रज्ञत्वम् ५१८
प्रद्युम्नस्यान्तःप्रज्ञत्वम् ५१८
सङ्कर्षणस्यानन्दमयत्वम् ५१८
वासुदेवाख्यायाश्चतुर्थशक्तेर्नाद-प्रतिपाद्यत्वम् ५१८
शक्तिचतुष्टयविलये सति अखण्ड-भगवच्छक्तेः स्तैमित्यरूपत्वम् ५१९
शक्तिचतुष्टयविलापनप्रकारः ५१९
स्तैमित्यरूपायास्तस्याः शक्तेः पञ्चमदशारूपत्वम् ५१९
प्रणवाभ्यासविशेषस्य तादृशशक्ति-साक्षात्कारहेतुत्वम् ५१९

ओंकाराभ्यासिनो हृदये लक्ष्म्या निर्हेतुकं स्वस्वरूपस्य प्रकाशनम् ५२०
पाशुपतोक्तस्येशादिसंज्ञा-चतुष्टयस्यापि लक्ष्मीपरत्वम् ५२०
सांख्ययोगोक्तस्य संज्ञाचतुष्टयस्यापि लक्ष्मीपरत्वम् ५२०
लक्ष्मीविशिष्टस्य परस्य ब्रह्मणो मुक्तप्राप्यत्वम् ५२१
उक्तार्थस्यैव भङ्ग्यन्तरेण विशदीकरणम् ५२१
अथ परार्थनिरूपणम् ५२१
ओंकारेण यथोक्तब्रह्मणोरभिन्नत्वस्य बोधनम् ५२२
उक्तार्थध्याननिष्ठस्य योगनिष्ठा-सिद्धिः ५२२
तारानुतारयोरर्थवर्णनप्रतिज्ञा ५२२
तत्र तारायाः स्थूलार्थनिरूपणम् ५२३
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५२३
परार्थनिरूपणम् ५२३
अनुतारायाः स्थूलार्थनिरूपणम् ५२४
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५२४
परार्थनिरूपणम् ५२४
उक्तसर्वार्थसंक्षेपः ५२५
द्विपञ्चाशोऽध्यायः ५२७-५४१
विष्ण्वादिमन्त्रार्थनिरूपणम्
वृत्तानुवादपूर्वकं विष्ण्वादिमन्त्रार्थ-कथनप्रतिज्ञा ५२७
नमःशब्दस्य स्थूलार्थनिरूपणे शब्दार्थप्रदर्शनम् ५२७
उत्कृष्टापकृष्टभेदेन चेतनद्वैविध्यम् ५२७
अनवधिकातिशयप्रकर्षविशिष्टस्य ज्यायःशब्दमुख्यार्थत्वम् ५२८
तदन्येषामज्यायस्त्वम् ५२८
जीवपरयोः सम्बन्धनिरूपणपूर्वकं नन्तृनन्तव्यत्वव्यवस्था ५२८
जीवेशयोः शेषशेषिभावस्य निरुपाधिकत्वम् ५२८
निरुपाधिकोत्कर्षापकर्षज्ञानस्य नमनहेतुत्वम् ५२९
अन्तर्णिजर्थविवक्षया नमःशब्दस्य निर्वचनान्तरम् ५२९
करणत्रयसहितस्य नमसः पूर्णत्वम् ५२९
प्रह्वीभावात्मकात्मनिक्षेपत-द्विरोधिनोर्निरूपणम् ५२९
कार्पण्यतद्विरोधिनोर्निरूपणम् ५३०
महाविश्वासतद्विरोधिनोर्निरूपणम् ५३०
गोप्तृत्ववरणतद्विरोधिनोर्निरूपणम् ५३०
प्रातिकूल्यवर्जनम्, तद्विरोधिनो-र्निरूपणम् ५३१
आनुकूल्यसङ्कल्पतम्, द्विरोधिनो-र्निरूपणम् ५३१
उक्तार्थनिगमनम् ५३१
नमःशब्दस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणे म इत्यस्याहङ्कार-ममकारवाचित्वम् ५३१
नमःशब्दस्याहन्ताममताबुद्धि-निवर्तकत्वम् ५३२
उक्तार्थस्यैव विवरणम् ५३२
नमः शब्दार्थज्ञानस्याहन्ताममताबुद्धि-निवर्तकत्वे उपपत्तिप्रदर्शनम् ५३२
नमःशब्दस्य परार्थनिरूपणम् ५३२
विष्णुमन्त्रस्य स्थूलार्थनिरूपणम् ५३३
व्याप्तिगुणनिरूपणम् ५३४
कान्तिगुणनिरूपणम् ५३४
प्रवेशगुणनिरूपणम् ५३४
इच्छागुणनिरूपणम् ५३४
विष्णुशब्दे एकैकवर्णार्थनिरूपणम् ५३४
परार्थनिरूपणम् ५३५
नारायणमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५३५
परार्थनिरूपणम् ५३६
वासुदेवमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५३६

भकारार्थनिरूपणम् ५३७
गकारार्थनिरूपणम् ५३७
मतुबर्थनिरूपणम् ५३७
वासुशब्दार्थनिरूपणम् ५३७
देवशब्दार्थनिरूपणम् ५३८
परार्थनिरूपणे भकारार्थनिरूपणम् ५३८
गकारार्थनिरूपणम् ५३८
वकारार्थनिरूपणम् ५३९
तकारार्थनिरूपणम् ५३९
वाकारार्थनिरूपणम् ५३९
सुकारार्थनिरूपणम् ५३९
देकारार्थनिरूपणम् ५४०
वकारार्थनिरूपणम् ५४०
त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ५४२-५५७
जितन्ताख्यमन्त्रार्थनिरूपणम्
तयोर्ज्ञानादिषड्गुणजन्यत्वम् ५४२
ज्ञानादिगुणपूर्णत्वात् भगवत एव नन्तव्यत्वम् ५४२
पुण्डरीकाक्षशब्दस्य यथोक्तार्थप्रकाशकत्वोपपादनम् ५४३
तस्यैव शब्दस्य हेयप्रतिभटत्वकल्याण-गुणाकरत्वरूपोभयलिङ्गपरत्वम् ५४३
तस्यैव वासुदेवाख्यप्रथमव्यूह-निरूपकत्वम् ५४३
कालत्रैविध्यकथनपूर्वकं तदुपपादनम् ५४४
व्यूहत्रयात् परवासुदेवस्य वैलक्षण्या-विष्करणम् ५४४
पुण्डरीकाक्षशब्दस्य भगवति नित्य-विभूतियोगप्रतिपादकत्वम् ५४४
तस्यैव स्वमहिमप्रतिष्ठितत्वप्रति-पादकत्वम् ५४५
परार्थनिरूपणारम्भः ५४५
पकारार्थनिरूपणम् ५४५
उकारार्थनिरूपणम् ५४५
णकारार्थनिरूपणम् ५४५
डकारार्थनिरूपणम् ५४५
ईकारशिरस्करेफार्थनिरूपणम् ५४६
आकारसहितककारार्थनिरूपणम् ५४६
क्षकारार्थनिरूपणम् ५४६
पुण्डरीकाक्षशब्दार्थस्य चिरकालादपि कात्स्न्येन वक्तुमशक्यत्वम् ५४६
मन्त्रद्वितीयपादस्थूलार्थनिरूपणम् ५४६
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५४६
विश्वभावनशब्दस्य सर्वकारण-परत्वम् ५४७
कारणत्वोपयोगिसर्वज्ञत्वपरत्वम् ५४७
सङ्कर्षणाख्यद्वितीयव्यूहपरत्वम् ५४७
सर्वशेषिपरत्वम् ५४७
सर्वाधारपरत्वम् ५४७
परार्थनिरूपणारम्भः ५४८
इकारशिरस्कवकारार्थनिरूपणम् ५४८
शकारार्थनिरूपणम् ५४८
द्वितीयवकारार्थनिरूपणम् ५४८
आकारसहितभकारार्थनिरूपणम् ५४८
भकारविवक्षितसिद्धिप्रदत्वो-पपादनम् ५४९
तृतीयवकारनकारार्थनिरूपणम् ५४९
मन्त्रतृतीयपादस्थूलार्थस्य पूर्वनिरूपितत्वसूचनम् ५४९
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५४९
ज्ञाननिर्मलीकरणद्वारा हर्षहेतुत्व-परत्वेन प्रद्युम्नाख्यव्यूहपरत्वम् ५५०
ज्ञानेन्द्रियनियामकपरत्वम् ५५०
जगन्मयपरत्वम् ५५०
सृष्ट्यादिरूपक्रीडाहेतुकहर्षाश्रय-देवपरत्वम् ५५०
ऐश्वर्यवीर्यरूपगुणाश्रयपरत्वम् ५५१
जगच्छब्दविवक्षितसर्वचेतन-शेषित्वपरत्वम् ५५१
परार्थनिरूपणारम्भः ५५१
हकारार्थनिरूपणम् ५५१

ऋकारार्थनिरूपणम् ५५१
ईकारशिरस्कषकारार्थनिरूपणम् ५५२
एकारशिरस्कककारार्थनिरूपणम् ५५२
शकारार्थनिरूपणम् ५५२
मन्त्रचतुर्थपादस्य स्थूलार्थ-निरूपणम् ५५२
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५५३
मकारार्थनिरूपणम् ५५३
हाकारार्थनिरूपणम् ५५३
महेतिसमुदायार्थनिरूपणम् ५५३
पुकारार्थनिरूपणम् ५५३
रुशब्दार्थनिरूपणम् ५५४
षकारार्थनिरूपणम् ५५४
पुरुषपदसमुदितार्थनिरूपणम् ५५४
रेफशिरस्कपूकारार्थनिरूपणम् ५५४
वकारजकारार्थनिरूपणम् ५५४
पूर्वजशब्दसमुदितार्थनिरूपणम् ५५४
महापुरुषपदसमुदितार्थनिरूपणम् ५५५
परार्थनिरूपणारम्भः ५५५
मकारार्थनिरूपणम् ५५५
हाकारार्थनिरूपणम् ५५५
उकारशिरस्कपकारार्थनिरूपणम् ५५६
तादृशरेफार्थनिरूपणम् ५५६
षकारपकारार्थनिरूपणम् ५५६
ऊकारार्थनिरूपणम् ५५६
द्वितीयरेफार्थनिरूपणम् ५५६
वकारजकारार्थनिरूपणम् ५५६
प्रकृतमहामन्त्रतात्पर्यसूचनम् ५५७
चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ५५८-५६७
नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्
सप्तभिः श्लोकैर्मन्त्रमाहात्म्य-निरूपणम् ५५८
सर्वचेतनहितकामनया कल्पादौ सङ्कर्षणेनास्य प्रकाशितत्वम् ५५९
ब्रह्मरुद्रादीनामपि महता श्रमेण सङ्कर्षणादेतन्मन्त्रप्राप्तिः ५५९
मान्त्रवर्णिकैरुग्रादिपदैः रौद्रादि-रसप्रतिपादनम् ५६०
अहंपदस्य भगवच्छेषत्वेन रूपेणात्म-स्वरूपनिष्कर्षकत्वम् ५६०
उग्रादिपदाभिहितानां रौद्रादिरसानां विष्णुव्यवस्थाप्रदर्शनम् ५६०
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५६१
उग्रशब्दार्थनिरूपणम् ५६१
वीरशब्दार्थनिरूपणम् ५६१
महच्छब्देन त्रिविधपरिच्छेद-शून्यत्वस्य बोधनम् ५६१
पुनर्महच्छब्दस्य नवधा निर्वचन-प्रदर्शनम् ५६१
यथाक्रमं तेषामुपपादनम् ५६२
विष्णुशब्दार्थनिरूपणम् ५६२
महाविष्णुपदसम्पिण्डितार्थ-निरूपणम् ५६३
ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम् ५६३
सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम् ५६३
नृसिंहशब्दार्थनिरूपणम् ५६३
भीषणशब्दार्थनिरूपणम् ५६३
भद्रशब्दार्थनिरूपणम् ५६४
मृत्युमृत्युशब्दार्थनिरूपणम् ५६४
प्रथममृत्युशब्दस्याज्ञानादित्रयपरत्वे निर्वचनप्रदर्शनम् ५६४
अहंशब्दस्य चतुर्धार्थवर्णनम् ५६४
सांख्यमार्गेण मन्त्रार्थं प्रदर्शयितुमुग्र-भीषणशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६५
ज्वलच्छब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६५
वीरशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६५
महाविष्णुशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
सर्वतोमुखशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
भद्रशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
नृसिंहशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
मृत्युमृत्युशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
अहंशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६

नमामिशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६७
पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ५६८-५७७
नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्
योगमतानुसारेण मन्त्रार्थनिरूपण-प्रतिज्ञा ५६८
उग्रशब्दार्थनिरूपणम् ५६८
वीरशब्दार्थनिरूपणम् ५६८
ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम् ५६९
सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम् ५६९
भीषणशब्दार्थनिरूपणम् ५६९
महाविष्णुनृसिंहभद्रमृत्युमृत्यु-शब्दार्थस्य पूर्वोक्तत्वसूचनम् ५६९
संपिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम् ५६९
पाशुपतमतानुसारेण मन्त्रार्थनिरूपणे उग्रशब्दार्थनिरूपणम् ५६९
वीरशब्दार्थनिरूपणम् ५७०
सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम् ५७०
ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम् ५७०
भीषणशब्दार्थनिरूपणम् ५७०
मृत्युमृत्युशब्दार्थनिरूपणम् ५७०
पदान्तरार्थस्य पूर्वप्रदर्शितत्व-सूचनम् ५७०
सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम् ५७०
त्र्यन्तमतानुसार्यर्थस्य पूर्वनिरूपितत्वसूचनम् ५७१
सात्त्वतमतेन मन्त्रार्थनिरूपणम् ५७१
उग्रशब्दस्य सङ्कर्षणाख्यव्यूह-परत्वम् ५७१
वीरशब्दस्य प्रद्युम्नाख्यव्यूहपरत्वम् ५७१
महाविष्णुशब्दस्यानिरुद्धाख्यव्यूह-परत्वम् ५७१
ज्वलच्छब्दस्य रामकृष्णादिविभव-परत्वम् ५७२
भद्रशब्दस्यावतारदशायामपि हेय-सम्बन्धराहित्यपरत्वम् ५७२
भीषणशब्दस्य मोक्षप्रदत्वपरत्वम् ५७२
मृत्युमृत्युशब्देन भद्रशब्दोदितस्य हेयप्रतिभटत्वस्य बोधनम् ५७३
नृसिंहशब्दस्य द्विविधव्याप्ति-परत्वम् ५७३
वीरपदेन प्रद्युम्नव्यूहस्य प्रति-पादनम्, तदुपपादनञ्च ५७५
सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम् ५७५
महाविष्णुशब्देनानिरुद्धव्यूहस्य सङ्कीर्तनम्, तदुपपादनञ्च ५७५
षट्पञ्चाशोऽध्यायः ५७८-५८७
नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्
ज्वलदादिपदानां पद्मनाभाद्येकोन-चत्वारिंशदवतारपरत्ववर्णनम् ५७८
वकारस्य कान्तात्मामृतधारका-ख्यविंशावतारपरत्वम् ५७९
लकारस्य शक्त्यात्माख्यचतुर्था-वतारपरत्वम् ५७९
नकारस्य धर्माख्यद्वादशावतार-परत्वम् ५७९
तकारस्यानन्ताख्यतृतीयावतार-परत्वम् ५७९
अम्भ्रत्ययावयवयोरकारमकारयोः कालनेमिघ्नाख्यद्वाविंशावतार-परत्वम् ५८०
तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन श्रीपत्या-ख्यैकोनविंशावतारपरत्वम् ५८०
सरेफस्य वकारस्य वराहाख्य-षोडशावतारपरत्वम् ५८१
तकारस्य वागीश्वराख्यत्रयोदशा-वतारपरत्वम् ५८१
ओकारस्य त्रिविक्रमाख्यत्रिंशाव-तारपरत्वम् ५८१
तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन विश्वरूपा-ख्याष्टमावतारपरत्वम् ५८१
तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन वेदविदाख्य-सप्तत्रिंशावतारपरत्वम् ५८२

ऋकारस्य पारिजातहरणाख्य-त्रयोविंशावतारपरत्वम् ५८३
इकारस्य परशुरामश्रीरामाख्यपञ्च-त्रिंशषट्त्रिंशावतारद्वयपरत्वम् ५८३
ङकारस्य क्रोडात्माख्यदशमावतार-परत्वम् ५८३
हकारस्य विहङ्गमाख्यनवमावतार-परत्वम् ५८४
प्रत्ययावयवस्य मकारस्य कल्क्या-ख्याष्टात्रिंशावतारपरत्वम् ५८४
ईकारस्य न्यग्रोधशायिसंज्ञकसप्त-विंशावतारपरत्वम् ५८४
षकारस्य नरसिंहाख्यसप्तदशा-वतारपरत्वम् ५८४
णकारस्य मधुसूदनाख्यपञ्चमा-वतारपरत्वम् ५८४
दकारस्य दत्तात्रेयाख्यषड्विंशा-वतारपरत्वम् ५८५
रेफस्य शान्तात्माख्यपञ्चविंशा-वतारपरत्वम् ५८५
द्वितीयमृत्युशब्दस्य लोकनाथाख्य-चतुर्विंशावतारपरत्वम् ५८६
अध्यायशेषेण मन्त्रस्य महिमान्तर-निरूपणम् ५८६

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ५८८-६००

ज्योतिश्चक्रमन्त्रार्थनिरूपणम्
प्रथमं गायत्र्यर्थप्रपञ्चने तच्छब्दस्य भगवत्सकल्परूपसुदर्शनपरत्व-निरूपणम् ५८८
सवितृशब्दस्य जगत्कारणत्वभोग-मोक्षप्रदत्वादिगुणविशिष्टपरम-पुरुषपरत्वम् ५८९
वरेण्यशब्दस्योपास्यत्वपरत्वम् ५८९
भर्गःशब्दस्य तच्छब्दविवक्षित-सुदर्शनगुणविशेषपरत्वम् ५८९
देवशब्दस्य द्योतनत्वादिगुण-विशिष्टपरमात्मपरत्वम् ५९०
धीमहीत्यस्योपासनात्मकज्ञान-विशेषपरत्वम् ५९०
तृतीयपादार्थनिरूपणपूर्वकं गायत्र्याः संपिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम् ५९०
संक्षेपतो गायत्रीमहिमवर्णनम् ५९१
व्याहृतित्रयस्वरूपनिरूपणपूर्वकं संग्रहेण तदर्थप्रकाशनम् ५९१
गायत्रीमन्त्रनिगूढानां ब्रह्मशिरः-प्रभृतीनामस्त्राणां दिङ्मात्र-प्रदर्शनम् ५९१
'जातवेदसे' इति त्रिष्टुभोऽर्थनिरूपणे जातवेदःशब्दस्य सोमशब्दस्य चार्थवर्णनम् ५९२
सुनवामेति पदस्य बद्धात्मनि भगव-च्छेषत्वयोग्यतापादनपरत्वम् ५९३
योग्यतापादनस्य प्रकृत्यात्मविवेक-रूपतां वक्तुं विवक्षितार्थस्य सोमपदगम्ये दृष्टान्ते शिक्षणम् ५९३
दृष्टान्ते शिक्षितस्यार्थस्य दार्ष्टान्तिके उपपादनम् ५९३
यथोक्तात्महविर्याजिनः स्वेन रूपेणा-भिनिष्पत्तिरूपो गुणाष्टकाविर्भावः फलम् ५९३
भङ्ग्यन्तरेण नमःशब्दार्थस्यैवात्र प्रथमपादे विवक्षितत्वसूचनम् ५९४
द्वितीयपादेन परमपुरुषस्य स्वप्राप्तिप्रतिबन्धकप्रकृतिसम्बन्ध-रूपबन्धनिवर्तकत्वप्रदर्शनम् ५९४
उत्तरार्धे सदृष्टान्तं पूर्वोक्तार्थोप-पादनम् ५९४
उत्तरार्धगतस्याग्निशब्दस्य परमपुरुषपरत्वसमर्थनम् ५९४
दृष्टान्तपरस्य चतुर्थपादस्य वाक्यार्थ-वर्णनम् ५९५

तस्यार्थस्य दार्ष्टान्तिके उपपादनम् ५९५
अस्मिन् मन्त्रे निगूढानां पावकाद्यस्त्राणां संक्षेपतः स्वरूपसूचनम् ५९६
'त्रियम्बकम्' इत्यनुष्टुभोऽर्थवर्णने त्रियम्बकशब्दस्य ज्ञानशक्तिक्रियान्वितपरमपुरुषपरत्वकथनम् ५९७
यजामहे इति पदार्थनिरूपणम् ५९८
सुगन्धिशब्दार्थनिरूपणम् ५९८
पुष्टिवर्धनशब्दार्थनिरूपणम् ५९८
वाक्यार्थवर्णनमुखेन पूर्वार्धस्य भगवति स्वात्महविः समर्पणपरत्वप्रदर्शनम् ५९९
उत्तरार्धस्य वाक्यार्थनिरूपणम् ५९९
प्रपत्तुर्ब्रह्मसाधर्म्यापत्तिलक्षणस्य फलस्य तात्पर्यगत्या मन्त्रे विवक्षितत्वप्रदर्शनम् ५९९

अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ६०१-६११

पञ्चहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्
दशहोत्रादिपदविवक्षितमन्त्रविशेषसूचनम् ६०१
अथोक्तानां मन्त्राणामर्थवर्णनप्रतिज्ञा ६०२
प्रथमं दशहोतृमन्त्रार्थनिरूपणे चित्त्यादिपदार्थप्रदर्शनम् ६०२
दशहोत्रादिसमाख्यानिमित्तप्रदर्शनम् ६०३
क्रियाभूतिविभेदेन भगवच्छक्तेर्द्वैविध्यम् ६०३
क्रियायाः सङ्कल्परूपत्वं कृत्योपकरणत्वं च ६०३
सङ्कल्पस्य च निश्चयात्मकमित्यादिरूपत्वम् ६०३
चित्त्यादिवाक्योक्तस्रुगादिपदार्थनिरूपणम् ६०३
यथोक्तस्य जगद्विधानाख्यस्य वैष्णवयज्ञस्य ज्ञेयत्वविधिः ६०४
तात्पर्यार्थनिरूपणमुखेन ग्रहभागस्यात्महविःसमर्पणपरत्वस्फुटीकरणम् ६०४
आत्महविःसमर्पणस्य स्वार्थत्वशङ्काव्युदासः ६०५
चतुर्होतृमन्त्रेऽपि पूर्वोक्तस्यैव यज्ञस्य भङ्ग्यन्तरेण विवक्षितत्वनिरूपणम् ६०५
पृथिवीद्युरुद्रशब्दानां प्रकृतिपुरुषकालपरत्वप्रदर्शनम् ६०५
बृहस्पतिशब्दस्य श्रियःपतित्वपुरस्कारेण भगवत्परत्वम् ६०६
ग्रहभागार्थनिरूपणे वाचोवीर्यशब्दस्य भगवत्कर्तृकसृष्ट्युद्यमपरत्वप्रदर्शनम् ६०६
सम्भृततमशब्देन सृष्ट्युद्यमस्य सर्वार्थविषयकत्वविवक्षा ६०६
पूर्वोक्तस्य प्राणस्यैवात्रापि हविष्ट्वविवक्षा ६०६
मन्त्रशेषस्य दास्यमहारसरूपसुखप्रार्थनापरत्वप्रदर्शनम् ६०६
मन्त्रचरमवाक्यस्य प्रतिबन्धनिवृत्तिप्रार्थनापरत्वम् ६०७
पञ्चहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम् ६०७
ग्रहभागस्यात्मयागसाधनत्वेन विनियोगः ६०७
तत्र षष्ठ्यन्तयोः प्रथमान्तयोश्च सोमशुक्रपदयोरर्थविवेकः ६०७
प्रथमान्तसोमपदविवक्षितस्य जीवस्य षष्ठ्यन्तसोमपदविवक्षितात् लतासारादुत्तमत्वम्, तदुपपादनञ्च ६०८
शुक्रशब्दस्य जीवपरत्वे प्रवृत्तिनिमित्तप्रदर्शनम् ६०८
इन्द्रशब्देन भगवतः सम्बोधनम् ६०८
वातापिशब्दस्य व्याप्तिपूर्वकभगवन्निष्ठक्रियाशक्तिवैशिष्ट्यपरत्वम् ६०८

हवनश्रुत्पदस्य स्वविषयकाह्वानश्रवण-
रसिकत्वपरत्वम् ६०८
अथ षड्ढोतृमन्त्रार्थनिरूपणम् ६०९
अपरस्य षड्ढोतृमन्त्रस्यार्थ-
निरूपणम् ६१०
सप्तहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम् ६१०
ग्रहभागार्थनिरूपणम् ६११
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ६१२-६२३
पुरुषसूक्तश्रीसूक्तवाराहमन्त्रार्थ-
निरूपणम्
ब्रह्मचक्रान्तर्गतसम्भारादिमन्त्रार्था-
निरूपणे कारणनिरूपणम् ६१२
पुरुषसूक्तश्रीसूक्तयोरर्थं निरूपयितुं
जगद्धिताय परमपुरुषाल्लक्ष्म्याश्च ६१२
तयोराविर्भावकथनम् ६१२
पुरुषसूक्तस्य ऋक्सङ्ख्यायां मतभेद-
प्रदर्शनम् ६१२
पुरुषसूक्तप्रतिपाद्यप्रमेयप्रदर्शनम् ६१३
आद्यानां चतसृणामृचां वासुदेवादि-
चातुरात्म्यस्वरूपविवेचकत्वम् ६१३
तत्राद्यमन्त्रस्य लक्ष्मीपतित्वपरिष्कृत-
वासुदेवाख्यप्रथमव्यूहप्रति-
पादकत्वम् ६१३
मन्त्रस्य प्रतिपदमर्थं वर्णयितुं सहस्र-
शीर्षशब्दस्य श्रियः पतित्वपरत्व-
प्रदर्शनम् ६१३
पुरुषशब्दस्यावाप्तसमस्तकामत्व-
परत्वम् ६१४
'सहस्राक्ष'शब्दस्य सहस्रत्वगुण-
विशिष्टबद्धात्मवैशिष्ट्यपरत्वम् ६१४
सहस्रपाच्छब्दस्य सहस्रत्वगुण-
विशिष्टप्रकृतिवैशिष्ट्यपरत्वम् ६१४
प्रकृतिपुरुषयोः सहस्रशब्द-
प्रवृत्तिनिमित्तप्रदर्शनम् ६१४
वासुदेवस्य प्रकृतिपुरुषवैशिष्ट्य-
निगमनम् ६१५
द्वितीयमन्त्रस्य सङ्कर्षणाख्यद्वितीय-
व्यूहपरत्वप्रतिपादनम् ६१६
मन्त्रगतस्य पुरुषशब्दस्य सङ्कर्षण-
परत्वोपपादनम् ६१६
उत्तरार्धेन सङ्कर्षणस्य ज्ञानोपदेष्टृत्व-
निबन्धनमोक्षप्रदत्वप्रतिपादनम् ६१६
तृतीयमन्त्रस्य प्रद्युम्नाख्यतृतीय-
व्यूहपरत्वप्रतिपादनम् ६१७
मन्त्रगतेन पुरुषशब्देन प्रद्युम्नस्य
ज्यायस्त्वोपपादनम् ६१७
चतुर्थमन्त्रस्यानिरुद्धाख्यचतुर्थव्यूह-
परत्वप्रतिपादनम् ६१७
मन्त्रगतस्य पुरुषशब्दस्यानिरुद्ध-
परत्वोपपादनम् ६१७
अवशिष्टानां चतुर्दशमन्त्राणामर्थस्य
लोकतो ज्ञेयत्वकथनपूर्वकं
पुरुषसूक्तार्थनिगमनम् ६१८
तन्त्रान्तरे विस्तरेण निरूपितस्य
श्रीसूक्तार्थस्यातिसंक्षेपेण सूचनम् ६१८
नियमपूर्वकं यथोक्तसूक्तद्वयनिष्ठस्य
मोक्षप्राप्तिः फलम् ६१९
वराहमन्त्रे स्थूलार्थस्य लोकतो
ज्ञेयत्वकथनम् ६१९
तस्यैव संक्षेपतः सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ६१९
तस्यैव परार्थनिरूपणम् ६१९
शास्त्रार्थमुपसंहर्तुं संक्षेपतः
सुदर्शनगतिनिरूपणम् ६२०
शास्त्रार्थसंक्षेपः ६२०
एतत्संहितोपदेशानर्हजनपरिगणनम् ६२२
मङ्गलाचरणव्याजेन शास्त्रप्रमेयसारा-
नुवादपूर्वकं शास्त्रसमापनम् ६२३
षष्टितमोऽध्यायः ६२४-६२८
शास्त्रवैभवनिरूपणम्
भारद्वाजं प्रति दुर्वाससा वृत्तानुवाद-
व्याजेनापेक्षितयावदर्थप्रतिपादकत्व-
रूपशास्त्रवैभवप्रपञ्चनम् ६२४

प्राधान्येन भगवदिच्छाशक्तिभूत-
लक्ष्मीस्वरूपरूपगुणविभवादि-
प्रतिपादकत्वम् ६२५
तथा प्राधान्येन भगवत्क्रियाशक्तिभूत-
सुदर्शनस्वरूपादिप्रतिपादकत्वम् ६२५
सांख्ययोगाद्यर्थप्रतिपादकत्वरूप-
वैभवान्तरसूचनम् ६२६
एतच्छास्त्राधिकारिनिरूपणम् ६२७
अनधिकारिनिर्देशापूर्वकं तेभ्यः
शास्त्रप्रदाननिषेधः ६२७
योग्याधिकारिनिर्देशपूर्वकं तेभ्यः
शास्त्रप्रदानाभ्यनुज्ञा ६२७
शास्त्रवैभवनिगमनम् ६२८
ग्रन्थसमापनम् ६२८
सुदर्शनसहस्रनामस्तोत्रम् ६२९-६३९
(अहिर्बुध्न्यसंहितापरिशिष्टं)
सुदर्शनस्य ध्यानम् ६३१
ककारादीनि षोडश नामानि ६३१
खकारादीनि दश नामानि ६३१
गकारादीनि द्वादश नामानि ६३२
घकारादीन्येकादश नामानि ६३२
ङकारादीनि चत्वारि नामानि ६३२
चकारादीनि षट्पञ्चाशत् नामानि ६३२
छकारादीनि नव नामानि ६३३
जकारादीनि षोडश नामानि ६३३
झकारादीनि चत्वारि नामानि ६३३
ञकारादिनी द्वे नामानि ६३३
टकारादीनि नव नामानि ६३३
डकारादीन्येकोनविंशतिः नामानि ६३३
ढकारादीन्यष्टौ नामानि ६३४
णकारादीनि चत्वारि नामानि ६३४
तकारादीनि चतुर्दश नामानि ६३४
थकारादीनि चत्वारि नामानि ६३४
दकारादीनि दश नामानि ६३४
धकारादीनि चतुर्विंशतिः नामानि ६३४
नकारादीनि षोडश नामानि ६३५
पकारादीन्यष्टादश नामानि ६३५
अथ फकारादीनि नव नामानि ६३५
बकारादीनि षोडश नामानि ६३५
भकारादीनि चतुर्विंशतिः नामानि ६३५
मकारादीनि त्रिपञ्चाशत् नामानि ६३६
यकारादीनि दश नामानि ६३६
रेफादीनि विंशतिः नामानि ६३७
लकारादीन्यष्टौ नामानि ६३७
वकारादीनि सप्तदश नामानि ६३७
शकारादीनि पञ्चविंशतिः नामानि ६३७
षकारादीनि षोडश नामानि ६३८
सकारादीनि विंशतिः नामानि ६३८
हकारादीनि चतुःषष्टिः नामानि ६३८
क्षकारादीनि द्वादश नामानि ६३९
फलश्रुतिः ६३९
पारिभाषिक शब्दकोश ६४०

अकारादिक्रमेण वर्णसंज्ञासूची

अ — प्रथम, अप्रमेय, व्यापक
आ — आनन्द, आदिदेव, गोपन
इ — इष्ट, इद्ध, राम
ई — विष्णु, पञ्चबिन्दु, माया
उ — उदय, उद्दाम, भुवन
ऊ — प्रज्ञाधार, लोकेश, ऊर्ज
ऋ — ऋतधाम, सत्य, अङ्कुश
ॠ — ज्वाला, प्रसरण, विष्टर
ऌ — तारक, लिङ्गात्मा, भगवान्
ॡ — दीर्घघोण, देवदत्त, विराट्
ए — जगद्योनि, त्र्यक्ष, विग्रह
ऐ — ऐश्वर्य, योगी, ऐरावण
ओ — ओदन, ओतदेव, विक्रम्य
औ — और्व, भूधर, औषध
अं — सृष्टिकृत्
अः — परमेश्वर
ॐ — त्रैलोक्यैश्वर्यद, व्यापी, व्योम
क — कमल, कराल, परा, प्रकृति
ख — खर्वदेह, वेदात्मा, विश्वभावन
ग — गदध्वंसी, गोविन्द, गदाधर
घ — घर्मांशु, तेजस्वी, दीप्तिमान्
ङ — एकदंष्ट्र, भूतात्मा, भूतभावन
च — चन्द्रांशु, चलचक्री
छ — छन्दःपति, छलध्वंसी, छन्द
ज — अजित, जन्महन्ता, शाश्वत
झ — झष, सामग, सामपाठक
ञ — उत्तम, ईश्वर, तत्त्वधारक
ट — विश्वाप्यायकर, चन्द्री, आह्लाद
ठ — धाराधर, नेमि, कौस्तुभ
ड — मौसल, दण्डधार, अखण्डविक्रम
ढ — विश्वरूप, दृढकर्मा, प्रतर्द्दन
ण — अभयद, शास्ता, वैकुण्ठ
त — ताललक्ष्मा, वैराज, स्रग्धर
थ — धन्वी, भुवनपाल, सर्वधारक
द — दत्तावकाश, दमन, शान्तिद
ध — शार्ङ्गधृक्धाम, माधव
न — नर, नारायण, पन्था
प — पद्मनाभ, पवित्र, पश्चिमानन
फ — फुल्लनयन, लाङ्गली, श्वेत
ब — वामन, ह्रस्व, पूर्णाङ्ग
भ — भल्लातक, भकार, सिद्धिप्रद, ध्रुव
म — मर्द्दन, काल, प्रधान
य — चतुर्गति, सुसूक्ष्म, शङ्ख
र — अशेषभुवनाधार, कालपावक, अनल
ल — विबुध, धरेश, पुरुषेश्वर
व — वराह, अमृताधार, वरुण
श — शङ्कर, शान्त, पुण्डरीक
ष — नृसिंह, अग्निरूप, भास्कर
स — अमृत, तृप्ति, सोम
ह — प्राण, परमात्मा, सूर्य
क्ष — अनन्तेश, वर्गान्त, गरुड़
बिन्दु (ं) — संहार
विसर्ग (:) — सृष्टि

अकारादिक्रमेण वर्णसङ्केतसूची

अखण्डविक्रम	—	ड
अङ्कुश	—	ऋ
अग्निरूप	—	ष
अजित	—	ज
अनन्तेश	—	क्ष
अनल	—	र
अप्रमेय	—	अ
अभयद	—	ण
अमृत	—	स
अमृताधार	—	व
अशेषभुवनाधार	—	र
आदिदेव	—	आ
आनन्द	—	आ
आह्लाद	—	ट
इन्द्र	—	इ
इष्ट	—	इ
ईश्वर	—	ञ
उत्तम	—	ञ
उदय	—	उ
उद्दाम	—	उ
ऊर्ज	—	ऊ
ऋतधाम	—	ऋ
एकदंष्ट्र	—	ङ
ऐरावण	—	ऐ
ऐश्वर्य	—	ऐ
ओतदेव	—	ओ
ओदन	—	ओ
और्व	—	औ
औषध	—	औ

कमल	—	क
कराल	—	क
काल	—	म
कालपावक	—	र
कौस्तुभ	—	ठ
खर्वदेह	—	ख
गदध्वंसी	—	ग
गदाधर	—	ग
गरुड़	—	क्ष
गोपन	—	आ
गोविन्द	—	ग
घर्मांशु	—	घ
चतुर्गति	—	य
चन्द्रांशु	—	च
चन्द्री	—	ट
चलचक्री	—	च
छन्द	—	छ
छन्दःपति	—	छ
छलध्वंसी	—	छ
जगद्योनि	—	ए
जन्महन्ता	—	ज
ज्वाला	—	ॠ
झष	—	झ
तत्त्वधारक	—	ञ
तारक	—	ल
ताललक्ष्मा	—	त
तेजस्वी	—	घ
त्र्यक्ष	—	ए
तृप्ति	—	स

त्रैलोक्यैश्वर्यद	—	ॐ
दण्डधार	—	ड
दत्तावकाश	—	द
दमन	—	द
दीर्घघोण	—	लृ
दीप्तिमान्	—	घ
दृढ़कर्मा	—	ढ
देवदत्त	—	लृ
धन्वी	—	थ
धरेश	—	ल
धाराधर	—	ठ
ध्रुव	—	भ
नर	—	न
नारायण	—	न
नृसिंह	—	ष
नेमि	—	ठ
पञ्चबिन्दु	—	ई
पद्मनाभ	—	प
पन्था	—	न
परमात्मा	—	ह
परमेश्वर	—	अः
परा	—	क
पवित्र	—	प
पश्चिमानन	—	प
पुण्डरीक	—	श
पुरुषेश्वर	—	ल
पूर्णाङ्ग	—	ब
प्रकृति	—	क
प्रज्ञाधार	—	ऊ
प्रतर्द्दन	—	ढ
प्रथम	—	अ
प्रधान	—	म
प्रसरण	—	ॠ
प्राण	—	ह
फुल्लनयन	—	फ
भकार	—	भ
भगवान्	—	लृ
भल्लातक	—	भ
भास्कर	—	ष
भुवन	—	उ
भुवनपाल	—	थ
भूतभावन	—	ङ
भूतात्मा	—	ङ
भूधर	—	औ
मर्द्दन	—	म
माधव	—	ध
माया	—	ई
मौसल	—	ड
योगी	—	ऐ
राम	—	इ
लाङ्गली	—	फ
लिङ्गात्मा	—	लृ
लोकेश	—	ऊ
वर्गान्त	—	क्ष
वराह	—	व
वरुण	—	व
वामन	—	ब
विक्रम्य	—	ओ
विग्रह	—	ए
विबुध	—	ल
विराट्	—	लृ
विष्णु	—	ई
विष्टर	—	ॠ
विश्वभावन	—	ख
विश्वाप्यायकर	—	ट
विश्वरूप	—	ढ
वेदात्मा	—	ख
वैकुण्ठ	—	ण
वैराज	—	त
व्यापक	—	अ
व्यापी	—	ॐ
व्योम	—	ॐ

सत्य	—	ऋ	संहार	—	बिन्दु (ं)
सर्वधारक	—	थ	शान्त	—	श
सामग	—	झ	शान्तिद	—	द
सामपाठक	—	झ	शार्ङ्गधृक्धाम	—	ध
सिद्धिप्रद	—	भ	शास्ता	—	ण
सुसूक्ष्म	—	य	शाश्वत	—	ज
सूर्य	—	ह	शङ्कर	—	श
स्रग्धर	—	त	शङ्ख	—	य
सृष्टिकृत्	—	अं	श्वेत	—	फ
सृष्टि	—	विसर्ग (:)	ह्रस्व	—	ब
सोम	—	स			

*

नमः शिवाय शान्ताय नारदाय महर्षये ।
नमः सुदर्शनायाथ विष्णोः सङ्कल्परूपिणे ॥

शान्तस्वरूप शिव को नमस्कार है । महर्षि श्रीनारद को नमस्कार है तथा विष्णु के सङ्कल्प स्वरूप सुदर्शन को भी नमस्कार है ।

*

श्रीपाञ्चरात्रागमे

अहिर्बुध्न्यसंहिता

—*—

अथ प्रथमोऽध्यायः

शास्त्रावतारः

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

* सरला *

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रित्य हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ १ ॥

विद्वांसोऽप्यथ योगिनोऽपि कतिचित्सन्त्येव सन्तः परं
तत्सामान्यविशेषभावकथने लोकेऽन्यथा मन्यते ।
अस्तु श्रीमद्रामकुबेरविबुधादन्यो न शैवागम-
ग्रन्थग्रन्थिविभेदनेऽद्य मतिमानित्युच्चकैर्ब्रूमहे ॥ २ ॥

कार्यारम्भ में सभी प्रकार से (दैहिक, दैविक एवं भौतिक) तीनों प्रकार के विघ्नों के विनाश के लिये शुक्ल वस्त्र धारण करने वाले, चन्द्रमा जैसे श्वेत वर्ण वाले, चार भुजाओं से युक्त प्रसन्नमुख विष्णु का ध्यान करना चाहिये ।

मङ्गलाचरणम्

अक्षरत्रितयाव्यक्तविकाराक्षादिरूपिणे ।
परव्यूहादितत्त्वाय नमश्चक्राय चक्रिणे ॥ १ ॥

अक्षर (अप्रतिहत ज्ञान एवं इच्छा प्रयत्न वाले), त्रितय (ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र इन तीन स्वरूपों वाले), अव्यक्त (निर्गुण), विकारवान् (साकार रूप धारण करने वाले), अ से लेकर क्ष पर्यन्त वर्ण वाले तथा पर व्यूहादि तत्त्वों वाले चक्रधारी विष्णु एवं उनके सुदर्शन चक्र को नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

सोमसूर्यानलाकल्पामकल्पामिन्दुशेखराम् ।
पञ्चबिन्दुं हरेः शक्तिं पञ्चकृत्यकरीं नुमः ॥ २ ॥

सोम, सूर्य एवं अग्नि के समान देदीप्यमान स्वरूपों वाली किन्तु स्वयम्भुव, चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण करने वाली, पञ्चबिन्दुस्वरूपा (ईकार स्वरूपा), पञ्चकृत्यकरी श्री विष्णु की शक्ति को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

भरद्वाजस्य दुर्वाससं प्रति सुदर्शनमाहात्म्यकारणप्रश्नः

आप्लुतं दिव्यगङ्गायामुपासीनं परं पदम् ।
भरद्वाजोऽथ पप्रच्छ दुर्वाससमकल्मषम् ॥ ३ ॥

दिव्यगङ्गा में स्नान किये हुये, परं पद में लीन एवं सर्वथा निष्पाप महर्षि दुर्वासा से भरद्वाज ने सर्वप्रथम पूछा ॥ ३ ॥

भरद्वाजः—

अनसूयाहृदानन्द भगवंस्तपसां निधे ।
अस्ति मे संशयः कश्चित् तं मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥

हे अनसूया के हृदय को आनन्द देने वाले, हे तपस्याओं के आकर ! मुझे कुछ संशय है । अतः आप उसका समाधानपूर्वक व्याख्यान करें ॥ ४ ॥

अग्नीषोमक्रियायोगिन्याथर्वणविनिर्णये ।
महोदयेऽस्त्रसङ्घे च प्रवर्तकनिवर्तके ॥ ५ ॥

जब कि अग्नीषोमात्मक (अभिचार एवं शान्ति) क्रिया से युक्त अथर्ववेत्ता ब्राह्मण विद्यमान हैं और प्रयोग तथा संहार वाले महाफलवान् अस्त्र समूह भी विद्यमान हैं, फिर भी सुदर्शन का आश्रय लेने के लिये तत्तत् शास्त्रों में निरूपण किया गया है ऐसा क्यों? ॥ ५ ॥

लोकपालास्त्रसङ्घे च तत्तत्सामर्थ्यसम्भृते ।
महोदयासु शक्तीषु वह्निसूर्येन्दुवर्त्मनाम् ॥ ६ ॥

इसी प्रकार जब तत्तत्सामर्थ्यों को धारणं करने वाले लोकपालों के अस्त्र-समूह एवं अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमा के समान (दाहक, प्रकाशक एवं शैत्योत्पादक) महाफलवती शाक्तियाँ विद्यमान हैं, तब सभी शास्त्रों में सुदर्शन के आश्रय ग्रहण करने का निरूपण क्यों किया गया है? ॥ ६ ॥

अस्त्राश्रये च शस्त्रौघे ब्रह्मरुद्रादिनिर्मिते ।
त्रैलोक्यत्राणसंहारजनिकर्मविचक्षणे ॥ ७ ॥

जब ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओं द्वारा निर्मित संसार की रक्षा संहार एवं सृष्टि करने में विचक्षण अनेक प्रकार के अस्त्रों एवं शस्त्रों के समूह विद्यमान हैं तब सुदर्शन की आवश्यकता क्यों आ पड़ी? ॥ ७ ॥

महर्षिगणसंदृष्टे मन्त्रग्रामे महोदये।
वैष्णवे च गदाशार्ङ्गशङ्खखड्गादिपूर्वके ॥ ८ ॥

महर्षिगण जिनके द्रष्टा हैं, ऐसे महा फलवान् मन्त्र समूहों के रहते एवं गदा, शार्ङ्ग, शङ्ख तथा खड्गादि वैष्णवास्त्रों के रहते सुदर्शन की आवश्यकता क्यों? ॥ ८ ॥

लाक्ष्मे च दलगण्डाब्जपूर्वेऽस्त्रौघे महोदये।
अन्यत्रोच्चावचेऽप्येवं कीर्त्यमाने प्रभावतः ॥ ९ ॥

जब दल (कमल दल), गण्ड (हाथी) एवं अब्ज (शङ्ख) आदि मङ्गलपूर्वक लक्ष्मी के महाफलदायी अनेक अस्त्र समूह हैं और (द्र. 'अक्षस्रक्परशुं गदेषु' इत्यादि महालक्ष्मी का ध्यान दुर्गा सप्तशती अ. २) इसी प्रकार शास्त्रों में ऊँचे नीचे प्रभाव वाले अन्यान्य शस्त्र भी वर्णित हैं ॥ ९ ॥

सुदर्शनाश्रयत्वं तु तत्र तत्र निरूपितम्।
किंकृतं तस्य माहात्म्यं स्वतः संसर्गतोऽपि वा ॥ १० ॥

तब फिर उन-उन शास्त्रों में सुदर्शन के आश्रय का निरूपण क्यों किया गया है? क्या उसका यह माहात्म्य परिकल्पित है ? अथवा स्वतः सिद्ध है? अथवा किसी के संसर्ग का फल है? ॥ १० ॥

किं तत् सुदर्शनं नाम कश्च शब्दार्थ इष्यते।
तेन किं क्रियते कर्म जगद् व्याप्नोति तत्कथम् ॥ ११ ॥

वह सुदर्शन नाम वाले कौन हैं? सुदर्शन शब्द का अर्थ क्या है? वह सुदर्शन कौन सा कर्म करते हैं? और वह किस प्रकार से जगत् में व्याप्त हैं? ॥ ११ ॥

कियन्तः कीदृशाः के च व्यूहास्तस्योदिता मुने।
प्रयोजनं च किं तेषां व्यूही तेषां च कीदृशी ॥ १२ ॥

हे मुने ! उनके व्यूह कितने हैं? और कौन-कौन हैं? उन व्यूहों का प्रयोजन क्या है? तथा उनका व्यूही कैसा है? ॥ १२ ॥

विष्णुना तस्य सम्बन्धः कश्च कीदृक् च सम्मतः।
किं तेन नियतं नित्यमुतान्यत्रापि दृश्यते ॥ १३ ॥

उन सुदर्शन का विष्णु के साथ कौन सा सम्बन्ध है? वह सम्बन्ध कैसा है? क्या वह नियमपूर्वक नित्य विष्णु से ही सम्बन्धित हैं?, अथवा अन्यत्र भी दिखाई पड़ते हैं? ॥ १३ ॥

एष मे संशयो जातो नानाशास्त्रनिरीक्षणात्।
छिन्द्ध्येनं भगवन् सम्यगुपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः ॥ १४ ॥

भरद्वाज कहते हैं कि मुझे ये सब सन्देह उत्पन्न हो गये हैं। हे भगवन् ! आप नाना प्रकार के शास्त्रों के निरीक्षण से मेरे इन सन्देहों को दूर कीजिये। मै आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे अध्ययन कराइये ॥ १४ ॥

दुर्वाससः प्रश्नप्रशंसापूर्वकं तत्प्रतिवचनम्

दुर्वासाः—

उपपन्नमिदं वत्स यत् त्वयैवं विमृश्यते।
तानि तानि तपांस्यद्य व्युच्छन्ति तव सुव्रत॥ १५ ॥

दुर्वासा ने कहा—हे वत्स ! यह आपके लिये उचित ही है कि जो आप इस प्रकार का विचार उपस्थित कर रहे हैं। हे सुव्रत ! आपके द्वारा की गई उन-उन तपस्याओं की परिसमाप्ती भी इसी में है ॥ १५ ॥

पक्वकषायस्यैव परतत्त्वजिज्ञासोदयः

आन्तःकरणिके तैस्तैः क्षयं नीते कषायके।
मनीषा जायते पुंसां परतत्त्वविमर्शिनी॥ १६ ॥

जब उन-उन तपस्याओं के द्वारा अन्तःकरण का कषाय (राग द्वेषादि मल) क्षीण हो जाता है। तब पुरुषों की पर तत्त्व के विचार में बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ १६ ॥

अत्र ब्रह्मादीनामपि संशयः

न संशयी भवानेव पूर्वोपन्यस्तवस्तुनि।
ब्रह्माद्याश्च यतन्तेऽत्र संशयाना मनीषिणः॥ १७ ॥

केवल आप ही को इस विषय में संशय हुआ हो, यह बात नहीं। ब्रह्मादि बड़े-बड़े बुद्धिमान् देवगण भी इसी प्रकार के सन्देह में पड़कर उसे दूर करने का प्रयत्न करते रहते हैं ॥ १७ ॥

स्वस्याहिर्बुध्न्यात् तत्त्वनिर्णयप्राप्तिः

निर्णयोऽत्र मया प्राप्तो नारदाय सुरर्षये।
साक्षात् कथयतः पृष्टाच्छङ्कराल्लोकशङ्करात्॥ १८ ॥

मैंने इस विषय में नारद द्वारा इसी प्रकार पूछे जाने पर लोक कल्याणकारी सदाशिव (अहिर्बुध्न्य) के मुख से उनके लिये उपदेश किये जाते समय इसका निर्णय प्रत्यक्ष रूप में किया है ॥ १८ ॥

नारदस्योत्कर्षः

प्राप्याग्र्यां तपसो व्युष्टिं नारदो देवसम्मतः।
छिन्दानः संशयान् सर्वान् ब्रह्मदेवमहर्षिषु॥ १९ ॥

देवताओं में पूज्य नारद जब तपस्या के सर्वोच्च फल प्राप्त कर चुके, तब ब्रह्मदेव एवं महर्षियों के सभी प्रकार की शङ्काओं का समाधान करने लगे ॥ १९ ॥

तस्यापि तत्त्वविषयसन्देहादहिर्बुध्न्याभिगमनम्

स्वयं तु संशयं प्राप्य गहनं दुर्विदं सुरैः।
अरागरोगकलुषस्तपस्वी संयतेन्द्रियः॥ २० ॥

किसी समय वे (नारद) अचिन्त्य देवता अत्यन्त गहन सन्देह में स्वयं पड़ गये। जबकि राग-रोग से उनका हृदय कलुषित नहीं था और वे स्वतः इन्द्रियों को संयम में रखने वाले तपस्वी थे ॥ २० ॥

पदवाक्यप्रमाणानां याथातथ्यविधानवित्।
ब्रह्मचारी दमावासः परापरविभागवित् ॥ २१ ॥

पद, वाक्य (व्याकरण) और प्रमाण (न्याय) के याथातथ्येन वे ज्ञाता थे और ब्रह्मचारी, इन्द्रियों के दमन करने वाले तथा परापर विभागवेत्ता भी थे ॥ २१ ॥

शुश्रूषुरनहंवादी यथार्थज्ञानतत्परः।
नारदो मुनिशार्दूलस्त्रीन् लोकाननुसञ्चरन् ॥ २२ ॥
छेत्तारं संशयस्यास्य दुर्विदस्य सुरर्षिभिः।
देवादनभिगम्यान्यं सर्वज्ञाच्चन्द्रशेखरात् ॥ २३ ॥

शुश्रूषा के अहङ्कार से रहित एवं यथार्थज्ञान में तत्पर मुनिशार्दूल नारद तीनों लोकों में घूमते हुये देवता गणों से अगम्य इस संशय को करने के लिये सर्वज्ञ चन्द्रशेखर को छोड़कर अन्य देवों के पास न जा कर कैलास पर्वत पर गये ॥ २२-२३ ॥

कैलासवर्णनम्

प्रभाभिः स्वाभिरखिलान् प्रहसन्तमिवाचलान्।
उन्मेषमिव सत्त्वस्य प्रकृष्टज्ञानकारिणः ॥ २४ ॥
सिद्धविद्याधराकीर्णं देवगन्धर्वसेवितम्।
कैलासं शङ्करावासं शङ्करं द्रष्टुमाययौ ॥ २५ ॥

कैलास पर्वत अपने प्रकाश से मानो सभी पर्वतों को हँसा रहा हो। प्रकृष्ट ज्ञान उत्पन्न करने वाले सत्त्व का वह मानो उन्मेष हो। वह पर्वत देव गन्धर्वों से सेवित एवं सिद्धों तथा विद्याधरों से संकुलित था। इस प्रकार शङ्कर के निवासभूत कैलास पर श्री नारद भगवान् शङ्कर के दर्शन के लिये गये ॥ २४-२५ ॥

अहिर्बुध्न्यवर्णनम्

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैः सिद्धैः साध्यैर्मरुद्गणैः।
ऋषिभिर्योगिभिर्दिव्यैर्भूतैर्नानाविधैरपि ॥ २६ ॥
ददर्श सेवितं तत्र समासीनं सहोमया।

वहाँ नारद ने भगवान् शङ्कर को रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, सिद्धगण, साध्य, मरुद्गण, ऋषिगण, योगीगण तथा अनेक प्रकार के दिव्य प्राणिगणों से सेवित भगवती पार्वती के साथ विराजमान देखा ॥ २६-२७ ॥

त्र्यक्षं वरदमीशानं शूलिनं चन्द्रशेखरम् ॥ २७ ॥
पतिं पशूनामनिशं भवपाशविभेदिनम्।
स्थितं मूर्तिभिरष्टाभिरवष्टभ्य जगत्त्रयम् ॥ २८ ॥

तं दृष्ट्वा देवमीशानं नारदो देवदर्शनः ।
प्रणिपत्याथ तुष्टाव गीर्भिरग्र्याभिरादरात् ॥ २९ ॥

तीन नेत्रों वाले, वरद, सबके ईश्वर, त्रिशूल धारण करने वाले, चन्द्रशेखर, पशुरूप जीवों के पति, संसार के पाश को काटने वाले तथा तीनों लोकों को अपनी आठ मूर्तियों से अत्यधिक प्रकाशित करने वाले ऐसे ईशान देव को देख कर देवताओं के लिये दर्शनीय नारद ने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम कर सर्वश्रेष्ठ वाणी द्वारा उनकी इस प्रकार स्तुति की ॥ २७-२९ ॥

नारदकृताहिर्बुध्न्यस्तुतिः

नारदः—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते वृषकेतन ।
वृषप्रवरवाहाय वृष्णे कामप्रवर्षिणे ॥ ३० ॥

नारद ने कहा—हे देवदेवेश ! आपको नमस्कार है, हे धर्मध्वज ! आपको नमस्कार है । हे सर्वश्रेष्ठ बैल पर सवारी करने वाले ! हे कामनाओं की वर्षा करने वाले ! आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥

ओजीयसे परस्मै ते मीढुष्टम नमोऽस्तु ते ।
सर्वज्ञाय स्वतन्त्राय नित्यतृप्ताय ते नमः ॥ ३१ ॥

ओजस्वी, पर, पुरुष एवं अत्यन्त बलवान् आपको नमस्कार है । सर्वज्ञ, स्वतन्त्र एवं नित्य तृप्त रहने वाले सदा आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

अनादिबोधरूपाय नमस्ते नित्यशक्तये ।
कर्त्रे हर्त्रे च जगतां षडङ्गाय नमोऽस्तु ते ॥ ३२ ॥

अनादि, ज्ञानस्वरूप तथा नित्य शक्तिमान् आपको नमस्कार है । जगत् के कर्त्ता हर्त्ता आपको नमस्कार है । षडङ्गवेद स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

दशाव्यय नमस्तुभ्यं नमस्ते कृत्तिवाससे ।
अघोरायाथ घोराय घोरघोरतराय च ॥ ३३ ॥

अविक्रिय अवस्था वाले आपको नमस्कार है, व्याघ्रचर्म धारण करने वाले आपको नमस्कार है, अघोर (सौम्य मूर्त्ति वाले) आपको नमस्कार है, (अत्यन्त) भयानक रूप वाले आपको नमस्कार है, घोर-घोरतर (भयानक से भयानक) स्वरूप वाले आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

(सद्योजाताय देवाय वामदेवाय ते नमः ।
नमो ज्येष्ठाय रुद्राय भवोद्भव नमोऽस्तु ते ॥ ३४ ॥

सद्योजात् (शिव का एक अवतार) आपको नमस्कार है । वामदेव आपको नमस्कार है, ज्येष्ठ (अतिश्रेष्ठ) रुद्र भवोद्भव आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥

नमो बलविकाराय बलप्रमथनाय ते ।
नमः ..... य ते नमः) ॥ ३५ ॥

बलविकार वाले आपको नमस्कार है । बलप्रमथन आपको नमस्कार है । नमः ..... य ते नमः ॥ ३५ ॥

नमः कलविकाराय कालाय कलनात्मने ।
नमस्ते सर्वभूतानां दमनाय मनोन्मन ॥ ३६ ॥

हे मनोन्मन ! कल विकार के लिये नमस्कार है, काल के लिये नमस्कार है, सङ्ख्या करने वाले अथवा सर्वत्र प्रेरक के लिये नमस्कार ! हे मनोन्मन ! सम्पूर्ण प्राणियों को दमन करने वाले (संहारक) आपके लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥

नमः शर्वाय शान्ताय शम्भवे शम्भवे नमः ।
विद्येश्वर नमस्तुभ्यं भूतेश्वर नमस्तेऽस्तु ते ॥ ३७ ॥

शर्व के लिये नमस्कार है, शान्त स्वरूप के लिये नमस्कार है, कल्याण करने वाले शम्भु को नमस्कार है, हे विद्येश्वर ! आपको नमस्कार है, हे भूतेश्वर ! आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

महादेव नमस्तेऽस्तु नमस्तत्पुरुषाय ते ।
ज्ञानरूप नमस्तुभ्यं नमो वैराग्यवारिधे ॥ ३८ ॥

हे महादेव ! आपको नमस्कार है । तत्पुरुष आपको नमस्कार है । ज्ञानरूप आपको नमस्कार है । वैराग्य के समुद्र रूप आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

ऐश्वर्यगुणपूर्णाय नमस्ते तपसां निधे ।
नित्यसत्य नमस्तेऽस्तु क्षमासार नमोऽस्तु ते ॥ ३९ ॥

ऐश्वर्य गुण से परिपूर्ण आपके लिये नमस्कार है । तपस्या के निधि आपको नमस्कार है, नित्य सत्य आपको नमस्कार है, क्षमासार आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

धृतिसार नमस्तुभ्यं स्रष्ट्रे ते जगतां नमः ।
आत्मसम्बोधपूर्णाय त्रीन् लोकानधितिष्ठते ॥ ४० ॥

हे धृतिसार (महाधैर्यशालिन्) आपको नमस्कार है, सारे जगत् के स्रष्टा आपको नमस्कार है, आत्मज्ञान से परिपूर्ण के लिये नमस्कार है, तीनों लोकों को व्याप्त कर स्थित हुये आपको नमस्कार है ॥ ४० ॥

दशाव्ययाय ते नित्यमव्ययाय नमो नमः ।
क्षोण्यम्ब्वनलवाय्वभ्रचन्द्रादित्यात्मने नमः ॥ ४१ ॥
नमः सर्वोपकाराय त्रिलोकीमधितस्थुषे ।

अविक्रिय अवस्था वाले आपको नित्य नमस्कार है । आप अव्यय के लिये

नमस्कार है, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा एवं आदित्य स्वरूप के लिये नमस्कार है, सब के उपकार में परायण त्रिलोकी में व्याप्त हो कर स्थित रहने वाले आप के लिये नमस्कार है ॥ ४१-४२ ॥

दुर्वासाः—

इति स्तुवानमग्र्याभिर्वाग्भिर्देवर्षिसत्तमम् ॥ ४२ ॥
प्रसादमधुरं वाक्यमित्युवाच वृषध्वजः ।

दुर्वासा ने कहा—इस प्रकार श्रेष्ठ वाणी से स्तुति करते हुये देवर्षि नारद को देख कर. धर्म की ध्वजा वाले, भगवान् शङ्कर ने प्रसन्नतापूर्वक मधुर वाणी में उनसे कहा ॥ ४२-४३ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

स्तोत्रेणानेन भक्त्या च तुष्टोऽस्मि मुनिपुंगव ॥ ४३ ॥
ब्रूहि किं करवाण्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुनिपुंगव ! आपके द्वारा किये गये इस स्तोत्र से तथा आपकी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ, बताइये मैं इस समय आपके दुर्लभ से दुर्लभ किस कार्य को करूँ ॥ ४३-४४ ॥

नारदः—

किमन्यदिह वक्तव्यं यदि तुष्टो जगत्पतिः ॥ ४४ ॥
एतदेव हि काङ्क्षन्ति यतमाना विपश्चितः ।

नारद ने कहा—यदि जगत् के पालक आप मुझसे सन्तुष्ट हैं तब इससे बढ़ कर मुझे और क्या कहना है? क्योंकि प्रयत्न करके विद्वान् लोग भी आपकी प्रसन्नता ही तो चाहते हैं ॥ ४४-४५ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

प्रसन्नोऽस्मि तवाद्यास्तु दर्शनं सफलं मम ॥ ४५ ॥
ब्रूहि नारद तत्त्वेन यत् ते मनसि वर्तते ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—मैं आप पर प्रसन्न हूँ । मेरा दर्शन आज आपके लिये फलवान् हो । हे नारद ! जो आपकी अभिलाषा हो उसे सत्य-सत्य कहिये ॥ ४५-४६ ॥

कालनेमिसंग्रामे नारदस्य सुदर्शनमहिमदर्शनम्

नारदः—

तारकामयसङ्काशे संग्रामे कालनेमिनः ॥ ४६ ॥
सम्प्रवृत्ते जगद्धातुर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षो भयावहे ॥ ४७ ॥

नारद ने कहा—तारकासुर के संग्राम में जो जगत् के पालक भगवान् विष्णु का

कालनेमि के साथ संग्राम चल रहा था। वह संग्राम इतना भयानक था कि देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष एवं राक्षस उससे भयभीत हो उठे थे ॥ ४६-४७ ॥

मध्याह्नार्कसहस्राभशस्त्रास्त्रगणसङ्कुले ।
सुरासुरेन्द्रसैन्येषु निकृत्तेषु महास्त्रतः ॥ ४८ ॥

मध्याह्नकाल के सहस्रों सूर्य के समान उसमें अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग हो रहा था, जिनसे देवताओं और असुरों की सेनायें काटी जा रही थीं ॥ ४८ ॥

भीतविस्मितसम्भूतहृतसंगतसंप्लुतैः ।
पिशाचप्रेतवेतालभूतसङ्घैः समाकुले ॥ ४९ ।

भय तथा विस्मय उत्पन्न कर देने वाला प्राणियों का जान लेवा वह संग्राम रुधिर में एक साथ स्नान करने वाले पिशाच, प्रेत, बेताल तथा भूतगणों के कोलाहल से व्याप्त था ॥ ४९ ॥

उद्यन्तीष्वतिघोरासु ह्लादिनीष्वशनीषु च ।
देवदानवदेहेभ्यः क्षरद्भिः क्षतजैस्तथा ॥ ५० ॥
स्यन्दमानासु वेगेन स्यन्दिनीषु समन्ततः ।
विद्रुतैः सर्वतो भीतैर्हतशेषैः सुरासुरैः ॥ ५१ ॥

उस संग्राम में अत्यन्त भयानक बिजली के समान चमकने वाले शस्त्रास्त्रों के प्रयोग से देवता और दानवों के शरीर से निकले हुये रक्त की नदी चारों ओर से बह रही थी। मारने से बचे हुये देवता एवं असुर भयभीत होकर यत्र-तत्र भाग रहे थे ॥ ५०-५१ ॥

गरुडस्थे जगन्नाथे सुदर्शनकराम्बुजे ।
प्रादुश्चक्रे कालनेमिरस्त्रग्रामानशेषतः ॥ ५२ ॥

उस समय गरुड़ पर सवार हाथ में सुदर्शन चक्र धारण किये हुये भगवान् विष्णु से युद्ध करते हुये कालनेमि ने अपनी माया से सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रों के समूहों को उत्पन्न किया ॥ ५२ ॥

भृशाश्वतनया ये ते ये ते त्वन्मुखनिःसृताः ।
ये ते ब्रह्ममुखोद्भूता ये ते संवर्तकालजाः ॥ ५३ ॥

भृशाश्व के तनय कहे जाने वाले जितने अस्त्र हैं, आप सदाशिव के मुख से उत्पन्न हुये जितने अस्त्र हैं, ब्रह्मदेव के मुख से उत्पन्न जितने अस्त्र हैं तथा प्रलय कालीन संवर्त्त काल से उत्पन्न जितने भी अस्त्र हैं ॥ ५३ ॥

लोकपालोद्भवा ये ते ये ते पातालवासिनः ।
महाभूतमया ये ते ये ते वैकारिकोद्भवाः ॥ ५४ ॥

लोकपालों से उत्पन्न जितने अस्त्र हैं, पाताल से उत्पन्न जितने अस्त्र हैं, महाभूतमय जितने अस्त्र हैं, वैकारिक जितने भी अस्त्र हैं ॥ ५४ ॥

गुणत्रयमया ये ते ये ते गन्धर्वयोनयः ।
रक्षोयक्षोद्भवा ये ते ये ते विद्याधराह्वयाः ॥ ५५ ॥
ये ते द्वन्द्वगुणोद्भूता ये ते शक्तिसमुद्भवाः ।
अथर्वाङ्गिरसा ये ते ये ते मन्त्रान्तरोद्भवाः ॥ ५६ ॥
सर्वकार्यकरा ये ते प्रवर्तकनिवर्तकाः ।
यष्टयः शक्तयो यास्ता ये ते दण्डादिरूपकाः ॥ ५७ ॥
महाबला महावीर्यास्त्रैलोक्यक्षपणोद्यताः ।
शैलेन्द्रसन्निभाः केचित् केचिन्नागेन्द्रसन्निभाः ॥ ५८ ॥
पारावारनिभाः केचित् केचिद् गगनसन्निभाः ।
ज्वलज्ज्वालाशतालीढा रोदसीमध्यवर्तिनः ॥ ५९ ॥
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च क्ष्वेलन्तः पतयालवः ।
अनिर्देश्या अनौपम्या गौराः श्वेतारुणासिताः ॥ ६० ॥
नानासंस्थानवर्णाश्च नानाविभ्रमरोचिषः ।
सर्वे सम्भूय संयत्ताः कालनेमिप्रचोदिताः ॥ ६१ ॥

त्रिगुणात्मक गन्धर्वों, राक्षसों एवं यक्षों से उत्पन्न विद्याधर नाम वाले, द्वन्द्वगुणों (शीत उष्ण) से युक्त एवं शक्ति से उत्पन्न अथर्वाङ्गिरस देवता वाले, अन्य मन्त्रों से उत्पन्न, सभी प्रकार के कार्यों को सिद्ध करने वाले प्रवर्त्तक एवं निवर्त्तक अस्त्रग्राम (समूह), सभी प्रकार की यष्टियाँ एवं शक्तियाँ दण्डादि का निरूपण करने वाले, महा बलवान् महा वीर्यवान् जिन अस्त्रों से त्रैलोक्य का प्रलय हो सकता है, ऐसे शस्त्र समूह जिनमें कुछ पहाड़ के समान, कुछ हाथी के समान, कुछ समुद्र के समान, कुछ आकाश के समान, कुछ द्यावापृथ्वी के मध्य में जलते हुये सैकडों अङ्गारे के समान, नाचते हुये, हँसते हुये, मदोन्मत्त शत्रु पर गिरने वाले, इदमित्थमित्यादिरूपेण अनिर्देश्य उपमारहित, गौर-श्वेत, लाल एवं कृष्ण वर्ण वाले इस प्रकार अनेक संस्थान (सन्निवेश या अवयव विभाग) एवं वर्ण वाले, नाना प्रकार की चेष्टाओं से जलते हुये सभी प्रकार के अस्त्र समूह कालनेमि की प्रेरणा से उत्पन्न हो एकत्रित हो गये ॥ ५५-६१ ॥

सर्वास्त्राणां सुदर्शनिन पराभवः

सप्रयोगोपसंहारैः सरहस्यैश्च सङ्गतैः ।
अस्त्रग्रामैरशेषैस्तैर्नारायणकरोद्यते ॥ ६२ ॥
सुदर्शनमहावह्नौ सम्भूय शलभायितम् ।
पूर्णाहुतिरभूत् तस्मिन् कालनेमिर्महासुरः ॥ ६३ ॥

फिर तो प्रयोग एवं उपसंहारों तथा अपने-अपने रहस्यों से युक्त सभी प्रकार के कालनेमि द्वारा उत्पन्न किये गये वे अस्त्र समूह नारायण के हाथ में रहने वाले सुदर्शन रूपी महाग्नि में पड़कर पतङ्ग के समान भस्मीभूत हो गए । इतना ही नहीं, महान् असुर वह कालनेमि भी उस महाग्नि में पड़कर पूर्णाहुति को प्राप्त हो गया ॥ ६२-६३ ॥

अत्यद्भुतमहिमदर्शनात् संशयोदयः

तं दृष्टवा विस्मयाविष्टः संग्रामं महदद्भुतम्।
अन्तर्हितं क्षणात् कृष्णं प्रणिपत्य जगद्गुरुम्॥ ६४ ॥

मै उस अद्भुत एवं महान् संग्राम को देख कर आश्चर्य से भर गया और तत्क्षण मैंने अन्तर्धान हो जाने वाले जगद्गुरु श्रीकृष्ण को प्रणाम किया ॥ ६४ ॥

इमं सन्देहसन्दोहं हृदयेन वहन् गुरुम्।
तवान्तिकमिह प्राप्तः संशयच्छेदनाय वै॥ ६५ ॥
न हि सर्वज्ञमीशानं विना छेत्तास्य विद्यते।

हे प्रभो ! फिर इस महान् सन्देहों के समूह (४६-६१) को मैं अपने हृदय में धारण कर उसके निवारणार्थ आपके पास आया हूँ, क्योंकि मैं इस बात को भली भाँति जानता हूँ कि सर्वज्ञ ईशान (महादेव) के सिवाय और कोई दूसरा इस संशय को दूर नहीं कर सकता ॥ ६५-६६ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

देवर्षे संशयान् ब्रूहि ये वर्तन्ते तवान्तरे॥ ६६ ॥
अप्यनिर्वचनीयास्ते सर्वांश्छेत्तास्ति साम्प्रतम्।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे देवर्षे ! आप अपने हृदय में होने वाले सभी संशयों को मुझसे कहिये। मैं इसी समय उन संशयों को दूर करूँगा, भले ही वे अनिर्वचनीय क्यों न हों ॥ ६६-६७ ॥

दुर्वासाः—

अथ प्रश्नान् क्रमेणोक्तान् नारदेन सुरर्षिणा॥ ६७ ॥
व्याचष्ट भगवान् शर्वः सर्वतः प्रीतमानसः।

संहितावतरणम्

संहिता सेयमाख्याता नानामन्त्रार्थगोचरा॥ ६८ ॥
पञ्चरात्रमयी दिव्या नाम्नाहिर्बुध्न्यपूर्विका।
अर्थैः परकृतिप्रायैः पुराकल्पैश्च संयुता॥ ६९ ॥

दुर्वासा ने कहा—इस प्रकार देवर्षि नारद द्वारा क्रम से कहे गये (१.४६-६१) सभी प्रश्नों का भगवान् सदाशिव ने प्रसन्न मन से जो समाधान किया वही अनेक प्रकार के मन्त्रार्थों को प्रगट करने के कारण पाञ्चरात्रमयी दिव्य अहिर्बुध्न्य नाम की संहिता हुई जो प्रायः परमात्मा की कृति मानी जाती है और जिसमें पुराकल्प के अर्थों का निर्देश है ॥ ६७-६९ ॥

नानासिद्धान्तसम्भेदा नानाविद्योपशोभिता।
शतद्वयमिहाध्यायाश्चत्वारिंशच्च दर्शिताः॥ ७० ॥

पूर्व (सत्ययुग) में संहिता अनेक प्रकार के सिद्धान्तों के भेद तथा अनेक प्रकार की विद्याओं से शोभित थी। इसमें २४० अध्याय प्रदर्शित किये गये थे ॥ ७० ॥

ततो द्वापरवेलायां मनुष्याणां हिताय वै।
अध्यायानां शतेनाथ विंशत्या च समन्विता ॥ ७१ ॥

फिर जब द्वापरयुग का काल आया तब यह संहिता मनुष्यों के हित के लिये मात्र १२० अध्याय की रह गई ॥ ७१ ॥

अतिविस्तरमुत्सृज्य गुह्येन प्रतिसंस्कृता।
ततोऽपि बुद्धिसङ्कोचान्मनुष्याणां हिताय वै ॥ ७२ ॥
याति द्वापरसन्ध्यंशे व्यासस्यानुमतेर्मया।
षष्ट्यध्यायैरियं भूयः संहिता प्रतिसंस्कृता ॥ ७३ ॥

इसका अतिविस्तार त्याग दिया गया और गुह्य रूप से इसका संशोधन भी कर दिया गया। फिर जब लोगों की बुद्धि ग्रहण एवं धारण में पटु न होने के कारण संकुचित हो गई तब मनुष्यों के उपकार के लिये द्वापर के सन्धिकाल में व्यास की अनुमति से यह संहिता पुनः साठ अध्यायों में मेरे द्वारा प्रतिसंस्कृत कर दी गई ॥ ७२-७३ ॥

उपन्यास्थद्यथाप्रश्नं नारदो भगवानृषिः।
निरुवाच यथा शर्वस्तान् सर्वांस्त्वं निबोध मे ॥ ७४ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शास्त्रावतारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ श्लोकाः ७४ ॥

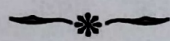

दुर्वासा ने कहा—अब जिस प्रकार देवर्षि नारद ने इन प्रश्नों को उपस्थित किया तथा जिस प्रकार भगवान् शङ्कर ने उसका समाधान किया, अब उन बातों को, हे भरद्वाज! आप मुझसे सुनिये ॥ ७४ ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता में शास्त्रावतार नामक प्रथम अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १ ॥

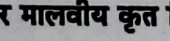

अथ द्वितीयोऽध्यायः

षाड्गुण्यब्रह्मविवेकः

अहिर्बुध्न्यं प्रति नारदप्रश्नः

नारदः—

मन्त्रग्रामानशेषांस्तान् सूर्यवैश्वानरोपमान् ।
अनायासेन जग्राह हरेश्चक्रं सुदर्शनम् ॥ १ ॥

नारद ने कहा—सूर्य एवं अग्नि के समान तेजस्वी तत्-तत् सम्पूर्ण मन्त्रसमूहों को भगवान् विष्णु के चक्र सुदर्शन ने ग्रहण कर लिया ॥ १ ॥

सांसिद्धिकप्रभावोऽयमस्य सांसर्गिकोऽपि वा ।
किं तत् सुदर्शनं नाम कश्च शब्दार्थ उच्यते ॥ २ ॥

क्या उन (सुदर्शन) का यह सांसिद्धिक (=स्वयं सिद्ध) प्रभाव है, अथवा सांसर्गिक (= किसी के सम्बन्ध द्वारा) प्रभाव है । वह कौन हैं जो 'सुदर्शन' नाम से पुकारे जाते हैं और सुदर्शन शब्द का अर्थ क्या है? ॥ २ ॥

अहिर्बुध्न्येन सङ्कर्षणात् स्वस्य ज्ञानप्राप्तिकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन यत् तज्ज्ञानमनुत्तमम् ।
वर्षायुतगणान् घोरं तपस्तप्त्वा मया पुरा ॥ ३ ॥
प्राप्तं सङ्कर्षणात् साक्षाद् विज्ञानबलवारिधेः ।
ब्रह्मादिषु यदन्येषु न महर्षिषु विद्यते ॥ ४ ॥
सुदर्शनस्वरूपं तत् प्रोच्यमानं मया शृणु ।
श्रुते यत्राखिलाधारे संशयास्ते न सन्ति वै ॥ ५ ॥

अहिर्बुध्न्य द्वारा सङ्कर्षण से ज्ञान-प्राप्ति का कथन—

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आप तत्त्वतः मेरी बात सुनिए । पूर्वकाल में जिस ज्ञान को, मैंने दस हजार वर्ष तक घोर तपस्या कर, विज्ञान एवं बल के समुद्र सङ्कर्षण द्वारा प्राप्त किया था और जो ज्ञान सङ्कर्षण के अतिरिक्त न तो ब्रह्मा में और न तो अन्य महर्षियों में है और जो ज्ञान सुदर्शन स्वरूप है, उसके विषय में मेरे द्वारा कही गई बात

सुनिए। उन सर्वस्वाधार सुदर्शन के विषय में कही गई बातों को सुन लेने पर आपको कहीं कोई और सन्देह नहीं रह जायेगा ॥ ३-५ ॥

परब्रह्मस्वरूपसंक्षेपः

अनाद्यन्तं परं ब्रह्म यत् तदक्षरमव्ययम्।
अनामरूपसम्भेद्यमवाङ्मनसगोचरम् ॥ ६ ॥
सर्वशक्ति समास्ताख्यं षाड्गुण्यमजरं ध्रुवम्।

परब्रह्मस्वरूप का संक्षेप—वे 'सुदर्शन' आदि एवं अन्त से रहित परब्रह्म स्वरूप हैं। उनका न कोई नाम है, न रूप है और न कोई उनसे भिन्न है। वस्तुतः वह वाणी एवं मन से परे हैं। वह सर्वशक्तिमान् हैं तथा पूर्ण-रूप हैं। अन्ततः वे षाड्गुण्य (६ गुणों) से युक्त हैं पुनः वे अजर एवं ध्रुव हैं ॥ ६-७ ॥

सुदर्शनशब्दार्थनिरूपणम्

तस्य स्यामिति सङ्कल्पो भावतोऽभावतोऽपि वा ॥ ७ ॥
स्वातन्त्र्याननुयोज्येन रूपेण परिवर्तते।
यत् तत् प्रेक्षणमित्युक्तं दर्शनं तत् प्रगीयते ॥ ८ ॥

'सुदर्शन' शब्दार्थ निरूपण—किं वा जगत् का भाव हो अथवा अभाव ही क्यों न हो, उन (सुदर्शन) का 'स्याम्' (=होऊँ) इस प्रकार का सङ्कल्प स्वातन्त्र्यपूर्वक एवं बिना किसी की प्रेरणा से सर्वदा विद्यमान रहता है; जिसे 'प्रेक्षण' (=नाटक) कहा जाता है। उसी को 'दर्शन' कहते हैं ॥ ७-८ ॥

वस्तुतः कालतो देशात् तस्य त्वव्याहतिर्हि या।
पूजा सात्र सुशब्दार्थस्तत् सुदर्शनमीर्यते ॥ ९ ॥

वस्तु से, काल से एवं देश से अव्याहत (अप्रतिहत) जो उनकी पूजा (अर्थात् प्रशस्ति, प्रसिद्धि या श्रेष्ठता) है वही 'सु' शब्द का अर्थ है और उसी को 'सुदर्शन' कहा जाता है ॥ ९ ॥

सर्वस्य सुदर्शनाधीनत्वम्

कारणं जगतो यत् तदाधारो जगतश्च यः।
प्रमाणं जगतो यत् तत् प्रमाणार्थोऽखिलश्च यः ॥ १० ॥

जो सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं और जो इस जगत् के आधार हैं तथा जो वे इस जगत् के प्रमाण (अर्थात् हेतु, मर्यादा, सीमा, ज्ञाता, इयत्ता एवं परिच्छेद) हैं, वही अखिल रूप से 'प्रमाणार्थ' हैं ॥ १० ॥

तत्राधिकारिणो ये च विभागा ये च तद्गताः।
रक्षाविधिश्च यस्तस्य स च यस्य प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥
सर्वं सुदर्शनायत्तं सुदर्शनमयं च यत्।
इति सांसिद्धिकं रूपं तस्य सर्वातिशायि च ॥ १२ ॥

इस जगत् के वे अधिकारी हैं—जो-जो विभाग उन्हें सौंपे गए हैं और जो (सुदर्शन) उन की सुरक्षा का विधान करते हैं वह (अधिकार, विभाग व सुरक्षा) सब सुदर्शन के अधीन हैं। यह सम्पूर्ण जगत् ही 'सुदर्शन' से व्याप्त है और उस सुदर्शन का यह (व्याप्य-व्यापकभाव) सांसिद्धिक एवं सर्वातिशायी स्वरूप है ॥ ११-१२ ॥

अस्त्रग्रामेष्वशेषेषु यत् तत् सामर्थ्यमैश्वरम्।
एतदीयमशेषं तदित्याप्तं स्वेन तत् स्वकम् ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण अस्त्र समूहों में जो सामर्थ्य एवं ऐश्वर्य है वह सब 'सुदर्शन' का ही है। इस प्रकार वह स्वयं सर्वत्र व्याप्त हैं और यही उनका स्व से निर्मित स्वकीय रूप है ॥ १३ ॥

पुरनारदकृताः प्रश्नाः

नारदः—

देवदेव जगन्नाथ लोकत्रितयशङ्कर।
विमुह्यतीव चित्तं मे संशयो बहुलीकृतः ॥ १४ ॥

पुनः नारद का प्रश्न—नारद ने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे तीनों लोकों का कल्याण करने वाले प्रभो ! मेरा संशय बहुत अधिक बढ़ गया है और मेरा मन उस संशय रूप सागर में डूब रहा है ॥ १४ ॥

षाड्गुण्यं किं परं ब्रह्म किं प्रकारं च तद्भवेत्।
सङ्कल्पः कीदृशस्तस्य कथं दर्शनतास्य च ॥ १५ ॥

(आपने जो कहा वह) षाड्गुण्य क्या है ? परब्रह्म क्या है ? वह किस प्रकार का है ? उनके सङ्कल्प का स्वरूप क्या है और उनकी 'दर्शनता' कैसी है ? ॥ १५ ॥

कथं चाविहतिस्तस्य सर्वदेशातिगोचरा।
किं कारणं च जगतः कीदृशं किंविधं च तत् ॥ १६ ॥

सम्पूर्ण देश का अतिक्रमण करने वाली उनकी अप्रतिहत गति क्यों है। इस सम्पूर्ण जगत् का कारण क्या है ? फिर वह कारण कैसा और किस प्रकार का है? ॥ १६ ॥

को वा जगत आधारः कीदृक् कतिविधश्च सः।
किं तत् प्रमाणमित्युक्तं कीदृक् कतिविधश्च तत् ॥ १७ ॥

इस सम्पूर्ण जगत् का आधार क्या है? वह कैसा है और कितने प्रकार का है? उसका प्रमाण कितना कहा गया है? और वह भी कितने प्रकार का है? ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थश्च को नाम कीदृक् कतिविधश्च सः।
के तेऽधिकारिणो नाम कीदृशाः किंविधाश्च ते ॥ १८ ॥

और फिर, प्रमाणार्थ किसे कहते हैं? वह कैसा और कितने प्रकार का है? उस जगत् के अधिकारी कौन हैं? कैसे हैं और किस प्रकार के हैं? ॥ १८ ॥

सर्वस्यास्य च का रक्षा तद्विधिः कश्च किंविधः।

कश्च तत्राधिकार्यर्थः स च किंगुण इष्यते ॥ १९ ॥

इस सारे जगत् की रक्षा कैसे होती है? उसकी विधि क्या है? उसके प्रकार कितने हैं? उनके अधिकृत अर्थ क्या हैं और उसका गुण क्या है? ॥ १९ ॥

एतन्मे भगवन् ब्रूहि प्रश्नजातमशेषतः ।
उपसंगृह्य चरणावुपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः ॥ २० ॥

हे भगवन्! मेरे इन प्रश्न समूहों का समाधान पूर्णरूप से कीजिये । मैं आपके चरणों को पकड़ कर आपकी शरण में आया हूँ । कृपा कर मुझे अध्ययन कराइये ॥ २० ॥

दुर्वासाः—

ततो दर्शनपूताय प्रणिपत्याभियाचते ।
उपसन्नाय मुनये सर्वं व्याचष्ट शङ्करः ॥ २१ ॥

दुर्वासा ने कहा—फिर अपने दर्शन दान से पवित्र हुए एवं प्रणाम कर प्रार्थना करते हुये शरणागत महामुनि नारद से भगवान् शङ्कर ने उक्त सारे प्रश्नों का व्याख्यान इस प्रकार किया ॥ २१ ॥

विस्तरेण परब्रह्मस्वरूपनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

एकं निर्दुःखनिःसीमसुखानुभवलक्षणम् ।
अनाद्यन्तं परं ब्रह्म नारायणमनामयम् ॥ २२ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—एक दुःखरहित निःसीम मात्र सुखानुभव लक्षण वाला, आदि अन्त से रहित पब्रह्म है जो अनामय एवं नारायण स्वरूप है ॥ २२ ॥

सर्वभूतकृतावासं सर्वं व्याप्य व्यवस्थितम् ।
निरवद्यमविक्षिप्तमतरङ्गार्णवोपमम् ॥ २३ ॥

सारे प्राणियों का उसमें निवास है और वह सब में व्याप्त हो कर स्थित है । वह निरवद्य (दोषरहित) विक्षेप एवं तरङ्गरहित शान्त समुद्र के समान है ॥ २३ ॥

परब्रह्मणः हेयप्रतिभटत्वं कल्याणगुणाकारत्वं च

अप्राकृतगुणस्पर्शमप्राकृतगुणास्पदम् ।
भवोदधेः परं पारं निष्कलङ्कं निरञ्जनम् ॥ २४ ॥

वह प्रकृति जन्य गुणों के स्पर्श से रहित है और प्रकृति के गुणों से भी रहित है । इस भवसागर के पार स्थित है और सर्वथा कलङ्क एवं माया से रहित है ॥ २४ ॥

आकाराद् देशतः कालादनवच्छेदयोगतः ।
पूर्णं नित्योदितं व्यापि हेयोपादेयतोज्झितम् ॥ २५ ॥

वह पब्रह्म आकार, देश तथा काल से अपरिच्छेद्य होने से परिपूर्ण है, नित्य वर्तमान है । सर्वत्र व्यापक है तथा हेय एवं उपादेय से दूर है ॥ २५ ॥

परब्रह्मणः परमात्मादिसकलशब्दवाच्यत्वम्

इदमीदृगियत्ताभिरपरिच्छेद्यमञ्जसा ।
उपर्युपरि तत्त्वानां पूर्वपूर्वात्मभाविनाम् ॥ २६ ॥
पारम्येणात्मभावित्वात् परमात्मा प्रकीर्तितः ।
ओमित्यापन्नयोगेन सर्वतत्त्वप्रवेशतः ॥ २७ ॥

वह इदम् (यह है) इस प्रकार की इयत्ता से एका-एक अपरिच्छेद्य है । पूर्व-पूर्व के आत्मा से-उत्पन्न एवं ऊपर-ऊपर के महत्तत्वादि तत्त्वों से परे हैं । आत्मा से ध्येय है । इसलिये उस परब्रह्म को परमात्मा कहा जाता है । योग युक्त तथा सारे तत्त्वो में प्रविष्ट होने के कारण वह 'ॐ' है ॥ २६-२७ ॥

षाड्गुण्यगुणयोगेन भगवान् परिकीर्तितः ।
समस्तभूतवासित्वाद् वासुदेवः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥

षाड्गुण्य से युक्त होने के कारण उन्हें भगवान् कहा जाता है, सारे प्राणियों में वास करने के कारण वह वासुदेव हैं ॥ २८ ॥

आप्नोति जगदित्येवमात्मत्वेन निरूपितः ।
रूपात् प्रकारतोऽव्यक्तेरव्यक्तः परिगीयते ॥ २९ ॥

वह सारे जगत् को व्याप्त करता है इसलिये आत्मा कहा गया है । रूप से तथा प्रकार से अव्यक्त होने के कारण वह अव्यक्त रूप से गान किया जाता है ॥ २९ ॥

सर्वप्रकृतिशक्तित्वात् सर्वप्रकृतिरीरितः ।
प्रधीयमानकार्यत्वात् प्रधानः परिगीयते ॥ ३० ॥

सारी प्रकृतियों की शक्ति उसमें हैं इसलिये वह सर्वप्रकृति है । वह अपने कार्यों से ही ध्यान करने योग्य है इसलिये उसे प्रधान कहते हैं ॥ ३० ॥

नेतृत्वादनितृत्वाच्च नित्य इत्यपि पठ्यते ।
अननाददनाच्चापि ह्यनन्तः परिपठ्यते ॥ ३१ ॥

वह सबका नेता तो है पर उसका नेता कोई नहीं है । इसलिये 'नित्य' रूप में भी पढ़ा जाता है । वह सबको प्राण देता है तथा सबका भक्षण करता है, इसलिये 'अनन्त' पढ़ा जाता है ॥ ३१ ॥

परितो मित्यभावाच्च प्रोक्तोऽपरिमितो बुधैः ।
अक्षयादक्षरः प्रोक्तो ह्यरिष्टो रिष्टवर्जनात् ॥ ३२ ॥

किसी भी दिशा से उसकी मिति (= माप) नहीं है, इसलिये बुद्धिमान् लोग उसे अपरिमित कहते हैं । वह अक्षय होने से अक्षर है । कल्याण तथा मङ्गलामङ्गल से वर्जित होने के कारण उसे अरिष्ट कहा जाता है ॥ ३२ ॥

अविकार्यस्वभावत्वादव्याप्यत्वात् तथाच्युतः ।
रागादिदोषनिर्मुक्तेः समधीगोचरत्वतः ॥ ३३ ॥

सर्वोपादानतासाम्यात् समः सम्परिकीर्तितः ।
ध्यानवर्त्मबहिर्भावात् स्वभावाननुयोगतः ॥ ३४ ॥
इयत्तयाप्यचिन्त्यत्वादचिन्त्यः परिकीर्तितः ।
जगन्ति प्रभवन्त्यस्मात् सर्वत्र प्रभवत्यपि ॥ ३५ ॥

स्वभाव से अविकार्य होने के कारण तथा किसी एकदेश में न होकर सर्वत्र व्यापक होने से वह अच्युत है । रागादि दोष से सर्वथा मुक्त होने के कारण, सब में समत्व बुद्धि रखने के कारण तथा सभी वस्तुओं में एक समान उपादान कारण होने के कारण वह सम कहा जाता है । ध्यान मार्ग से बाहर होने के कारण और स्वभाव के प्रश्न का विषय न होने के कारण एवं इयत्ता (इतना है) से अचिन्त्य होने के कारण वह अचिन्त्य कहा गया है । इसी से अनेक जगत् उत्पन्न होते हैं तथा वह सबका प्रभु है ॥ ३३-३५ ॥

प्रकृष्टश्च भवो यस्मात् प्रभवः परिकीर्तितः ।
सर्वप्रलयभूमित्वादव्ययो व्ययनाशनात् ॥ ३६ ॥

यह प्रकृष्ट संसार है इसलिये वह प्रभव कहा जाता है । सभी के प्रलय का विषय होने के कारण तथा विकाररहित होने के कारण वह अव्यय भी कहा जाता है ॥ ३६ ॥

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मेति श्रुतिगह्वरे ।
कपिलः श्रेष्ठविद्यत्वात् तेजिष्ठत्वाच्च कापिलः ॥ ३७ ॥

सब से बृहत् होने के कारण तथा बृंहण करने के कारण वह ब्रह्म है ऐसा निर्वचन श्रुति में किया गया है । श्रेष्ठ ज्ञानी होने के कारण वह कपिल तथा अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण उसे कापिल कहते हैं ॥ ३७ ॥

हितश्च रमणीयश्च गर्भो हृदयनामवान् ।
हिरण्यगर्भ इत्येवं योगिभिः समुदाहृतः ॥ ३८ ॥

'हि' से हितकर एवं 'र' से रमणीय तथा 'गर्भ' से हृदय नाम वाला होने के कारण योगी लोग उसे हिरण्यगर्भ कहते हैं ॥ ३८ ॥

अपनाशतपोयोगादपान्तरतपाः श्रुतः ।
शिवङ्करतया प्रोक्तः शिवः पाशुपते स्थितैः ॥ ३९ ॥

'अप' का अर्थ विनाशरहित तथा उसमें तपस्या करने के कारण उसे 'अपान्तरतपाः' भी कहा जाता है । सबका शिव करने से वह शिव है ऐसा पाशुपत की दीक्षा लेने वाले कहते हैं ॥ ३९ ॥

अदूरविप्रकर्षस्थैर्वस्तुतोऽनवगाहिभिः ।
इत्येवमादिभिः शब्दैस्तत्त्वं तदुपलक्ष्यते ॥ ४० ॥

दूर तथा निकट रहने वाली वस्तुओं से न जानने योग्य होने पर भी वह 'इत्येवम्' आदि शब्दों से उपलक्षित होता है । इसलिये उसे तत्त्व भी कहा जाता है ॥ ४० ॥

प्रतिबन्धविगमे ब्रह्मानुभावसम्भवः

अनेकजन्मसंसिद्धपुण्यपापपरिक्षये ।
निकृत्ते वासनाजाले सम्यग्विज्ञानशस्त्रतः ॥ ४१ ॥

अनेक जन्म जन्मान्तरों के किये गए पाप और पुण्य का जब परिक्षय हो जाता है और सम्यग्विज्ञान रूप शस्त्र से जब वासना का जाल काट दिया जाता है तब वह ब्रह्म अनुभव में आता है ॥ ४१ ॥

त्रैगुण्योपरमे तत्तु स्वेनानुभवितुं क्षमम् ।
साक्षादिदमिति व्यक्तं वाचा वक्तुं न शक्नुमः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार जब त्रिगुण की उपरति (विनाश) हो जाती है तब वह ब्रह्म स्वयं अनुभव गम्य हो जाता है । अतः अनुभव गम्य होने के कारण, उसे 'साक्षात्' (इस प्रकार का वह है) इस प्रकार की वाणी से प्रगट रूप में बताया नहीं जा सकता ॥ ४२ ॥

ब्रह्मणः प्रयत्नलभ्यत्वविरहः

संवत्सरसहस्राणि पक्षिराडिव सम्पतन् ।
नैवान्तं कारणस्यैति यद्यपि स्यान्मनोजवः ॥ ४३ ॥

जगत् के कारण रूप उस परब्रह्म का अन्त वेगवान् वायु भी नहीं पा सकता, चाहे वह गरुड़ के वेग के समान हजारों वर्ष तक उड़ता रहे ॥ ४३ ॥

उपर्युपरि गच्छन्तो विशिक्षन्तस्तथा तथा ।
ज्ञानोद्यमदशायास्ते न व्यक्तिमधिकां गताः ॥ ४४ ॥

ऊपर-ऊपर जाते हुये उस-उस प्रकार का अभ्यास करते हुये भी ऐसे लोग ज्ञानोद्यम दशा से अधिक उसकी अभिव्यक्ति नहीं प्राप्त कर सके ॥ ४४ ॥

तत्र सर्वाणि तत्त्वानि निषीदन्ति परात्मनि ।
भावाभावावुभौ प्रोतौ ज्ञानसूत्रमयात्मना ॥ ४५ ॥

उस परमात्मा में सभी तत्त्व अवस्थित हैं । उनके ज्ञान रूप सूत्रात्मा से भाव एवं अभाव दोनों ही अनुस्यूत हैं ॥ ४५ ॥

ब्रह्मणः त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वम्

सर्वप्रत्यक्षदर्शित्वात् सर्वात्मा तत् परं पदम् ।
अतीतानागते काले मध्यतः प्रतिसंहृते ॥ ४६ ॥

अतीत काल में, भविष्य काल में, मध्य (वर्त्तमान) काल में एवं संहार काल में वह सबको प्रत्यक्ष रूप से देखता है, इसलिए उसे सर्वात्मा कहा जाता है क्योंकि वही परं पद है ॥ ४६ ॥

वर्तमानं न तद् ब्रह्म नातीतं नैव भावि तत् ।
अग्रतः पृष्ठतो नैव नोर्ध्वतः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ४७ ॥

उस ब्रह्म में वर्त्तमान, अतीत तथा भविष्य नहीं है। न कोई उसके आगे है, न पीछे, न ऊपर, न दोनों पार्श्व में है ॥ ४७ ॥

न कल्माषं न विकलं न कृष्णं न च पिङ्गलम्।
न सारङ्गं पिशङ्गं न कपिलं नारुणं न च ॥ ४८ ॥

न वह कर्बुर (चितकबरा) है, न विकल है, न कृष्ण है, न पिङ्गल (पीला) है, न सारङ्ग (काला) है, न पिशङ्ग है, न कपिल और न तो अरुण (लाल) है ॥ ४८ ॥

न बभ्रु नकुलं नैव न श्यामं न च रोहितम्।
न दीर्घं नैव च ह्रस्वं न स्थूलं नैव चाप्यणु ॥ ४९ ॥

न भूरा है, न नकुल है, न श्याम है और न तो रोहित है। न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न स्थूल है और न तो अणु है ॥ ४९ ॥

न वृत्तं नाप्यपावृत्तं नाश्रितं तदनाश्रितम्।
नैव भावो न चाभावस्तद्भावार्चितये न च ॥ ५० ॥

वह वृत्त (गोलाकार) नहीं है, अपावृत्त भी नहीं है। वह किसी के आश्रित नहीं है, न उसका कोई अनाश्रित है। उसका कोई भाव (भवन क्रिया) नहीं है, न तो अभाव ही है और उसका न कोई अर्चनीय है ॥ ५० ॥

न शीतं नापि चैवोष्णं नानुष्णाशीतमप्युत।
न दुःखं न सुखं नैव निर्दुःखं सुखमव्रणम् ॥ ५१ ॥

वह शीत नहीं है, ऊष्ण भी नहीं है और न अनुष्ण है, न अशीत है, न दुःख है और न सुख है, न निर्दुःख है, न व्रण है और न सुख है ॥ ५१ ॥

न मूलं नापि तन्मध्यं नैवान्तं कस्याचिन्मुने।
न शेते तन्न चैवास्ते न तिष्ठति न गच्छति ॥ ५२ ॥

हे मुने! उस ब्रह्म का न मूल है, न मध्य है, न अन्त है। न जड़ है, न वह सोता है, न बैठता है, न खड़ा होता है और न चलता है ॥ ५२ ॥

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वोपाधिविवर्जितम्।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ ५३ ॥

जो सभी प्रकार के द्वन्द्व से रहित है। सभी प्रकार की उपाधियों (चिन्ताओं) से विनिर्मुक्त है वही षाड्गुण्य परब्रह्म सभी कारणों का कारण है ॥ ५३ ॥

नारदः—

किं तत् षाड्गुण्यमित्युक्तं देवदेव जगत्पते।
कथं च गुणहीनं तत् षाड्गुण्यं परिगीयते ॥ ५४ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे देवदेव! हे जगत्पते! वह षाड्गुण्य क्या कहा जाता है। जब वह गुण तीन है तो षाड्गुण्य कैसे? ॥ ५४ ॥

ब्रह्मणः षाड्गुण्यप्रपञ्चकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

अप्राकृतगुणस्पर्शं निर्गुणं परिगीयते ।
शृणु नारद षाड्गुण्यं कथ्यमानं मयानघ ॥ ५५ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिसे प्रकृति जन्य गुणों का स्पर्श न हो, वह निर्गुण परब्रह्म है। अब हे निष्पाप श्रीनारद ! मेरे द्वारा कहा गया जिस प्रकार का षाड्गुण्य उसमें है उसे सुनिए ॥ ५५ ॥

ज्ञानस्वरूपनिरूपणम्

अजडं स्वात्मसम्बोधि नित्यं सर्वावगाहनम् ।
ज्ञानं नाम गुणं प्राहुः प्रथमं गुणचिन्तकाः ॥ ५६ ॥

जो चेतन है, आत्मा का ज्ञान कराने वाला है, नित्य है और सर्वत्र व्याप्त है, उसी को गुण चिन्तक विद्वान् ज्ञान नामक प्रथम गुण कहते हैं ॥ ५६ ॥

ब्रह्मणा ज्ञानस्वरूपत्वं ज्ञानगुणकत्वं च

स्वरूपं ब्रह्मणस्तच्च गुणश्च परिगीयते ।

शक्तिस्वरूपनिरूपणम्

जगत्प्रकृतिभावो यः सा शक्तिः परिकीर्तिता ॥ ५७ ॥

ऊपर कहे गए ब्रह्म का स्वरूप ही ज्ञान गुण वाला है । जगत् का प्रकृतिभाव (प्रकृति के रूप में दिखाई पड़ना) ही उसकी शक्ति कही जाती है । यह उसका दूसरा गुण है ॥ ५७ ॥

ऐश्वर्यस्वरूपनिरूपणम्

कर्तृत्वं नाम यत् तस्य स्वातन्त्र्यपरिबृंहितम् ।
ऐश्वर्यं नाम तत् प्रोक्तं गुणतत्त्वार्थचिन्तकैः ॥ ५८ ॥

स्वातन्त्र्य से परिबृंहित होने वाला कर्तृत्व नाम का उसका तीसरा गुण है जिसे गुणतत्वार्थचिन्तक ऐश्वर्य नाम से पुकारते हैं ॥ ५८ ॥

बलस्वरूपनिरूपणम्

श्रमहानिस्तु या तस्य सततं कुर्वतो जगत् ।
बलं नाम गुणस्तस्य कथितो गुणचिन्तकैः ॥ ५९ ॥

सारे जगत् का निर्माण करने पर भी उसे थकावट नहीं आती । अतः गुणचिन्तक लोग उसे बल नामक ब्रह्म का चौथा गुण कहते हैं ॥ ५९ ॥

वीर्यस्वरूपनिरूपणम्

तस्योपादानभावेऽपि विकारविरहो हि यः ।
वीर्यं नाम गुणः सोऽयमच्युतत्वापराह्वयम् ॥ ६० ॥

इस जगत् के उपादान कारण के होने पर भी उसमें विकार नहीं उत्पन्न होता वही उसका वीर्य नामक पाँचवाँ गुण है जो कभी उससे परिच्युत नहीं होता इसीलिए वह सबसे परे है ॥ ६० ॥

तेजःस्वरूपनिरूपणम्

सहकार्यनपेक्षा या तत् तेजः समुदाहृतम् ।

शक्त्यादिगुणपञ्चकस्य ज्ञानगुणप्रकारत्वम्

एते शक्त्यादयः पञ्च गुणा ज्ञानस्य कीर्तिताः ॥ ६१ ॥

उसे कभी किसी सहकारी की अपेक्षा नहीं होती, उसी को तेज कहते हैं । ये सभी शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य और तेज पाँचों तथा ज्ञान इस प्रकार कुल छः गुण हमने आपसे कहा ॥ ६१ ॥

ज्ञानमेव परं रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म स्वशक्तिपरिबृंहितम् ।
बहु स्यामिति सङ्कल्पं भजते तत् सुदर्शनम् ॥ ६२ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां षाड्गुण्यब्रह्मविवेको नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १९२ ॥

उस परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान सर्वप्रधान गुण है । अपनी शक्ति से परिबृंहित इन छः गुणों से युक्त वही परब्रह्म कहा जाता है । उसी को सुदर्शन भी कहा जाता है जो 'बहु स्याम्' 'बहुत होऊँ' इस प्रकार के सङ्कल्प को धारण करता है ॥ ६२ ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता में षाड्गुण्यविवेक नामक द्वितीय अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २ ॥

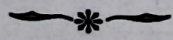

अथ तृतीयोऽध्यायः

वैश्वरूप्यसंक्षेपः

नारदः—

षाड्गुण्यं तत् कथं ब्रह्म स्वशक्तिपरिबृंहितम् ।
तस्य शक्तिश्च का नाम यया बृंहितमुच्यते ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे सदाशिव ! वह ब्रह्म किस प्रकार अपनी शक्ति से उपबृंहित होकर षड्गुण सम्पन्न है । उसकी शक्ति का क्या नाम है जिससे वह षड्गुण से उपबृंहित होता है ॥ १ ॥

सर्ववस्तूनां शक्तिरपृथक्सिद्धविशेषणम्

शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्या अपृथक्स्थिताः ।
स्वरूपे नैव दृश्यन्ते दृश्यन्ते कार्यतस्तु ताः ॥ २ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—सभी भावो (वस्तुओं) की शक्तियाँ उससे पृथक् स्थित न होकर (उसी में रह कर) अचिन्त्य हैं, वह शक्ति स्वरूपतः दिखाई नहीं पड़ती, कार्य से दिखाई पड़ती हैं ॥ २ ॥

सूक्ष्मावस्था हि सा तेषां सर्वभावानुगामिनी ।
इदंतया विधातुं सा न निषेद्धुं च शक्यते ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण पदार्थों में रहने वाली वह शक्ति उन-उन वस्तुओं की सूक्ष्मावस्था ही है । उसे इदंतया (इस प्रकार) बताया नहीं जा सकता और न इदंतया निषिद्ध ही किया जा सकता है ॥ ३ ॥

शक्तीनामपर्यनुयोज्यत्वम्

सर्वैरननुयोज्या हि शक्तयो भावगोचराः ।

परब्रह्मणोऽपि शक्तिरपृथक्सिद्धविशेषणम्

एवं भगवतस्तस्य परस्य ब्रह्मणो मुने ॥ ४ ॥
सर्वभावानुगा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः ।
भावाभावानुगा तस्य सर्वकार्यकरी विभोः ॥ ५ ॥

पदार्थों में दिखाई पड़ने वाली शक्तियाँ सब लोगों के द्वारा अनुयोजित नहीं की जा सकती । इस प्रकार, हे मुने ! उस परब्रह्म की शक्ति जगत् के समस्त पदार्थों में व्याप्त हैं

जिस प्रकार चन्द्रमा में चन्द्रिका। वह शक्ति उस परब्रह्म का सारा कार्य सम्पादन करती है और उसके प्रगट या तिरोहितावस्था में सर्वदा उसके साथ रहती है ॥ ४-५ ॥

स्वातन्त्र्यरूपा सा विष्णोः प्रस्फुरत्ता जगन्मयी।
उदितानुदिताकारा निमेषोन्मेषरूपिणी ॥ ६ ॥

विष्णु की वह शक्ति सर्वदा स्वतन्त्र रूप से रहती है जब वह विष्णु में प्रस्फुरित होती है तो जगत् के रूप में दिखाई पड़ती है। उसका आकार कभी उदीयमान् और कभी अनुदीयमान् रहता है। वह निमेष (सङ्कोच) और उन्मेष (विकास) रूपा है ॥ ६ ॥

भगवच्छक्तेरानन्दादिशब्दाभिधेयत्वम्

निरपेक्षतयानन्दा स्वतन्त्रा नित्यपूरणात्।
स्वात्मभित्तिसमुन्मीलत्परावरजगत्स्थितिः ॥ ७ ॥

वह आनन्द स्वरूपा है किन्तु उसका आनन्द किसी की अपेक्षा से रहित है सबको नित्य पूर्ण करती है। स्वयं परिपूर्ण है इसलिए स्वतन्त्र है। वह आत्मभित्ति पर प्रकाशित होती है तथा जगत् के भीतर-बाहर तथा पर और अवर में स्थित रहती है ॥ ७ ॥

नित्या कालापरिच्छेदात् पूर्णाकारावियोगतः।
व्यापिनी देशविभ्रंशाद्रिक्ता पूर्णा च सर्वदा ॥ ८ ॥

वह काल से अपरिच्छेद्य है इसलिए नित्या कही जाती है। किसी से उसका वियोग नहीं होता इसलिए वह पूर्णाकारा है। किसी देश से उसकी सत्ता रिक्त नहीं है इसलिए वह व्यापिनी एवं सर्वदा पूर्णा है ॥ ८ ॥

जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मीरिति गीयते।
श्रयन्ती वैष्णवं भावं सा श्रीरिति निगद्यते ॥ ९ ॥

हे मुने! वह शक्ति जगत् स्वरूप से लक्षित होती है इसलिए उसे लक्ष्मी कहते हैं। वह विष्णु भाव का आश्रय प्राप्त करती है इसलिए उसे श्री कहा जाता है ॥ ९ ॥

अव्यक्तकालपुंभावात् सा पद्मा पद्ममालिनी।
कामदानाच्च कमला पर्याप्तसुखयोगतः ॥ १० ॥

काल तथा दुर्भाव से वह अव्यक्त पद्ममाला धारण करने वाली है इसलिए पद्मा है। पर्याप्त सुख से युक्त होने के कारण तथा काम दान करने के कारण वह कमला कही जाती है ॥ १० ॥

विष्णोः सामर्थ्यरूपत्वाद् विष्णुशक्तिः प्रगीयते।
पालयन्ती हरेर्भावं विष्णुपत्नी प्रकीर्तिता ॥ ११ ॥

विष्णु के सामर्थ्य का स्वरूप होने से उसे विष्णुशक्ति कहते हैं। अतः विष्णु की भावना (आज्ञा) का पालन करती है इसलिए वह विष्णुपत्नी है ॥ ११ ॥

जगदाकारसङ्कोचात् स्मृता कुण्डलिनी बुधैः।
अनाहता बुधैः प्रोक्ता मनोवागाद्यनाहतेः ॥ १२ ॥

संसार के आकार को सङ्कुचित करने के कारण उसे बुद्धिमानों ने कुण्डलिनी कहा है। मन एवं वाणी से अनाहत होने के कारण बुद्धिमान् उसे 'अनाहता' कहते हैं ॥ १२ ॥

परमानन्दसम्बोधा मन्त्रसूक्ष्मतयापि च।
शुद्धसत्त्वाश्रयाद् गौरी ह्यदितिश्चाविशेषणात् ॥ १३ ॥

मन्त्र की सूक्ष्मता होने पर भी वह परमानन्द तथा ज्ञान स्वरूपा है, शुद्धसत्त्व का आश्रय लेने के कारण वह गौरी कही जाती है। किसी से वह विशेषित नहीं है इसलिए अदिति है ॥ १३ ॥

सर्वपुण्यकरीभावान्महीयस्यपि सा मही।
तथानाहतशीर्ष्णी चानाहतोऽभ्युदयो यतः ॥ १४ ॥

सर्वपुण्यकरी भाव से महती होने के कारण वह महीस्वरूपा है। अतः उसकी कृपा से मनुष्य का अभ्युदय अनाहत (निर्विघ्न) चलता है इसलिए वह अनाहतशीर्ष्णी कही जाती है ॥ १४ ॥

प्राणयन्ती स्वसंवित्त्या जगत्प्राणा इतीर्यते।
पराहतासुरूपत्वान्मन्त्रमाता प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥

वह अपनी संवित्ति से सबको अनुप्राणित करती है इसलिए जगत्प्राणा कही जाती है, अपने सुरूपत्व से पराहता है इसलिए मन्त्रमातृका कही जाती है ॥ १५ ॥

त्रायन्ती गायतः सर्वान् गायत्रीत्यभिधीयते।
प्रकुर्वती जगत् स्वेन प्रकृतिः परिगीयते ॥ १६ ॥

अपना गान करने वाले सभी का वह परित्राण करती है इसलिए गायत्री है, वह स्वयं अपने आपसे बिना किसी उपादान के जगत् का निर्माण करती है इसलिए प्रकृति कही गई है ॥ १६ ॥

मिमीते च तता चेति सा माता परिकीर्तिता।
सर्वेषामविपर्यासाच्छिवङ्करतया शिवा ॥ १७ ॥

वह सारे जगत् का पालन करने के कारण माता कही जाती है। सबके अनुकूल रह कर उनका कल्याण करती रहने के कारण वह शिवा कही गयी है ॥ १७ ॥

तरुणी काम्यमानत्वात् तारा संसारतारणात्।
अविपर्यासरूपत्वात् सत्या सत्यद्वयान्वयात् ॥ १८ ॥

सभी से काम्यमान (अभियाचित एवं प्रार्थित) होने के कारण तरुणी है। संसार से पार करने के कारण 'तारा' है। कभी उसमें विपर्यास (फेर बदल) नहीं होता इसलिए वह सत्या है। किसी दूसरे से कभी वह युक्त नहीं होती, इसलिए सती है ॥ १८ ॥

शान्ताशेषविकारत्वाच्छान्ता सा चिन्त्यते बुधैः।
मोहानपनयन्ती सा मोहिनी मोहनादपि ॥ १९ ॥

सम्पूर्ण विकारों से शान्त रहने के कारण बुद्धिमान् लोग उसे शान्ता कहते हैं। मोह को दूर करती है अथवा सबको मोहित करने के कारण वह 'मोहिनी' कही जाती है ॥१९॥

इडा हविरधिष्ठानादिष्यमाणतयापि च।
रमयन्तीति सा रन्ती रतिश्च परिकीर्तिता ॥ २० ॥

हवि का अधिष्ठान होने के कारण तथा सभी से (अभिलषित) होने के कारण वह ईडा है। सबको रमण कराती है इसलिए वह रन्ती या रति कही जाती है ॥ २० ॥

विश्रुतिर्विश्रुता सद्भिः स्मारयन्ती सरस्वती।
अनवच्छिन्नभासत्वान्महाभासाभिधीयते ॥ २१ ॥

सज्जनों से विश्रुत होने के कारण वह विश्रुति है। स्मरण कराने के कारण सरस्वती है। अनवच्छिन्न (बे रोक-टोक) भासित होने के कारण वह महाभासा कही जाती हैं ॥२१॥

नामधेयैरियं तैस्तैर्नानाशास्त्रसमाश्रयैः।
अन्वर्थैर्दर्शिताशेषविभवा वैष्णवी परा ॥ २२ ॥

इस प्रकार उन-उन शास्त्रों के द्वारा उन-उन नामों से पुकारी जाने वाली तथा अपने नाम के अर्थ के अनुसार अशेष विभव प्रदर्शित करने वाली वह परा वैष्णवी कही जाती है ॥ २२ ॥

उदधेरिव च स्थैर्यं महत्तेव विहायसः।
प्रभेव दिवसेशस्य ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः ॥ २३ ॥
विष्णोः सर्वाङ्गसम्पूर्णा भावाभावानुगामिनी।
शक्तिर्नारायणी दिव्या सर्वसिद्धान्तसंमता ॥ २४ ॥

उसमें समुद्र के समान स्थिरता है। आकाश के समान महत्ता है। वह सूर्य की प्रभा के समान तथा चन्द्रमा में रहने वाली चन्द्रिका के समान विष्णु के भाव (अवतार प्राकट्य) तथा अभाव (तिरोहित अन्तर्धान) अवस्था में अनुगामिनी रहती है। सर्वाङ्ग सम्पूर्णा है। शक्ति है, नारायणी है और दिव्या है अतः सभी शास्त्रकारों ने उसे इस प्रकार का माना है ॥ २३-२४ ॥

शक्तिमतः शक्तिर्भिन्ना

देवाच्छक्तिमतो भिन्ना ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
एष चैषा च शास्त्रेषु धर्मधर्मिस्वभावतः ॥ २५ ॥

सर्व शक्तिमान् परमेष्ठी ब्रह्मदेव से वह शक्ति भिन्न है क्योंकि यह परब्रह्म और यह शक्ति, धर्म और धर्मी स्वभाव से शास्त्रों में कहे गए हैं अर्थात् ब्रह्मधर्मी है तो वह शक्ति उसका धर्म है ॥ २५ ॥

भवद्भावस्वरूपेण तत्त्वमेकमिवोदितौ।
स्वातन्त्र्येण स्वरूपेण विष्णुपत्नीयमद्भुता ॥ २६ ॥
यतो जगद्भविष्यन्ती क्वचिदुन्मेषमृच्छति।

एक भाव (पदार्थ) है तो दूसरा उसमें रहने वाली शक्ति है इस प्रकार दोनों मिलकर एक तत्त्व के प्रतिपादक हैं। यह महाशक्ति विष्णुपत्नी होकर भी अपने स्वतन्त्र रूप से अद्भुत है। क्योंकि यही जगत् को उत्पन्न करने वाली है तथा कभी-कभी प्रगट रूप में दिखाई भी पड़ती है ॥ २६-२७ ॥

शक्तेः द्वैविध्यम्; भूतिशक्तेः त्रैविध्यम्

सहस्रायुतकोट्योघकोटिकोट्यर्बुदांशकः ॥ २७ ॥
लक्ष्मीमयः समुन्मेषः स द्विधा व्यवतिष्ठते।
क्रियाभूतिविभेदेन भूतिः सा च त्रिधा मता ॥ २८ ॥

यह लक्ष्मीमय सम्रन्मेष (प्रकाश) अपने हजारवें दसहजारवें, करोड़हवें, दस करोड़वें, करोड़ों के करोड़हवें तथा अर्बुदवें के अंश से जगत में प्रगट होता है। क्रिया और भूति के भेद से वह प्रकाश दो रूपों में प्रकाशित होता है। जिसमें भूति के तीन भेद हैं ॥ २७-२८ ॥

अव्यक्तकालपुंभावात् तेषां रूपं प्रवक्ष्यते।
क्रियाख्यो योऽयमुन्मेषः स भूतिपरिवर्तकः ॥ २९ ॥

प्रथम अव्यक्त भूति, दूसरी कालभूति एवं तीसरी प्रभूति उनका रूप आगे चलकर कहेंगे। क्रियामय उन्मेष उस भूति को प्रेरित (द्र० ३.३२) करता है ॥ २९ ॥

लक्ष्मीमयः प्राणरूपो विष्णोः सङ्कल्प उच्यते।
स्वातन्त्र्यमूल इच्छात्मा प्रेक्षारूपः क्रियाफलः ॥ ३० ॥

जिसे विष्णु का सङ्कल्प कहते हैं वह लक्ष्मीमय है एवं प्राणरूप है। वह स्वातन्त्र्य-मूलक हैं, इच्छात्मा और प्रेक्षारूप है जिसका फल क्रिया है ॥ ३० ॥

उन्मेषो यः सुसङ्कल्पः सर्वत्राव्याहतः कृतौ।
अव्यक्तकालपुंरूपां चेतनाचेतनात्मिकाम् ॥ ३१ ॥
भूतिं लक्ष्मीमयीं विष्णोः शक्तिं सम्भावयत्यसौ।
अव्यक्तं परिणामेन कालं कलनकर्मणा ॥ ३२ ॥
पुरुषं भोजनोद्योगैः सर्गे संयोजयत्ययम्।
सामर्थ्यत्रितयादानाद् वियोजयति सञ्चरे ॥ ३३ ॥

यह प्रकाश (उन्मेष) जिसे सुसङ्कल्प रूप में जाना जाता है और प्रकृति में सर्वत्र अव्याहत है वही अव्यक्त काल तथा पुंरूपवाली चेतना चेतनात्मिका विष्णु की लक्ष्मी-मयी भूति को प्रेरित करता है (द्र० ३.२९)। वही परिणाम से अव्यक्त को, कलन कर्म से काल को तथा भोजनादिक के उद्योग से पुरुष को सृष्टि में संयुक्त करता है। जब सृष्टि होती है तब वह क्रिया रूप सुसङ्कल्प उक्त तीन प्रकार का सामर्थ्य तीनों भूतियों को प्रदान करता है और प्रलयावस्था आने पर उन तीनों प्रकार के सामर्थ्यों को उनसे वियुक्त कर देता है ॥ ३१-३३ ॥

विषमे परिणामे यत् सामर्थ्यं त्रिगुणात्मनः ।
सृष्टौ दधाति तत् तस्मिन् विपर्यासं च संहृतौ ॥ ३४ ॥

वह सुसङ्कल्प सृष्टि के विषय परिणाम काल में त्रिगुणात्मा सामर्थ्य धारण करता है पुनः उस सामर्थ्य को प्रलय काल में उससे हटा लेता है ॥ ३४ ॥

अव्यक्तपुरुषोद्योगसंयोजनविधिक्रमम् ।
काले दधाति सर्गादौ विपर्यासं च संहृतौ ॥ ३५ ॥

वह सङ्कल्प अव्यक्त, पुरुष एवं उद्योग इन तीनों के परस्पर संयोजन के जिस विधिक्रम को सृष्टि के आदि काल में धारण करता है उसी को संहार काल में वियुक्त कर देता है ॥ ३५ ॥

पुंसश्च बुद्धिसामर्थ्यमसामर्थ्यं च भोजने ।
सङ्कल्पः कुरुते विष्णोः सर्गप्रतिविसर्गयोः ॥ ३६ ॥

विष्णु का वह सङ्कल्प सर्ग काल में पुरुष के भोग को बुद्धि का सामर्थ्य प्रदान करता है तथा प्रलय काल में उस सामर्थ्य को हटा लेता है ॥ ३६ ॥

त्रीनेतान् संहतान् सृष्टौ विहतान् प्रतिसञ्चरे ।
दधाति स्वेन रूपेण गुणो मणिगणानिव ॥ ३७ ॥

वह अपने स्वरूप से सृष्टि में इन तीनों को संयुक्त करता है । पुनः प्रतिसञ्चर (प्रलय) में उससे अलग-अलग कर देता है । जिस प्रकार सूत्र में पिरोया गया मणि समूह कभी एक में सङ्गत हो जाता है और कभी अलग-अलग बिखर जाता है ॥ ३७ ॥

स्थितौ च कुरुते रक्षां तेषां कार्यसमीक्षणात् ।
सर्वत्राव्याहतत्वं यत् तत् सुदर्शनलक्षणम् ॥ ३८ ॥

सर्ग की स्थिति काल में वह उनके कार्य की आवश्यकता का ध्यान रखते हुये उसकी रक्षा करता है । इस प्रकार जिसका सर्वत्र अव्याहतत्व है वही सुदर्शन का लक्षण है ॥ ३८ ॥

क्रियाशक्तेः वैविध्येन सर्वभावानुयायित्वम्

सोऽयं सुदर्शनं नाम सङ्कल्पः स्पन्दनात्मकः ।
विभज्य बहुधा रूपं भावे भावेऽवतिष्ठते ॥ ३९ ॥

स्पन्दनात्मक (क्रिया उत्पन्न करने वाला) वही सङ्कल्प सुदर्शन नाम से अभिहित होता है जो बहुत प्रकार से अपने को विभिन्न रूपों में विभक्त कर भाव-भाव (प्रत्येक वस्तु) में स्थित रहता है ॥ ३९ ॥

वैविध्यप्रपञ्चनम्

व्याप्तिं सुदर्शनस्येमां प्रोच्यमानां मया शृणु ।
यज्ज्ञात्वा पुरुषो लोके कृतकृत्यत्वमश्नुते ॥ ४० ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब सुदर्शन की इस व्याप्ति को जो मेरे द्वारा कही जा रही है उसे सुनो । जिसे जान कर पुरुष लोक में अपने को कृतकृत्य मान लेता है ॥ ४० ॥

षाड्गुण्यं यत् परं ब्रह्म या गतिर्योगिनां परा ।
नारायणः स विश्वात्मा भावाभावमिदं जगत् ॥ ४१ ॥
निष्कलेन स्वरूपेण यदा प्राप्य नियच्छति ।
सदा सत्ता हि या तस्य जगन्निर्माणशक्तिका ॥ ४२ ॥
सर्वभावात्मिका लक्ष्मीरहन्ता परमात्मनः ।
तद्धर्मधर्मिणी देवी भूत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ४३ ॥
निष्कलेन स्वरूपेण सापि तद्वन्नियच्छति ।

षड्गुण सम्पन्न जो परब्रह्म योगियों की परा गति है वही नारायण, वही विश्वात्मा है । जब भावाभावात्मक इस जगत् को प्राप्त कर वह अपने को निष्कल रूप से नियमित करते हैं तब उनकी जगन्निर्माणात्मिका (नित्यात्मिका) शक्ति जिसे सर्वभावात्मिका लक्ष्मी कहते हैं और जो परमात्मा की अहन्ता है, वह देवी भी उन्हीं के समान उनकी सहचरी बन कर अपने निष्कल स्वरूप से उसी प्रकार जगत् का नियन्त्रण करती हैं ॥ ४१-४४ ॥

तदीयैका कला भूतिर्जगद्भवनसंज्ञिता ॥ ४४ ॥
व्यापारो वास्तवस्तत्र जगन्नियमनात्मकः ।
निष्कला या क्रियाशक्तिर्लक्ष्म्याः सौदर्शनीकला ॥ ४५ ॥

उनकी एक कला भूति नाम वाली है जो जगत् को उत्पन्न करती है उसमें जगन्नियमनात्मक वस्तुजन्य व्यापार रहता है । इस प्रकार जो निष्कला लक्ष्मी की क्रिया शक्ति है वही सुदर्शन की कला है ॥ ४४-४५ ॥

भजेते तौ यदा रूपं मनोनयननन्दनम् ।
रक्षायै जगतामीशौ चक्रपद्मे तदा क्रिया ॥ ४६ ॥

जब दोनों ईश्वर और उनकी शक्ति जगत् की रक्षा के लिए मनोज्ञ रूप धारण करते हैं तब चक्र और पद्म उनकी क्रिया के रूप में अवतरित होते हैं ॥ ४६ ॥

रक्षोपकरणं देवौ तौ यावद्यावदिच्छतः ।
शङ्खशार्ङ्गादिरूपेण तावत् तावत् सुदर्शनम् ॥ ४७ ॥

वे दोनों देव जब-जब जगत् के रक्षोपकरण (रक्षार्थ सामग्री) की इच्छा करते हैं वहाँ-वहाँ (पाञ्चजन्य नामक) शङ्ख और शार्ङ्ग (धनुष नामक) रूप से सुदर्शन विद्यमान रहते हैं ॥ ४७ ॥

प्रकाशाह्लादपातैर्यद्विश्वस्योपचिकीर्षतः ।
सूर्येन्दुवह्निरूपेण तदा चक्रं सुदर्शनम् ॥ ४८ ॥

वे दोनों जब-जब प्रकाश एवं आह्लाद के द्वारा विश्व का उपकार करना चाहते हैं तब सूर्य, इन्दु तथा अग्नि स्वरूप से वहाँ सुदर्शन उपस्थित रहते है ॥ ४८ ॥

देवदैत्यादिकान् भावान् यदा तौ भजतः स्वयम् ।
तत्तदस्त्रमयी देवी तदा सौदर्शनी क्रिया ॥ ४९ ॥

जब वे दोनों देव तथा दैत्यादि भाव में अवतरित होते हैं तब वहीं सुदर्शन में रहने वाली क्रिया तत्तद् अस्त्रमयी बन जाती है ॥ ४९ ॥

यदा विश्वोपकाराय शास्त्रं नानाफलाश्रयम् ।
कुरुतः सा क्रिया तत्र शासनं हृदयस्थितम् ॥ ५० ॥

जब वे दोनो विश्व के उपकार के लिए नाना प्रकार के फल वाले शास्त्रों का प्रणयन करते हैं तब वही क्रिया हृदय में स्थित होकर शासन (शास्त्राज्ञा) बन जाती है ॥ ५० ॥

यदा तौ भवतः शास्त्रं विश्वोपकृतये विभू ।
तदा सा शास्त्रतात्पर्यं क्रिया सौदर्शनी कला ॥ ५१ ॥

जब वे दोनों विभु विश्व के उपकार के लिए शास्त्र के रूप में अवतरित होते हैं तब वही सौदर्शनी कला उन शास्त्रों का तात्पर्य बन जाती है ॥ ५१ ॥

शास्त्राधिकारिणो नाम यदा तौ पितरौ ध्रुवौ ।
अधिकारस्तदा तेषां क्रियाशक्तिः सुदर्शनम् ॥ ५२ ॥

जब वे दोनों किसी शास्त्राधिकारी के निश्चित रूप से पिता बन कर आते हैं तब वह सुदर्शन ही क्रिया शक्ति के रूप में उनका अधिकार बन कर अवतरित होते हैं ॥ ५२ ॥

यदा शास्त्रार्थभूतौ तौ फलसाधनसंश्रयात् ।
फलप्रसवसामर्थ्यं क्रिया तत्र सुदर्शनम् ॥ ५३ ॥

जब फलसाधन (निष्पत्ति) का आश्रय लेकर वे शास्त्र का अर्थ बन कर अवतरित होते हैं तब वही सुदर्शन फल प्रसव का सामर्थ्य बन कर क्रिया रूप में अवतरित होते हैं ॥ ५३ ॥

पुरुषार्थास्तु चत्वारो यदा तौ भवतः स्वयम् ।
आत्मतर्पणसामर्थ्यं तदा चक्रं सुदर्शनम् ॥ ५४ ॥

जब वे स्वयं चारों पुरुषार्थ बन कर अवतरित होते हैं तब वह सुदर्शन पुरुषार्थ करने वाले की प्रसन्नता का सामर्थ्य लेकर अवतरित होते हैं ॥ ५४ ॥

यदा मन्त्रमयीं रक्षां भजतो जगतां हिते ।
मन्त्रयन्त्रमयी देवी क्रियाशक्तिस्तदा त्वियम् ॥ ५५ ॥

जब वे दोनों जगत् के हित के लिए मन्त्रमयी रक्षा का शरीर धारण करते हैं तब यह क्रियाशक्ति, मन्त्र एवं यन्त्रमयी देवी के रूप में अवतरित होती हैं ॥ ५५ ॥

वैश्वरूप्यस्य संक्षेपः क्रियाशक्तेः प्रदर्शितः ।
सुदर्शनात्मिकायास्ते किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां क्रियाशक्तेर्वैश्वरूप्यप्रदर्शनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १९२ ॥

मैंने इस प्रकार उन वैश्वरूप (विश्वात्मा) की सुदर्शनात्मिका क्रियाशक्ति संक्षेप में प्रदर्शित की । अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हो? ॥ ५६ ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता में क्रियाशक्ति के वैश्वरूप प्रदर्शन नामक तृतीय अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रतिसञ्चरवर्णनम्

नारदः—

भगवन् देवदेवेश सर्वज्ञ वृषकेतन ।
किं तत् कारणमित्युक्तं सृष्टये यत् प्रवर्तते ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे सर्वज्ञ ! हे वृषकेतन ! सृष्टि के लिए जो प्रवृत्त होता है वह कौन सा कारण कहा गया है? ॥ १ ॥

सुदर्शनिन यद् व्याप्तं रूपतः कार्यतोऽर्थतः ।
विस्तरेण ममाचक्ष्व जगतः कारणं परम् ॥ २ ॥

जो सुदर्शन के रूप से कार्य से तथा अर्थ से अधिक हैं, जगत् के उस पर कारण को मुझे विस्तार से समझाइये ॥ २ ॥

प्राकृतप्रलयवर्णनम्

अहिर्बुध्न्यः—

प्रोच्यमानं मया तत्त्वं कारणस्यावधारय ।
तत्र तावन्निबोधेमं प्राकृतं प्रतिसञ्चरम् ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! मेरे द्वारा कहे गए उस कारण के तत्त्व को आपने सुना । उसमें भी पहले आप इस प्राकृत प्रलय को मुझसे सुनिए ॥ ३ ॥

येन कालेन सा विद्या प्रकृतिर्मूलसंज्ञिता ।
सस्यादिसृष्टये धेनुरभवन्मेघरूपिणी ॥ ४ ॥
कालेन तावता सा तु चिकीर्ष्ये प्रतिसञ्चरे ।
अधेनुर्नीरसा शुष्का भवत्यव्यक्तसंज्ञिता ॥ ५ ॥

जिस काल के प्रभाव से मूल संज्ञक विद्या रूपा प्रकृति सस्यादि (धन धान्य आदि) की सृष्टि के लिए मेघ रूप धेनु बनी । किन्तु उसी काल ने जब सृष्टि के संहार की चिकीर्षा की तब वही अव्यक्त संज्ञा वाली मूलप्रकृति नीरस और शुष्क होकर अपने धेनु रूप का त्याग कर दिया ॥ ४-५ ॥

नारदः—

कालेन कियता सर्गः सा धेनुः कामरूपिणी।
अधेनुः सा भवेद् देवी यावता प्रतिसञ्चरे॥ ६ ॥

श्रीनारद ने कहा—कितने काल तक सर्ग में वह विद्या कामरूपिणी धेनु के रूप में रहती है। फिर संहार काल में जितने दिन तक वह अधेनु के रूप में रहती है उसे हमें बताइये॥ ६ ॥

प्रतिसञ्चरकालपरिमाणम्

अहिर्बुध्न्यः—

अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला।
तास्तु त्रिंशत् क्षणस्ते तु मुहूर्तो द्वादश स्मृतः॥ ७ ॥

प्रलय के काल का परिमाण

अहिर्बुध्न्य ने कहा—अष्टादश निमेष की एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठा की एक कला तथा तीस कला का एक क्षण एवं बारह क्षण का एक मुहूर्त कहा जाता है॥ ७ ॥

ते तु पञ्चदशाहः स्यात् तावती रात्रिरिष्यते।
ते पञ्चदश पक्षः स्यात् पक्षौ द्वौ मास इष्यते॥ ८ ॥

पन्द्रह मुहूर्त्त का एक दिन तथा उतने ही मुहूर्त्त की एक रात्रि कही गई है। पन्द्रह रात दिन का एक पक्ष और दो पक्ष का एक मास कहा गया है॥ ८ ॥

संवत्सरो मानुषस्तु तैर्द्वादशभिरिष्यते।
काम्यः षोडशभिस्तैस्तु काम्याब्दानां तथा मुने॥ ९ ॥

बारह मास का एक मानव संवत्सर तथा षोडश मानव संवत्सर का एक काम्य तथा इस प्रकार के काम्य सम्वत्सरों का .... (इसके बाद का पाठ-अप्राप्य)॥ ९ ॥

विद्या धेनुरधेनुश्च भवेत् कालेन तावता।
अधेन्वां तु ततस्तस्यां चिकीर्ष्ये प्रतिसञ्चरे॥ १० ॥

उतने-उतने काल तक वह मूला विद्या धेनु एवं अधेनु के रूप में रहती है। किन्तु जब काल सर्ग का संहार करना चाहता है तो वही विद्या अधेनु के रूप में विद्यमान हो जाती है॥ १० ॥

सर्वस्य पृथिव्यां लयः

नीरसं शुष्कमेवासीज्जगदेतच्चराचरम्।
महावातेन संशुष्कं संदग्धं च महाग्निना॥ ११ ॥

जब यह सारा चराचर जगत् शुष्क और नीरस हो गया, तब उस जगत् को महावात ने शुष्क किया तथा महाग्नि ने उसे जलाया॥ ११ ॥

आ शैलादा तृणाच्चैव यदा भूमौ समुन्नतम्।
मानवेषु लयं यान्ति तदा मानवमानवाः॥ १२ ॥

जब पृथ्वी पर रहने वाले पर्वत से लेकर तृणपर्यन्त सभी शुष्क होकर दग्ध हो गए, तब मनु के पुत्र प्रत्येक मानव मनु में लय को प्राप्त हो गए ॥ १२ ॥

मनुष्वेव लयं यान्ति मानवास्ते चतुःशतम् ।
एवं चेतनवर्गे तु मनुष्वेव लयं गते ॥ १३ ॥
मिथुनान्येव चत्वारि मनूनां केवलानि तु ।
कूर्मपृष्ठसमानायां भुवि तिष्ठन्ति वै मुने ॥ १४ ॥

वे मानव चार सौ वर्षों तक मनु में लीन रहे । इसी प्रकार समस्त चेतन वर्गों के मनु में लीन हो जाने पर, हे मुने ! केवल चार मनुष्यों के मिथुन (सभी पुरुष के जोड़े) कूर्मपृष्ठ के समान भूमि पर स्थित रहे ॥ १३-१४ ॥

पृथिव्या अप्सु लयः

नारायणस्य सङ्कल्पादव्याहतसुदर्शनात् ।
भूमेर्गन्धात्मकं सारं ग्रसन्त्यापस्तदा मुने ॥ १५ ॥

फिर तो नारायण के अव्याहत सुदर्शन रूप सङ्कल्प से, हे मुने ! भूमि के गन्धात्मक सार को जल ने ग्रस लिया ॥ १५ ॥

आत्तगन्धा यदा भूमिरम्भसा कारणात्मना ।
अतिभूय तदा पृथ्वीं मनवोऽप्सु व्यवस्थिताः ॥ १६ ॥

जब अपने कारण रूप जल के द्वारा पृथ्वी का गन्ध शोषण कर लिया गया । तब मनु लोग पृथ्वी को छोड़कर जल में अवस्थित हो गए ॥ १६ ॥

भूमिस्त्वात्तरसा शश्वज्जहाति व्यक्तिनामनी ।
प्रभवन्त्याप एतर्हि जगदेतच्चराचरम् ॥ १७ ॥

जब भूमि शुष्क रस वाली हो गई, तब उसने अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम को परित्याग कर दिया । फिर तो यह सारा चराचर जगत् जल स्वरूप हो गया ॥ १७ ॥

अपां तेजसि लयः

सङ्कल्पादेव पूर्वस्मात् सुदर्शनमयाद्धरेः ।
अपामपि रसं सारं ज्योतिर्ग्रसति कारणम् ॥ १८ ॥
अतिभूय तदापस्तु मनवो ज्योतिषि स्थिताः ।
आपश्चात्तरसाः शश्वज्जहति व्यक्तिनामनी ॥ १९ ॥

तदनन्तर सुदर्शनमय विष्णु के पूर्व सङ्कल्प से जल के सारभूत रस को उसके कारण तेज ने ग्रस लिया, तब मनु लोग जल को छोड़ कर तेज में स्थित हो गए । इस प्रकार जब जल का रस समाप्त हो गया, तब उसने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया ॥ १८-१९ ॥

तेजसो वायौ लयः

देदीप्यमानमेतर्हि ज्योतिरेव जगन्मुने ।

सङ्कल्पचोदितो विष्णोर्वायुः कारणसंज्ञितः ॥ २० ॥
ज्योतिषोऽप्यान्तरं रूपं सारं ग्रसति तद् ध्रुवम् ।
सङ्कल्पचोदिता विष्णोर्मनवोऽपि तदा मुने ॥ २१ ॥
अतिभूयाखिलं ज्योतिर्वायुमेव श्रयन्ति ते ।
आत्तरूपं तदा ज्योतिर्जहाति व्यक्तिनामनी ॥ २२ ॥

हे मुने ! इस प्रकार सारा जगत् ज्योति रूप में जगमगाने लगा । तदनन्तर विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित तेज के कारणभूत वायु ने तेज के अन्तर्गत रूप सार को निश्चित रूप से ग्रस लिया, तब हे मुने ! विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित हुये मनु तेज को छोड़कर वायु में समाश्रित हो गए । फिर तो जब तेज का (सार) रूप समाप्त हो गया । तब उसने भी अपनी अभिव्यक्ति एवं नाम का परित्याग कर दिया ॥ २०-२२ ॥

वायोराकाशे लयः

वायुर्दोधूयमानस्तु जगदेतच्चराचरम् ।
ततः कारणमाकाशं विष्णोः सङ्कल्पचोदितम् ॥ २३ ॥
सारं ग्रसति संस्पर्शं कारणं वै नभस्वतः ।
सुदर्शनेरिता विष्णोर्मनवोऽपि महामुने ॥ २४ ॥
नभस्येवावतिष्ठन्ते व्यतिभूय समीरणम् ।
आत्तस्पर्शस्तदा वायुर्जहाति व्यक्तिनामनी ॥ २५ ॥

फिर तो सारा चराचर जगत् वायु बन कर बहने लगा । तदनन्तर विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित वायु के कारणभूत आकाश ने वायु के स्पर्श गुण को ग्रस लिया । हे महामुनि ! तब सुदर्शन से प्रेरित मनु गण भी वायु को छोड़कर आकाश में स्थित हो गए । इस प्रकार जब वायु का स्पर्श गुण पराधीन हो गया तो वायु ने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम को छोड़ दिया ॥ २३-२५ ॥

आकाशस्याहङ्कारे लयः

भृशं शब्दायमानं तद्विद्विश्वं चराचरम् ।
क्रियाशक्तीरितो विष्णोरहङ्कारोऽभिमानवान् ॥ २६ ॥
सारं ग्रसति शब्दाख्यं कारणं नभसो मुने ।
तथैव प्रेरिता विष्णोरतिभूय वियत्पदम् ॥ २७ ॥
अहङ्कारेऽवतिष्ठन्ते मनवो भगवन्मयाः ।
आत्तशब्दं वियत् तच्च जहाति व्यक्तिनामनी ॥ २८ ॥

तब चराचर सारा विश्व अत्यन्त शब्दायमान होने लगा । फिर विष्णु की क्रिया शक्ति से प्रेरित अभिमानवान् अहङ्कार ने जो आकाश का कारण है उसके शब्द रूप गुण को ग्रस लिया । तब विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित भगवत् स्वरूप मनु गण भी आकाश को छोड़ कर अहङ्कार में स्थित हो गए । जब आकाश का शब्द गुण ग्रस लिया गया तो उसने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया ॥ २६-२८ ॥

अहङ्कारस्य बुद्धौ लयः

अहमित्येव तद्विश्वमहङ्कारात्मकं मुने ।
अभिमानात्मकं सारमहङ्कारस्य कारणम् ॥ २९ ॥
सुदर्शनेरिता विष्णोर्बुद्धिर्ग्रसति वै मुने ।
सुदर्शनेरिता विष्णोरतिभूय त्वहङ्कृतिम् ॥ ३० ॥
बुद्धावेवावतिष्ठन्ते मनवोऽष्टौ महामुने ।
अत्ताभिमानोऽहङ्कारो जहाति व्यक्तिनामनी ॥ ३१ ॥
बुद्धिरेवेदमखिलं व्यवसायवती मुने ।

बुद्धेस्तमसि लयः

सारमध्यवसायाख्यं बुद्धेः कारणमव्ययम् ॥ ३२ ॥
सुदर्शनेरितं विष्णोस्तमो ग्रसति कारणम् ।
सुदर्शनेरिता विष्णोर्मनवोऽपि महामुने ॥ ३३ ॥
अतिभूय तदा बुद्धिं तमस्येव श्रिताः स्थितिम् ।
आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥ ३४ ॥

हे मुने ! तब यह सारा विश्व 'अहम्' मात्र रह कर अहङ्कारात्मक बन गया । फिर सुदर्शन की प्रेरणा से अहङ्कार के कारण बुद्धि ने अहङ्कार के अभिमानात्मक सार को ग्रस लिया । हे महामुने ! सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर आठो मनुगण भी अहङ्कार को छोड़ कर बुद्धि में निवास करने लगे । तब अभिमानात्मक गुण के ग्रस लिए जाने पर अहङ्कार ने अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया । इस प्रकार सब कुछ व्यवसाय युक्त बुद्धि स्वरूप हो गया । तदनन्तर बुद्धि के कारण अव्यय तमोगुण ने बुद्धि के सारभूत अध्यवसाय को ग्रस लिया । हे महामुने! तब सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर मनुगणों ने भी तम में अपनी स्थिति स्थापित की । फिर तो यह सारा का सारा जगत् ज्ञानरहित एवं लक्षणरहित तमोमय हो गया ॥ २९-३४ ॥

इन्द्रियाणां भूतैः सह तत्तत्कारणेषु लयः

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं संस्तब्धं गुरु मोहनम् ।
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक् च श्रोत्रं चपञ्चमम् ॥ ३५ ॥
पायूपस्थं तथा पादौ हस्तौ वाक् चैव पञ्चमी ।
द्वयोः पञ्चकयोर्द्वन्द्वं घ्राणपाय्वादिकं क्रमात् ॥ ३६ ॥
महीजलादिभिर्हेतौ लीयमानैः स्वके स्वके ।
समं विलयमायाति सह घ्राणादिवृत्तिभिः ॥ ३७ ॥
मनोऽहङ्कार इत्येतत् सवृत्ति करणद्वयम् ।
अहङ्कारे लयं याति बुद्धौ बोधनमिन्द्रियम् ॥ ३८ ॥
तम एवेदमखिलमिदानीमवतिष्ठते ।

वह तम तर्क और ज्ञान से परे था। जड़ गुरु तथा मोहित करने वाला था। घ्राण, जिह्वा, चक्षु, त्वक् तथा श्रोत्र ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। पायु, उपस्थ, पादहस्त और पाँचवी वाणी ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन दोनों पञ्चकों के दो गणों के अपने-अपने कारणभूत यही जलादि में घ्राण आदि वृत्तियों के साथ लीन हो जाने पर अपनी-अपनी वृत्ति के सहित मन और अहङ्कार ये दो करण भी अहङ्कार में तथा बुद्धि में लीन हो गए, फिर तो सब कुछ तम में ही स्थित हो गया ॥ ३५-३९ ॥

तमसो रजसि लयः

स्थितिशक्तिर्हि या चास्य तमसो गुरुतामयी ॥ ३९ ॥
रजो ग्रसति तां शश्वदीश्वरेच्छाप्रचोदितम्।
इच्छया प्रेरिता विष्णोर्मनवोऽपि महामुने ॥ ४० ॥
रजस्येवावतिष्ठन्ते व्यतिभूय तमोगतिम्।
आत्तसारं तमस्तत्तु जहाति व्यक्तिनामनी ॥ ४१ ॥

इस तम की गुरुता से पूर्ण स्थिति शक्ति कीं ईश्वरेच्छा से प्रेरित रजोगुण ने ग्रस लिया। हे महामुने! फिर तो ईश्वरेच्छा से प्रेरित मनुगण भी तम का परित्याग कर रजोगुण में स्थित हो गए। इस प्रकार जब तम का सार पराधीन हो गया? तो उसने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम छोड़ दिया ॥ ३९-४१ ॥

रजसः सत्त्वे लयः

चलक्रियात्मकं दुःखं रज एव जगत् तदा।
या सा स्पन्दमयी शक्तिश्चलत्तात्मा रजोमयी ॥ ४२ ॥
तां वै सुदर्शनादिष्टं सत्त्वं ग्रसति कारणम्।
रजःस्था मनवश्चैव विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ॥ ४३ ॥
अभिभूय रजः सत्त्वं विशन्ति विमलं मुने।
आत्तसारं रजस्तत्तु जहाति व्यक्तिनामनी ॥ ४४ ॥

फिर तो सारा जगत् चलनात्मक क्रिया से युक्त होकर दुःखमय हो गया। तदनन्तर चलतात्मा, स्पन्दमयी, रजोमयी उस रजोगुण की शक्ति को सुदर्शन की आज्ञा से उसका कारण सत्त्व ने ग्रस लिया है। तब हे महामुने! विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित रजः स्थित मनुगण रजोगुण का अतिक्रमण कर सत्त्व में अवस्थित हो गए। फिर तो अपने सार के पराधीन हो जाने पर उस रजोगुण ने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम को छोड़ दिया ॥ ४२-४४ ॥

सत्त्वस्य काले लयः

लघु प्रकाशकं सत्त्वमिदमासीच्चराचरम्।
कालो नाम गुणो विष्णोः सुदर्शनसमीरितः ॥ ४५ ॥
सारं प्रज्ञामयं सत्त्वादादत्ते ज्ञानकारणम्।
अतिभूय तदा सत्त्वं मनवः कालसंश्रिताः ॥ ४६ ॥

काल एव जगत् कृत्स्नमिदमासीत् तदा मुने ।
आत्तसारं च तत् सत्त्वं जहाति व्यक्तिनामनी ॥ ४७ ॥

तब यह सारा चराचर जगत् स्वल्प प्रकाश वाला सत्त्व हो गया । तब सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर विष्णु के काल नामक गुण ने उस सत्त्व से ज्ञान के कारणभूत प्रज्ञामय सार को ले लिया । तब सत्त्व को त्याग कर मनु लोग काल में स्थित हो गए । हे मुने ! उस समय यह सारा जगत् कालमय हो गया । तब प्रज्ञामय सार के पराधीन हो जाने पर सत्त्व ने अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया ॥ ४५-४७ ॥

कालस्य नियतौ लयः

काली कालगता शक्तिर्या साशेषप्रकालिनी ।
नियतिर्नाम तां तत्त्वं ग्रसतीश्वरचोदिता ॥ ४८ ॥

काल में रहने वाली और सबको कवलित करने वाली काल रूप उस महाशक्ति को ईश्वर की प्रेरणा से नियति ने ग्रस लिया ॥ ४८ ॥

सुदर्शनेरितास्ते च मनवोऽष्टौ महामुने ।
अतीत्य कालतत्त्वं तां नियतिं प्रतिपेदिरे ॥ ४९ ॥

हे महामुने ! तब सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर आठों मनु काल तत्त्व का त्याग कर नियति में प्रविष्ट हो गए ॥ ४९ ॥

आत्तसारस्तदा कालो जहाति व्यक्तिनामनी ।
नियतिर्नाम सा विश्वमिदमासीच्चराचरम् ॥ ५० ॥

जब अपने सार के ग्रहण कर लिए जाने पर काल ने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम छोड़ दिया, तब उस समय यह सारा चराचर जगत् नियति नाम वाला हो गया ॥ ५० ॥

नियतेः शक्तौ लयः

महाविद्यामयी शक्तिर्नियतेर्या महामुने ।
शक्तिर्नाम तदा वां तु ग्रसतीश्वरचोदिता ॥ ५१ ॥

हे महामुने ! नियति की महाविद्या नाम वाली शक्ति को ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त कर महाशक्ति ने ग्रस लिया है ॥ ५१ ॥

मनवोऽपीश्वरादिष्टा नियतिं तामतीत्य वै ।
शक्तिं मायामयीं विष्णोर्विशन्ति विपुलात्मिकाम् ॥ ५२ ॥

तब ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त कर मनुगण भी नियति का परित्याग कर विपुलात्मिका विष्णु की महामाया शक्ति में प्रवेश कर गए ॥ ५२ ॥

नियतिश्चात्तसारा सा जहाति व्यक्तिनामनी ।
अथ शक्तिरिदं विश्वं जगदासीच्चराचरम् ॥ ५३ ॥

जब नियति का सार ग्रस लिया गया तो उसने अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया। फिर तो सारा चराचर जगत् शक्तिमय दिखाई पड़ने लगा ॥ ५३ ॥

शक्तेः कूटस्थपुरुषे लयः

आ चैतन्योन्मिषत्तायाः शक्तेः शक्तिः सनातनी।
सुदर्शनेरितस्तां तु पुरुषो ग्रसति स्वयम् ॥ ५४ ॥

चैतन्य से उन्मिषित (अनुप्राणित) उस शक्ति की जो सनातनी शक्ति है उसे सुदर्शन के द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर स्वयं पुरुष ने ग्रस लिया ॥ ५४ ॥

अतीत्य मनवः शक्तिं तं विशन्तीश्वरेरिताः।
आत्तसारा तदा शक्तिर्जहाति व्यक्तिनामनी ॥ ५५ ॥

फिर तो ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त कर वे मनुगण उस शक्ति का परित्याग कर उस पुरुष में प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार शक्ति ने अपने तत्त्व के ग्रस लिए जाने पर अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया ॥ ५५ ॥

सर्वात्मा सर्वतः शक्तिः पुरुषः सर्वतोमुखः।
सर्वज्ञः सर्वगः सर्वः सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ५६ ॥
मनूनामेष कूटस्थः पुरुषो द्विचतुर्मयः।
कृत्स्नकर्माधिकारो वै देवदेवस्य वै हरेः ॥ ५७ ॥
त्रयोदशानां भूम्यादिशक्त्यन्तानां महामुने।
विलीनस्वस्वकार्याणां काम्यवर्षशतस्थितिः ॥ ५८ ॥

तदनन्तर सर्वात्मा सर्वतोभावेन शक्तिमान् सर्वतोमुख, सर्वज्ञ, सर्वग, सर्व वह पुरुष सब कुछ को अपने में उदरस्थ कर स्थित रहा। इस प्रकार मनुष्यों का अष्टसङ्ख्यामय कूटस्थ पुरुष ने देवाधिदेव विष्णु के सम्पूर्ण कर्मों का अधिकार प्राप्त कर लिया। अपने-अपने कार्यों को अपने कारण में विलीन करने वाले भूमि से लेकर शक्ति पर्यन्त (भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, बुद्धि, तम, रज, सत्त्व, काल, नियति एवं शक्ति) इस प्रकार १३ सङ्ख्या वाले सर्गोपकरण उस कूटस्थ पुरुष में काम्य (दृ० ४.९) वर्षों के गणनानुसार सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रहे ॥ ५६-५८ ॥

कूटस्थपुरुषस्यानिरुद्धे लयः

पुंसस्त्रीणि शतानि स्युस्ततो मनुमयः पुमान्।
चतुर्धा स्वं विभज्याथ ब्रह्मक्षत्रादिभावतः ॥ ५९ ॥
स्वे स्वे स्थानेऽनिरुद्धस्य मुखबाह्वादिके मुने।
प्रलीयते क्षणेनैव तप्तायःपिण्डवारिवत् ॥ ६० ॥

फिर वह मनुमय कूटस्थ पुरुष (द्र० ४.५७) पुरुष-वर्ष के गणनानुसार तीन सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रह कर अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार भागों में प्रविभक्त कर अनिरुद्ध

के मुख, बाहू आदि स्व स्व स्थानों में क्षण मात्र में इस प्रकार लीन हो गया जैसे तप्त लौहपिण्ड में जल का कण ॥ ५९-६० ॥

ततोऽसौ भगवानेकः प्रलीनचिदचिन्मयः ।
शतानि दश षट् चाथ वर्षाणामवतिष्ठते ॥ ६१ ॥

इस प्रकार चिदचित् सबको अपने में लीन कर एक मात्र भगवान् सोलह सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रहे ॥ ६१ ॥

अनिरुद्धस्य प्रद्युम्नेलयः

अवस्थाय ततोऽप्येति प्रद्युम्नमजरं विभुम् ।
निरुध्य सर्वचेष्टाः स्वास्तावत्कालं स तिष्ठति ॥ ६२ ॥

फिर अनिरुद्ध भगवान् उतने वर्ष पर्यन्त बाहर स्थित होकर अजर-अमर और सर्वव्यापक प्रद्युम्न में लीन हो गए । प्रद्युम्न भगवान् भी अपनी सारी चेष्टाओं को रोक कर उतने ही काल पर्यन्त स्थित रहे ॥ ६२ ॥

प्रद्युम्नस्य सङ्कर्षणे लयः

ततः प्रद्युम्नसंज्ञोऽसौ भगवान् पुष्करेक्षणः ।
अप्येति भगवन्तं तं सङ्कर्षणमनामयम् ॥ ६३ ॥

तदनन्तर वे कमलनेत्र प्रद्युम्न संज्ञक भगवान् आमयरहित भगवान् सङ्कर्षण देव में लीन हो गए ॥ ६३ ॥

कालं तिष्ठति तावन्तं सर्वदेवमयोऽच्युतः ।
चिदचित्खचितं विश्वं शुद्धाशुद्धमशेषतः ॥ ६४ ॥

सर्वदेवमय अच्युत (सङ्कर्षण) उतने ही काल तक चित् अचित समूह सम्पूर्ण शुद्ध-अशुद्ध सारे विश्व को अपने ज्ञानमय शरीर में काले तिल के समान धारण कर उतने ही काल तक स्थित रहे ॥ ६४ ॥

तिलकालकवत् स्वस्य देहे ज्ञानमये दधत् ।
उदयास्ताचलावेष देवः सङ्कर्षणो बलः ॥ ६५ ॥
चिदिन्दोरचिदङ्कस्य कलास्ता अनुधावतः ।
अहीनमहरेतद्धि सङ्कर्षणमयं परम् ॥ ६६ ॥
यत्र नानाविधा भावा व्यज्यन्ते स्वस्वयाख्यया ।

तदनन्तर यही बलदेव सङ्कर्षण देव अचित् रूप कलङ्क वाले चिच्चन्द्रमा की उदय से अस्ताचल पर्यन्त कला को धारण करते हैं । यही कला सङ्कर्षणमय पर तथा श्रेष्ठ उनका एक दिन होता है । जिसमें अपनी-अपनी आख्या के अनुसार जीवों के अनेक प्रकार के भाव प्रकट होते रहते हैं ॥ ६५-६७ ॥

सङ्कर्षणस्य वासुदेवे लयः

शतानि षोडश स्थित्वा वर्षाणामयमच्युतः ॥ ६७ ॥

अप्येति भगवन्तं तं वासुदेवं सनातनम्।
नासदासीत् तदानीं हि नो सदासीत् तदा मुने॥ ६८ ॥

इस प्रकार अच्युत बलदेव सोलह सौ वर्ष पर्यन्त स्थित होकर भगवान् सनातन वासुदेव में लीन हो जाते हैं। हे मुने! उस समय न सत् था न असत् था॥ ६७-६८ ॥

भावाभावौ विलोप्यान्तर्विचित्रविभवोदयौ।
अनिर्देश्यं परं ब्रह्म वासुदेवोऽवतिष्ठते॥ ६९ ॥

तदनन्तर विचित्र विभव एवं उदय से युक्त भावाभाव को अपने अन्तःकरण में लीन कर अनिर्देश्य परब्रह्म भगवान् वासुदेव स्थित हो गए॥ ६९ ॥

सा रात्रिस्तत् परं ब्रह्म तदव्यक्तमुदाहृतम्।
षण्णां युगानि विज्ञानबलादीनामशेषतः॥ ७० ॥
त्रीणि यस्मिन् प्रलीयन्ते यत् तत् सा रात्रिरुच्यते।
सङ्कर्षणादिभूम्यन्तमञ्जनं विगतं यतः॥ ७१ ॥

उसी को कोई रात्रि, कोई परब्रह्म और कोई अव्यक्त कहते हैं। इस प्रकार की सम्पूर्ण विज्ञान बलादिकों के छः युग बीतते हैं। जिसमें तीन प्रलयावस्था में बीत जाते हैं उसी को रात्रि कहते हैं। सङ्कर्षण से लेकर माया पर्यन्त माया का अभाव था॥ ७०-७१॥

तदव्यक्तमिति ज्ञेयं समत्वात् सम उच्यते।
या सा भगवतः शक्तिरहन्ता सर्वभावगा॥ ७२ ॥

उसी को अव्यक्त कहते हैं। सबको सम करने के कारण उसे सम कहा जाता है भगवान् की जो अहन्ता (अहङ्कार स्वरूपा) शक्ति है वह सभी पदार्थों में रहती है॥ ७२ ॥

अपृथक्चारिणी सत्ता महानन्दमयी परा।
सङ्कर्षणादिभूम्यन्तस्तस्याः कोट्यंश ईरितः॥ ७३ ॥
सदसच्चिदचिद्रूपैर्यत्र विश्वं प्रकाशते।
तस्मिन्नुपरते शश्वद्विश्वकोलाहलोद्गमे॥ ७४ ॥
अलक्ष्या कार्यतः शक्तिर्देवाद्विजहतीभिदाम्।
प्रतिसञ्चरिकां शक्तिं क्रियां सौदर्शनीं स्वकाम्॥ ७५ ॥
संहृत्य बिभ्रती तां तु स्थितिं सङ्कल्परूपिणीम्।
इन्धनाभावतो ज्वाला वह्निभावं यथा गता॥ ७६ ॥
ब्रह्मभावं व्रजत्येवं सा शक्तिर्वैष्णवी परा।

वही भगवान् से विलग न रहने वाली सत्ता है जो महानन्दमयी एवं परा है। सङ्कर्षण से लेकर भूमिपर्यन्त उस सत्ता का करोड़हवाँ अंश कहा गया है। जिसमें सत्-असत्, चित्-अचित् रूपों से विश्व प्रकाशित होता रहता है। इस प्रकार उस विश्व के कोलाहल के सर्वदा के लिए शान्त हो जाने पर वह शक्ति कार्यतः अलक्षित हो जाती है। अपनी प्रलय में होने वाली सौदर्शनी क्रियात्मिका सङ्कल्परूप में स्थित रहने वाली शक्ति को वह शक्ति

अपने में धारण करती हुई उसी प्रकार ब्रह्म में लीन हो जाती है जिस प्रकार इन्धन के अभाव में ज्वाला अग्निभाव को प्राप्त कर जाती है । इस प्रकार वह परा वैष्णवी शक्ति वासुदेव ब्रह्म में लीन हो जाती है ॥ ७३-७७ ॥

नारायणः परं ब्रह्म शक्तिर्नारायणी च सा ॥ ७७ ॥
व्यापकावतिसंश्लेषादेकं तत्त्वमिव स्थितौ ।
सङ्कर्षणोदयो यावदहः पौरुषमिष्यते ।
तावती पौरुषी रात्रिः संहृताखिलवस्तुका ॥ ७८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां प्रतिसञ्चरवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २७० ॥

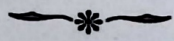

परब्रह्म नारायण और वह नारायणी शक्ति जो सर्वत्र व्यापक हैं, वे परस्पर मिलकर एक तत्त्व के रूप में स्थित हो जाते हैं । सङ्कर्षण जब तक रहते हैं तावत् पर्यन्त उस पुरुष ब्रह्म का दिन रहता है और सारी वस्तुओं को अपने में समेट कर स्थित रहने वाली वह शक्ति उतने ही काल पर्यन्त उस परब्रह्म पुरुष की होती है ॥ ७७-७८ ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता में प्रतिसञ्चरवर्णन नामक चौथे अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

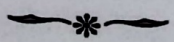

अथ पञ्चमोऽध्यायः

शुद्धसृष्टिवर्णनम्

अहिर्बुध्न्यः—

कार्यकारणवर्गस्य प्रलयोऽयं प्रदर्शितः ।
सुदर्शनमयीं सृष्टिं तस्य वक्ष्यामि ते मुने ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुने ! कार्यकारण वर्ग का इस प्रकार हमने प्रलय प्रदर्शित किया । अब उस कार्य कारण वर्ग की जिस प्रकार सुदर्शनमयी सृष्टि होती है उसे सुनिए ॥ १ ॥

प्रलयावस्थब्रह्मस्वरूपम्

प्रसुप्ताखिलकार्यं यत् सर्वतः समतां गतम् ।
नारायणः परं ब्रह्म सर्वावासमनाहतम् ॥ २ ॥
पूर्णस्तिमितषाड्गुण्यमसमीराम्बरोपमम् ।

शक्तिरूपाया लक्ष्म्याः क्वचिदुन्मेषः

तस्य स्तैमित्यरूपा या शक्तिः शून्यत्वरूपिणी ॥ ३ ॥

जिनमें सम्पूर्ण कार्य प्रसुप्त रहते हैं और जो सर्वत्र समरूप से स्थित रहते हैं । जिनमें सम्पूर्ण जीवों का आवास है, जो अप्रतिहत हैं, जिनमें ज्ञान, शक्ति आदि छहों गुण स्तब्ध स्थित रहते हैं, वे परब्रह्म वायुरहित आकाश के समान सृष्टि से पूर्व स्थित रहते हैं । उस समय शून्यरूपिणी उनकी शक्ति स्तब्ध होकर निश्चेष्ट रूप से उनमें पड़ी रहती है ॥ २-३॥

स्वातन्त्र्यादेव कस्माच्चित् क्वचित् सोन्मेषमृच्छति।
आत्मभूता हि या शक्तिः परस्य ब्रह्मणो हरेः ॥ ४ ॥
देवी विद्युदिव व्योम्नि क्वचिदुद्द्योतते तु सा ।
शक्तिर्विद्योतमाना सा शक्तिरित्युच्यतेऽम्बरे ॥ ५ ॥

वह शक्ति किसी अनिर्वचनीय स्वतन्त्रता से किसी समय उन्मेष (अङ्कुर प्रकाश) को प्राप्त करती है । परब्रह्म परमात्मा की वह आत्मभूताशक्ति जैसे बिजली आकाश में एकाएक किसी समय चमकती है उसी प्रकार अच्युत रूपी आकाश में उनकी वह विद्योतमाना शक्ति कभी कारणवशात् सृष्टि के आरम्भ में चमक उठती है ॥ ४-५ ॥

शक्तेर्विविधभावव्यञ्जकत्वम्

व्यनक्ति विविधान् भावान् शुद्धाशुद्धान् समूर्तिकान् ।
तस्या उन्मेषमृच्छन्त्याः स्वातन्त्र्यं यत् स्वनिर्मितम् ॥ ६ ॥

उस समय अच्युत रूपी आकाश में देदीप्यमान वह विद्युत् मूर्त्ति रूप धारण किये हुए अनेक वस्तुओं को प्रगट करती है । उन्मेष प्राप्त करने वाली उस महाशक्ति का यही स्वातन्त्र्य है जो कि उसे वह स्वयं निर्मित करती है ॥ ६ ॥

प्रेक्षणात्मा स सङ्कल्पस्तत् सुदर्शनमुच्यते ।
सा क्रिया तद्धरेर्वीर्यं तत् तेजश्च बलं च तत् ॥ ७ ॥
व्यज्यन्ते ये च ते भावाः स्वमित्तिपरिवर्तिताः ।
सा भूतिर्विष्णुशक्तिः सा शक्तेः कोट्यंशकल्पिता॥ ८ ॥

वही प्रेक्षण करने वाला सङ्कल्प सुदर्शन कहा जाता है । वही क्रिया है, वही विष्णु का वीर्य, तेज और बल है । अपनी भित्ति पर परिवर्तित रूप में जो भाव (वस्तु में) प्रगट होते हैं वही विष्णुशक्ति की विभूति है जो मुख्य शक्ति का करोड़वाँ अंश कल्पित की गई है ॥ ७-८ ॥

बहुभिर्द्वन्द्वभावैः सा शक्तिर्भूतमयी स्थिता ।
शुद्धाशुद्धविभागेन चेत्यचेतनरूपतः ॥ ९ ॥
काल्यकालविभेदेन व्यक्ताव्यक्तविभागतः ।
व्यङ्ग्यव्यञ्जनरूपेण वाच्यवाचकभेदतः ॥ १० ॥
भोग्यभोक्तृविभेदेन देहदेहिविभेदतः ।
अन्यैश्चैवंप्रकारैः सा द्वन्द्वभेदैर्विभज्यते ॥ ११ ॥

वह भूतमयी शक्ति अनेक प्रकार के द्वन्द्वभाव (दो-दो भाव) में प्रगट होकर स्थित हैं जैसे शुद्ध-अशुद्ध विभाग से, चेतन और अचेतन रूप से, काल्य (कवलित होने वाला), काल (सबको ग्रास करने वाला), भेद से व्यक्त (प्रगट), अव्यक्त (तिरोहित), भाव से व्यङ्ग्य और व्यञ्जक रूप से, वाच्य एवं वाचक भेद से, भोग्य-भोक्ता रूप से, देह-देही भेद से इसी प्रकार अन्य भी द्वन्द्व भेदों से उसका विभाग हो जाता है ॥ ९-११ ॥

एवं प्रकारभेदेन या शक्तिर्हेतुतां गता ।
तां विजानीहि देवर्षे दिव्यां सौदर्शनीं कलाम् ॥ १२ ॥

इस प्रकार के भेद से जो शक्ति हेतु या (भेद के कारणभाव) को प्राप्त हुई, हे देवर्षे नारद ! उसी को आप दिव्य सुदर्शन की कला समझिये ॥ १२ ॥

समीर्यते यथा वह्निर्मेघो वापि समीरणात् ।
तथा सुदर्शनेनैव विभूतिः प्रेर्यते कला ॥ १३ ॥

जैसे वायु के द्वारा आग अथवा मेघ प्रेरित होते हैं उसी प्रकार सुदर्शन द्वारा ही विभूति कला प्रेरित होती है ॥ १३ ॥

आनुलोम्येन सर्गे तु प्रातिलोम्येन संहृतौ ।
यथा सम्प्रेर्यमाणा सा सुदर्शननभस्वता ॥ १४ ॥
दधाति विविधान् भावांस्तथा मे गदतः शृणु ।

सृष्टि में अनुलोम क्रम से और प्रलय में प्रतिलोम क्रम से सुदर्शन रूप वायु से प्रेरित वह भूति कला जिस प्रकार विविध आकार धारण करती है उसे मैं कह रहा हूँ, आप सुनिए ॥ १४-१५ ॥

शुद्धसृष्टिप्रपञ्चनम्

तत्र शुद्धमयं सर्गं विभूतेः प्रथमं शृणु ॥ १५ ॥
यत् तत् षाड्गुण्यमित्युक्तं ज्ञानैश्वर्यबलादिकम् ।
युगैस्तस्य त्रिभिः शुद्धा सृष्टिभूतेः प्रवर्तते ॥ १६ ॥

उसमें पहले विभूति के शुद्ध सर्ग को सुनिए । हमने पहले जो ज्ञान, ऐश्वर्य एवं बल (द्र० २.५६-९१) आदि षाड्गुण्य कहा है उनके तीन युगों से शुद्ध होने पर विभूति की सृष्टि प्रवृत्त होती है ॥ १५-१६ ॥

गुणयुग्मत्रयात् व्यूहत्रयाविर्भावः

तत्र ज्ञानबलद्वन्द्वाद्रूपं साङ्कर्षणं हरेः ।
ऐश्वर्यवीर्यसम्भेदाद्रूपं प्राद्युम्नमुच्यते ॥ १७ ॥
शक्तितेजःसमुत्कर्षादानिरुद्धी तनुर्हरेः ।
एते शक्तिमया व्यूहा गुणोन्मेषस्वलक्षणाः ॥ १८ ॥

उसमें ज्ञान और बल के द्वन्द्व से सङ्कर्षण रूप विष्णु का रूप, ऐश्वर्य और वीर्य के भेद से प्रद्युम्न का रूप तथा शक्ति और तेज के समुत्कर्ष से अनिरुद्ध का रूप कहा गया है । ये सभी शक्तिमय व्यूह गुणों के उन्मेष (प्रकाशक) रूप लक्षण वाले हैं अर्थात् प्रत्येक व्यूह में दो-दो गुण होने से तीन व्यूह का निर्माण हुआ ॥ १७-१८ ॥

व्यूहत्रयेऽपि षाड्गुण्यानुवृत्तिः

षाड्गुण्यविग्रहा देवाः पुरुषाः पुष्करेक्षणाः ।
तत्र तत्रावशिष्टं यद् गुणानां द्वियुगं मुने ॥ १९ ॥
अनुवृत्तिं भजत्येव तत्र तत्र यथायथम् ।

त्रिधा चातुरात्म्यस्थितिः

व्याप्तिमात्रं गुणोन्मेषो मूर्तीकार इति त्रिधा ॥ २० ॥
चातुरात्म्यस्थितिर्विष्णोर्गुणव्यतिकरोद्भवा ।

हे मुने ! देवताओं का विग्रह षाड्गुण्य है । कमल के समान नेत्र वाले पुरुष हैं । इस प्रकार जो प्रत्येक व्यूह में दो-दो गुण हैं वे उन-उन व्यूहों में परस्पर अनुवृत्ति को प्राप्त करते हैं अर्थात् छओं गुणों का तीनों व्यूहों में पर्यवसान हो जाता है । इस प्रकार व्याप्ति-

मात्र, गुणोन्मेष एवं मूर्तीकार ये तीन प्रकार के व्यूह गुणों के अनुसार बनते हैं, किन्तु परस्पर गुणों के मिश्रण से विष्णु की मूर्ति चार रूपों में स्थित है ॥ १९-२१ ॥

तत्र ज्ञानमयत्वेन देवः सङ्कर्षणो बली ॥ २१ ॥
व्यनक्त्यैकान्तिकं मार्गं भगवत्प्राप्तिसाधनम् ।

उसे महाबली सङ्कर्षणदेव ज्ञानमय होने से मात्र एक भगवत्प्राप्ति साधन का मार्ग प्रकट करते हैं ॥ २१-२२ ॥

प्रद्युम्नस्य कृत्यम्

वीर्यैश्वर्यमयो देवः प्रद्युम्नः पुरुषोत्तमः ॥ २२ ॥
स्थितः शास्त्रार्थभावेन भगवत्प्राप्तिवर्त्मना ।
शास्त्रार्थस्य फलं यत् तद् भगवत्प्राप्तिलक्षणम् ॥ २३ ॥

वीर्य एवं ऐश्वर्यमय पुरुषोत्तम प्रद्युम्न देव भगवत्प्राप्ति के मार्ग से शास्त्र के अर्थ के रूप से स्थित रहते हैं । क्योंकि उन-उन सभी शास्त्रों के अर्थ का फल उसी-उसी प्रकार भगवत्प्राप्तिलक्षण कहा गया है ॥ २२-२३ ॥

अनिरुद्धस्य कृत्यम्

प्रापयत्यनिरुद्धः सन् साधकान् पुरुषोत्तमः ।
शास्त्रशास्त्रार्थतत्साध्यफलनिर्वाहका इमे ॥ २४ ॥
पुरुषाः पुण्डरीकाक्षा व्यूहाः शक्तिमया हरेः ।

पुनः वही पुरुषोत्तम अनिरुद्ध बन कर साधकों को साध्य तक पहुँचाते हैं ये तीनों ही व्यूह शास्त्र, शास्त्रार्थ तथा तत्साध्यफल के निर्वाहकर्त्ता हैं, यही पुरुष हैं जिनके नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं और यही विष्णु के शक्तिमय व्यूह हैं ॥ २४-२५ ॥

परवासुदेवेन सह व्यूहस्य चातुरात्म्यम्

भगवान् वासुदेवश्च व्यूहाश्चैते त्रयो मुने ॥ २५ ॥
चातुरात्म्यमिदं विद्धि व्यक्ताव्यक्तस्वलक्षणम् ।

हे मुने ! ये तीनों व्यूह तथा चौथे भगवान् वासुदेव इनको मिलाकर चातुरात्म्य समझिये, जो व्यक्त और अव्यक्त लक्षण वाले हैं ॥ २५-२६ ॥

गुणोन्मेषस्वरूपप्रदर्शनम्

गुणाः शक्तिमया ये ते ज्ञानैश्वर्यबलादयः ॥ २६ ॥
तेषां युगपदुन्मेषः स्तैमित्यविरहात्मकः ।
सङ्कल्पकल्पितो विष्णोर्यः स तद्व्यक्तिलक्षणः ॥ २७ ॥
भगवान् वासुदेवः स परमा प्रकृतिश्च सा ।
शक्तिर्या व्यापिनो विष्णोः सा जगत्प्रकृतिः परा ॥ २८ ॥
शक्तेः शक्तिमतो भेदाद् वासुदेव इतीर्यते ।

ज्ञान, ऐश्वर्य, बलादि (द्र० २.५६-९१) जो शक्तिमय गुण हैं उनका स्तैमित्य

(स्तब्धता) से रहित युगपद् उन्मेष विष्णु सङ्कल्प से कल्पित है वही अभिव्यक्ति लक्षण कहा जाता है । वही भगवान् वासुदेव हैं और परमा प्रकृति वह है जो विष्णु की सर्वव्यापिका शक्ति है । उसे ही परा जगत्प्रकृति कहते हैं । शक्ति तथा शक्तिमान् का परस्पर भेद होने से शक्ति के निवास वासुदेव कहे जाते हैं ॥ २६-२९ ॥

सिसृक्षोर्वासुदेवात् सङ्कर्षणाविर्भावः

सर्वशक्तिमयो देवो वासुदेवः सिसृक्षया ॥ २९ ॥
विभजत्यात्मनात्मानं यः स सङ्कर्षणः स्मृतः ।
भानावुदयशैलस्थे प्रभा यद्वद्विजृम्भते ॥ ३० ॥
उदयस्थे तथा देवे प्रभा सङ्कर्षणात्मिका ।

सर्वशक्तिमान् भगवान् वासुदेव जब सृष्टि की इच्छा से अपने को स्वयं अपने से विभक्त करते हैं तब जिस प्रकार उदयाचल पर उदय होने वाले सूर्य की प्रभा विकसित होती है उसी प्रकार उदीयमान भगवान् वासुदेव से सङ्कर्षणात्मिका प्रभा निकलती है ॥ २९-३१॥

तस्य षोडशशतवर्षप्रतीक्षणम्

अव्यापृता शतान्येषा शक्तिस्तिष्ठति षोडश ॥ ३१ ॥
सङ्कर्षणात्मिका साक्षाद् विज्ञानबलवारिधिः ।
अनन्तो भगवान् विष्णुः शक्तिमान् पुरुषोत्तमः ॥ ३२ ॥
पूर्णस्तिमितषाड्गुण्यो निस्तरङ्गावर्णवोपमः ।

तब सोलह सौ वर्ष पर्यन्त अप्रगट रूप से विज्ञान बल का समुद्र वही सङ्कर्षणात्मिका शक्ति उनमें निवास करती है । उस समय पुरुषोत्तम सर्व शक्तिमान् भगवान् अनन्त जिनमें ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि छः गुण तरङ्गरहित समुद्र के समान निश्चेष्ट रहते हैं ॥ ३१-३३ ॥

षण्णां युगपदुन्मेषाद् गुणानां स्वप्रचोदितात् ॥ ३३ ॥
अनन्त एव भगवान् वासुदेवः सनातनः ।
तत्र ज्ञानबलोन्मेषात् स्वसङ्कल्पप्रचोदितात् ॥ ३४ ॥
अनन्त एव भगवान् देवः सङ्कर्षणोऽच्युतः ।
स्थित्वा षोडश वर्षाणि देवः शक्तिमयोऽच्युतः ॥ ३५ ॥
अनन्त एव भगवान् प्रद्युम्नः पुरुषोत्तमः ।
अंशांशेनोदिता शक्तिः प्राद्युम्नी भगवत्प्रभा ॥ ३६ ॥

जब स्वयं प्रेरित छः गुणों का उनमें एक साथ उन्मेष (विकास) होता है तब वही भगवान् अनन्त वासुदेव कहे जाते हैं । जब स्वयं प्रेरित छः गुणों में मात्र ज्ञान बल इन दो गुणों का उन्मेष होता है तब वही भगवान् अच्युत सङ्कर्षण देव हो जाते हैं । फिर शक्तिमय अच्युत देव भगवान् अनन्त सोलह वर्ष तक स्थित रह कर पुरुषोत्तम प्रद्युम्न हो जाते हैं । यह प्राद्युम्नी प्रभा विष्णु के अंश के अंश से प्रगट होती है अर्थात् वासुदेव के अंश सङ्कर्षण उनके अंश से प्रद्युम्न प्रगट होते हैं ॥ ३३-३६ ॥

अनिरुद्धाविर्भावः

अव्यापृता शतान्येषा तूष्णीं तिष्ठति षोडश ।
ततः शक्तिमयो देवः प्रद्युम्नः पुरुषोत्तमः ॥ ३७ ॥
शतानि षोडश स्थित्वा स्वसङ्कल्पप्रचोदितः ।
अनन्त एव भगवाननिरुद्धो भवत्युत ॥ ३८ ॥
अंशांशेनोदिता शक्तिरानिरुद्धी हरेः प्रभा ।
अव्यापृता शतान्येषा तूष्णीं तिष्ठति षोडश ॥ ३९ ॥

यह प्राद्युम्नी भगवत्प्रभा सोलह सौ वर्ष पर्यन्त अप्रगट रूप से चुपचाप स्थित रहती है । तदनन्तर शक्तिमय वे पुरुषोत्तम प्रद्युम्न देव सोलह सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रह कर अपने सङ्कल्प से प्रेरित हो वे अनन्त भगवान् ही अनिरुद्ध हो जाते हैं । इस प्रकार अनिरुद्ध में रहने वाली शक्ति आनिरुद्धी नाम की भगवत्प्रभा अंशी के अंश से उदित होती है । वह भी उसी प्रकार अप्रगट रूप से सोलह सौ वर्ष पर्यन्त चुपचाप तूष्णीरूप से स्थित रहती है ॥ ३७-३९ ॥

व्यूहस्य षोडशशतवर्षानन्तरं सृष्टौ व्यापृतिः

शतानि षोडश स्थित्वानिरुद्धः शक्तिमानसौ ।
तदा व्याप्रियते सृष्टौ पूर्वाभ्यां सह नारद ॥ ४० ॥

इस प्रकार सोलह सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रह कर वे शक्तिमान् अनिरुद्ध अपने से पूर्व में उत्पन्न सङ्कर्षण और प्रद्युम्न के साथ, हे नारद ! सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होते हैं ॥ ४० ॥

व्यूहानां हेयप्रतिभटत्वमनादित्वं च

व्यूहा एते विशालाक्षाश्चत्वारः पुरुषोत्तमाः ।
निर्दोषा निरनिष्टाश्च निरवद्याः सनातनाः ॥ ४१ ॥

विशाल नेत्र वाले पुरुषोत्तम ये चार (वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) व्यूह सब प्रकार के दोषों एवं अनिष्ट से रहित हैं, निरवद्य और सनातन हैं ॥ ४१ ॥

अनन्तमक्षरं चैतच्चातुरात्म्यं महामुने ।
निस्तरङ्गदशायां ते निःसत्ताः सत्तचिन्मयाः ॥ ४२ ॥
शक्त्यात्मका गुणोन्मेषदशायां ते व्यवस्थिताः ।
तत्र स्थूलदशायां ते व्यक्ति भावमुपागताः ॥ ४३ ॥
जगतामुपकाराय सच्चिदानन्दलक्षणाः ।

चातुरात्म्यस्य मनआलम्बनार्थत्वम्

मनआलम्बनायैषा चातुरात्म्यव्यवस्थितिः ॥ ४४ ॥

हे महामुने ! यही चार आत्मा वाले व्यूह अनन्त और अक्षर हैं । निस्तरङ्गदशा में वे सत्तारहित रहते हैं । परन्तु गुणों के उन्मेष (प्राकट्य) दशा में वे सत्ता से युक्त, चिन्मय और शक्त्यात्मक रूप में व्यवस्थित रहते हैं । वे अपनी स्थूल दशा में अभिव्यक्ति भाव को प्राप्त

करते हैं और संसार के उपकार के लिए सच्चिदानन्द रूप लक्षण से लक्षित होते हैं व्यूहों की यह चातुरात्म्य स्थिति मन के आलम्बन के लिए होती है ॥ ४२-४४ ॥

व्यूहात् व्यूहान्तराविर्भावः

आम्नासिषुरमुष्याश्च रहस्याम्नायवेदिनः ।
व्यूहान्तरविभावादीन् भेदान् सङ्कल्पकल्पितान् ॥ ४५ ॥

इन शक्तियों के रहस्य एवं गुरुसम्प्रदायवेत्ता विद्वानों ने इनके अतिरिक्त और भी सङ्कल्प कल्पित विभावादि भेद वाले व्यूहों का व्याख्यान किया है ॥ ४५ ॥

द्वादश व्यूहान्तराणि

व्यूहान्तरं दश द्वे च केशवाद्याः प्रकीर्तिताः ।

वासुदेवात् केशवादित्रयम्

केशवादित्रयं तत्र वासुदेवाद् विभाव्यते ॥ ४६ ॥

वे अन्य व्यूह केशवादि नामों से बारह सङ्ख्या वाले कहे गए हैं । उनमें केशव से लेकर तीन नाम वाले केशव (नारायण, माधव) वासुदेव नामक व्यूह से उत्पन्न हैं ॥ ४६ ॥

सङ्कर्षणात् गोविन्दादित्रयाविर्भावः

सङ्कर्षणाच्च गोविन्दपूर्वं त्रितयमद्भुतम् ।

प्रद्युम्नात् त्रिविक्रमादित्रयाविर्भावः

त्रिविक्रमाद्यं त्रितयं प्रद्युम्नादुदितं मुने ॥ ४७ ॥

गोविन्द से लेकर (गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन) ये तीन अद्भुत व्यूह सङ्कर्षण से उत्पन्न हुए हैं । कभी हे मुने ! त्रिविक्रम से लेकर तीन (त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर) प्रद्युम्न से उत्पन्न हुए हैं ॥ ४७ ॥

अनिरुद्धात् हृषीकेशादित्रयाविर्भावः

हृषीकेशादिकं तत्त्वमनिरुद्धान्महामुने ।
पराः स्वकारणान्तःस्थाः सूक्ष्मास्ते द्विभुजाः स्मृताः ॥ ४८ ॥

हे महामुने ! इसी प्रकार ऋषीकेश से लेकर तीनों अनिरुद्ध से उत्पन्न हैं । इसके अतिरिक्त वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध कुल (ऋषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर) १२ सङ्ख्या हुई । हे मुने ! इन व्यूहान्तरों के तीन भेद हैं प्रथम जो सूक्ष्म हैं वे पर हैं, स्वकारण हैं, अन्तःकरण में स्थित हैं तथा द्विभुज हैं ॥ ४८ ॥

चतुर्भुजास्ते विज्ञेयाः स्थूलास्त्रिभुवनेश्वराः ।
चक्राद्यायुधविन्यासो यन्त्रतन्त्रेऽभिधास्यते ॥ ४९ ॥

दूसरे जो स्थूल हैं वे भुवनेश्वर और चार भुजा वाले हैं ऐसा समझना चाहिए । अब तीसरे जो चक्रायुध के रूप में जिनका विन्यास है, उन्हें यन्त्र-तन्त्र के प्रकरण में (द्र० २२-२७ अध्याय) कहेंगे ॥ ४९ ॥

विभवा एकोनचत्वारिंशत्

विभवाः पद्मनाभाद्यास्त्रिंशच्च नव चैव हि ।
पद्मनाभो ध्रुवोऽनन्तः शक्त्यात्मा मधुसूदनः ॥ ५० ॥
विद्याधिदेवः कपिलो विश्वरूपो विहङ्गमः ।
क्रोडात्मा बडबावक्त्रो धर्मो वागीश्वरस्तथा ॥ ५१ ॥
एकाम्भोनिधिशायी च भगवान् कमठेश्वरः ।
वराहो नारसिंहश्च पीयूषहरणस्तथा ॥ ५२ ॥
श्रीपतिर्भगवान् देवः कान्तात्मामृतधारकः ।
राहुजित् कालनेमिघ्नः पारिजातहरस्तथा ॥ ५३ ॥
लोकनाथस्तु शान्तात्मा दत्तात्रेयो महाप्रभुः ।
न्यग्रोधशायी भगवानेकशृङ्गतनुस्तथा ॥ ५४ ॥
देवो वामनदेहस्तु सर्वव्यापी त्रिविक्रमः ।
नरो नारायणश्चैव हरिः कृष्णस्तथैव च ॥ ५५ ॥
ज्वलत्परशुधृग्रामो रामश्चान्यो धनुर्धरः ।
वेदविद्भगवान् कल्की पातालशयनः स्मृतः ॥ ५६ ॥
त्रिंशच्च नव चैवैते पद्मनाभादयो मताः ।

विभवादि व्यूह पद्मनाभादि भेद से, हे मुने ! उन्तालीस सङ्ख्या में कहे गए हैं वे इस प्रकार है—पद्मनाभ, ध्रुव, अनन्त, शक्त्यात्मा, मधुसूदन, विद्याधिदेव, कपिल, विश्वरूप, विहङ्गम, क्रोडात्मा, बड़वावक्त्र, धर्म, वागीश्वर, एकाम्भोनिधिशायी, भगवान् कमठेश्वर, वाराह, नारसिंह, पीयूषहरण, श्रीपति, भगवान् देव, कान्तात्मा, अमृतधारक, राहुजित, कालनेमिघ्न, पारिजातहर, लोकनाथ, शान्तात्मा, दत्तात्रेय, महाप्रभु, न्यग्रोधशायी, भगवान् एकशृङ्गतनु देव, वामनदेह, सर्वव्यापीत्रिविक्रम, नरनारायण, हरि, कृष्ण, ज्वलत्परशुधृक्, धनुर्धर राम, वेदविद् भगवान् कल्की और पातालशयन कहे गए हैं । ये पद्मनाभादि ३९ सङ्ख्या वाले कहे गए हैं ॥ ५०-५७ ॥

तेषामुत्पत्त्यादिकं सात्त्वतादौ ज्ञेयम्

यतश्चैषां समुत्पत्तिर्यो व्यापारो यदायुधम् ॥ ५७ ॥
या मूर्तिर्यादृशी चैव यत्र चैते व्यवस्थिताः ।
भूषणानि विचित्राणि वासांसि विविधानि च ॥ ५८ ॥
बाह्यान्तःकरणानां च त्रयो वर्गाः सवृत्तयः ।
सङ्कल्पनिर्मिता शक्तिर्या तत्तत्कार्यगोचरा ।
सात्त्वते शासने सर्वं तत्तदुक्तं महामुने ॥ ५९ ॥

इनकी जिससे उत्पत्ति हुई है, इनका जो व्यापार एवं आयुध है, जो जैसी मूर्त्ति है और जहाँ ये व्यवस्थित हैं, जिस प्रकार के इनके विचित्र आभूषण हैं और जिस प्रकार के

विविध वस्त्र हैं, बाह्य और अन्तःकरण के सवृत्तिक जो तीन वर्ग हैं, उनके सङ्कल्पों से जो शक्ति निर्मित हुई है जो तत्तत्कार्यों में दिखाई पड़ती है, हे महामुने ! वह सब हमने सात्वतसंहिता में कह दिया है ॥ ५७-५९ ॥

अध्यायार्थोपसंहारः

इतीयं शुद्धसृष्टिस्ते विष्णोः सङ्कल्पकल्पिता ।
भूत्यंशो लेशतः प्रोक्तः शृणु सृष्टिमथेतराम् ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शुद्धसृष्टिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३३० ॥

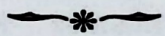

इस प्रकार विष्णु के सङ्कल्प से कल्पित शुद्धसृष्टि के कुछ भूत्यंश हमने आपसे कहे हैं । अब अन्य सृष्टि को सुनिए ॥ ६० ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता के शुद्धसृष्टिवर्णन नामक पाँचवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

शुद्धेतरसृष्टिवर्णनम्

शक्तितद्वतोर्भेदवदभेदस्याप्युपपत्तिः

अहिर्बुध्न्यः—

योऽसौ नारायणो देवः परमात्मा सनातनः ।
अहंभावात्मिका शक्तिस्तस्य तद्धर्मधर्मिणी ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—यह जो परमात्मा सनातन नारायण देव हैं उनके समान धर्म वाली उनकी अहंभावात्मिका शक्ति है ॥ १ ॥

ताविमावेकधैवोक्तौ भेद्यभेदकभावतः ।
पृथक्त्वेन च शास्त्रेषु जगद्धेतुतयोदितौ ॥ २ ॥

वे दोनों यद्यपि एक ही कहे गए हैं तथापि शास्त्रों में भेद्य भेदक (विशेष्य विशेषण) भेद से जगत् का कारण होने से उन्हें पृथक्-पृथक् रूप से कहा है ॥ २ ॥

शक्तितद्वतोरपृथक्स्थितिः

नैव शक्त्या विना कश्चिच्छक्तिमानस्ति कारणम् ।
न च शक्तिमता शक्तिर्विनैका व्यवतिष्ठते ॥ ३ ॥

अतः शक्ति के बिना कोई शक्तिमान् कारण नहीं हो सकता और शक्तिमान् के बिना शक्ति अकेली नहीं रह सकती ॥ ३ ॥

भगवतो लक्ष्म्याश्च प्रत्येकं जगत्कारणत्वव्यवहारकथनम्

तत्तद्गौरवमाश्रित्य तन्त्रवेदान्तपारगैः ।
जगद्धेतुतया देवावेकैकाविव दर्शितौ ॥ ४ ॥

तन्त्र तथा वेदान्तशास्त्र के पारदर्शी विद्वानों ने उन दोनों (शक्ति और शक्तिमान) को भिन्न-भिन्न मानने में गौरव समझ कर दोनों देवों को जगत् की हेतुता के लिए एक ही के समान स्वीकार किया है ॥ ४ ॥

शुद्धेतरसृष्टिकथनप्रतिज्ञा

इति व्यवस्थिते सृष्टिमुक्तशिष्टामिमां शृणु ।

इस प्रकार की व्यवस्था को मानते हुये । अब कही गई सृष्टि (शुद्ध सृष्टि) के अतिरिक्त (शुद्धेतर) सृष्टि को सुनिए ॥ ५ ॥

भूतिशक्तेः स्वसङ्कल्परूपक्रियाशक्तिप्रवर्त्यत्वम्

येयं भूतिमयी स्फूर्तिर्विष्णुशक्तेः पुरोदिता ॥ ५ ॥
तस्याः सङ्कल्पमय्यैव स्फूर्त्या सा बहु नर्त्यते ।

योगालम्बनभूतव्यूहविभवादेः शुद्धिमयस्फूर्तिरूपत्वम्

भूतेः शुद्धिमयी स्फूर्तिः सा व्यूहविभवात्मिका ॥ ६ ॥
यामालम्ब्य तरन्तीमं योगिनो भवसागरम् ।

इसके पहले हमने स्फूर्ति (क्रिया) रूपा जो विष्णु की भूतिमयी सृष्टि कही है । उस शक्ति की सङ्कल्पमयी स्फूर्त्ति इस सारी सृष्टि को नाना प्रकार का नाच नचाती है—वह स्फूर्त्ति शुद्धमयी तथा व्यूह विभवात्मिका है । उसका सहारा लेकर योगीगण इस भवसागर से पार उतर जाते हैं ॥ ५-७ ॥

शुद्धेतरसृष्टेः व्यूहविभवमूलकत्वम्

अथ शुद्धेतरा सृष्टिस्तन्मूलैव प्रवर्तते ॥ ७ ॥

इसके बाद शुद्धेतरा सृष्टि उसी की मूलरूपा बन कर प्रवृत्त होती है ॥ ७ ॥

तस्यास्त्रैविध्यम्

पुरुषश्चैव कालश्च गुणश्चेति त्रिधोच्यते ।
भूतिः शुद्धेतरा विष्णोः पुरुषो द्विचतुर्मयः ॥ ८ ॥
स मनूनां समाहारो ब्रह्मक्षत्रादिभेदिनाम् ।

वह शुद्धेतरा भूति सृष्टि पुरुष, काल तथा गुण के भेद से तीन प्रकार की कही गई है । उसका प्रथम भेद अष्टमय पुरुष है । वह अष्टमय पुरुष ब्राह्मण क्षत्रियादि भेद वाले उन मनुष्यों का समाहार (समूह) है ॥ ८-९ ॥

प्रद्युम्नात् मिथुनचतुष्टयोत्पत्तिः

ब्राह्मणो ब्राह्मणी चैव मिथुनं तन्मनुद्वयम् ॥ ९ ॥
प्रद्युम्नस्य मुखाज्जातं स्वसङ्कल्पेन चोदितम् ।
उरसः क्षत्रियद्वन्द्वमूरुतश्च विशो द्वयम् ॥ १० ॥

ब्राह्मण और ब्राह्मणी के मिथुन, दो मनु के सङ्कल्प से प्रेरित हो प्रद्युम्न के मुख से उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार उनके वक्षःस्थल से क्षत्री तथा क्षत्राणी के मिथुन तथा जङ्घा से वैश्य के मिथुन उत्पन्न होते हैं ॥ ९-१० ॥

पद्भ्यां शूद्रद्वयं चैव प्रद्युम्नस्य समुद्गतम् ।
समष्टिर्या मनूनां सा पुरुषो द्विचतुर्मयः ॥ ११ ॥

तदनन्तर प्रद्युम्न के पैर से शूद्र (मिथुन) उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार वही अष्टमय पुरुष सभी मनुष्यों का समष्टि (सामूहिक) रूप हुआ ॥ ११ ॥

कालप्रकृतिसृष्टिः

सूक्ष्मकालगुणावस्था सुदर्शनसमीरिता ।
प्रद्युम्नस्य ललाटाच्च भ्रुवोः कर्णादुदीरिता ॥ १२ ॥

अब दूसरे भूति के भेद काल की उत्पत्ति कहते हैं—सुदर्शन की प्रेरणा से सूक्ष्म काल और गुणों की अवस्था की उत्पत्ति और प्रद्युम्न के ललाट से दोनों भ्रुव तथा कर्ण की हुई है ॥ १२ ॥

अनिरुद्धाय पालनाज्ञादानम्

पुरुषः शक्तिरित्येतच्चेतनाचेतनात्मकम् ।
वर्धयेत्यनिरुद्धाय प्रद्युम्नेनोपपाद्यते ॥ १३ ॥

तब वे प्रद्युम्न अपने अंश अनिरुद्ध को 'आप पुरुष शक्ति इन चेतना चेतनात्मक तत्त्वों को बढ़ाइये' ऐसी आज्ञा प्रदान करते हैं ॥ १३ ॥

तेन तद्वर्धनम्

अन्तःस्थपुरुषां शक्तिं तामादाय स्वमूर्तिगाम् ।
संवर्धयति योगेन ह्यनिरुद्धः स्वतेजसा ॥ १४ ॥

तदनन्तर अनिरुद्ध अपने योगबल और तेजबल से अन्तःकरण में स्थित एवं मूर्त्ति में लीन उस पुरुष समेत शक्ति को (द्र० ९.१३) बढ़ाते हैं ॥ १४ ॥

नियतिकालयोरुदयः

नियतिः काल इत्येवं शक्तिः सङ्कल्पचोदिता ।
द्विधोदेत्यनिरुद्धात् सा यत् तत् कालमयं वपुः ॥ १५ ॥

सङ्कल्प द्वारा प्रेरित वह शक्ति नियति और काल नामक दो भेदों से अनिरुद्ध से प्रकट होती है । यही उनका कालमय शरीर कहा जाता है (द्र० ९.८) ॥ १५ ॥

गुणमय्याः प्रकृतेस्त्रैविध्यम्

यत्तद्गुणमयं रूपं शक्तेस्तस्याः प्रकीर्तितम् ।
सत्त्वं रजस्तम इति त्रिधोदेति क्रमेण तत् ॥ १६ ॥

हमने जो उस शक्ति का गुणमय रूप कहा है, वह सत्त्व, रज तथा तम तीन भेद से क्रम से अनिरुद्ध के शरीर से उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

सत्त्वादिभ्यो रजआद्युत्पत्तिः

सत्त्वाद्रजस्तमस्तस्मात् तमसो बुद्धिरुद्गता ।
बुद्धेरहङ्कृतिस्तस्या भूततन्मात्रपञ्चकम् ॥ १७ ॥

सत्त्व से रज और रज से तम, फिर उस तम से बुद्धि उत्पन्न हुई । बुद्धि से अहङ्कार तथा उससे पञ्चतन्मात्रायें उत्पन्न हुईं ॥ १७ ॥

एकादशकमक्षाणां मात्रेभ्यो भूतपञ्चकम् ।

भूतेभ्यो भौतिकं सर्वमित्ययं सृष्टिसंग्रहः ॥ १८ ॥

फिर उन पञ्चतन्मात्राओं से पञ्च महाभूत एवं ११ इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन) की उत्पत्ति हुई। पुनः उन पञ्चभूतों से समस्त भौतिक पदार्थ उत्पन्न हुये। इस प्रकार सृष्टि का विस्तार हुआ ॥ १८ ॥

पुनर्विस्तरेण सृष्टिप्रपञ्चनप्रश्नः

नारदः—

भगवन् भगनेत्रघ्न तत्त्वविज्ञानवारिधे।
आख्याहि विस्तरेणाद्य भूतेरुन्मेषमद्भुतम् ॥ १९ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगनेत्रघ्न, हे तत्त्वज्ञान के वारिधि, हे भगवान् सदाशिव! इस समय आप भूति सृष्टि के अद्भुत उन्मेष (प्राकट्य) को विस्तारपूर्वक समझाइये ॥ १९ ॥

तत्प्रपञ्चनम्

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन विष्णोः सङ्कल्पकारिताम्।
भूतेः परिणतिं चित्रां चिदचिद्वर्गसङ्कुलाम् ॥ २० ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद! विष्णु के सङ्कल्प से की गई चिदचिद् समूह वाली भूति की विचित्र परिणति को तत्त्वतः सुनिए ॥ २० ॥

परवासुदेवस्य नित्यविभूतिमत्ताप्रतिपादनम्

शुद्धा पूर्वोदिता सृष्टिर्या सा व्यूहादिभेदिनी।
सुदर्शनाख्यात् सङ्कल्पात् तस्या एव प्रभोज्ज्वला ॥ २१ ॥
ज्ञानानन्दमयी स्त्याना देशभावं व्रजत्युत।
स देशः परमं व्योम निर्मलं पुरुषात् परम् ॥ २२ ॥

व्यूहादि भेदों वाली जो शुद्धा सृष्टि पूर्व में हमने कही है, वह सुदर्शन नामक सङ्कल्प से उसी की उज्ज्वल प्रभा ज्ञानानन्दस्वरूपिणी है। वही स्त्यान (धनी) होकर देशभाव को प्राप्त होती हैं। वह देश निर्मल परम व्योम है जो पुरुष से परे है ॥ २१-२२ ॥

निःसीमसुखसन्तानमनवद्यमनाकुलम्।
तत्रानन्दमया भोगा लोकाश्चानन्दलक्षणाः ॥ २३ ॥

वह निर्मल व्योम निःसीम सन्तान सुख से युक्त है। अनवद्य एवं अनाकुल है, वहाँ सभी भोग आनन्द से पूर्ण हैं और वहाँ का सब लोक भी आनन्द लक्षण वाला है ॥ २३ ॥

ज्ञानानन्दमया देहा मुक्तानां भावितात्मनाम्।

श्रियः पत्युर्भगवतो नित्यमुक्तानुभाव्यत्वम्

सदा पश्यन्ति ते देवाः पुरुषं पुष्करेक्षणम् ॥ २४ ॥

वहाँ पुण्यात्मा मुक्तों का शरीर ज्ञान और आनन्दमय है, वहाँ के देवगण सर्वदा कमलनेत्र वाले पुरुष का दर्शन करते रहते हैं ॥ २४ ॥

षाड्गुण्यविग्रहं देवं तादृश्या च श्रिया युतम् ।
सङ्कल्पसाधिताशेषदेहदैहिकविस्तरम् ॥ २५ ॥
ईशानमस्य सर्वस्य जगतस्तस्थुषस्पतिम् ।
सर्वावासमनावासं नारायणमनामयम् ॥ २६ ॥

षाड्गुण्य विग्रह वाले तथा उसी प्रकार के श्री से युक्त, अपने सङ्कल्पमात्र से सम्पूर्ण देह तथा दैहिक (आत्मा या जीव) के विस्तार को करने वाले, इस चराचर जगत् के पति, सबको अपने में वास देने वाले, स्वयं निराधार और अनामय उन ईशान देव का वे देव दर्शन करते रहते हैं ॥ २५-२६ ॥

मुक्तानां स्वरूपम्

तत्पदं प्राप्य तत्त्वज्ञा मुच्यन्ते वीतकल्मषाः ।
त्रसरेणुप्रमाणास्ते रश्मिकोटिविभूषिताः ॥ २७ ॥

तत्त्वज्ञ पुण्यात्मा गण उस पद को प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं । वे मुक्त त्रसरेणु प्रमाण वाले तथा करोड़ो रश्मियों से भूषित रहते हैं ॥ २७ ॥

आविर्भावतिरोभावधर्मभेदविवर्जिताः ।

तेषामपुनरावृत्तिः

परमं तेऽध्वनः पारं वैष्णवं पदमाश्रिताः ॥ २८ ॥

वे न तो आविर्भूत होते हैं, न तिरोहित होते हैं, दोनों प्रकार के भेदों से वर्जित हैं, वे संसार रूप अध्वा को पार कर परम वैष्णव पद का आश्रय प्राप्त करते हैं ॥ २८ ॥

विशन्ति नेममध्वानं कालकल्लोलसङ्कुलम् ।

तेषां यथोपासनं फलप्राप्तिः

भक्तास्ते यादृशे रूपे संसारपदमाश्रिताः ॥ २९ ॥
तादृशं ते समीक्षन्ते परमव्योमवासिनः ।

वे तत्त्वज्ञ पुनः काल के तरङ्ग से सङ्कुल इस संसार रूप अध्वा में प्रवेश नहीं करते । संसार में रहने वाले वे भक्त, भगवान् के जिस रूप की भक्ति करते हैं, परमव्योम में निवास करने पर भी वे उसी रूप का दर्शन करते हैं ॥ २९-३० ॥

विहृत्य सुचिरं कालं कोट्योघप्रतिसञ्चरम् ॥ ३० ॥
ततो विशन्ति ते दिव्यं षाड्गुण्यं वैष्णवं यशः ।

परमव्योम्नोऽशक्यवर्णनत्वम्

तदेतत् परमव्योम लेशतस्ते प्रदर्शितम् ॥ ३१ ॥

वहाँ कई करोड़ प्रलय पर्यन्त चिरकाल तक विहार कर तदनन्तर षाड्गुण्य युक्त दिव्य वैष्णव यश में प्रविष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार हमने आपको लेश मात्र परमव्योम का स्वरूप प्रदर्शित किया ॥ ३०-३१ ॥

नैव वर्षायुतेनापि वक्तुं शक्योऽस्य विस्तरः ।

जीवसमष्टिपुरुषस्यार्वाचीनस्थानवर्तित्वम्

उक्तः कर्माधिकारो यः पुरुषस्ते चतुर्युगः ॥ ३२ ॥

दस हजार वर्षों तक भी इसका परम व्योम विस्तार वर्णन करना सम्भव नहीं है । यहाँ तक हमने कर्म के अधिकारी चतुर्युग पुरुष का वर्णन किया ॥ ३२ ॥

अस्मात् स परमव्योम्नस्तिष्ठत्यर्वाचि वै पदे ।
सर्वात्मनां समष्टिर्या कोशो मधुकृतामिव ॥ ३३ ॥
शुद्ध्यशुद्धिमयो भावो भूतेः स पुरुषः स्मृतः ।
अनादिवासनारेणुकुण्ठितैरात्मभिश्चितः ॥ ३४ ॥

उस परमव्योम के (नीचे) अवर भाग में सभी आत्माओं की समष्टि मधुमक्षिका के कोश के समान स्थित है । वहाँ विभूति का शुद्धाशुद्धमय भाव जिसमें पुरुष स्थित है वह अनादि वासना के रेणु से कुण्ठित आत्माओं से घिरा है ॥ ३३-३४ ॥

स्वतः शुद्धानामप्यात्मनां भगवच्छक्त्या स्वरूपतिरोधानम्

आत्मनो भूतिभेदास्ते सर्वज्ञाः सर्वतोमुखाः ।
भगवच्छक्तिमय्यैवं मन्दतीव्रादिभावया ॥ ३५ ॥
तत्तत्सुदर्शनोन्मेषनिमेषानुकृतात्मना ।
सर्वतोऽविद्यया विद्धाः क्लेशमय्या वशीकृताः ॥ ३६ ॥

आत्मा के वे विभूतिभेद सर्वज्ञ और सर्वतोमुख सर्वत्र व्याप्त हैं । भगवान् की शक्तिमयी, इस प्रकार मन्दतीव्रादि भाव वाली, सुदर्शन के उन-उन उन्मेष तथा निमेष का अनुकरण करने वाली तथा क्लेशमयी अविद्या से विद्ध है और उसके वशवर्तिनी है ।३५-३६॥

तिरोहितस्वरूपाणां चातूरूप्यम्

ब्रह्मक्षत्रादिभावेन चातूरूप्यं व्रजन्ति ते ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा इति विभेदतः ॥ ३७ ॥
आत्मानो जीवसंज्ञास्ते बन्धमोक्षौ व्रजन्ति ते ।

तेषां कर्मपारवश्यात् पृथिव्यामवतरणम्

मनवो नाम कूटस्थास्तेषामुक्ताः समष्टयः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार आत्मा के वे भूतिभेद ब्राह्मण क्षत्रियादि भाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र भेद से चार रूप में हो जाते हैं । इस प्रकार की आत्माओं की जीव संज्ञा है तथा वे बन्धन और मोक्ष प्राप्त करते हैं । जो कूटस्थ मनु हैं उनकी समष्टि हम पहले कह आये हैं (द्र० ६.११) ॥ ३७-३८ ॥

क्लेशाशयापरामृष्टाः सर्वज्ञाः सर्वतोमुखाः ।
नित्यसिद्धा हि भूत्यंशास्ते प्रोक्ता भगवन्मयाः ॥ ३९ ॥

वे क्लेश और आशय से अपरामृष्ट सर्वज्ञ, सर्वव्यापक नित्य सिद्ध भूत्यंश हैं और भगवन्मय कहे गए हैं ॥ ३९ ॥

आविर्भावतिरोभावैः स्वस्मिन्नात्मनि नारद ।
आत्मानो वर्तयन्तस्ते वैष्णवा आधिकारिकाः ॥ ४० ॥

हे नारद ! जो अपनी आत्मा में आविर्भाव तिरोभाव के द्वारा आत्मव्यवहार करते हैं ऐसे वे मनु उस वैष्णव तत्त्व के अधिकारी हैं ॥ ४० ॥

विष्णोः सङ्कल्परूपेण स्थित्वास्मिन् पौरुषे पदे ।
योगेनावतरन्त्यंशैः स्थानात् स्थानं धरावधि ॥ ४१ ॥

अवतीर्णानां प्रजास्रष्टृत्वम्

सृष्टायां कर्मभूमौ ते मिथुनीभूय मानवान् ।
चतुःशतं सृजन्त्येते भूयो मानवमानवान् ॥ ४२ ॥

जो विष्णु के सङ्कल्प रूप से स्थित रह कर योग के बल से पौरुष पद पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पृथ्वी पर्यन्त अवतरित होते हैं । वे कर्मभूमि की सृष्टि हो जाने पर मिथुनीभाव को प्राप्त कर ४०० की सङ्ख्या में मानवों की सृष्टि करते हैं । फिर वे मानव अन्य मानवों की सृष्टि करते हैं ॥ ४१-४२ ॥

ते चापरिमिताः सर्वे विस्तारस्तत्र वक्ष्यते ।

अनिरुद्धात् शक्त्युत्पत्तिः

अर्वाचीने पदे तस्मात् पुरुषाद्धि चतुर्युगात् ॥ ४३ ॥
सृष्टानिरुद्धतः शक्तिस्तत्सुदर्शनचोदितात् ।

शक्तौ कूटस्थमनूनामवतरणम्

सृष्टायामथ शक्तौ तु मनवोऽष्टौ महामुने ॥ ४४ ॥
अवतीर्य स्वकात् स्थानाद्विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ।
तिष्ठन्ति कललीभूतास्तस्मिञ्शक्तिमये पदे ॥ ४५ ॥

इस प्रकार सृष्ट हुये उन सभी मानवों की सङ्ख्या अपरिमित है । उनका विस्तार आगे कहेंगे । उस अर्वाचीन स्थान में (द्र० ६.३३) सुदर्शन की प्रेरणा से चतुर्युग वाले उस अनिरुद्ध पुरुष से शक्ति की सृष्टि हुई है । हे महामुने ! शक्ति की सृष्टि हो जाने पर वे आठों मनु विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित हो अपने स्थान से अवतरित हो कर उस शक्तिमय स्थान में कललीभूत (गर्भ की एक विशेष अवस्था) होकर निवास करते हैं ॥ ४३-४५ ॥

शक्तितो नियतेरुत्पत्तिः

कालो नाम गुणो नाम तस्या गर्भस्थितं द्वयम् ।
कालस्य नियतिर्नाम सूक्ष्मः सर्वनियामकः ॥ ४६ ॥

काल एवं गुण ये दोनों ही उस शक्ति के गर्भ में स्थित रहते हैं । काल का दूसरा नाम नियति है जो सूक्ष्म होते हुये भी सर्वनियामक है ॥ ४६ ॥

तत्र मनूनां स्थितिः

उदेति प्रथमं शक्तेर्विष्णुसङ्कल्पचोदितः ।
मनवोऽवतरन्त्यत्र ते सुदर्शनचोदिताः ॥ ४७ ॥

'जो विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित होकर शक्ति के गर्भ से पहले पहल उत्पन्न होता है उसी काल में सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर मनु लोग इस संसार में अवतरित होते हैं। (द्र० ६.४५) ॥ ४७ ॥

यस्य स्याद्यादृशं रूपं यत्करं यत्स्वभावकम् ।
सुदर्शनप्रभावस्थं तत्तन्नियमभावितम् ॥ ४८ ॥

जिसका जैसा रूप कार्य और स्वभाव है वह सब सुदर्शन के प्रभाव से होने वाले उन-उन नियमों से प्रभावित होता रहता है ॥ ४८ ॥

नियतितः कालस्योत्पत्तिः

कालस्य पावनं रूपं यत्तु तत्कलनात्मकम् ।
उदेति नियतेः सोऽथ कालः सङ्कल्पचोदितः ॥ ४९ ॥

काल का पावन रूप, जिसे कलनात्मक (प्रेरक) कहते हैं, वह विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित काल नियति से उत्पन्न होता है ॥ ४९ ॥

तत्र मनूनां स्थितिः

नियतेर्मनवोऽप्यत्र काले ह्यवतरन्ति ते ।
कालः स कलयत्येको विष्णुसङ्कल्पचोदितः ॥ ५० ॥
कलयत्यखिलं काल्यं नदीकूलं यथा रयः ।

कालात् क्रमेण गुणमयरूपोत्पत्तिः

यत्तद्गुणमयं रूपं शक्तेः पूर्वं समीरितम् ॥ ५१ ॥
सोपानक्रमतः कालात् तद्गौणं व्यज्यते वपुः ।

तत्र प्रथमं सत्त्वोत्पत्तिः

सत्त्वं तत्र लघु स्वच्छं गुणरूपमनामयम् ॥ ५२ ॥
प्रथमं व्यज्यते कालान्मनवोऽवतरन्त्यतः ।

आनिरुद्धया वैष्णवमूर्त्या तस्याधिष्ठानम्

आनिरुद्धी ततो मूर्तिः स्वसङ्कल्पप्रचोदिता ॥ ५३ ॥
अधितिष्ठति तत् सत्त्वं विष्णुनाम्नैव नामभाक् ।

तत एव तस्य सुखरूपत्वं स्वच्छत्वं च सत्त्वाद्रजगुणोत्पत्तिः

तदेतत् सकलं स्वच्छं सुखमासीदनाकुलम् ॥ ५४ ॥

नियति से उत्पन्न इसी काल में मनु लोग अवतरित होते हैं। विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित वही एक काल अखिल ब्रह्माण्ड को खा जाता है, जिस प्रकार जल का वेग नदी के

किनारे को नष्ट कर देता है। हमने पहले जो शक्ति का गुण रूप कहा है, (द्र० ६.४६) सोपान क्रम से काल के अनन्तर उस शक्ति का वह दूसरा गुण रूप है। शक्ति के उस गुणमय रूप में सर्वप्रथम सत्त्वगुण अभिव्यक्त होता है जो लघु स्वच्छ गुणरूप तथा अनामय है। काल के प्रभाव से प्रेरित आनिरुद्धी मूर्त्ति विष्णु नाम वाली बन कर उस पर अधिकार करती है। इस प्रकार वह सत्त्व कलायुक्त, स्वच्छ एवं सुखदायक तथा शान्त गुण सम्पन्न था ॥ ५०-५४ ॥

अन्तःस्थमनुकं सत्त्वमन्तःस्थाचिद्गुणं मुने।
विष्णुनाधिष्ठितं तस्माद्विष्णुसङ्कल्पचोदितात् ॥ ५५ ॥
रजो नाम गुणः सत्त्वात् तस्मादाविर्भवत्यलम्।

तत्र मनूनां स्थितिः

मनवोऽवतरन्त्यत्र सत्त्वात् सङ्कल्पचोदिताः ॥ ५६ ॥

हे मुने! अन्तःकरण में रहने वाला, सबको चाहने वाला तथा अन्तःकरण में रहने वाले अचिद् गुणों से युक्त वह सत्त्व विष्णु द्वारा अधिष्ठित कर लिया गया। फिर, विष्णु सङ्कल्प प्रेरित उस सत्व से रजो नामक गुण उत्पन्न हुआ। तदनन्तर सङ्कल्प से प्रेरित मनु लोग उस सत्त्व से रजोगुण में अवतरित हो गए ॥ ५५-५६ ॥

तस्यानिरुद्धाधिष्ठितब्रह्मरूपत्वम्

ब्राह्मी मूर्तिर्गुणं तं चाप्यानिरुद्ध्यधितिष्ठति।

अतस्तस्य दुःखरूपत्वम्

तदेतत् प्रचलं दुःखं रजः शश्वत्प्रवृत्तिमत् ॥ ५७ ॥

उस रजो गुण को भगवान् की ब्राह्मी मूर्त्ति बिना रोक-टोक के अधिष्ठित करती है यह रज चञ्चल है, दुःखकारक है और प्रवृत्तिमार्ग वाला है ॥ ५७ ॥

लोलीभूतमिदं तच्च विश्वमन्तःस्थितं तदा।

रजसस्तमउत्पत्तिः

ब्रह्मणाधिष्ठितात् तस्मादन्तःस्थमनुकान्मुने ॥ ५८ ॥
सङ्कल्पचोदितं विष्णोस्तमो नाम गुणोऽभवत्।

तत्र मनूनां स्थितिः

मनवोऽवतरन्त्यत्र ते सुदर्शनचोदिताः ॥ ५९ ॥

तस्यानिरुद्धाधिष्ठितरुद्ररूपत्वम्

रुद्रो नाम गुणस्तं चाप्यानिरुद्ध्यधितिष्ठति।

उनका अनिरुद्धाधिष्ठित ब्रह्मरूपत्व एवं रुद्ररूपत्व—इस कारण उसके अन्तः में स्थित सारा जगत् ही चञ्चल रहता है। हे मुने! उस ब्रह्म से अधिष्ठित अन्तः में मनु को धारण करने वाले उस रजोगुण से विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित तम नाम का गुण उत्पन्न हुआ।

तब सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर वे मनु इस तमोगुण में अवतरित हो जाते हैं, फिर उस तमो नामक गुण को रुद्र देवता बे-रोक-टोक अधिष्ठित कर लेते हैं ॥ ५८-६० ॥

अतस्तस्य मोहनादिरूपत्वम्

गुरु विष्टम्भनं शश्वन्मोहनं चाप्रवृत्तिमत् ॥ ६० ॥
तत् तमो नाम भणितं गुणसागरपारगैः ।

यह तमोगुण गुरु, विष्टम्भनकारक, निरन्तर मोह उत्पन्न करने वाला तथा आलस्य पैदा करने वाला है । गुण सागर से पार होने वाले बुद्धिमानों ने उसी को तमो-गुण कहा है ॥ ६०-६१ ॥

अंशतो गुणत्रयसाम्यापत्तिः

सुदर्शनमयेनैव सङ्कल्पेनात्र वै हरेः ॥ ६१ ॥
चोद्यमानेऽपि सृष्ट्यर्थं पूर्णं गुणयुगं तदा ।
अंशतः साम्यमायाति विष्णुसङ्कल्पचोदितम् ॥ ६२ ॥
त्रैगुण्यं नाम तत्त्वज्ञैस्तत् तमः परिगीयते ।

अंशतः गुणत्रय की साम्यापत्ति—विष्णु के सुदर्शनमय सङ्कल्प से सृष्टि के लिए वे गुण युग पूर्ण हो जाते हैं और विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित अंशतः साम्य को प्राप्त हो जाते हैं। तत्त्वज्ञों ने उसी तम को त्रैगुण्य कहा है ॥ ६१-६३ ॥

प्रकृतिपर्यायशब्दाः

गुणसाम्यमविद्या च स्वभावो योनिरक्षरम् ।
अयोनिर्गुणयोनिश्चेत्याद्यास्त्रैगुण्यवाचकाः ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शुद्धेतरसृष्टिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३९३ ॥

प्रकृतिपर्यायशब्द—गुणसाम्य, अविद्या, स्वभाव, योनि, अक्षर, अयोनि एवं गुण-योनि इत्यादि शब्द त्रैगुण्य के वाचक हैं ॥ ६३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शुद्धे-तरसृष्टि वर्णन नामक छठवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

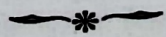

अथ सप्तमोऽध्यायः

शुद्धेतरसृष्टिवर्णनम्

प्रकृतिपुरुषकालानां समष्टिः

अहिर्बुध्न्यः—

अन्यूनानतिरिक्तं यद् गुणसाम्यं तमोमयम्।
तत् सांख्यैर्जगतो मूलं प्रकृतिश्चेति कथ्यते॥ १॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—अन्यून (न अधिक) अनतिरिक्त (न कम) सर्वत्र समरूप से वर्त्तमान जो तमोमय गुणसाम्य है, उसी को सांख्यवेत्ता लोग जगत् की मूलभूता प्रकृति कहते हैं॥ १॥

क्रमावतीर्णो यस्तत्र चतुर्मनुयुगः पुमान्।
समष्टिः पुरुषो योनिः स कूटस्थ इतीर्यते॥ २॥

जिसमें क्रम से चतुर्मनुयुग पुमान् अवतीर्ण होता है उसी को समष्टि, पुरुष, योनि तथा कूटस्थ कहा जाता है॥ २॥

यत् तत् कालमयं तत्त्वं जगतः सम्प्रकालनम्।
स तयोः कार्यमास्थाय संयोजकविभाजकः॥ ३॥

सारे जगत् को खा जाने वाला जो कालमय तत्त्व है वह उस प्रकृति और पुरुष के कार्य में रह कर उनका संयोग विभाग करता रहता है॥ ३॥

भगवत्सङ्कल्पचोदितात् त्रितयादस्मात् महदाद्युत्पत्तिः

मृत्पिण्डीभूतमेतत्तु कालादित्रितयं मुने।
विष्णोः सुदर्शनेनैव स्वस्वकार्यप्रचोदितम्॥ ४॥
महदादिपृथिव्यन्ततत्त्ववर्गोपपादकम्।

प्रकृतिः स्वरूपतः स्वभावतश्च परिणामिनी

पयोमृदादिवत् तत्र प्रकृतिः परिणामिनी॥ ५॥

हे मुने! ये कालादि त्रितय (काल, प्रकृति और पुरुष) मिट्टी के पिण्ड के समान हैं। विष्णु के सुदर्शन से उन-उन कार्यों के लिए प्रेरित हो महत्तत्त्व से लेकर पृथ्व्यादि

पर्यन्त सभी तत्त्वों को उत्पन्न करने वाले हैं। उन तीनों में एक मात्र प्रकृति दूध तथा मिट्टी के समान परिणाम (बदलने वाली) है ॥ ४-५ ॥

पुरुषः स्वरूपतोऽपरिणामी

पुमानपरिणामी सन् संनिधानेन कारणम्।

कालस्य प्रकृतिपुरुषपाचकत्वम्

कालः पचति तत्त्वे द्वे प्रकृतिं पुरुषं च ह ॥ ६ ॥

पुरुष परिणामी नहीं है। वह प्रकृति के सन्निधान में रहने से जगत् का कारण कहा जाता है। एकमात्र काल ही प्रकृति और पुरुष इन दोनों तत्त्वों को परिपक्व करता है ॥ ६॥

प्रकृतेर्महत्तत्त्वोत्पत्तिः

पुरुषाधिष्ठितात् तस्माद्विष्णुसङ्कल्पचोदितात्।
कालेन कलिताच्चैव गुणसाम्यान्महामुने ॥ ७ ॥

हे महामुने ! पुरुषाधिष्ठित उन विष्णु के संकल्प से प्रेरित होकर गुणसाम्य के कारण (प्रकृति और पुरुष) काल के द्वारा ग्रस लिये जाते हैं ॥ ७ ॥

महान् नाम महत्तत्त्वमव्यक्तादुदितं मुने।

महत्तत्त्वपर्यायाः

विद्या गौर्यवनी ब्राह्मी वधूर्वृद्धिर्मतिर्मधुः ॥ ८ ॥
अख्यातिरीश्वरः प्राज्ञेत्येते तद्वाचका मुने।

महतस्त्रैविध्यम्

कालो बुद्धिस्तथा प्राण इति त्रेधा स गीयते ॥ ९ ॥

हे मुने ! महान् नामक महत्तत्त्व अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है। विद्या, गौ, यवनी, ब्राह्मी, वधु, वृद्धि, मति, मधु, अख्याति, ईश्वर और प्राज्ञ ये शब्द उस महत्तत्व के वाचक हैं। उस महत्तत्त्व के काल, बुद्धि एवं प्राण रूप तीन भेद कहे गए हैं ॥ ८-९ ॥

तमःसत्त्वरजोभेदात् तत्तदुन्मेषसंज्ञया।
कालस्त्रुटिलवाद्यात्मा बुद्धिरध्यवसायिनी ॥ १० ॥
प्राणः प्रयतनाकार इत्येता महतो भिदाः।

तम, सत्त्व एवं रजो भेद से उन-उन गुणों के उन्मेष (प्राकट्य) संज्ञा होने से वह काल सत्त्व, तम एवं रज संज्ञा वाला है जो त्रुटि एवं लवात्मक है। अध्यवसाय करने वाली बुद्धि है। प्रयत्न करने के कारण वह प्राण है इतने ये महत्तत्त्व के भेद हैं ॥ १०-११ ॥

तत्र सात्त्विकस्य चातुर्विध्यम्

धर्मो ज्ञानं विरागश्चाप्यैश्वर्यमिति संज्ञया ॥ ११ ॥
महतः सात्त्विकं रूपं चतुर्धा प्रविभज्यते।

तामसस्यापि चातुर्विध्यम्

अधर्माज्ञानावैराग्यमनैश्वर्यं च तामसम् ॥ १२ ॥

धर्म-ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इन चार भागों में महत्तत्त्व का सात्त्विक रूप प्रविभक्त किया गया है। अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य ये चार उस महत्तत्त्व के तमोगुण के विभाग हैं ॥ ११-१२ ॥

महत्तत्त्वे मनूनामवस्थितिः

विद्याया उदरेऽष्टौ ते सुदर्शनसमीरिताः ।
मनवो गर्भतां यान्ति सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ १३ ॥

हम आपसे पहले कह आये हैं कि विष्णु के सुदर्शन की प्रेरणा से विद्या के उदर में अष्ट मनु गर्भ धारण करते हैं। इसलिए वे सर्वज्ञ समदर्शी हैं। (द्र० ६.४५) ॥ १३ ॥

तत्र बुद्ध्युत्पत्तिः

बोधनं नाम वैद्यं तदिन्द्रियं तेषु जायते ।
येनार्थानध्यवस्येयुः सदसत्प्रविभागिनः ॥ १४ ॥

उन मनुष्यों में सबको ज्ञान अथवा वैद्य अथवा जिसे इन्द्रिय कहते हैं वे उत्पन्न होती हैं। सत् एवं असत् (अच्छी या बुरी) का प्रविभाग करने वाले लोग जिससे अपने प्रयोजन प्राप्ति के लिए अध्यवसाय करते हैं वह बुद्धि उद्भूत होती है ॥ १४ ॥

महतोऽहङ्कारोत्पत्तिः

विद्याया उदरे तत्राहङ्कृतिर्नाम जायते ।
सङ्कल्पाच्चोदिता विष्णोश्चोदितायाः सुदर्शनात् ॥ १५ ॥

महत् तत्त्व से अहङ्कार की उत्पत्ति—उस सुदर्शन से प्रेरित उस विद्या के उदर में विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित अहङ्कृति उत्पन्न होती है ॥ १५ ॥

अहङ्कारपर्यायाः

अहङ्कारोऽभिमानश्च प्रजापतिरहङ्कृतिः ।
अभिमन्ता च बोद्धा चेत्यस्याः पर्यायवाचकाः ॥ १६ ॥

अहङ्कार के पर्याय—अहङ्कार, अभिमान, प्रजापति, अहङ्कृति, अभिमन्ता एवं बोद्धा—ये उस अहङ्कृति के पर्याय वाचक शब्द हैं ॥ १६ ॥

अहङ्कारस्य त्रैविध्यम्

तस्य वैकारिकं नाम रूपं सात्त्विकमुच्यते ।
तैजसं राजसं रूपं भूतादिर्नाम तामसम् ॥ १७ ॥

त्रिविध अहङ्कार—उस अहङ्कार में जब विकार उत्पन्न हुआ तब रूप हुआ जो सात्त्विक कहा जाता है जो तैजस हुआ वह राजस और जो भूतादि हुये वे ही तामस कहे गए ॥ १७ ॥

अहङ्कारस्य रूपभेदाः

कामः क्रोधश्च लोभश्च मानश्चावमतिस्तृषा ।
इत्यहङ्कृतिरूपाणि दर्शितानि मुने तव ॥ १८ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मान-अपमान एवं तृषा ये अहङ्कार के रूप हैं । हे मुने ! यहाँ तक हमने आपसे अहङ्कार का स्वरूप प्रदर्शित किया ॥ १८ ॥

अहङ्कारे मनूनामवस्थितिः

नानाविभवयुक्तायामुत्पन्नायामहङ्कृतौ ।
तदन्तर्गर्भमायाति मनूनां तच्चतुर्युगम् ॥ १९ ॥

अहङ्कार में मनुओं की अवस्थिति—अनेक ऐश्वर्य युक्त अहङ्कार के उत्पन्न होने पर मनुओं का वह चार जोड़ा उसके (अहङ्कार) के गर्भ में आ जाता है ॥ १९ ॥

अहङ्कारात् मनउत्पत्तिः

सुदर्शनेरितं विष्णोराहङ्कारिकमिन्द्रियम् ।
मनो नाम मनूनां तज्जायते चिन्तनात्मकम् ॥ २० ॥
मनस्वी बुद्धिमांश्चापि गर्भो मनुमयस्तथा ।

भूतादेः शब्दतन्मात्रोत्पत्तिः

भूतादेः शब्दतन्मात्रं तामसादथ जायते ॥ २१ ॥

विष्णु के सुदर्शन की प्रेरणा से मनुमय, मनस्वी तथा बुद्धिमान् मनुओं का गर्भ अहङ्कारिक इन्द्रिय मनुओं का गर्भ बन कर पैदा होता है । भूतादि के शब्द तन्मात्रा तामस से उत्पन्न होती है ॥ २०-२१ ॥

तस्मादाकाशोत्पत्तिः

वियच्च शब्दतन्मात्राज्जायते शब्दलक्षणम् ।

आकाशस्य गुणकर्मणी

शब्दैकगुणमाकाशमवकाशप्रदायि च ॥ २२ ॥

उस शब्द तन्मात्री से शब्द लक्षण वाला आकाश उत्पन्न होता है । वह आकाश शब्द रूप एक गुण वाला है तथा अवकाश देने वाला होता है ॥ २२ ॥

आकाशे मनूनां स्थितिः

तदन्तर्गर्भतां यान्ति विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ।
मनवोऽष्टौ महाबुद्धे तदा वैकारिकात् पुनः ॥ २३ ॥

फिर तो विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित उस वैकारिक महाबुद्धि से निकल कर आठों मनु आकाश के गर्भ में आ जाते हैं ॥ २३ ॥

श्रोत्रवाचोरुत्पत्तिः

श्रोत्रं वागिति विज्ञानकर्मेन्द्रिययुगं मुने ।

समीक्षयैव देवस्य मनुषु प्रतिजायते ॥ २४ ॥

हे मुने ! श्रोत्र एवं वाणी ये दो ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ ईश्वर की प्रेरणा से उन मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥

मनूनां तद्वैशिष्ट्यम्

श्रोत्रवानथ वाग्मी च गर्भो मनुमयस्तथा ।

अथ स्पर्शतन्मात्रोत्पत्तिः

सुदर्शनिरिताद्विष्णोर्भूतादेः स्पर्शमात्रकम् ॥ २५ ॥

तब वह सुनने वाला तथा बोलने वाला मनुमय गर्भ विष्णु के सुदर्शन की प्रेरणा से भूतादि से स्पर्श तन्मात्रा वाला हो जाता है ॥ २५ ॥

तस्माद्वायूत्पत्तिः

जायते स्पर्शवान् वायुस्तस्मादपि च जायते ।

वायोः क्रियाभेदाः

शोषणं प्रेरणं चेष्टा व्यूहनं च समूहनम् ॥ २६ ॥
क्रियाभेदा इमे तस्माज्जायन्ते वायुतो मुने ।

त्वक्पाण्योरुत्पत्तिः

वैकारिकादहङ्कारात् त्वक्पाणिद्वितयं मुने ॥ २७ ॥
ज्ञानकर्मेन्द्रियद्वन्द्वं सङ्कल्पात् तस्य जायते ।

वायौ मनूनां स्थितिः

तदन्तर्गर्भतां याति तदा मनुमयः पुमान् ॥ २८ ॥

फिर उस स्पर्श तन्मात्रा से स्पर्श गुण विशिष्ट वायु उत्पन्न होता है । हे मुने ! उस वायु में शोषण करने वाली, प्रेरणा करने वाली, चेष्टा करने वाली, समूह बनाने वाली और अनेक भेद वाली आदि क्रियायें होती हैं । तदनन्तर हे मुने ! विष्णु के संकल्प से वैकारिक अहङ्कार से त्वगिन्द्रिय तथा पाणि ये ज्ञान एवं कर्मेन्द्रियों के जोड़े उत्पन्न होते हैं । फिर वह मनुमय उनके भीतर गर्भ रूप में प्रविष्ट हो जाता है ॥ २६-२८ ॥

चेष्टामानस्तदा गर्भो विष्णुसङ्कल्पचोदितः ।
त्वक्पाणिद्वयवानासीत् स्पर्शादानादिसिद्धये ॥ २९ ॥

तब विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित होने के कारण चेष्टावान् वह मनुमय गर्भ त्वगिन्द्रिय वाला तथा दो हाथों वाला होता है । जिसमें त्वगिन्द्रिय से स्पर्श, ज्ञान तथा हाथ रूप कर्मेन्द्रिय द्वारा ग्रहण कार्य सिद्ध होता है ॥ २९ ॥

रूपतन्मात्रतेजसोरुत्पत्तिः

तामसादथ भूतादेः सुदर्शनसमीरितात् ।
जायते रूपमात्रं तु ज्योतिस्तस्माच्च रूपवत् ॥ ३० ॥

फिर सुदर्शन की प्रेरणा से उस तामस भूतादि से रूपतन्मात्रा उत्पन्न होती है। उस रूप तन्मात्रा से ज्योति होती है तब वह मनु रूपवान् बन जाता है ॥ ३० ॥

तेजसः क्रियाभेदाः

रूपं व्यक्तिस्तथा पाकः कान्तिर्दीप्तिरितीदृशाः ।
जायन्ते तैजसा भेदा भेदाद्वैकारिकात् तथा ॥ ३१ ॥

उस वैकारिक भेद से रूप, व्यक्ति, पाक, कान्ति, दीप्ति आदि उस तेज के भेद उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥

चक्षुः पादयोरुत्पत्तिः

सुदर्शनेरिताज्जातं चक्षुःपादयुगं मुने ।

तेजसि मनूनां स्थितिः

तदन्तर्गर्भतां यान्ति ते सुदर्शनचोदिताः ॥ ३२ ॥

फिर सुदर्शन की प्रेरणा से उस तेज से दोनों चक्षु तथा दोनों पैर उत्पन्न होते हैं। फिर सुदर्शन की प्रेरणा से वे मनु उनके भीतर गर्भ रूप में प्रविष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

तेषां चक्षुःपादवैशिष्ट्यम्

मनवो रूपवन्तस्ते कान्तिदीप्त्यादिशालिनः ।
चक्षुष्मन्तः पादवन्तो वीक्षणाटनयोगिनः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर वे मनु रूपवान्, कान्तिमान्, दीप्तिमान् आदि चक्षुष्मान्, पादवान्, नेत्रवान् एवं भ्रमणशील हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

रसतन्मात्राम्भसोरुत्पत्तिः

तामसादथ भूतादेर्विष्णोरीक्षानियोजितात् ।
जायते रसमात्रं तु जायन्तेऽम्भांसि वै ततः ॥ ३४ ॥

फिर विष्णु की इच्छावश तामस भूतादिगणों से रसतन्मात्रा उत्पन्न होती है। पुनः उससे जल उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥

तत्क्रियाभेदाः

जायन्तेऽथ गुणास्तेषां रसस्नेहद्रवादयः ।

रसनोपस्थेन्द्रियोत्पत्तिः

अथ वैकारिकात् तस्माद् विष्णुसंकल्पचोदितात् ॥ ३५ ॥
रसनोपस्थमित्येज्जायते दृक्क्रियात्मकम् ।

अप्सु मनूनां स्थितिः

तदन्तर्गर्भतां यान्ति विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ॥ ३६ ॥
मनवस्ते महाबुद्धे विष्णुकर्माधिकारिणः ।

तेषां रसनोपस्थवैशिष्ट्यम्

सरसाः स्नेहवन्तश्च रुधिरादिद्रवान्विताः ॥ ३७ ॥
जायन्ते रसनावन्तः पुंस्त्रीव्यञ्जनभेदिताः ।

गन्धतन्मात्रमह्योरुत्पत्तिः

सुदर्शनिरितात् तस्माद्भूतादेस्तदनन्तरम् ॥ ३८ ॥

उस जल के रस स्नेह तथा द्रवादि गुण हैं। फिर विष्णु सङ्कल्प प्रेरित उस वैकारिक जल से द्रव गुण वाले रसना एवं उपस्थेन्द्रिय उत्पन्न होते हैं। फिर विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित वे मनुगण उनके गर्भ में प्रविष्ट हो जाते हैं। तब हे महाबुद्धे! वे मनु विष्णु कर्म के अधिकारी बन जाते हैं। फिर सभी पुरुष रूप भेद से वे सरस स्नेहवान् रुधिरादि द्रव पदार्थों से युक्त हो कर रसना वाले हो जाते हैं ॥ ३५-३८ ॥

जायते गन्धतन्मात्रं तस्माद्गन्धवती मही ।

पार्थिवगुणभेदाः

काठिन्यं गौरवं स्थैर्यमित्याद्याः पार्थिवागुणाः ॥ ३९ ॥

फिर विष्णु सङ्कल्प की प्रेरणा से गन्धतन्मात्रा उत्पन्न होती है। जिससे पृथ्वी उत्पन्न होती है। काठिन्य-गुरुता तथा स्थिरता आदि उस पृथ्वी के पार्थिव गुण हैं ॥ ३८-३९ ॥

वैकारिकादहङ्कारात् सुदर्शनसमीरितात् ।
घ्राणं पायुरिति द्वन्द्वं ज्ञानकर्मात्मकं मुने ॥ ४० ॥

सुदर्शन की प्रेरणा से वैकारिक अहङ्कार द्वारा घ्राण और पायु ये दो ज्ञान और कर्मेन्द्रियों के जोड़े उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

पृथिव्यां मनूनां स्थितिः

भुवस्ते गर्भतां यान्ति विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ।

तेषां घ्राणपायुवैशिष्ट्यम्

गुरवः स्थिरसङ्घाता अस्थिदन्तादिसंयुताः ॥ ४१ ॥
घ्राणवन्तः पायुमन्तः सम्पूर्णावयवा मुने ।

सङ्कल्पाद्युत्पत्तिः

सङ्कल्पश्चैव संरम्भः प्राणाः पञ्चविधास्तथा ॥ ४२ ॥
मनसोऽहङ्कृतेर्बुद्धेर्जायन्ते पूर्वमेव तु ।

एवं मनूनां सर्वावयवपूर्णता

एवं सम्पूर्णसर्वाङ्गाः प्राणापानादिसंयुताः ॥ ४३ ॥
सर्वेन्द्रिययुतास्तत्र देहिनो मनवो मुने ।

फिर वे मनु विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित हो पृथ्वी के गर्भ में प्रविष्ट होते हैं। तब वे गुरु स्थिर अवयवों वाले हड्डी एवं दन्तादि पार्थिव पदार्थों तथा घ्राण, पायु आदि

इन्द्रियों से युक्त हो सम्पूर्ण अङ्गावयवों से पूर्ण हो जाते हैं। सर्वप्रथम उनमें सङ्कल्प संरम्भ और पाँचों घ्राण क्रमशः मन, अहङ्कार और बुद्धि से उत्पन्न होते हैं। हे मुने! इस प्रकार वे मनु सम्पूर्ण सर्वाङ्ग प्राणापानादि प्राणों तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों से युक्त शरीरधारी हो जाते हैं ॥ ४१-४४ ॥

सृष्टिप्रलयकालयोस्तुल्यपरिमाणत्वम्

यो यादृग्वर्णितः पूर्वं कालस्तत्प्रतिसञ्चरे ॥ ४४ ॥
सर्गे स एव विज्ञेयो वैष्णवैस्तत्त्वचिन्तकैः ।
विद्याविपरिणामोऽयं सप्तधा वीक्षया हरेः ॥ ४५ ॥
महाभूतानि तान्याहुर्विभागान् सप्तधा मुने ।

मनुविभागः

मनवोऽपि विभज्यन्ते सुदर्शनसमीरिताः ॥ ४६ ॥

पूर्व में हमने प्रलयकाल में जैसा काल का परिमाण वर्णन किया है, हे मुने! सृष्टि में भी उसी प्रकार का काल परिमाण तत्त्वचिन्तक वैष्णवों को जानना चाहिए। इस प्रकार हे मुने! विष्णु के वीक्षण से ऊपर कहे गए (महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चमहाभूत) ये सात विद्या के विपरिणाम से उत्पन्न हुये। ये ही सात महाभूत के नाम से शास्त्रों में बताये गए हैं। इसी प्रकार सुदर्शन की प्रेरणा से मनु लोग भी प्रविभक्त हो जाते हैं ॥ ४४-४६ ॥

युगशो युगशः पूर्वं पश्चात् पुंस्त्रीविभेदतः ।
स्वयमागतविज्ञानाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ ४७ ॥
आत्मन्यध्यक्षमीशानमनिरुद्धं दधत्यथ ।

मनुभिर्गर्भोत्पादनम्

ततो ह्यध्यक्षवन्तस्ते तत्सङ्कल्पेन चोदिताः ॥ ४८ ॥
गर्भानादधते स्त्रीषु मनवस्ते शतं शतम् ।

तेषां ब्राह्मणादिसंज्ञा

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति चतुर्विधाः ॥ ४९ ॥
मानवा मनुयोषिद्भ्यो जायन्ते द्वन्द्वलक्षणाः ।

पहले युग-युग के रूप में, तदनन्तर स्त्री और पुरुष के भेद रूप में वे प्रविभक्त होते हैं। ये सभी स्वयं भूत, भविष्यादि, त्रिकालदर्शी, सर्वज्ञ तथा विज्ञानवेत्ता होते हैं। पश्चात् आत्माध्यक्ष ईशानस्वरूप अनिरुद्ध में गर्भधारण करते हैं, फिर उनके सङ्कल्प से प्रेरित हुये वे ही मनु अध्यक्षवान् होकर अपनी-अपनी स्त्रियों में सौ-सौ के रूप में गर्भ धारण करते हैं। तब वे ही मनु अपनी-अपनी स्त्रियों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार प्रकार के मिथुन (स्त्री-पुरुष) के रूप में संस्कृत हुये ॥ ४७-५० ॥

तदुत्पन्नानां मानवमानवादिसंज्ञा

मनुभिः संस्कृतास्ते तु स्वासु पत्नीषु मानवाः ॥ ५० ॥

जनयन्ति बहून् पुत्रांस्ते स्युर्मानवमानवाः ।

तेषां भगवत्कैंकर्यकारित्वम्

तेषां गोत्राण्यनेकानि यैरिदं सकलं ततम् ॥ ५१ ॥
चातुर्वर्ण्यमया एते भगवत्कर्मकारिणः ।

भागवतकैंकर्यकारिणां मोक्षसम्पत्तिः

तेषां ये कर्म कुर्वन्ति साधवः शतवार्षिकम् ॥ ५२ ॥
विवेकज्ञानमासाद्य ते विशन्ति हरिं परम् ।

उन मानव ने भी (मनु पुत्र) अपनी-अपनी स्त्रियों में अनेक पुत्र उत्पन्न किये जो मनु की सन्तान मानव कहे गए, उनके अनेक गोत्र हैं, जिनसे यह सारा संसार व्याप्त है। यही चतुर्वर्णमय सृष्टि के कर्त्ता तथा भगवान् के आदेशकारी हुये । उनमें जो अच्छे लोग सौ वर्ष पर्यन्त कर्म करते हैं, वे ज्ञान प्राप्त कर विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ५०-५३ ॥

अन्येषां संसारप्राप्तिः

युगादियुगनिर्ह्रासाद्ये कर्मान्तरकारिणः ॥ ५३ ॥
फलाभिध्यायिनो यान्ति तत्प्रसूतां गतिं तु ते ।

कर्महेतुकदेवादिसृष्टिः

या सा विद्या पुरा प्रोक्ता मनुगर्भवती मुने ॥ ५४ ॥
गर्भवत्येव सा देवान् नानागुणविभेदितान् ।
दैत्यदानवरक्षांसि गन्धर्वोरगकिन्नरान् ॥ ५५ ॥
इति नानाविधा योनीर्विष्णोः सङ्कल्पचोदिता ।
स्वसङ्कल्पेन सृजति ते चान्यांस्तेऽपि चापरान् ॥ ५६ ॥

युग के आदि में एवं युग के अन्त में जो फलाभिसन्धि (फल प्राप्ति की इच्छा) से अन्यान्य कर्म करते हैं वे पुनः विष्णु से उत्पन्न होकर पुनः संसार में लौट आते हैं । हे मुने ! पूर्व में मनुओं को अपने गर्भ में धारण करने वाली विद्या (लय क्रम) कही है । वही पुनः गर्भ धारण कर अनेक प्रकार के गुणभेद से देवता, दैत्य, दानव, राक्षस, गन्धर्व, उरग एवं किन्नर आदि नाना प्रकार की योनियों को विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित अपने सङ्कल्प से जन्म देती है । फिर वे अन्यों की सृष्टि करते हैं और वे अन्य अपरों की सृष्टि करते हैं ॥ ५३-५६ ॥

मनुगर्भदशायां तु पितृदेवर्षिमानवाः ।
इति सृष्टास्तया शश्वद्विद्यया ब्रह्मणा स्वयम् ॥ ५७ ॥

वही विद्या जब मनु से गर्भ धारण करती है तब पितर, देव, ऋषि और मानव उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार ब्रह्मा ने विद्या के द्वारा सृष्टि की रचना की ॥ ५७ ॥

मनूनां देवादीनां च कूटस्थपुरुषव्यष्टिरूपत्वम्

कूटस्थो यः पुरा प्रोक्तः पुमान् व्योम्नः परादधः ।
मनवो देवताद्याश्च तद्व्यष्टय इतीरिताः ॥ ५८ ॥

हमने पहले व्योम (अव्यक्त) से परे नीचे जिस कूटस्थ पुरुष का वर्णन किया है (द्र० ७.२) वह तो समष्टि है और मनु तथा देवतादि उसके व्यष्टि रूप हैं ॥ ५८ ॥

जीवानां भगवद्विभूतित्वम्

जीवभेदा मुने सर्वे विष्णुभूत्यंशकल्पिताः ।

हे मुने ! सभी जीवों के भेद विष्णु के भूत्यंश से कल्पित हैं ॥ ५९ ॥

महतो मेघात्मना परिणामः

अथ व्यक्तेषु मनुषु प्रजातेषु पुनः पुनः ॥ ५९ ॥
विद्यैवांशेन केनापि धेनुर्भवति शाश्वती ।
धेनुरित्युच्यते विद्या मेघभावमुपागता ॥ ६० ॥
पयः क्षरति वर्षाख्यमन्नादिपरिणामवत् ।

इस प्रकार जब मनुगण व्यक्त रूप से उत्पन्न होते हैं तब अपने कुछ अंश से वही विद्या शाश्वती धेनु के रूप में हो जाती है । उसे धेनु इसलिए कहते हैं कि वह मेघभाव को प्राप्त हो कर मनुष्यों के लिए जल की वर्षा करती है जिसके परिणाम स्वरूप अन्नादि उत्पन्न होते हैं ॥ ५९-६१ ॥

जीवानां ज्ञानभ्रंशहेतुकथनम्

तत्तु वैद्यं पयः प्राश्य सर्वे मानवमानवाः ॥ ६१ ॥
ज्ञानभ्रंशं प्रपद्यन्ते सर्वज्ञाः स्वत एव ते ।

ततः शास्त्रप्रवृत्तिः

ततः प्रवर्त्यते शास्त्रं मनुभिः पूर्वजैस्तदा ॥ ६२ ॥
तदादिष्टेन मार्गेण ते यान्ति परमां गतिम् ।

महाविद्या के उस जल को पीते ही सम्पूर्ण मनुपुत्र से उत्पन्न मानव स्वतः सर्वज्ञ होकर भी ज्ञान विभ्रष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार उनके ज्ञान विभ्रष्ट हो जाने पर उनके पूर्वज मनुगण शास्त्र का प्रणयन करते हैं । उनके शास्त्र रूप मार्ग का अनुसरण करने के कारण वे परम गति को प्राप्त करते हैं ॥ ६१-६३ ॥

लेशतः सृष्टिरुक्तेयं भूतेः शुद्धेतरा मुने ॥ ६३ ॥
सुदर्शनिन या विष्णोरेवंभावेन भाव्यते ।

अध्यायद्वयार्थसंक्षेपः

भूयश्च शृणु संक्षेपमिमं नारद तत्त्वतः ॥ ६४ ॥

हे मुने ! इस प्रकार भूति की शुद्धेतरा सृष्टि मैंने नाम मात्र आपसे कही जो भगवान्

विष्णु के सुदर्शन की प्रेरणा से इस प्रकार उत्पन्न की गई है। अब हे नारद! पुनः आप संक्षेप में मेरी यह बात सुनिए ॥ ६३-६४ ॥

एका शक्तिर्हरेर्विष्णोः सर्वभावानुगामिनी।
देवीषाड्गुण्यपूर्णा सा ज्ञानानन्दक्रियामयी ॥ ६५ ॥

हरि अथवा विष्णु की यह एक मात्र शक्ति सर्वभावानुगामिनी (सभी पदार्थों में व्याप्त) है वही देवी षाड्गुण्यपूर्ण एवं ज्ञान और आनन्द तथा क्रियामयी है ॥ ६५ ॥

भाव्यभावकभेदेन सा द्विधाभावमृच्छति।
भावकस्तत्र सङ्कल्पः सुदर्शनमयो हरेः ॥ ६६ ॥

वही शक्ति भाव्य (उत्पन्न होने वाली भूति द्र० ७.६८) तथा भावक (उत्पन्न करने वाले प्रेरक) भेद से दो प्रकार की हैं। उसमें विष्णु का सुदर्शनमय सङ्कल्प भावक (प्रेरक उत्पादन कर्त्ता) है ॥ ६६ ॥

अव्याघातस्तु यस्तस्य सा सुदर्शनता मुने।
ज्ञानमूलक्रियात्मासौ स्वच्छः स्वच्छन्दचिन्मयः ॥ ६७ ॥

हे मुने! वह सङ्कल्प अप्रतिहत (बे रोक-टोक) रूप से चलता रहता है। यही उसकी सुदर्शनता है जो ज्ञान का मूल एवं क्रियात्मा है, स्वच्छ है, स्वच्छन्द है और चिन्मय है ॥ ६७ ॥

भाव्यो नाम परांशो यः सा भूतिरिति गीयते।
सङ्कर्षणादिभूम्यन्ता शुद्धेतरविभागिनी ॥ ६८ ॥

परा विद्या का जो अंश है वही भाव्य है उसको भूति पद से भी कहा जाता है। सङ्कर्षण से लेकर भूमि पर्यन्त वह शुद्धेतरा विभाग वाली भूति है ॥ ६८ ॥

सङ्कर्षणादिव्यूहान्ता शुद्धसर्गमयी स्थिता।
शक्त्यादिर्भूमिपर्यन्ता शुद्धेतरमयी मुने ॥ ६९ ॥

सङ्कर्षण से लेकर व्यूहान्त (अनिरुद्ध पर्यन्त) वह शुद्ध सर्गात्मिका है तथा हे मुने! शक्ति से लेकर भूमि पर्यन्त वह शुद्धेतर सर्गात्मिका है ॥ ६९ ॥

अंशयोः पुरुषो मध्ये यः स्थितः स चतुर्युगः।
शुद्धेतरमयं विद्धि कूटस्थं तं महामुने ॥ ७० ॥

दो अंशों (प्रकृति और काल द्र० ७.२-३) के मध्य में रहने वाला जो चतुर्युगमय पुरुष है उसे शुद्धेतरमय सर्ग समझो। वही कूटस्थ है ॥ ७० ॥

इतीयं विविधा भूतिर्नानातत्त्वमयी मुने।
सुदर्शनिन मरुता ज्वालेव बहुधेर्यते ॥ ७१ ॥

इस प्रकार, हे महामुने! यह भूति नाना प्रकार के तत्त्वों से परिपूर्ण अनेक प्रकार

वाली है । वह सुदर्शन के द्वारा इस प्रकार प्रेरणा प्राप्त करती है जैसे वायु के द्वारा अग्नि प्रेरित होती है ॥ ७१ ॥

आनुलोम्येन सर्गे तु प्रातिलोम्येन चाप्यये ।
मध्ये च स्थाप्यते तेन कार्यते च तथा तथा ॥ ७२ ॥

सृष्टि काल में अनुलोम रूप से तथा संहार काल में प्रतिलोम रूप से सुदर्शन द्वारा प्रेरित वह भूति मध्य में भी उसी की प्रेरणा से स्थापित की जाती है । वह प्रेरक सुदर्शन जैसा चाहता है उसी-उसी प्रकार का कार्य भी उससे करवाता है ॥ ७२ ॥

सुदर्शनानधीनस्य वस्तुनस्तुच्छता

भूतेरंशः स नैवास्ति स्वल्पाल्पोऽपि महामुने ।
यो न याति स्वजन्मादौ सुदर्शनविधेयताम् ॥ ७३ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शुद्धेतरसृष्टिवर्णनं
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
॥ आदितः श्लोकाः ४६६ ॥

सुदर्शनाधीनस्थ न होने वाली वस्तु की तुच्छता—हे महामुने ! इस जगत् में स्वल्प से भी स्वल्प (अणु से भी अणु) ऐसा कोई भूत्यंश प्राप्त नहीं होगा, जो अपने जन्मादि में सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त किये बिना उत्पन्न हो ॥ ७३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शुद्धेतर-
सृष्टिवर्णन नामक सातवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

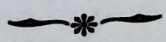

अथाष्टमोध्यायः

जगदाधारनिरूपणम्

सृष्टौ वादिनां बहुधा विप्रतिपत्तिः

नारदः—

भगवन् देवदेवेश भगनेत्रविनाशन ।
श्रुतं मयैतदखिलं तव वक्त्राम्बुजस्रुतम् ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे देवदेवेश ! हे भगवान् ! हे भगनेत्रहा ! आप के मुख कमल से कही गई यह सारी बात मैंने सुन ली ॥ १ ॥

व्याकुलस्त्वन्तरात्मा मे नानाज्ञानविमोहितः ।
केचित् त्रैभूतिकीं सृष्टिं ब्रुवते तत्त्ववादिनः ॥ २ ॥

किन्तु तब भी अनेक प्रकार के अज्ञान से विमोहित मेरी अन्तरात्मा व्याकुलता प्राप्त कर रही है । कुछ तत्त्ववादी इस सृष्टि को त्रैभूतिक (मात्र तीन भूतों से उत्पन्न) मानते हैं ॥२॥

चतुर्भूतमयीमन्ये केऽप्यन्ये पाञ्चभौतिकीम् ।
तां षड्धातुमयीमेके सप्तधातुमयीं परे ॥ ३ ॥

अन्य कोई लोग उसे चतुर्भूतमयी (चार भूतों वाली) मानते हैं तथा अन्य लोग उसे पाञ्चभौतिकी (पाँच भूतों से उत्पन्न होने वाली) मानते हैं । कोई एक इसे षड्धातुमयी तथा अन्य लोग सप्तधातुमयी मानते हैं ॥ ३ ॥

अष्टप्रकृतिकां केचिन्नवप्रकृतिकां परे ।
दशतत्त्वमयीमेके केचिदेकादशात्मिकाम् ॥ ४ ॥

कोई तत्त्वज्ञ इसे अष्टप्रकृतिका तो कोई नव प्रकृतिका कहते हैं । इसी प्रकार कोई दशतत्त्वात्मिका तो कोई एकादशप्रकृतिका मानते हैं ॥ ४ ॥

एवमुच्चावचां सङ्ख्यां तत्त्वप्रकृतिगोचराम् ।
वदन्ति मुनयः सिद्धा देवा वेदास्तथैव च ॥ ५ ॥

मुनि, सिद्ध, देवता एवं वेद इस प्रकार सृष्टि के तत्त्व की प्रकृतियों की सङ्ख्या में उच्चावच (न्यूनाधिक भेद) कहते हैं ॥ ५ ॥

अण्डजामपरे सृष्टिं पद्मजामपि चापरे ।
पावकीमपरे सृष्टिं केचित् कायान्तरोद्भवाम् ॥ ६ ॥

कोई इस सृष्टि को अण्ड से उत्पन्न मानते हैं तो अपर लोग इसे पद्म से उत्पन्न मानते हैं । कोई पावक (अग्नि) से उत्पन्न मानते हैं तो कोई कायान्तर (अन्य-अन्य शरीर) से उत्पन्न मानते हैं ॥ ६ ॥

तत्र तत्त्वजिज्ञासया प्रश्नः

विद्यागर्भमयीमेके शून्यरूपामथापरे ।
इत्थमुच्चावचार्थास्ते नानाशास्त्रमहोदधौ ॥ ७ ॥
नानादर्शनकल्लोलजातकोलाहलोद्भटे ।
विमुह्यत्यवमग्नेयमप्लवा बुद्धिरद्य मे ॥ ८ ॥
निर्णयप्लवदानेन तामुत्तारय शङ्कर ।

कोई इसे विद्या के गर्भ से उत्पन्न मानते हैं, तो कोई शून्य से उत्पन्न मानते हैं । इस प्रकार वे लोग उच्चावच अर्थ वाली (ऊँची-नीची तत्त्व वाली) बातें कहते हैं । तब अनेक प्रकार के दर्शन रूप तरङ्ग से उत्पन्न, भीषण कोलाहल वाले, नानाशास्त्र रूप महोदधि में बिना नाव वाली मेरी बुद्धि निमग्न (डूब) हो कर मोह को प्राप्त हो रही है । अतः हे शङ्कर! इस विषय में निर्णयरूपी नौका प्रदान कर इस मेरी बुद्धि को पार कीजिए ॥ ७-९ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

उचितं तव देवर्षे यदयं प्रश्न ईरितः ॥ ९ ॥
मुह्यन्त्यत्र महान्तोऽपि शृणु मे तत्त्वनिर्णयम् ।
परमात्मा परो देव एकः षाड्गुण्यमुज्ज्वलम् ॥ १० ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे देवर्षे ! आपने जो इस प्रकार का प्रश्न किया है वह उचित ही है । इस विषय में बड़े-बड़े लोग भी मोह को प्राप्त करते हैं । एक परात्मा ही सब से बड़ा देवता है । उसमें उज्ज्वल छः गुण हैं ॥ ९-१० ॥

वेदवाचोऽपि कार्त्स्न्येन तत्त्वावगाहनासामर्थ्यम्

वागनादिरनन्तापि तत्त्वं तन्नावगाहते ।
गुणैस्तटस्थितैस्तैस्तैरजानानेव सा स्थिता ॥ ११ ॥

आदि तथा अन्त से हीन (वेद) वाणी भी परमात्मतत्त्व का अवगाहन नहीं कर पाती । वह उन-उन तटस्थ गुणों से ही उस परमात्मा का स्तवन करती है । वस्तुतः वह भी इस विषय में अनभिज्ञ जैसी स्थित है ॥ ११ ॥

विप्रतिपत्तौ हेतुकथनम्

यद्गुणे नाम्नि ये श्रान्तास्तत्र तत्त्वविदो मुने ।
मनुभिस्तद्गुणैस्तैस्तैस्ते ते तत्त्वविदां वराः ॥ १२ ॥

निर्दिशन्ति जगद्धेतुं स्वनिरूढैर्महामुने ।
नानागुणनिमित्तैस्तैर्नानावक्तृसमीरितैः ॥ १३ ॥
भेदं व्यवस्थिताः शब्दैरपर्यायविदो जनाः ।

हे मुने ! जब-जब जो-जो तत्त्ववेता परमात्मा के जिस गुण और नाम को उन-उन मन्त्रों से तथा उन-उन गुणों से कहते-कहते थक गए, तब, हे महामुने ! उन्हीं तत्त्व वेत्ताओं ने अपनी बुद्धि से जो-जो जगत् का हेतु जान पड़ा उसी को कहा । इस प्रकार अनेक गुणों के निमित्त होने से तथा अनेक वक्ताओं के होने से सृष्टि के हेतु के विषय में भी शब्दों से भेद उत्पन्न हो गया और वस्तु तत्त्व को कोई भी नहीं जान सका ॥१२-१४॥

एकस्या अपि लक्ष्म्या नानाशब्दगोचरत्वम्

एवं विष्णोः प्रिया भाः सा शक्तिः षाड्गुण्यविग्रहा ॥ १४ ॥
नानानामभिरेकापि तत्त्वविद्भिरुपास्यते ।

इस प्रकार वही विष्णु प्रिया भा हैं, वही शक्ति हैं । षाड्गुण्यविग्रहा हैं । यद्यपि वे एक हैं किन्तु तत्त्ववेत्ता लोग अनेक नामों से उस महाशक्ति की उपासना करते हैं ॥ १४-१५ ॥

तत्त्वविदां स्वस्वदृष्टार्थवादित्वम्

तस्यां प्रवर्तमानायां स्वसङ्कल्पेन सर्जने ॥ १५ ॥
तथा निवर्तमानायां स्वसङ्कल्पेन संहृतौ ।
विज्ञानबलवैषम्याद्ये ये तत्त्वविदो मुने ॥ १६ ॥
न्यूनाधिकविभेदेन यावतीर्ददृशुर्भिदाः ।
तावतीस्तावतीस्ते ते प्रोचुः शिष्याभिचोदिताः ॥ १७ ॥
अतश्चासर्वदृग्बुद्धिः सङ्ख्यासु प्रविमुह्यति ।
पितामहादयो ये च जगत्कार्याधिकारिणः ॥ १८ ॥
तेषां न्यूनाधिभावोऽपि वक्तृभेदात् प्रकल्पितः ।
स्वातन्त्र्यमनियोज्यं तु विष्णोः षाड्गुण्यरूपिणः ॥ १९ ॥
तद्बुद्धिरुचिवैचित्र्यादण्डपद्मादिसम्भवः ।
नानुयोजनमर्हन्ति परमात्मप्रवृत्तयः ॥ २० ॥

जब वह विष्णु की शक्ति अपने सङ्कल्प से सृष्टि करने के लिए एवं संहार करने के लिए प्रवृत्त होती है, तब हे मुने ! अपने विज्ञान बल की विषमता से तत्त्ववेत्ताओं ने न्यूनाधिक रूप से जितना-जितना भेद देखा, उतना-उतना भेद शिष्य-प्रशिष्यों से पूछे जाने पर प्रतिपादित किया । इसीलिए अल्पज्ञ लोग तत्त्वों की सङ्ख्या में भी मोह को प्राप्त करते हैं । पितामहादिक एवं अन्य जो-जो भी जगत् के कार्य के अधिकारी हैं उनकी न्यूनाधिकता भी उन-उन वक्ताओं के भेद से कल्पित की गई है । वस्तुतः षाड्गुण्य रूपवाले विष्णु का स्वातन्त्र्य किसी के बस की बात नहीं । अपनी-अपनी बुद्धि की रुचि वैचित्र्य से, कोई अण्ड से और कोई पद्म से सृष्टि की उत्पत्ति की कल्पना करते हैं क्योंकि परमात्मा की प्रवृत्तियाँ किसी के अनुयोजन की अपेक्षा नहीं रखती ॥ १५-२० ॥

भगवत्प्रकारानन्त्यम्

स यथा चेष्टते सृष्टौ स्थितौ संहरणेऽपि वा।
तथा तथा प्रकारास्ते ह्यनन्ताः कालवैभवात्॥ २१ ॥

वह सृष्टि में, स्थिति में तथा संहार में जैसी चेष्टा करता है काल के माहात्म्य से उसी-उसी प्रकार उसके प्रकार भी अनन्त हैं उसकी इयत्ता नहीं है ॥ २१ ॥

वादिनामेकैकप्रकारवादित्वम्

एवं प्रकारनानात्वे देवस्य हरिमेधसः।
कश्चिदेकं परोऽन्यं तु प्रकारमपरोऽपरम्॥ २२ ॥
धिया विदित्वा प्रोवाच शिष्याय हितकाम्यया।

अतः शास्त्रवैविध्यम्

चित्रा सृष्ट्यादिशास्त्राणां प्रवृत्तिरत ईदृशी॥ २३ ॥
यथाद्यत्वे मनुष्याणां कर्मवैषम्यसम्भवा।
अहोरात्रादिभेदेषु सुखदुःखव्यवस्थितिः॥ २४ ॥
तथा ब्राह्मेष्वहःस्विष्टा सुखदुःखव्यवस्थितिः।

इस प्रकार देवाधिदेव विष्णु के सृष्टि तत्त्व में प्रकारों के अनन्त होने से किसी ने उसे एक प्रकार माना, अन्य ने अन्य प्रकार माना तथा अपर ने अपर प्रकार माना और शिष्यों के हित की कामना से अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उन-उन प्रकारों को कहा। इसीलिए सृष्टि आदि शास्त्रों की प्रवृत्ति एक न होकर विचित्र-विचित्र रूप में कही गई है। जैसा कि आज भी मनुष्यों की सृष्टि कर्म की विषमता से भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ती है। जिस प्रकार दिन-रात के भेद से इस जगत् में सुख-दुःख की व्यवस्थिति है। उसी प्रकार ब्रह्म के दिनों में भी सुख-दुःख की व्यवस्थिति है ॥ २२-२५ ॥

ब्राह्मकल्पानां नानारूपत्वम्

केचिद्वाताकुला घस्रा ब्रह्मणो मुनिसत्तम॥ २५ ॥
तथा वर्षाकुलाः केचित् केचिदातपसङ्कुलाः।
प्रभूतशत्रवः केचित् केचित् सुखमनोहराः॥ २६ ॥

हे मुनिसत्तम! ब्रह्मदेव के कोई दिन वायु से, कोई दिन वर्षा से, कोई दिन घाम से व्याप्त रहते हैं। कोई दिन अनेक शत्रुओं से तथा कोई दिन सुख से कटते हैं ॥२५-२६॥

अनेन निश्चयेनैव धियमास्थाय शाश्वतीम्।
संस्तम्भयान्तरात्मानं व्यामोहस्ते विनश्यतु॥ २७ ॥

इस प्रकार भेद के विषय में निश्चय से अपनी शाश्वती बुद्धि का आश्रय लेकर आप अपनी अन्तरात्मा को शान्त करिए जिससे आपका व्यामोह विनष्ट हो जाए ॥ २७ ॥

इति नानाविधाकारं क्रियाभूतिविभेदितम्।
निमित्तोत्पादकाकारं कारणं कथितं मुने॥ २८ ॥

हे मुने ! क्रिया और भूति के भेद से होने वाले अनेक आकार प्रकार वाले निमित्तों को जो सृष्टि के उत्पादन में कारण हैं हमने आपसे कहा ॥ २८ ॥

श्रुतार्थानुवादः

नारदः—

कारणं कथितं देव सर्वज्ञ वृषकेतन ।
या सा शक्तिर्जगद्धातुः कथिता समवायिनी ॥ २९ ॥
लक्ष्मीर्नाम द्विधा सा तु क्रियाभूतिविभेदिनी ।
या क्रिया नाम सङ्कल्पः स सुदर्शननामवान् ॥ ३० ॥

श्रीनारद ने कहा—हे सर्वज्ञ ! हे वृषकेतन ! आपने उस कारण को बताया जो विष्णु की महाशक्ति इस सृष्टि की समवायि कारणभूता (पट में तन्तु के समान सर्वत्र व्याप्त) हैं जिन्हें महालक्ष्मी कहा जाता है । जिनकी क्रिया और भूति ये दो भेद हैं । जिसमें सङ्कल्प क्रिया है वही सुदर्शन नाम से पुकारा जाता है ॥ २९-३० ॥

भूतिर्नाम जगद्रूपा कालाव्यक्तपुमात्मिका ।
अशुद्धा शुद्धरूपा तु सा व्यूहविभवात्मिका ॥ ३१ ॥
क्रिया प्रवर्तिका भूतेः सा सुदर्शनरूपिणी ।
इत्येतद्दर्शितं तत्त्वं देवदेवेन मे श्रुतम् ॥ ३२ ॥

यह संसार उसकी भूति भेद वाला है । इस भूति के काल, अव्यक्त एवं पुरुष ये तीन भेद हैं (द्र० ३.२९) । फिर वही अशुद्ध, शुद्ध तथा व्यूहविभवात्मिका है । भूति को प्रवृत्त कराने वाली क्रिया ही सुदर्शन स्वरूप है । यहाँ तक अत्यन्त बुद्धिमान देवाधिदेव ने मुझे तत्त्व का दिग्दर्शन कराया ॥ ३१-३२ ॥

द्वितीयप्रश्नस्मारणम्

अधुना श्रोतुमिच्छामि द्वितीयं प्रश्नमीश्वर ।
आधारो नाम यः प्रोक्तो जगतां वृषभध्वज ॥ ३३ ॥

अब हे ईश्वर ! मैं द्वितीय प्रश्न का उत्तर सुनना चाहता हूँ कि हे वृषभध्वज ! उस जगत् का आधार क्या है? ॥ ३३ ॥

सुदर्शनस्य जगदाधारत्वम्

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन य आधार उदीर्यते ।
येनेदं ध्रियते विश्वं तन्तुना मणयो यथा ॥ ३४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! तत्त्वतः जिसे आधार कहा जाता है, उसे सुनिए । वह इस सारे विश्व को इस प्रकार धारण करता है जिस प्रकार तन्तु (सूत्र) मणि को धारण करता है ॥ ३४ ॥

या सा शक्तिर्हरेराद्या लक्ष्मीर्नाम महामुने।
या सा सर्वात्मनो विष्णोर्भावाभावानुयायिनी ॥ ३५ ॥

हे महामुने ! जो विष्णु की आद्याशक्ति हैं, जिन्हें लक्ष्मी नाम से पुकारा जाता है। वह सर्वात्मा विष्णु की भावभावानुगामिनी हैं। क्योंकि आविर्भूत होने पर आविर्भूत होती हैं एवं तिरोहित होने पर तिरोहित रहती हैं (द्र० ३.४०-५६) ॥ ३५ ॥

तस्या अल्पायुतांशांशः स्वस्वातन्त्र्यविजृम्भितः।
क्रियाभूतिविभेदेन समुदेतीति वर्णितम् ॥ ३६ ॥

उनका अत्यन्त छोटा दस हजारहवाँ अंश अपनी स्वतन्त्रता से उद्भूत होकर क्रिया और भूति के भेद से उत्पन्न होता है। यह बात हम बहुत पहले कह आये हैं (द्र० ३.२७) ॥ ३६ ॥

सुदर्शनेन क्रियया शङ्कुनेव छदो मुने।
भूतिः सा ध्रियते शश्वद्विस्तरं तत्र मे शृणु ॥ ३७ ॥

हे मुने ! जिस प्रकार अना (नास) पत्ते को धारण करते हैं उसी प्रकार वह सुदर्शन रूपा क्रिया भी इस भूति को धारण करती है उस विषय में अब विस्तार पूर्वक सुनिए ॥ ३७ ॥

तत्र महारात्रिधरचक्रं प्रथमम्

संहृताखिलभूतस्य स्तैमित्यं ब्रह्मणो हि यत्।
अप्ययः सा महारात्रिस्तत्सङ्कल्पेन धार्यते ॥ ३८ ॥
महारात्रिधरो नाम तदरं वै सुदर्शनम्।
तदेकारं महच्चक्रमद्यत्वे चिन्त्यते सुरैः ॥ ३९ ॥

प्रथम महारात्रिधरचक्र—जब ब्रह्मदेव सारे भूतों को अपने में उपसंहृत कर निस्तब्ध हो सो जाते हैं वही प्रलय है जिसे महारात्रि भी कहते हैं। उस महारात्रि को वह सङ्कल्पात्मक सुदर्शन धारण करता है। उस समय मात्र उस महारात्रि के धारण करने से वह सुदर्शन एक अरा वाला होता है। इसलिए देवता लोग आज भी उसे एक अरा वाला महाचक्र कहते हैं ॥ ३८-३९ ॥

उषश्चक्रं द्वितीयम्

यत् सिसृक्षामयं रूपं ब्रह्मणः शक्तिसम्भवम्।
ज्वालेव वायुना वह्नेः सङ्कल्पेन तदीर्यते ॥ ४० ॥
उषश्चक्रं तदुद्दिष्टमरद्वितयभूषितम्।
भूतिकामैरजस्रं तद्ब्रह्मणा चैव धार्यते ॥ ४१ ॥

द्वितीय उषश्चक्र—जब शक्ति से होने वाला ब्रह्मदेव का सिसृक्षामय (सृष्टि करने की इच्छा वाला) रूप होता है, तब जिस प्रकार वायु ज्वाला को उत्तेजित करता है उसी प्रकार वह सङ्कल्प भी उनकी सिसृक्षा को बढ़ाता है। तब वह चक्र दो अरों से विभूषित होकर

उषश्चक्र के नाम से कहा जाता है । उस चक्र को अपना कल्याण चाहने वाले लोग एवं ब्रह्मदेव भी सदैव धारण करते हैं ॥ ४०-४१ ॥

उदयचक्रं तृतीयम्

यः स सङ्कर्षणोन्मेषो यो धारयति तं सदा ।
साक्षादुदयचक्रं तद्विज्ञानत्रितयात्मकम् ॥ ४२ ॥
स सङ्कर्षणसङ्कल्पोज्ञानकामैर्निषेव्यते ।

तृतीय उदयचक्र—जो वह सङ्कर्षण रूप उन्मेष है उसे वह चक्र सर्वदा धारण करता है । इस कारण विज्ञान त्रितयात्मक होने से वह सङ्कल्प उदयचक्र कहा जाता है । वह सङ्कर्ष रूप सङ्कल्प ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखने वाले लोगों से सर्वदा उपासित रहता है ॥ ४२-४३ ॥

ऐश्वर्यचक्रं चतुर्थम्

यः स प्राद्युम्न उन्मेष ऐश्वर्यमय ऊर्जितः ॥ ४३ ॥
वैष्णवेनेव लाक्ष्मेण स सङ्कल्पेन धार्यते ।
तद्वै प्रद्युम्नसङ्कल्पमैश्वर्यमयमूर्जितम् ॥ ४४ ॥
सम्यक् चतुररं चक्रमैश्वर्यस्था उपासते ।

चतुर्थ ऐश्वर्यचक्र—इसके बाद प्रद्युम्न नाम का उन्मेष है जो सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं वह भी विष्णु के अंशभूत लक्ष्मी जन्य सङ्कल्प से धारित होता है । वह प्रद्युम्न सङ्कल्प ऐश्वर्यमय है जो तेज से परिपूर्ण है और उत्तम चार अरों वाला चक्र है जिसकी ऐश्वर्यशाली लोग उपासना करते हैं ॥ ४३-४५ ॥

शक्तिमहाचक्रं पञ्चमम्

आनिरुद्धो य उन्मेषः शक्तितेजोविदीपितः ॥ ४५ ॥
सङ्कल्पो ब्रह्मशक्त्युत्थस्तं धारयति सर्वदा ।
तद्वै शक्तिमहाचक्रं पञ्चारं परिकल्पितम् ॥ ४६ ॥
शक्तितेजःसमृद्ध्यर्थं विश्वे देवा उपासते ।
व्यूहान्तरसमाख्यातं केशवादिद्विषट्ककम् ॥ ४७ ॥

पाँचवाँ पाँच अरों वाला शक्ति महाचक्र—आनिरुद्ध नामक उन्मेष शक्ति तथा तेज से देदीप्यमान है । ब्रह्म शक्ति से उत्पन्न हुआ सङ्कल्प उस (आनिरुद्ध नामक उन्मेष) को धारण करता है । वह शक्ति नामक महाचक्र पाँच अरों वाला है उसकी उपासना विश्वेदेव लोग अपनी शक्ति तथा तेज की अभिवृद्धि के लिए करते हैं और जो केशवादि बारह व्यूहान्तर हैं उन्हें हम पहले कह आये हैं । (द्र० ५.५४६-४६) ॥ ४५-४७ ॥

षडरचक्रं षष्ठम्

सुदर्शनेन ध्रियते येन सङ्कल्परूपिणा ।
षडरं तन्महाचक्रं व्यूहान्तरविभावकम् ॥ ४८ ॥

ऋत्वरं तत् समाख्यातं व्रतकामा उपासते।

छठवाँ छः अरों वाला शक्ति महाचक्र—यतः उन विभवादि व्यूहान्तरों को बारहों सङ्कल्प रूपी सुदर्शन धारण करते हैं वही छः अरों वाला महाचक्र है। उनका नाम ऋत्वर कहा गया है। व्रत की इच्छा वाले उनकी उपासना करते हैं ॥ ४८-४९ ॥

महासुदर्शनचक्रं सप्तमम्

विभवोः यः पुरा प्रोक्तः पद्मनाभादिरूर्जितः ॥ ४९ ॥
स येन ध्रियते विष्णोः सङ्कल्पेन महामुने।
महासुदर्शनं नाम द्वादशारं तदुच्यते ॥ ५० ॥
विभवान्तरसंज्ञं तद्यच्छक्त्यावेशसम्भवम्।
धृतं तद् द्वादशारेण तत्सङ्कल्पेन चक्रिणा ॥ ५१ ॥

सातवाँ बारह अरों वाला महासुदर्शन चक्र—हे मुने! हमने पूर्व में जो तेजस्वी पद्मनाभादि (द्र० ५.५०-५७) व्यूहों का वर्णन किया है उन्हें विष्णु का सङ्कल्प धारण करता है। उसका नाम महासुदर्शन है। वह द्वादश अरों वाला है जो विष्णु की महाशक्ति के आवेश से उत्पन्न हुआ है। उसी ने विभवान्तर संज्ञक व्यूहों को अपने द्वादश अरों वाले चक्र से धारण किया है ॥ ४९-५१ ॥

सहस्रारचक्रमष्टमम्

यत्तु तत् परमं व्योम यद् विष्णोः पदमूर्जितम्।
सहस्रारेण चक्रेण तत्सङ्कल्पेन धार्यते ॥ ५२ ॥

आठवाँ सहस्रार चक्र—विष्णु के अत्यन्त तेजस्वी धाम को, जिसे परम व्योम कहते हैं, उसे विष्णु का सङ्कल्प रूप सहस्र अरों वाला चक्र धारण करता है ॥ ५२ ॥

एते सौदर्शना व्यूहाः समासेन प्रकीर्तिताः।
आधाराधेयभावेन वर्तन्ते ते स्वयं मुने ॥ ५३ ॥

इस प्रकार हे मुने! हमने संक्षेप से इतने सुदर्शन व्यूहों का (द्र० ८.३७-५२) वर्णन आपसे किया। वे विष्णु स्वयं ही आधार-आधेय भाव से सर्वत्र व्याप्त हैं ॥ ५३ ॥

सङ्कल्पः कोटिकोट्यंशः शक्तेर्भूतिस्तथा द्विधा।
शक्तिः सा वैष्णवी सत्ता बहुधैवं प्रभासते ॥ ५४ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां जगदाधारवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ५२० ॥

शक्ति के करोड़हवें का करोड़हवाँ अंश सङ्कल्प है । शुद्धभूति तथा शुद्धेतरभूति इस प्रकार भूति के दो भेद हैं । वह शक्ति ही वैष्णवी सत्ता आदि अनेक नामों से भासित हो रही है ॥ ५४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के जगदाधार-वर्णन नामक आठवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

अशुद्धजगदाधारनिरूपणम्

प्रथमं पौरुषचक्रम्

अहिर्बुध्न्यः—

आधारः कथितः शुद्धः शुद्धा सा येन धार्यते ।
भूतिर्व्यूहादिरूपेण या सा देवी प्रवर्तते ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हमने शुद्ध आधार का वर्णन किया जो व्यूहादि रूप से शुद्धाभूति को धारण करता है और जिसके द्वारा यह भूति प्रवृत्त होती है ॥ १ ॥

पुमाद्यवनिपर्यन्ता यथा शुद्धेतरात्मिका ।
सा येन धार्यते चक्रं तत्सङ्कल्पमयं शृणु ॥ २ ॥

पुरुष से लेकर अवनि पर्यन्त शुद्धेतरात्मिका भूति को जो सङ्कल्पमय चक्र धारण करता है अब उस चक्र को सुनिए ॥ २ ॥

शक्त्यादिचक्राणि

त्र्यरं तत् पौरुषं चक्रं पुरुषो येन धार्यते ।
चक्रं त्रिंशदरं प्रोक्तं शक्तिः सा येन धार्यते ॥ ३ ॥

पौरुष नामक वह चक्र तीन अरों वाला है जो पुरुष को धारण करता है और जो शक्ति को धारण करता है वह तीस अरों वाला चक्र है ॥ ३ ॥

तादृशं नैयतं चक्रं नियतिर्येन धार्यते ।
षडरं कालचक्रं तत् स कालो येन धार्यते ॥ ४ ॥

और जो नियति को धारण करता है वह नैयत चक्र कहा जाता है । काल या नियति को धारण करने वाला वह चक्र छः अरों वाला है ॥ ४ ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चैव धार्यन्ते यैर्महामुने ।
तानि त्वाधारचक्राणि त्र्यराणीति विदुर्बुधाः ॥ ५ ॥

हे महामुने ! सत्त्व, रज एवं तम को जो धारण करते हैं । वे आधारचक्र तीन अरों वाले हैं । ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है ॥ ५ ॥

चक्रमेकादशारं तु बुद्धिः सा येन धार्यते ।
अष्टारं तन्महाचक्रमहङ्कारस्य धारकम् ॥ ६ ॥

जो बुद्धि को धारण करता है वह ग्यारह अरों वाला चक्र है और जो अहङ्कार को धारण करता है वह आठ अरों वाला महाचक्र है ॥ ६ ॥

एकारं वैयतं चक्रं द्व्यरं तद्वायुधारकम् ।
त्र्यरं तैजसमाख्यातमाप्यं चतुररं मुने ॥ ७ ॥

जो आकाश को धारण करता है वह एक अरा वाला चक्र है । वायु को धारण करने वाला दो अरों वाला चक्र है । हे मुने ! जो तेज को धारण करता है वह तीन अरों वाला तथा जो जल को धारण करता है वह चार अरों वाला चक्र है ॥ ७ ॥

पञ्चारं पार्थिवं चक्रं पृथिवी येन धार्यते ।
गुणचक्राण्यरैः सर्वाण्यङ्कितानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥

पृथ्वी धारण करने वाला चक्र पाँच अरों वाला है । सभी गुण चक्र तीन-तीन अरों से अङ्कित है ॥ ८ ॥

एकादशविधं चक्रमैन्द्रियं द्वियुगारकम् ।
इयमाधारशक्तिस्ते प्रोक्ता प्रातिस्विकी मुने ॥ ९ ॥

इन्द्रियों को धारण करने वाला चक्र ग्यारह प्रकार का है जिसमें दो-दो जोड़े अरे लगे हुये हैं । हे मुने ! इस प्रकार हमने आपसे प्रत्येक-प्रत्येक की आधारशक्ति कही ॥९॥

महाविभूतिचक्रम्

एकधारं महच्चक्रं महाभूतिकरं शृणु ।
महाकेतुपटी यद्वद्वितता व्योम्नि धार्यते ॥ १० ॥
अनिशं पावमानेन पवमानेन वै मुने ।
सङ्कर्षणादिभूम्यन्ता विष्णुशक्तिमयी तथा ॥ ११ ॥
निरालम्बे पटे भूतिः सङ्कल्पेनैव धार्यते ।
तत्सङ्कल्पमयं चक्रमनन्तारं महामुने ॥ १२ ॥

महाविभूतिचक्र—अब महाविभूति प्रदान करने वाले एक अरा वाले महाचक्र को सुनिए । जिस प्रकार आकाश में बहुत बड़े ध्वजा की पट्टी विस्तृत रूप से फहराती है, हे मुने ! उसी प्रकार निरन्तर पावमान और पवमान रूप सङ्कर्षणादि भूम्यन्त विष्णुशक्तिमयी निरालम्ब पट में सङ्कल्प के द्वारा भूति धारण की जाती है । हे महामुने ! वह सङ्कल्पमय चक्र अनन्त अरों से युक्त है ॥ १०-१२ ॥

दिव्यं महाविभूत्याख्यमवाङ्मनसलङ्घितम् ।
अप्रमेयमनाद्यन्तं भावाभावस्वलक्षणम् ॥ १३ ॥

उस अनन्त अरों वाले दिव्य चक्र का नाम महाविभूति है जहाँ वाणी एवं मन पहुँच

नहीं सकते वह अप्रमेय (किसी में न अँटने वाला) आदि अन्त से रहित भाव (उत्पत्ति) अभाव (तिरोहित) लक्षणों से युक्त है ॥ १३ ॥

अनन्तारमपर्यन्तं पर्यन्तकुलसङ्कुलम् ।
ब्रह्माण्डकोटिकोट्योघकोट्यर्बुदविभावितम् ॥ १४ ॥

उसमें लगे रहने वाले अरों की सङ्ख्या नहीं की जा सकती । ये अपर्यन्त हैं तथा सर्वत्र अन्त तक फैला है । करोड़ों ब्रह्माण्ड, करोड़ों ब्रह्माण्ड समूह, उनके भी करोड़ों अर्बुद अरब सङ्ख्या पर्यन्त ब्रह्माण्ड में वह सर्वत्र व्याप्त है ॥ १४ ॥

महाभूतसहस्रौघसहस्रौघविभावनम् ।
ज्योतिरिङ्गणसच्छायैरिन्द्रियैः कोटिकोटिशः ॥ १५ ॥

महाभूतों के हजारों समूह तथा उन हजार समूहों के भी हजारों को अपनी ज्योतिरूप इन्द्रियों से करोड़ों, उसके भी करोड़ों को वह विभावित (प्रकाशित) करता है ॥ १५ ॥

अङ्कितं क्षुद्रमेघाभैर्ब्रह्माण्डैरनुचित्रितम् ।
महाभूतमयीभिस्तु क्वचिदद्भिरिवाततम् ॥ १६ ॥

वह महाविभूति छोटे-छोटे बादलों के समान अनेक ब्रह्माण्डों से युक्त होकर चित्र-विचित्र है कहीं-कहीं महाभूतमय जल से भी वह परिपूर्ण है ॥ १६ ॥

विप्रुड्भिरिव वर्षाणां विततं वैष्णवं पदम् ।
महाभूतैः क्वचिद्दीप्तं ज्योतिर्भिरयुतायुतैः ॥ १७ ॥

जिस प्रकार वर्षा में अनन्त जलकण व्याप्त रहते हैं उसी प्रकार वह वैष्णव पद (अनन्तार चक्र) सर्वत्र अधिक है । कहीं-कहीं अयुत, उन अयुतों के भी अयुत, महाभूत रूप ज्योति के भी अयुत महाभूत रूप ज्योति से वह जगमगाता रहता है ॥ १७ ॥

वीजितं भूतपवनैर्व्यजनोत्थैरिव क्वचित् ।
क्षुद्रावकाशसङ्काशैराकाशैः कोटिकोटिशः ॥ १८ ॥
छिद्रितं विविधाकारैरहङ्कारैरहङ्कृतम् ।
अमहद्भिर्महद्भिश्च कोटिकोटिविभागिभिः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार पङ्खे से वायु डुलायी जाती है उसी प्रकार कहीं-कहीं भूत रूपी पवन से वह वीजित (हिलाया-डुलाया) है । कहीं-कहीं छोटे-छोटे आकाश के समान करोड़ों, उसके भी करोड़ों महाकाश से वह छिद्र युक्त है । वह महाविभूति चक्र अनेक प्रकार के अहङ्कारों से अहङ्कृत है और करोड़ों तथा उसके भी करोड़ों की सङ्ख्या वाले महत्तत्त्वों एवं अमहत्तत्त्वों से वह युक्त है ॥ १८-१९ ॥

अङ्कितं विविधाकारैस्तमोभिर्बहुलं कृतम् ।
क्वचिद्विविधसन्तापचलनैरयुतायुतैः ॥ २० ॥
रजोभी रञ्जितं क्षुद्रैर्विशदैर्लघुभिः क्वचित् ।
अङ्कितं बहुभिः सत्त्वैर्विमलैः कोटिकोटिशः ॥ २१ ॥

अनेक प्रकार के तमों से अङ्कित रहने के कारण वह तम बहुल है। कहीं-कहीं अयुत, उसके भी अयुत अनेक प्रकार के सन्ताप से चलित होने वाले विशद एवं लघु रजोगुण से (लाल) रंगा हुआ है। इसी प्रकार कोटि-कोटि स्वच्छवर्ण वाले सत्त्वगुण से भी वह अङ्कित है ॥ २०-२१ ॥

त्रिविधैः षट्प्रकारैश्च द्विषट्कप्रविभागिभिः ।
चतुर्विंशतिसम्भेदैस्त्रिंशदर्धद्वयोज्ज्वलैः ॥ २२ ॥

तीन प्रकार वाले (जाड़ा गर्मी वर्षा), छः प्रकार वाले (षड्ऋतु), बारह प्रकार वाले (महीने), चौबीस प्रकार वाले तीस के आधे अर्थात् पन्द्रह पन्द्रह रूप दो पक्षों से वह उज्ज्वल है ॥ २२ ॥

षष्टिषट्कसमाकीर्णैः कोटिकोटिविभागिभिः ।
कालैरनेकसाहस्रैरयुतायुतसङ्कुलैः ॥ २३ ॥

साठ का छः गुना (अर्थात् तीन सौ साठ) दिनों से व्याप्त है इस प्रकार कोटि-कोटि विभाग वाले अनेक सहस्र, दस सहस्र, उसके भी दस सहस्रात्मक काल से वह व्याप्त है ॥ २३ ॥

कीर्णं नियतिरूपेण नानानियमनात्मना ।
कोटिकोटिसहस्रौघकोटिकोटिगुणेन च ॥ २४ ॥
शक्त्या नानाविधाकारमधुकोशनिभात्मना ।
निष्यन्दमानतत्त्वौघस्वरूपमधुविप्रुषाम् ॥ २५ ॥

अनेक प्रकार के नियमन से युक्त नियतियों से वह चक्र व्याप्त है। करोड़ों, उसके भी करोड़ों, उसके भी सहस्र करोड़ों तथा उस करोड़ के करोड़ों गुण वाली शक्ति से वह इस प्रकार व्याप्त है जैसे अनेक प्रकार छतों से मधुकोश (मधु का छत्ता) व्याप्त रहता है और वह चूते हुये तत्त्वौघ स्वरूप मधु बिन्दुओं से युक्त है ॥ २४-२५ ॥

कोटिकोटिसहस्रौघनियुतायुतरूपया ।
स्निग्धं क्वचिदिवात्यर्थं पुंसा क्वचिदिवास्थितम् ॥ २६ ॥

करोड़ों, उसके भी करोड़ों तथा उसके सहस्र समूहों, उसके भी लाखों, उसके भी हजारों रूप वाले शक्ति से वह स्निग्ध तथा कहीं-कहीं पुरुष रूप से स्थित है ॥ २६ ॥

शुक्लरक्तासिताकारकर्मकल्पितरूपिणा ।
अनेकमशकाकीर्णोदुम्बरप्रतिमात्मना ॥ २७ ॥

शुक्ल, रक्त तथा काले आकार के कल्पित रूप वाले कर्मों से युक्त वह मानो अनेक मच्छरों से युक्त उदुम्बर के समान कहीं-कहीं पर स्थित है ॥ २७ ॥

नानाजीवविभेदेन नानाफलविधाजुषा ।
शुभाशुभोभयाकारवासनाजटिलात्मना ॥ २८ ॥
अनेकक्लेशकोशेन पुरुषेणास्थितं क्वचित् ।

निर्मलानन्दसम्बोधमहासत्तामयेन च ॥ २९ ॥
नित्यैर्मुक्तैर्निराबाधैर्निर्मलानन्दलक्षणैः ।
साक्षात् पश्यद्भिरीशानं नारायणमनामयम् ॥ ३० ॥
देव्या लक्ष्म्या समासीनं पूर्णषाड्गुण्यदेहया ।
नित्योदितैर्नित्यतृप्तैरतिक्रान्तैस्तमो महत् ॥ ३१ ॥
आत्मभिः शोभितेनैवं वरेण नियताङ्कितम् ।
षाड्गुण्यविग्रहैर्व्यूहैः पुरुषैः पुष्करेक्षणैः ॥ ३२ ॥
आस्थितं जगदुत्पत्तिस्थितिसंहृतिकारिभिः ।
इति व्याप्तवतीमेतां विभूतिं वैष्णवीं पराम् ॥ ३३ ॥
चित्राम्बरधरां सम्यग्दधदात्मानमात्मना ।
सङ्कल्पो वैष्णवो योऽयं मणीन् सूत्रमिवास्थितः ॥ ३४ ॥
तदनन्तारमव्यक्तं महच्चक्रं सुदर्शनम् ।
भावितं स्मृतिमात्रेण भावयत्यखिला गतीः ॥ ३५ ॥

नाना प्रकार के जीवों के भेद वाले नाना प्रकार के फल का भोग करने वाले, शुभ तथा अशुभ उभय प्रकार की वासनाओं से कठिनतापूर्वक जकड़े हुये करण वाले पुरुष से युक्त हो महाविभूति रूप चक्र सुदर्शन कहीं स्थित है। कहीं निर्मलानन्द संदोह सत्तात्मक, नित्यमुक्त, बाधाओं से रहित, निर्मलानन्दलक्षण से युक्त साक्षात् ईशान अनामय नारायण, जो षाड्गुण्य स्वरूप साक्षात् महालक्ष्मी के साथ विराज रहे हैं। उन लक्ष्मीनारायण का दर्शन करने वाले नित्य उदीयमान, नित्यतृप्त, तम का अतिक्रमण करने वाले आत्माओं से शोभित तथा वर प्रदान करने वाले, षाड्गुण्य युक्त शरीरधारण करने वाले, कमलनेत्र पुरुषों से जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करने वाले हैं उनसे संयुक्त हैं और सर्वत्र व्याप्त वह वैष्णवी परामहा विभूति है जो चित्र-विचित्र आकाश को धारण करती है तथा अपनी आत्मा को भी अपने में ही धारण करने वाली है। इस प्रकार का यह वैष्णव सङ्कल्प सारे जगत् को इस भाँति धारण करता है जैसे सूत्र मणियों में अनुस्यूत होकर उसे धारण करता है। ऐसा है वह अनन्त अरों वाला, अव्यक्त, महान् चक्र वाला सुदर्शन जो स्मरण करते ही सब कुछ करने में समर्थ है ॥ २८-३५ ॥

संहृतिचक्रम्

यो जिहीर्षामयो नित्यः सङ्कल्पो वैष्णवः परः ।
अनन्तारमपर्यन्तं तत्संहृतिसुदर्शनम् ॥ ३६ ॥

जो सारे संसार का प्रलय करने वाला, पर और नित्य वैष्णव सङ्कल्प है वह अनन्त अरों वाला तथा आदि और अन्त से रहित है, उसे संहृति नामक सुदर्शन कहा जाता है ॥ ३६ ॥

एक एव तु सङ्कल्पो रूपैर्नानोपगीयते ।
अनन्तमपरिच्छेद्यमप्रमेयमनूपमम् ॥ ३७ ॥

सर्वत्र एक विष्णु मात्र का सङ्कल्प है जो अपने विभिन्न रूपों से अनेक प्रकार की संज्ञा धारण करता है। वह अनन्त है, परिच्छेद (इयत्ता) से रहित है, अप्रमेय (किसी में न अँटने वाला) एवं सादृश्य से रहित है ॥ ३७ ॥

अतरङ्गार्णवाकारमनभ्राम्बरसंन्निभम् ।
एकं तत् परमं ब्रह्म षाड्गुण्यस्तिमितं महत् ॥ ३८ ॥

बिना तरङ्ग के समुद्र जैसा शान्त तथा बादलरहित आकाश के समान निर्मल है, वह एक है, परब्रह्म है, षड्गुणों से युक्त निश्चल एवं महान् है ॥ ३८ ॥

भावाभावमयी तस्य शक्तिरेकानपायिनी ।
तद्धर्मधर्मिणी दिव्या ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः ॥ ३९ ॥

उसकी शक्ति भाव (उत्पत्ति) एवं अभाव (अन्तर्हितता) से युक्त है, वह एक है अविनाशिनी है; तद्धर्मधर्मिणी (उसके अनुकूल आचरण करने वाली) एवं दिव्या है तथा चन्द्रमण्डल में रहने वाली चन्द्रिका के समान निर्मल है ॥ ३९ ॥

तस्य सङ्कल्पसङ्कल्पो रूपव्याप्रियमाणता ।
स्तैमित्यस्थितिसङ्कल्पस्तिमितं तत् सुदर्शनम् ॥ ४० ॥

उन पर ब्रह्म विष्णु के सङ्कल्प का सङ्कल्प रूपों में आसक्ति रखने वाला स्तैमित्य-स्थिति तथा सङ्कल्प का स्तिमित जो है वही सुदर्शन है ॥ ४० ॥

चलनचक्रम्

प्रभवे चाप्यये वापि स्थतौ वापि महामुने ।
चलत्तापूर्वरूपं यः सङ्कल्पस्तत्र वर्तते ॥ ४१ ॥
चलनं नाम तच्चक्रं सुदर्शनमयं महत् ।

तस्य त्रैविध्यम्

भेदास्त्रयोऽस्य विज्ञेयास्तन्त्रविज्ञानपारगैः ॥ ४२ ॥

हे महामुने ! सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय एवं स्थिति में चलत्तापूर्वक जो सङ्कल्प प्रवृत्त होता है वह चलन नामक सुदर्शनमय चक्र कहा जाता है। वह अत्यन्त महान् है । तन्त्र विज्ञान के पारगामी विद्वान् उस चक्र के तीन भेद कहते हैं ॥ ४२ ॥

महासृष्टिमयं तत्र समासव्यासलक्षणम् ।
नानाशक्तिसमाकीर्णं तच्च ते कथितं पुरा ॥ ४३ ॥

प्रथम भेद महासृष्टि नाम वाला चक्र है जिसका संक्षेप तथा विस्तारपूर्वक लक्षण हम पहले कह आये हैं। वह अनेक प्रकार की शक्तियों से परिपूर्ण है ॥ ४३ ॥

महासंहारचक्रं च समासव्यासलक्षणम् ।
तादृगेवात्र विज्ञेयं तच्च ते दर्शितं पुरा ॥ ४४ ॥

उसका दूसरा भेद महासंहार नामक चक्र है उसका संक्षेप तथा विस्तारपूर्वक लक्षण

हम पहले कह आये हैं वह भी उसी प्रकार की नाना शक्तियों से परिपूर्ण है ॥ ४४ ॥

स्थितिचक्रं तु यन्मध्ये समासव्यासलक्षणम् ।
तस्य वक्ष्यामि विस्तारं यत्प्रमाणतया स्थितम् ॥ ४५ ॥

उस महासृष्टि तथा महाप्रलय के मध्य में रहने वाला जो स्थिति चक्र है । अब उसका संक्षेप तथा विस्तारपूर्वक लक्षण और वहाँ वह जितने प्रमाण में स्थित है उसका विस्तार यह सब आगे कहूँगा ॥ ४५ ॥

यथा ह्येको नटो भावैर्नानारूपैर्विभज्यते ।
तथा सङ्कल्प एवैकस्तैस्तैर्भेदैर्विभज्यते ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् अशुद्धजगदाधार-
निरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ५६६ ॥

जिस प्रकार एक ही नट अपनी चेष्टाओं से नाना प्रकार के रूपों को धारण कर भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ता है उसी प्रकार वह वैष्णव सङ्कल्प एक होते हुये भी उन-उन क्रिया-कलापों के भेद से भिन्न-भिन्न रूप धारण कर भिन्न-भिन्न नाम वाला हो जाता है ॥ ४६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अशुद्ध
जगदाधारवर्णन नामक नवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

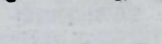

अथ दशमोऽध्यायः

अर्थात्मकप्रमाणनिरूपणम्

नारदः—

भगवन् देवदेवेश भवानीजीवितेश्वर ।
लोकनाथ जगन्नाथ देवानामभयप्रद ॥ १ ॥
नमस्ते त्रिपुरघ्नाय तत्त्वविज्ञानसिन्धवे ।
दशाव्ययाय ते नित्यं षडङ्गाय नमो नमः ॥ २ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे भवानीप्राणनाथ ! हे लोकनाथ ! हे जगन्नाथ ! हे देवताओं को अभय प्रदान करने वाले प्रभो ! त्रिपुरविनाशक ! तत्त्वविज्ञान के समुद्र ! आपको नमस्कार है । सर्वदा एक अवस्था वाले, षडङ्ग वेदस्वरूप आपको नमस्कार है । पुनः-पुनः आपको नमस्कार है ॥ १-२ ॥

यदेतदुदितं नित्यं जगत्कारणमव्ययम् ।
यच्चाधारतया प्रोक्तं सङ्कल्पाख्यं सुदर्शनम् ॥ ३ ॥
तदेतदखिलं देव विष्णुसङ्कल्पजृम्भितम् ।
समासव्यासरूपेण तत्त्वतो मेऽवधारितम् ॥ ४ ॥

जो यह जगत्कारणभूत अविनाशी एवं नित्य तत्त्व साक्षात् प्रकट हुआ है, जिसे आपने सृष्टि का आधार कहा है और जो 'सुदर्शन' नाम से पुकारा जाता है, हे देव ! वह सब विष्णु के सङ्कल्प से प्रकाशित है । उसे संक्षिप्त अथवा विस्तार रूप से आपने मेरे लिए यथार्थ रूप से कहा ॥ ३-४ ॥

प्रमाणनिरूपण

इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेणान्तकान्तक ।
किं तत् प्रमाणमित्युक्तं कीदृशं किंविधं च तत् ॥ ५ ॥

अब हे काल के (नियन्त्रक) महाकाल ! मैं विस्तारपूर्वक यह सुनना चाहता हूँ कि वह प्रमाण किसे कहा जाता है? उसका स्वरूप क्या है तथा वह कितने प्रकार का है? ॥ ५ ॥

किमर्थं किमयं देव तन्मे विस्तरशो वद ।
वक्ता सर्वस्य गुह्यस्य त्वदन्यो नैव विद्यते ॥ ६ ॥

उसका प्रयोजन क्या है और वह कौन है? हे देव ! वह सब मुझे विस्तारपूर्वक

समझाइये क्योंकि इस प्रकार के रहस्यों का वक्ता आप के अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है ॥ ६ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन प्रमाणस्थितिमव्ययाम् ।
विश्वं यत्रैव विश्रान्तं सदेवासुरमानुषम् ॥ ७ ॥

प्रमाणस्वरूपनिरूपणम्

मध्यमो यः स सङ्कल्पो विष्णोः सृष्टवतो जगत् ।
शाश्वते तिष्ठति व्यक्तं जगन्मार्ग इतीदृशः ॥ ८ ॥
तत् प्रमाणमिति प्रोक्तं स्थितिचक्रं महामुने ।

प्रमाणविभागः

समष्टिव्यष्टिभावेन तद् द्विरूपं विभाव्यते ॥ ९ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आप विकाररहित उस प्रमाण की स्थिति को सुनिए जिसमें देवता, असुर एवं मानवों सहित यह सारा जगत् विश्राम को प्राप्त कर रहा है । जगत् की सृष्टि करने वाले विष्णु का जो वह मध्यम सङ्कल्प है उसी शाश्वत में यह सारा जगत् स्पष्ट रूप से स्थित है । इस प्रकार सारे जगत का मार्ग (गन्तव्य स्थान) वही प्रमाण है । हे महामुने ! उसे स्थिति चक्र भी कहते हैं । वह प्रथम समष्टि रूप से और दूसरे व्यष्टि रूप से दो प्रकार का कहा गया है ॥ ७-९ ॥

समष्टिप्रमाणस्वरूपम्

ऐकरूप्येण सङ्कल्पो यः सर्वविषये स्थितः ।
महास्थितिमयं चक्रं तदेतत् कीर्तितं मुने ॥ १० ॥

जो सङ्कल्प एक रूप से सर्वदा सर्वत्र जगत् में स्थित है, वह महास्थितिमय चक्र समष्टि रूप है । हे महामुने ! यह हम आपसे कह आये हैं । (द्र० १०.९) ॥ १० ॥

व्यष्टिप्रमाणस्वरूपम्

तत्त्वेयत्ता समस्तात्मन् यस्मिन्नायततेऽखिला ।
प्रातिस्विकी व्यवस्था या यस्य सत्त्वस्य यादृशी ॥ ११ ॥
परिणामक्रियासाध्यस्थानरूपादिगोचरा ।
तद्व्यष्टिमये चक्रे प्रमाणे सा व्यवस्थिता ॥ १२ ॥

हे समस्तात्मन् ! जिसमें यह सारी सृष्टि इतने प्रमाण में समाई हुई है और जहाँ पर जिस जीव की जैसी-जैसी असाधारण व्यवस्था है और जो व्यवस्था परिणाम क्रिया, साध्य तथा स्थान रूप से दिखाई पड़ती है, वह सब व्यष्टिमय चक्र प्रमाण में व्यवस्थित है ॥ ११-१२ ॥

एकचेष्टादिको योऽर्थो यश्च सृष्ट्यादिलक्षणः ।
शास्त्रशास्त्रार्थतत्साध्यव्यवस्थात्मा च यो मुने ॥ १३ ॥

वासुदेवादिके व्यूहे स्वस्वसङ्कल्पसम्भवः ।
तदाद्यं भगवद्रूपं चक्रं स्थितिमयं महत् ॥ १४ ॥
प्रमाणं येन तत् सर्वमियत्तां प्रतिपद्यते ।

तस्यैव विस्तरेण प्रतिपादनम्

यच्च तत् परमं व्योम दिव्यसम्भोगलक्षणम् ॥ १५ ॥
स्थितिप्रमाणरूपेण तत्सङ्कल्पेन वै हरेः ।
अनियत्तमसङ्कोचमनन्तं व्यवतिष्ठते ॥ १६ ॥

हे मुने ! जो अर्थ अकेले एक की चेष्टा से अनुप्राणित है जो सृष्टि के आदिलक्षण से युक्त है और जो शास्त्र शास्त्रार्थ तथा उससे साध्य होने वाली व्यवस्था से परिपूर्ण है और जो वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध रूप व्यूहों में अपने-अपने सङ्कल्प से प्रगट होता है वही सब के आदि में होने वाला भगवद्रूप महान् स्थितिमय चक्र है, जिससे सब कुछ इयत्ता (परिच्छेद्य) को प्राप्त होता है, वही उस स्थितिमय चक्र का प्रमाण कहा जाता है । यह दिव्यसम्भोगलक्षण वाला परम व्योम (वैष्णव लोक का नाम) विष्णु के सङ्कल्प से स्थिति प्रमाण रूप से बिना किसी परिच्छेद्य के एवं बिना किसी सङ्कोच के अनन्त रूप से जिसमें स्थित है । (वही उस महास्थितिमय चक्र का प्रमाण है) ॥ १३-१६ ॥

अचेतनानां तत्त्वानां या सा योनिः परा मुने ।
कालकाल्यमयी शक्तिरियत्ता तत्त्रिधा परा ॥ १७ ॥

हे महामुने ! जो अचेतन तत्त्वों की परा योनि है, वह काल काल्यमयी शक्ति एवं इयत्ता भेद से तीन प्रकार की कही गई है ॥ १७ ॥

स्वरूपकार्यभावादौ सा प्रमाणनिबन्धना ।
नियतिः काल इत्येते द्वे कालस्य भिदे मते ॥ १८ ॥

वह स्वरूपतः कार्य तथा वस्तुओं के प्रमाण रूप से बाँधने वाली है । नियति और काल ये काल के दो भेद कहे गए हैं ॥ १८ ॥

शुद्धाशुद्धमये मध्ये यः पुमान् कूटवत् स्थितः ।
नानाजीवमहायोनिस्तस्य या स्थितिरव्यया ॥ १९ ॥
इयत्ता या च सा चक्रे प्रमाणे व्यवतिष्ठते ।
इयत्तायां भिदा या च कलाकाष्ठादिगोचरा ॥ २० ॥
सा प्रमाणमये चक्रे सर्वाप्यायतते मुने ।
सत्त्वादीनां स्वरूपं यद्या प्रवृत्तिः फलं च यत् ॥ २१ ॥
इयत्ता तत्र सर्वत्र सा प्रमाणसुदर्शनात् ।
यद्रूपत्रितयं बुद्धेर्धर्माद्या या च विक्रिया ॥ २२ ॥
व्यापारस्पन्दनिर्णीतिर्निमेषात्मा च योऽखिलः ।
योऽत्रेयत्तामयो भावः स प्रमाणसुदर्शनात् ॥ २३ ॥

शुद्धाशुद्धमय के मध्य में जो पुरुष कूटवत् स्थित है उसकी स्थिति की तथा नाना प्रकार के जीवों की जो योनि है उसकी स्थिति की इयत्ता उस प्रमाण चक्र में संस्थित है। उस काल की इयत्ता के भेद कला काष्ठादि के रूप में दिखाई पड़ते हैं। हे मुने ! वह सब उस प्रमाणमय चक्र में रहता है। सत्त्वादि गुणों का स्वरूप, उसकी जिस प्रकार की प्रवृत्ति और उसका जो फल, उन सब की उन-उन में जितनी इयत्ता है वह सब सुदर्शन से प्रमाणित है। बुद्धि के जो तीन रूप हैं और उनके धर्मादि के रूप में विक्रिया, व्यापार, स्पन्दनिर्णीति और जो सबका निमेषात्मा है उसका जो इयत्तामयभाव (परिच्छेद्य रूप से उस-उस का इतने प्रमाण वाला) है, वह सब प्रमाणरूप सुदर्शन से प्रादुर्भूत होता है ॥ १९-२३ ॥

अभिमानो द्विधा योऽपि संरम्भोयोऽप्यहङ्कृतेः ।
यश्च कामादिको भावस्तत्रेयत्तास्थितिश्च या ॥ २४ ॥
सा प्रमाणमये चक्रे सङ्कल्पेऽस्मिन् सुदर्शने ।
पञ्चानां पञ्चकं यच्च सङ्कल्पानामवस्थितम् ॥ २५ ॥
तादृशं च विकल्पानां तदेतद् द्वितयं मुने ।
इयत्ता या स्थिता व्याप्य सा प्रमाणसुदर्शनात् ॥ २६ ॥

अहङ्कार का प्रथम भेद संरम्भ, दूसरा भेद उसका कामादिक भाव, उन दोनों प्रकारों की जो इयत्ता और स्थिति है वह सब इस प्रमाणमयचक्र रूप सुदर्शनमय सङ्कल्प में है। हे मुने ! पाँच प्रकार के सङ्कल्पों का पञ्चक ये दोनों जिसमें इयत्ता रूप से व्याप्त होकर स्थित हैं, वह सब प्रमाणरूप सुदर्शन का प्रभाव समझना चाहिए ॥ २४-२६ ॥

तानवं पाटवं यच्च यच्चालोचनपञ्चकम् ।
शान्तघोरादिकं रूपं यच्च धीन्द्रियपञ्चके ॥ २७ ॥
वचनादानविक्रान्तिमोदोत्सर्गमयं च यत् ।
शान्तघोरादिकं रूपं यत्कर्मेन्द्रियपञ्चके ॥ २८ ॥
तत्रेयत्तामयं रूपं यच्च स्थितिमयं वपुः ।
प्रमाणे वैष्णवे सर्वं तत्सङ्कल्पसुदर्शने ॥ २९ ॥

सूक्ष्मता, स्थूलता और जो आलोचन पञ्चक (पञ्च ज्ञानन्द्रियों का ज्ञान) शान्त घोरादि रूप ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियों के विषय वचन, आदान, विक्रान्ति, मोद और उत्सर्ग तथा शान्त घोरादिक रूप उनकी जो इयत्ता का स्वरूप तथा स्थितिमय स्वरूप वह सब इस वैष्णव रूप सङ्कल्पात्मक सुदर्शन में प्रमाण रूप से स्थित हैं ॥ २७-२९ ॥

व्यूहावकाशलघुताचेष्टाप्रेरणशोषणम् ।
व्यूहावकाशव्यक्तार्द्रस्नेहक्षुद्रत्वमप्युत ॥ ३० ॥
स्थैर्यपार्थिवकाठिन्यमित्येतद्भौतिकं वपुः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चगुणव्यूहमयी स्थितिः ॥ ३१ ॥
यैस्तद्व्याप्य स्थितेयत्ता सा प्रमाणसुदर्शनात् ।
तत्त्वे तत्त्वे च मर्यादा या या शश्वदवस्थिता ॥ ३२ ॥

सा सा प्रमाणचक्रस्य सङ्कल्पस्य हरेर्गतिः ।
इतीयं स्थितिमर्यादियत्ता चक्रे प्रकीर्तिता ॥ ३३ ॥

व्यूह (समूह), अवकाश, लघुता, चेष्टा, प्रेरणा, शोषण, व्यूह, अवकाश, व्यक्त, आर्द्र, स्नेह, क्षुद्रता, स्थिरता, पार्थिव, काठिन्य ये सभी भौतिक शरीर वाले एवं एक दो तीन चार पाँच गुणों वाली व्यूहमयी स्थिति, जिनसे व्याप्त होकर यह इयत्ता (इतने प्रमाण वाली) स्थिति है वह सब प्रमाणभूत सुदर्शन का प्रभाव है । इतना ही नहीं प्रत्येक तत्त्वों में उनकी जो मर्यादा निरन्तर उनमें स्थित है, वह सब विष्णुमय सङ्कल्प वाले प्रमाणभूत इस चक्र से ही जानना चाहिए । इस प्रकार स्थिति की मर्यादा इयत्ता रूप से इस स्थिति चक्र में है यह हमने आपसे कहा ॥ ३०-३१ ॥

विष्णुसङ्कल्पसम्भूतां स्थितिमन्यां मुने शृणु ।
प्रतिबन्धनिरासेन या स्वभावगतिर्मुने ॥ ३४ ॥
तत्त्वानां तात्त्विकानां च सा स्थितिः कथ्यते मुने ।
गुणान्तरानुग्रहेण यः सत्त्वोन्मेष ऊर्जितः ॥ ३५ ॥
धर्मज्ञानादिरूपोऽसौ सुदर्शनसमीरितः ।
परिमाणविशेषः स बोध्यस्त्रैलोक्यधारकः ॥ ३६ ॥

हे मुने ! अब विष्णुसङ्कल्प से होने वाली अन्य प्रकार की प्रमाण स्थिति को आप मुझसे सुनिए । हे मुने ! जो समस्त प्रतिबन्धों को निरस्त कर स्वभावतः गतिमान् है । जो समस्त तात्त्विक तत्त्वों की स्थिति भी कही जाती है । जब अन्य गुणों के अनुग्रह (सहायता) से सत्त्वगुण प्रकाशित होता है, तब वह धर्म ज्ञानादि रूप में सुदर्शन की प्रेरणा से प्रगट होता है । परिमाण में विशेष होने के कारण वही त्रैलोक्य को धारण भी करता है ॥ ३४-३६ ॥

शनैराचर्यमाणोऽसौ सत्त्वोज्ज्वलितबुद्धिभिः ।
बिभर्ति रोदसी शश्वदन्नवृष्ट्यादिदानतः ॥ ३७ ॥

सत्त्व से उज्ज्वल बुद्धि वाले लोगों के द्वारा धीरे-धीरे आचरण किये जाने के कारण वही सत्त्व निरन्तर अन्न तथा वृष्टि को देते हुये द्यावापृथ्वी को धारण करता है ॥ ३७ ॥

गुणान्तरानुग्रहेण तमसो यः स उद्यमः ।
अधर्मादिस्वरूपोऽसौ विष्णुसङ्कल्पचोदितः ॥ ३८ ॥

पुनः जब अन्य गुणों के अनुग्रह (सहायता) से तमोगुण का उदय होता है, तब विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित वही तम अधर्मादि रूप में प्रकट होता है ॥ ३८ ॥

शनैराचर्यमाणोऽसौ तमोमलिनबुद्धिभिः ।
अन्नवृष्ट्यादिनाशेन विनाशयति रोदसी ॥ ३९ ॥

फिर वह तम से मलिन बुद्धि वाले लोगों के द्वारा आचरण किये जाने पर अन्न और वृष्टि दोनों का नाश करता है । जिससे द्यावापृथ्वी का विनाश होने लगता है ॥ ३९ ॥

सत्त्वस्योपद्रवः शश्वदतोऽन्यस्माद्गुणद्वयात् ।

शस्त्रव्यूहप्रतिपादनम्

धर्मसंस्थापनायाथ निरसिष्यन्नधार्मिकान् ॥ ४० ॥
जनार्दनत्वमीशानो यदा विष्णुः प्रपद्यते ।
तदा देवस्य सङ्कल्पः सुदर्शनसमाह्वयः ॥ ४१ ॥
आयुधादिस्वरूपेणाकारत्वं प्रतिपद्यते ।
चक्रलाङ्गलसौनन्दशङ्खशार्ङ्गशरात्मना ॥ ४२ ॥
खड्गखेटकरूपेण पाशाङ्कुशपरश्वधैः ।
दण्डकुन्तस्वरूपेण दम्भोलिमुसलात्मना ॥ ४३ ॥
शतवक्राग्निरूपेण कुन्तशक्तिमयात्मना ।
तथा शूलस्वरूपेण खर्वाङ्गाद्यायुधात्मना ॥ ४४ ॥

उस समय रज और तम इन दो गुणों के कारण सत्त्व गुण उपद्रुत (दब) हो जाता है। तब धर्म की संस्थापना के लिए तथा अधार्मिकों के विनाश के लिए स्वयं विष्णु ईश्वर जनार्दनत्व (दुष्टों के दमन के) रूप में उत्पन्न होते हैं। उस समय उन देव का सुदर्शन नामक सङ्कल्प भी आयुधादि स्वरूप से विग्रह धारण करता है। उन आयुधों के नाम इस प्रकार हैं—चक्र, लाङ्गल (हल), सौनन्द शङ्ख, शार्ङ्गधनुष बाण, खड्ग, खेटक, पाश, अङ्कुश, परश्वध, दण्ड, कुन्त, दम्भोलि (वज्र), मुशल, शतवक्राग्नि, कुन्त, शक्ति, शूल एवं खर्वाङ्ग आदि ॥ ४०-४४ ॥

एवं नानाविधै रूपैस्तत्सङ्कल्पविकल्पितैः ।
उदेति जगतो वृद्ध्यै नारायणकराश्रयी ॥ ४५ ॥

इस प्रकार विष्णु के सङ्कल्प एवं विकल्पों के द्वारा वह चक्र नारायण विष्णु के हाथ का सहारा लेकर संसार की रक्षा के लिए उदय को प्राप्त करता है ॥ ४५ ॥

इति शस्त्रमयो व्यूहो लेशतस्ते निदर्शितः ।
अपरोऽस्त्रमयो व्यूहः सौदर्शन उदीर्यते ॥ ४६ ॥

इस प्रकार, हे मुने ! हमने आपको सुदर्शन के शस्त्रमय व्यूह का रञ्चमात्र उपदेश किया। अब दूसरे सुदर्शनमय अस्त्र व्यूह को कहता हूँ ॥ ४६ ॥

अस्त्रव्यूहप्रतिपादनम्

रूपमास्थाय दिव्यं तदङ्गप्रत्यङ्गभूषणम् ।
ब्रह्मक्षत्रादिभावेन मुखबाहूरुपादतः ॥ ४७ ॥
ब्रह्मास्त्रादिमयं व्यूहं प्रवर्तकनिवर्तकम् ।
सृजत्यशेषरक्षार्थं षष्टिद्वितयसम्मतम् ॥ ४८ ॥

फिर वही सुदर्शनमय विष्णु सङ्कल्प अङ्ग प्रत्यङ्ग के भूषण से युक्त दिव्य रूप धारण कर ब्राह्मण क्षत्रादि भाव से विष्णु के मुख, बाहु, ऊरु और पैर से प्रवर्त्तक निवर्त्तक बन कर

अशेष लोगों के कल्याण के लिए ६२ प्रकार के ब्रह्मास्त्रादि व्यूह के रूपों में प्रगट होता है अर्थात् जिस प्रकार भगवान् के मुख, बाहु, ऊरु तथा पैर से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति हुई जो प्रवृत्तमार्ग एवं निवृत्तमार्ग दोनों के अनुगामी हैं। उसी प्रकार सुदर्शन के भी मुख, बाहु, ऊरु और पैर से कुछ अस्त्र ब्राह्मण जाति के, कुछ क्षत्रिय जाति के, कुछ वैश्य एवं शूद्र जाति के हैं, जिनमें कुछ प्रयोग ही हैं और कुछ संहारात्मक हैं ॥ ४७-४८ ॥

प्रजापतिपितृब्रह्मदेवेभ्यश्च तथा तथा।
दिव्यो नानाविधाकारः समुदेत्यस्त्ररूपवान् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार वही सुदर्शन प्रजापति पितर, ब्रह्म और देवताओं के लिए उसी-उसी प्रकार के दिव्य नाना प्रकार के आकार वाले अस्त्रों के रूप में प्रगट होते हैं ॥ ४९ ॥

ब्रह्मदेवर्षिराजर्षिष्वपि मन्त्रमयात्मसु।
अनुव्याहारशापादिरूपेणैवावतिष्ठते ॥ ५० ॥

पुनः मन्त्रमयात्मक ब्रह्मर्षियों, देवर्षियों एवं राजर्षियों में वह अनुव्याहार (वरदान) एवं शाप रूप से प्रगट होते हैं ॥ ५० ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि वा मुनिसत्तम।
निग्रहेऽनुग्रहे वापि यत्रायं नैव साधनम् ॥ ५१ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस भूलोक में और दिव्य लोक में तथा निग्रह एवं अनुग्रह में, अथवा अन्य में कोई भी ऐसा तत्त्व नहीं है जहाँ यह साधन रूप में वर्त्तमान न हों ॥ ५१ ॥

प्रमाणव्यूह एतावतर्थाकारो निदर्शितः।
सुदर्शनस्य देवस्य शब्दाकारमथो शृणु ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् अर्थात्मक-
प्रमाणव्यूहनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ आदितः श्लोकाः ६१८ ॥

हमने अर्थाकार रूप में इतना प्रमाण व्यूह आपसे कहा—अब इन सुदर्शन देव का शब्दाकार रूप सुनिए ॥ ५२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अर्थात्मक-
प्रमाणव्यूह निरूपण नामक दसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

शब्दात्मकप्रमाणव्यूहनिरूपणम्

नारदः—

नमः समस्तगीर्वाणसुखसौभाग्यदायिने ।
शङ्कराय गिरीशाय गौरीदयित ते नमः ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—समस्त देवताओं को सुख तथा सौभाग्य प्रदान करने वाले और सभी (चराचर जगत्) का कल्याण करने वाले गौरी के प्रिय भगवान् गिरीश के लिए नमस्कार है ॥ १ ॥

शब्दात्मकप्रमाणप्रश्नः

श्रुतः प्रमाणरूपोऽयं व्यूहार्थो यन्मयाखिलः ।
शब्दाकारो य उद्दिष्टस्तं मे वद सुरेश्वर ॥ २ ॥

हे भगवन् ! हमने प्रमाण रूप समस्त व्यूहार्थ आपके द्वारा सुना । अब, हे सुरेश्वर! जो प्रमाणव्यूह शब्दाकार है उसका उपदेश कीजिए ॥ २ ॥

तत्प्रतिविवक्षयोपोद्घातः

अहिर्बुध्न्यः—

आदिसर्गे पुरावृत्ते नानाभावविभूषिते ।
आसीच्छक्तिमतो विष्णोरियं चिन्ता सुखोदया ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—जब पूर्वकाल में नाम रूपात्मक आदि सर्ग की सृष्टि हो चुकी, उस समय सर्वशक्तिमान् विष्णु के मन में सबको सुख देने वाली इस प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥

आदिसर्गे भगवतश्चिन्ताप्रकारः

विपुलेयं कृता सृष्टिर्मया सत्त्वगुणोत्तरा ।
प्रत्यक्षसर्वधर्मार्था निराबाधा सुखोत्तरा ॥ ४ ॥

मैंने सत्त्वगुण से परिपूर्ण इतनी बड़ी सृष्टि की, जो सभी प्रकार के धर्म एवं अर्थ को प्रत्यक्ष कराने वाली है और सर्व बाधा से रहित एवं सभी सुखों से सम्पन्न है ॥ ४ ॥

प्रजेयमभिनिर्वृत्ता देवर्षिब्रह्मसङ्कुला ।

सत्त्वविवृद्ध्या परमपुरुषप्राप्तिपूर्वकं स्वरूपाविर्भावः

तत्त्वज्ञानसमायोगात् सद्धर्मकरणादपि ॥ ५ ॥
अचिरणैव मां प्राप्य स्वीयं भावं भजिष्यते ।

देवता, ऋषि एवं ब्राह्मणों से परिपूर्ण यह सृष्टि सुखी भी है, क्योंकि वे सभी तत्त्वज्ञान और सद्धर्म के आचरण से परिपूर्ण हैं। फिर इस प्रकार करने से वे मुझे थोड़े ही समय में प्राप्त कर आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार कर लेंगे ॥ ५-६ ॥

रजस्तमोविवृद्ध्या सत्त्वह्रासः

रजस्तमोगुणोद्रेकः कालेनैव भविष्यति ॥ ६ ॥
तदुन्मेषवशेनैव सत्त्वमप्युपचोष्यते ।

तदा दैत्याद्याविर्भावः

तदा प्रादुर्भविष्यन्ति दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ७ ॥

किन्तु समय के प्रभाव से जब रज एवं तमोगुण की अभिवृद्धि होगी तब उनके अङ्कुरित होते ही सत्त्वगुण का विनाश हो जायगा। फिर तो ऐसी परिस्थिति आने पर दैत्य, दानव तथा राक्षस उत्पन्न होने लगेंगे ॥ ६-७ ॥

तैर्वैदिकमर्यादाविलोपनम्

तैरियं सात्त्विकी दिव्या मर्यादा चालयिष्यते ।

ज्ञानप्रमोषात् धर्मतिरोधानम्

रजस्तमोगुणोन्मेषात् सम्यग्ज्ञाने विनाशिते ॥ ८ ॥
ज्ञानहेतुः स धर्मोऽपि तिरोधानं गमिष्यति ।

ततः प्रजाक्षोभः

ततश्चेयमनाधारा प्रजाशुद्धा विनङ्क्ष्यति ॥ ९ ॥

उत्पन्न होते ही वे दैत्य, दानव तथा राक्षस इस सृष्टि की सात्त्विकी मर्यादा को चलायमान कर देंगे। इस प्रकार रजोगुण एवं तमोगुण की अभिवृद्धि से जब उत्तमोत्तम ज्ञान विनष्ट हो जायगा, तब ज्ञान का हेतुभूत धर्म भी तिरोहित हो जायेगा। फिर तो (सृष्टि के आधारभूत) धर्म के न रहने पर अशुद्ध हो कर यह प्रजा विनष्ट हो जायेगी ॥ ८-९ ॥

तदा भगवदवताराणां लब्धावकाशता

तत्र रूपैरनेकैर्मे कृत्यं शश्वद्भविष्यति ।
तेषूपकरणापेक्षा नानाकारा भविष्यति ॥ १० ॥

उस समय मुझे अनेक रूपों में अवतरित होने की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार अनेक रूप धारण करने पर अनेक आकार वाले उपकरणों की भी अपेक्षा होगी ॥ १० ॥

धर्मस्थापननिश्चयः

आविश्याविश्य भूतानि स्वेन रूपेण मायया ।

तैस्तैः साधनसम्भेदैर्निरस्य सुकृतद्विषः ॥ ११ ॥
सुकरा धर्ममर्यादा तत्र तत्र भविष्यति ।

इसलिए अपनी माया से उन-उन जीवों में रूप द्वारा प्रविष्ट होकर, उन-उन भिन्न-भिन्न साधनों से धर्म से द्वेष करने वाले उन दैत्य, दानव एवं राक्षसों का विनाश करके, वहाँ-वहाँ पुनः धर्म मर्यादा स्थिर करनी होगी ॥ ११-१२ ॥

अधर्मनिरास साधनद्वैविध्यम्

साधनं च द्विधा कार्यं धर्मद्वेषिनिराकृतौ ॥ १२ ॥
शस्त्रास्त्रव्यूहरूपेण शास्त्ररूपेण चैव हि ।

उन-उन धर्म द्वेषियों के निराकरण के लिए मुझे दो प्रकार के साधन अपनाने होंगे—१. प्रथम तो शस्त्रास्त्रव्यूह रूप साधन और २. दूसरा शास्त्रव्यूह रूप साधन ।

भगवत्सङ्कल्पात् तदुभयोत्पत्तिः

इत्युक्त्वार्थत्वरूपं हि शस्त्रास्त्रौघसमाकुलम् ॥ १३ ॥
व्यूहं ससर्ज सङ्कल्प्य स्वेन सङ्कल्पतेजसा ।
स च सौदर्शनो व्यूहो मर्यादाधारणक्षमः ॥ १४ ॥
प्रमाणरूप उद्दिष्टो वक्ष्यते च तथा तथा ।

ऐसा कहकर उन्होंने सङ्कल्प करके अपने सङ्कल्प के तेज से शस्त्रास्त्र समूहों से युक्त 'अर्थरूप-व्यूह' की रचना की । वही 'सौदर्शन-व्यूह' सृष्टि की मर्यादा को धारण करने में समर्थ था, जिसे हम प्रमाण रूप में पहले कह आए हैं और आगे इसे जैसा है वैसे-वैसे कहेंगे भी ॥ १३-१५ ॥

प्रमाणरूपशास्त्रार्थः सङ्कल्पो वैष्णवो हि यः ॥ १५ ॥
उदितो ब्रह्मणस्तस्माद्यथा तदवधारय ।

अब दूसरा साधनभूत प्रमाण रूप 'शास्त्रार्थ व्यूह' जो विष्णु का सङ्कल्प है, वह उन ब्रह्मा के द्वारा जिस प्रकार प्रगट हुआ उसे सुनिए ॥ १५-१६ ॥

आदिशास्त्रस्वरूपवर्णनम्

सङ्कल्पमयमेवैकं सकलान्तस्तमोनुदम् ॥ १६ ॥
निर्घातशब्दवद्व्योम्नः शस्त्रमेकमभूत् तदा ।
वर्णार्थैः सम्भृतैर्वर्णैश्चिदानन्दमहोर्मिभिः ॥ १७ ॥
विष्णुशक्तिसमुद्रोत्थैर्मणिभिर्मौक्तिकैरिव ।
प्रोतं सौदर्शनं रूपं विष्णोः सङ्कल्पकल्पितम् ॥ १८ ॥
तद्विज्ञानमयं शास्त्रं सद्धर्मप्रतिपादकम् ।
नियुताध्यायि यत् प्रोक्तं कामपालेन शाश्वतम् ॥ १९ ॥

सृष्टि के आदि में एक ही सङ्कल्पात्मक शास्त्र था, जो सम्पूर्ण अज्ञान को नष्ट करने में समर्थ था । (वस्तुतः अज्ञानान्धकार रूप) आकाश में बिजली की कौंध के समान पहले

एक ही शास्त्र था। जिस प्रकार बड़ी-बड़ी तरङ्गों वाले समुद्र से मणियों एवं मोतियों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार चिदानन्द रूप लहरों वाले 'विष्णु-शक्ति' रूप समुद्र से 'वर्ण' और 'अर्थ' वाले शास्त्र उत्पन्न हुए। उनमें विष्णु के सङ्कल्प द्वारा कराया गया सुदर्शन का रूप सर्वत्र अनुस्यूत था। वह विज्ञानमय शास्त्र सद्धर्म का प्रतिपादक था। उसे कामपाल ने वस्तुतः एक लाख अध्यायों में रचा था ॥ १६-१९ ॥

तस्य सर्वशास्त्रार्थगर्भितत्वम्

पुरुषार्थैश्चतुर्भिस्तदन्वितं हेतुसङ्कुलम्।
ऋग्यजुःसामभिर्जुष्टमङ्गिरोभिरथर्वभिः ॥ २० ॥
पदवाक्यप्रमाणार्थैर्विकल्पैर्बहुभिश्चितम्।
अलङ्कृतं शुभैस्तैस्तैः समयैर्दिव्यमानुषैः ॥ २१ ॥

वह (एक लक्ष अध्यायात्मक) शास्त्र चारों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप) पुरुषार्थों से युक्त था और अनेक हेतु से सङ्कुलित था। उस शास्त्र में ऋक्, यजुः, साम तथा अङ्गिरा प्रणीत अर्थववेद भी थे। वह पद (व्याकरण) वाक्य (मीमांसा), प्रमाण (न्याय), अर्थशास्त्र एवं अनेक प्रकार के अन्य विकल्प-शास्त्रों से युक्त था। वह दिव्य एवं मानुष अनेक प्रकार के शुभ कर्मों वाले शास्त्रों से अलङ्कृत था ॥ २०-२१ ॥

तैस्तैर्विकल्पितैः कल्पैश्छन्दोभिर्विविधैर्वृतम्।
कालोपग्रहसङ्ख्याभिः प्रकृतिप्रत्ययैः स्वरैः ॥ २२ ॥
विभक्तिकारकैर्लिङ्गैः स्वरैः प्रकृतिसन्धिभिः।
संज्ञाभिः साधिकाराभिर्भूषितं परिभाषया ॥ २३ ॥
आदेशैरागमैर्लोपैर्विकारैश्चाप्युपाधिभिः।
वृत्तिभिर्विविधाभिश्च वाक्यैरुपपदैरपि ॥ २४ ॥
अव्ययैरुपसर्गैश्च नामाख्यातनिपातकैः।
मात्रावृत्तिस्वरबलैरभिनिष्ठानसामभिः ॥ २५ ॥

वह उन-उन विकल्पों वाले कल्पों (प्रकारों) से भी युक्त था। वह नाना प्रकार के छन्द, काल एवं उपग्रहों की सङ्ख्या, प्रकृति-प्रत्यय तथा स्वरों से युक्त था। इस प्रकार वह शास्त्र विभक्ति, कारक, लिङ्ग, स्वर, प्रकृतिभाव, सन्धियाँ, संज्ञाएँ अधिकार (सूत्र) सहित परिभाषात्मक सूत्रों से विभूषित था। उसमें आदेश, आगम, लोप, विकार, उपाधियाँ, विविध वृत्तियाँ, वाक्य, उपपद, अव्यय, उपसर्ग, नाम, आख्यात, निपात, मात्रा, वृत्ती, स्वर, बल (= आभ्यन्तर, बाह्य आदि प्रयत्न, स्थान और करण) वाले, अभिनिष्ठान अर्थात् विसर्जनीय तथा साम के शब्द थे ॥ २२-२५ ॥

यमरङ्गविभागैश्च भूषितं पदभङ्गिभिः।
वर्णागमविकल्पैश्च तथा वर्णविपर्ययैः ॥ २६ ॥
कल्पनाभिश्च लघ्वीभिर्विकृतेः प्रकृतेरपि।
निरुक्तकल्पैर्विविधैर्नानानिगमनैरपि ॥ २७ ॥

ग्रहनक्षत्रराशिस्थैर्विकल्पैर्गणनोत्थितैः
होरास्कन्धविकल्पैश्च विधानैः फलकल्पितैः ॥ २८ ॥

उस शास्त्र में यम एवं रङ्गों का विधान था। पदों की भङ्गियों से विभूषित था। वर्णों का आगम, वर्णों का विकल्प तथा वर्णों के विपर्यय का उसमें वर्णन था। छोटी-छोटी कल्पनाएँ और प्रकृति के विकार भी उसमें थे। अनेक प्रकार के शब्दों के निर्वचन तथा नाना प्रकार के निगमन थे। ग्रह, नक्षत्र और राशियों में गणना से उत्पन्न होने वाला विकल्प, होरा विकल्प, स्कन्ध विकल्प तथा फलों द्वारा कल्पित किए गए (ज्योतिःशास्त्र के) विधान थे ॥ २६-२८ ॥

विध्यर्थवादमन्त्रोत्थैर्विचारैः कर्मकल्पनैः।
अङ्गयुक्तिक्रमोहैश्च तन्त्रवापातिदेशनैः ॥ २९ ॥
अधिकारैरनेकैश्च विचारैर्वाक्यगोचरैः।
प्रमाणकल्पितैर्न्यायैर्निग्रहच्छलजातिभिः ॥ ३० ॥
द्रव्यकर्मविकल्पैश्च गुणसामान्यकल्पनैः।
चातुर्होत्रविकल्पैश्च चातुर्वैद्यविजृम्भितैः ॥ ३१ ॥

वह शास्त्र विधि-वाक्य, अर्थवाद, मन्त्रों में उठाए गए विचार, कर्मों की कल्पना, अङ्ग एवं युक्तिक्रमों के ऊह, तन्त्र, आवाप, अतिदेश, अनेक प्रकार के अधिकार, वाक्य में आने वाले विचार, प्रमाण कल्पित न्याय (शास्त्र) जो निग्रह और छलयुक्तियों से परिपूर्ण था, द्रव्य कर्मों के विकल्प, गुण-सामान्य की कल्पना, चातुर्वैद्य से प्रकाशित होने वाले चातुर्होत्रों के विकल्प से युक्त था ॥ २९-३१ ॥

चातुराश्रम्यकल्पैश्च चातुर्वर्ण्यविकल्पितैः।
संस्कारकल्पैर्विविधैर्नित्यकाम्यक्रियाक्रमैः ॥ ३२ ॥
इतिहासपुराणाभ्यां विविधाभ्यां समन्वितम्।
विविधैश्च प्रसङ्ख्यानैः स्वप्रकृत्यादिकल्पितैः ॥ ३३ ॥
पुमीश्वरविकल्पैश्च परिणामविकल्पितैः।
अवस्थालक्षणव्याख्याधर्मक्लृप्तिविचित्रितम् ॥ ३४ ॥
प्रमाणानां ससर्गाणां नानाकल्पनयान्वितम्।
लेपालेपविचारैश्च पुरुषाव्यक्तगोचरैः ॥ ३५ ॥

चातुराश्रम्य कल्प, चातुर्वर्ण्य के विकल्प, संस्कारों के विकल्प, विविध प्रकारों के नित्य एवं काम्य कर्म वाली क्रियाओं के क्रम तथा अनेक प्रकार के इतिहास और पुराणों से समन्वित वह एक लाख अध्यायों वाला कामपाल रचित शास्त्र था। उसमें अपनी प्रकृति से कल्पित, नाना प्रकार के प्रसङ्ख्यान थे। पुरुष-ईश्वर के विकल्पों से, परिणाम के विकल्पों से, अवस्था, लक्षण, व्याख्या एवं धर्म की रचना से, विचित्र सर्ग युक्त प्रमाणों से तथा नाना प्रकार की कल्पनाओं से वह परिपूर्ण था। उसमें लेपालेप के विचार, पुरुष और अव्यक्त से जानने योग्य विषयों से युक्त था ॥ ३२-३५ ॥

तत्त्वतात्त्विककल्पैश्च नानागतिविचिन्तनैः ।
मुक्तिक्रमविचारैश्च ख्यातिकल्पैरनेकशः ॥ ३६ ॥
ज्ञानाज्ञानसमाख्यातगुणदोषविचारणैः ।
गुणत्रयविकल्पैश्च सर्गसंयोगचिन्तनैः ॥ ३७ ॥
अन्वितं विविधैः सांख्यैः प्रसङ्ख्यानकृतक्रमैः ।
योगप्रकारकल्पैश्च वृत्तीनां कल्पनैरपि ॥ ३८ ॥
अभ्यासकल्पैर्विविधैश्चातुर्वैराग्यकल्पनैः ।
अन्तरङ्गबहिर्भूतयोगाङ्गपरिचिन्तनैः ॥ ३९ ॥

तत्त्व एवं तात्त्विक विकल्प तथा नाना गतियों के विचार, मुक्ति क्रम के विचार, अनेक प्रकार के ख्याति-कल्प, ज्ञान या अज्ञान द्वारा होने वाले गुण दोषों पर विचार, गुणत्रय के विकल्प, सर्ग-संयोग के विचार और वह शास्त्र प्रसङ्ख्यान कृत क्रमों वाले अनेक प्रकार के सांख्यों से युक्त था। उसमें योग के प्रकारों के कल्प, वृत्तियों की कल्पना, अभ्यासक्रम, अनेक प्रकार के चातुर्वैराग्य की कल्पना, अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग वाले योगाङ्गों पर विचार से युक्त था ॥ ३६-३९ ॥

क्लेशकर्मविपाकानामाशयानां च वर्णनैः ।
तापसंस्कारचिन्ताभिर्दुःखभेदविचिन्तनैः ॥ ४० ॥
तैस्तैश्चतुरधिष्ठानकल्पनैः कल्पितं पृथक् ।
उपादेयस्य हेयस्य हानोपादानयोरपि ॥ ४१ ॥
स्वरूपचिन्तनैश्चित्रैर्भोगकामविकल्पनैः ।
क्रियायोगैरनेकैश्च चित्तसंस्कारसाधनैः ॥ ४२ ॥

क्लेश तथा कर्म विपाक वाले अन्तःकरण का वर्णन, ताप, संस्कार तथा चिन्ता से होने वाले, दुःख के भेदों का विचार एवं उन-उन चतुरधिष्ठान की कल्पना का पृथक् वर्णन भी था। उपादेय-हेय-हान, उपादान स्वरूप-चिन्तन, विचित्र प्रकार के भोग एवं काम के विकल्पों का भी वर्णन था। अनेक प्रकार के क्रिया-योग, चित्त के संस्कार के साधनों से युक्त था ॥ ४०-४२ ॥

सिद्धिभिश्च विचित्राभिश्चित्तस्थाभिरलङ्कृतम् ।
पतिपाशपशुव्याख्याविकल्पैर्हेतुचित्रितैः ॥ ४३ ॥
शुद्धाध्वकल्पनाभिश्च क्रियाज्ञानविभेदतः ।
अर्थपञ्चकचिन्ताभिरनेकाभिरलङ्कृतम् ॥ ४४ ॥
शक्तिपञ्चकचिन्ताभिर्मलत्रयविचारणैः ।
भोगोपकरणाख्यानैः पुंसां रूपविकल्पनैः ॥ ४५ ॥

चित्त में होने वाली अनेक प्रकार की विचित्र सिद्धियों से वह अलङ्कृत था। पति (पालक), पाश (बन्धन) एवं पशु (जीव) की व्याख्या उसमें थी। उसके हेतुपूर्ण, उसके विकल्प से चित्रित क्रिया एवं ज्ञान के भेदों से युक्त शुद्धाध्व की कल्पना में अनेक प्रकार

के अर्थ पञ्चकों से वह शास्त्र विभूषित था। वह शक्तिपञ्चक के ऊपर किए गए विचारों से, मतत्रय के विचारों से, भोगोपकरण के व्याख्यान एवं पुरुषों के रूपों के विकल्प से युक्त था ॥ ४३-४५ ॥

दीक्षाप्रतिष्ठाकल्पैश्च धर्मैः पाशुपतैरपि।
इति नानाविधाकारबुद्धिकल्पविचित्रया ॥ ४६ ॥
युक्तं कल्पनया शश्वत् क्लृप्तनानाधिकारया।
अधिकारेण सद्धर्मान् व्याचक्षाणमनेकधा ॥ ४७ ॥
नियुताध्यायकं पूर्वमासीत् सङ्कर्षणोदितम्।
सङ्कल्पमयमाद्यस्य विष्णोः सङ्कल्पजात् किल ॥ ४८ ॥

दीक्षाकल्प, प्रतिष्ठाकल्प, पाशुपत धर्म से युक्त था। इस प्रकार अनेक आकार वाले बुद्धि की कल्पना की विचित्रता तथा बनावटी अनेक प्रकार के अधिकार वाली कल्पना से वह शास्त्र युक्त था। उसमें अधिकार के अनुसार अनेक प्रकार से सद्धर्मों की व्याख्या थी। इस प्रकार का एक लाख अध्यायों वाला वह शास्त्र सङ्कर्षण के मुख से कहा गया था जो आद्य भगवान् विष्णु के सङ्कल्प से उत्पन्न हो कर सङ्कल्पमय हो गया था ॥ ४६-४८ ॥

तस्य शास्त्रस्य भगवत्प्रीतिहेतुत्वम्

तेन शास्त्रेण ते दिव्या मनवो मानवाश्च ते।
ये प्रोक्ता आदिसर्गे ते तथा मानवमानवाः ॥ ४९ ॥
सत्क्रियाभिरनल्पाभिर्नारायणमतोषयन्।

दिव्य, मनु एवं मानव जिनका वर्णन हम सर्ग के आदि में पूर्व कह आये हैं उन मनु पुत्र मानवों ने उस शास्त्र की अधिकाधिक सत्क्रियाओं के आचरण से भगवान् नारायण को सन्तुष्ट किया ॥ ४९-५० ॥

तस्य शास्त्रस्य मन्दप्रचारता

अथ कालविपर्यासाद्युगभेदसमुद्भवे ॥ ५० ॥
त्रेतादौ सत्त्वसङ्कोचाद्रजसि प्रविजृम्भिते।
कामं कामयमानेषु ब्राह्मणेषु महात्मसु ॥ ५१ ॥
मन्दप्रचारमासीत् तच्छासनं यत् सुदर्शनम्।

वाच्यायनादिभिस्तच्छास्त्रविभजनम्

ततो मोहाकुले लोके लोकतन्त्रविधायिनः ॥ ५२ ॥
सम्भूय लोककर्तारः कर्तव्यं समचिन्तयन्।

फिर समय के हेर-फेर से नव युगों का भेद होने लगा। उस समय त्रेता युग के आदि में सत्त्व गुण का ह्रास होने लगा और रजोगुण की वृद्धि होने लगी। महात्मा एवं ब्राह्मण वर्गों में काम की उत्पत्ति होने लगी। सुदर्शन से उद्भूत् उस शासन (शास्त्र) का प्रचार धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगा और सारा लोक मोहाकुल होने लगा। ऐसी अवस्था देखकर लोकतन्त्र के विधाता लोककर्त्ता लोग एकत्र होकर कर्त्तव्य की चिन्ता करने लगे ॥ ५०-५३ ॥

अपान्तरतपा नाम मुनिर्वाक्सम्भवो हरेः ॥ ५३ ॥
कपिलश्च पुराणर्षिरादिदेवसमुद्भवः ।
हिरण्यगर्भो लोकादिरहं पशुपतिः शिवः ॥ ५४ ॥
एते तप्त्वा तपस्तीव्रं वर्षाणामयुतं शतम् ।
आदिदेवमनुज्ञाप्य देवदेवेन चोदिताः ॥ ५५ ॥
सुदर्शनस्य लेशेन तत्सङ्कल्पेन संयुताः ।
विज्ञानबलमासाद्य धर्मद्विवप्रसादजात् ॥ ५६ ॥
आविर्भूतं तु तच्छास्त्रमंशतस्ते ततक्षिम ।

तत्र वाच्यायनेन वेदविभजनम्

ततक्ष भगवान्पूर्वमपान्तरतपा मुनिः ॥ ५७ ॥

अपान्तरतपा नाम वाले एवं विष्णु के वाक्य से उत्पन्न महर्षि वाच्यायन, पुराणर्षि कपिल, आदिदेव (महाविष्णु) से उत्पन्न हिरण्यगर्भ लोकादि मैं पशुपति शिव हम लोगों ने एक लाख वर्ष पर्यन्त घोर तपस्या की । फिर आदिदेव से अनुमति लेकर देवाधिदेव की प्रेरणा प्राप्त कर हम लोगों ने उत्पन्न उस शास्त्र का धीरे-धीरे थोड़ा हिस्सा संक्षिप्त किया । सर्वप्रथम भगवान् महर्षि अपान्तरतपा ने उसका संक्षेप किया ॥ ५३-५७ ॥

हरेर्वाच्यायनः पुत्रो यावदात्तं च वै ततः ।
उदभूत् तत्र धीरूपमृग्यजुःसामसङ्कुलम् ॥ ५८ ॥

फिर विष्णु पुत्र वाच्यायन ने उससे लेकर पुनः संक्षिप्त किया । जिससे ऋग्, यजुः तथा साम से युक्त धीरूप (गायत्री) उत्पन्न हुई ॥ ५८ ॥

विष्णुसङ्कल्पसम्भूतमेतद्वाच्यायनेरितम् ।

कपिलेन सांख्यविभजनम्

ततक्ष कपिलः शास्त्राद्यावदंशमुदारधीः ॥ ५९ ॥
तत् सांख्यमभवच्छास्त्रं प्रसङ्ख्यानपरायणम् ।

यह वाच्यायन द्वारा कहा गया सम्पूर्ण शास्त्र विष्णु के सङ्कल्प से उत्पन्न हुआ है । तदनन्तर उदारचेता महर्षि कपिल ने उस शास्त्र का कुछ अंश संक्षिप्त किया । वही प्रसङ्ख्यान परायण सांख्यशास्त्र हुआ ॥ ५९-६० ॥

हिरण्यगर्भेण योगशास्त्रविभजनम्

हिरण्यगर्भो लोकादिर्यत् ततक्षादिशासनात् ॥ ६० ॥
यमाद्यङ्गमभूदेतद् दिव्यं योगानुशासनम् ।

लोकादि हिरण्यगर्भ ने आदिभूत उस शास्त्र से जो अंश संक्षिप्त किया वह योगानुशासन हुआ, जिसमें योग के यम नियमभूत अङ्गों का वर्णन है ॥ ६०-६१ ॥

शिवेन पाशुपतविभजनम्

अहं ततक्ष यच्छास्त्रादंशान्नानाव्रताकुलात् ॥ ६१ ॥

अभूत् पाशुपताख्यं तत् पशुपाशविमोचनम् ।

अनेक व्रतों से परिपूर्ण उस शास्त्र से संक्षिप्त कर मैंने जिस शास्त्र की रचना की वह पशुओं (जीवमात्र) को पाश (बन्धन) से विमुक्त करने वाला पाशुपत शास्त्र हुआ ।

भगवता पाञ्चरात्रविभजनम्

सदागममयात् तस्मात् केवलाद् दिव्यशासनात् ॥ ६२ ॥
निर्ममे सारमुद्धृत्य स्वयं विष्णुरसङ्कुलम् ।
तत् परव्यूहविभवस्वभावादिनिरूपणम् ॥ ६३ ॥
पञ्चरात्राह्वयं तन्त्रं मोक्षैकफललक्षणम् ।
सुदर्शनाह्वयो योऽसौ सङ्कल्पो वैष्णवः परः ॥ ६४ ॥
स स्वयं बिभिदे तेन पञ्चधा पञ्चवक्त्रगः ।

दिव्यशासन वाले सदागममय मात्र उस शास्त्र के सार को लेकर स्वयं विष्णु ने जिस शास्त्र की रचना की वह परव्यूह, विभव तथा स्वभाव का निरूपण करने वाला 'पाञ्चरात्र' नाम का तन्त्र हुआ जिसमें मात्र मोक्षफल के लक्षणों का वर्णन है । वह पर वैष्णव सङ्कल्प रूप सुदर्शन नामक शास्त्र अपने पञ्चवक्त्र से पाँच भागों में विभक्त हो गया, इसलिए उसे पाञ्चरात्र कहते हैं ॥ ६२-६५ ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

विष्णुसङ्कल्परूपोऽयं प्रमाणव्यूह ईरितः ।
शस्त्रशास्त्रविभेदेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शब्दात्मकप्रमाण-
व्यूहनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
॥ आदितः श्लोकाः ६८३ ॥

यहाँ तक हमने पाञ्चरात्र के विष्णुसङ्कल्परूप शस्त्र एवं शास्त्र भेद से प्रमाणव्यूह का वर्णन किया । अब हे नारद ! आप क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ६५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शब्दात्मक-
प्रमाणव्यूह निरूपण नामक ग्यारहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

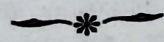

अथ द्वादशोऽध्यायः

शब्दात्मकप्रमाणव्यूहविशेषस्वरूपनिरूपणम्

वृत्तानुवादः

नारदः—

सुरासुरगणाराध्य नमस्ते पार्वतीप्रिय ।
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं देव दिव्यं तद्वैष्णवं यशः ॥ १ ॥
यत् तदाद्यं महच्छास्त्रं सुदर्शनमयं हरेः ।
तस्मात् पृथक् पृथक्छास्त्रमाहुर्वाच्यायनादयः ॥ २ ॥

शब्दात्मकप्रमाणव्यूह-विशेष स्वरूप निरूपण—श्रीनारद ने कहा—हे देवताओं एवं असुरों से आराधना योग्य ! हे पार्वतीप्रिय ! आपको नमस्कार है । हे देव ! आपकी कृपा से मैंने उन वैष्णव (सुदर्शन) का यश (माहात्म्य) सुन लिया और यह भी सुन लिया कि पहले विष्णु का एक सुदर्शनमय शास्त्र था । इसके पश्चात् वाच्यायन आदि महर्षियों ने उसी से पृथक्-पृथक् शास्त्रों की रचना की ॥ १-२ ॥

त्रय्यादिस्वरूपप्रश्नः

त्रयी सांख्यं तथा योगशास्त्रं पाशुपतं तथा ।
सात्त्वतं चेति तद्रूपं श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ ३ ॥

अब, हे प्रभो ! हम त्रयी, सांख्य, योगशास्त्र, पाशुपत तथा सात्वत कहे जाने वाले शास्त्रों का स्वरूप सुनना चाहते हैं ॥ ३ ॥

तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन तेषां रूपं पृथक् पृथक् ।
सङ्कल्पो यावता विष्णोर्भेदेन व्यवतिष्ठते ॥ ४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब उन शास्त्रों का तत्त्वतः पृथक्-पृथक् स्वरूप सुनिए, विष्णु के सङ्कल्प से जितने भेद हैं वे शास्त्र रूप से स्थित हैं ॥ ४ ॥

त्रयीस्वरूपनिरूपणम्

तत्र त्रयीमयं रूपमाद्यं सर्वार्थदर्शनम् ।
ऋग्यजुःसामरूपत्वात् त्रयी सा परिकीर्तिता ॥ ५ ॥

कार्यभेदात् त्रयीत्वेऽपि चतुर्धा सा प्रकीर्तिता ।
ऋचो यजूंषि सामानि ह्यथर्वाङ्गिरसस्तथा ॥ ६ ॥
चातुर्होत्रप्रधानत्वादृगादित्रितयं त्रयी ।

अथर्वणां पृथक्करणे हेतुः

अथर्वाङ्गिरसां रूपं सर्वमृग्यजुषात्मकम् ॥ ७ ॥
तथापि शान्त्याभिचारप्राधान्यात् ते पृथक् कृताः ।

उसका प्रथम स्वरूप त्रयीमय है जिसमें (स्थावर जङ्गम रूप) सभी अर्थों का दर्शन हो जाता है । ऋक् यजुः साम इन तीन रूपों में होने से उसे त्रयी कहा जाता है । यद्यपि ये तीन ही हैं किन्तु कार्यभेद से यह त्रयी ही चार भी कही जाती हैं । चातुर्होत्र प्रधान होने से वह त्रयी ऋक् यजुः साम और अङ्गिरा निर्मित अथर्व चार हैं । ऐसे ऋगादि त्रितय की ही 'त्रयी' संज्ञा है । यद्यपि अङ्गिरस प्रोक्त अथर्वा का रूप ऋग् यजुषात्मक है फिर भी शान्ति एवं अभिचार प्रधान होने से उसकी गणना पृथक्-पृथक् की गई है ॥ ७-८ ॥

ऋगादीनां शाखासङ्ख्या

एकविंशतिशाखावानृग्वेदः परिगीयते ॥ ८ ॥
शतं चैका च शाखाः स्युर्यजुषामेकवर्त्मनाम् ।
साम्नां शाखाः सहस्रं स्युः पञ्च शाखा अथर्वणाम् ॥ ९ ॥

उसमें भी ऋग्वेद की २१ शाखायें कही गयी हैं । एक सौ एक वर्त्मा यजुः की, साम की एक साहस्र तथा अथर्व की मात्र ५ शाखायें हैं ॥ ८-९ ॥

इयतामेव वेदानां प्रत्यक्षत्वम्

इयन्त एव प्रत्यक्षा आम्नायन्ते महर्षिभिः ।
स्मर्यन्ते मुनिभिर्नित्यं लब्धानुज्ञैर्महेश्वरात् ॥ १० ॥
एषां नैयमिका धर्माः स्वरूपाम्नायगोचराः ।

महर्षियों ने प्रत्यक्ष रूप से इतना ही 'वेद' (= आम्नाय) कहा है । पुनः महेश्वर की आज्ञा से मुनियों ने वेदों का स्मरण किया, जो संसार को नियन्त्रित करने वाले 'धर्मशास्त्र' कहे गए । इनका स्वरूप उन वेदों में ही प्राप्त होता है ॥ १०-११ ॥

कल्पादीनि षडङ्गानि

कल्पो व्याकरणं शिक्षा निरुक्तं ज्योतिषां गतिः ॥ ११ ॥
छन्दसां विचयश्चेति षडङ्गानि विदुर्बुधाः ।

कल्प, व्याकरण, शिक्षा निरुक्त, ज्योतिष् और छन्दों के संग्रह रूप शास्त्रों को बुद्धिमान् लोग (वेद के अङ्गों को) 'वेदाङ्ग' भी कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

मीमांसान्यायश्चोपाङ्गम्

उपाङ्गद्वितयं चैतन्मीमांसान्यायविस्तरः ॥ १२ ॥
धर्मज्ञसमयोऽर्थाश्च वेदवादोत्थितास्तथा ।

निबद्धा चानिबद्धा च संस्काराचारसन्ततिः ॥ १३ ॥
धर्मशास्त्रं महर्षीणामन्तःकरणसम्भृतम् ।

इसके अतिरिक्त 'मीमांसा' तथा 'न्याय' ये दो वेद के 'उपाङ्ग' हैं। धर्मज्ञों एवं समय (प्रतिज्ञा) और अर्थ वेद के वादों से उत्पन्न हुये हैं। निबद्ध अथवा अनिबद्ध (परम्परागत) युक्त आचारपद्धति तथा धर्मशास्त्र महर्षियों के अन्तःकरण से उत्पन्न हुये हैं ॥ १२-१४ ॥

उपवेदादिकम्

इतिहासपुराणाख्य उपवेदः प्रकीर्तितः ॥ १४ ॥
वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्च तथा मुने ।
आयुर्वेदश्च पञ्चैत उपवेदाः प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥

'इतिहास (वाल्मीकीय रामायण और महाभारत) तथा पुराण' यह एक 'उपवेद' कहे गए हैं। इसके अतिरिक्त वास्तुवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और आयुर्वेद ये चार अर्थात् कुल मिलाकर पाँच उपवेद कहे गए हैं ॥ १४-१५ ॥

दण्डनीतिश्च वार्ता च विद्याद्वयमिदं परम् ।
एकविंशतिभेदो यः सप्रकारः प्रकीर्तितः ॥ १६ ॥
वाच्यायनादृषेः पूर्वं विष्णोर्वाणीसमुद्भवात् ।
त्रयीरूपेण सङ्कल्प इयद्भेदो विजृम्भितः ॥ १७ ॥

दण्डनीति और वार्त्ता (वर्त्तनोपाय जीविका) ये दो विद्यायें कही गई हैं। इस प्रकार (१. त्रयी ३ + वेदाङ्ग ६ + उपाङ्ग २ + संस्कार एवं आचार २+ धर्मशास्त्र १ + उपवेद ५ + विद्याएँ २ = २१) यहाँ तक हमने शब्द शास्त्र के जो २१ भेद बतलायें हैं वे सभी विष्णु के सङ्कल्परूप वाणी से उत्पन्न हैं और त्रयी रूप वेद महर्षि वाच्यायन के द्वारा पृथ्वी में प्रकाशित हुये (अर्थात् ये सभी शास्त्र वेद ही हैं) ॥ १६-१७ ॥

सांख्यस्वरूपवर्णनम्

सांख्यरूपेण सङ्कल्पो वैष्णवः कपिलादृषेः ।
उदितो यादृशः पूर्वं तादृशं शृणु मेऽखिलम् ॥ १८ ॥
षष्टिभेदं स्मृतं तन्त्रं सांख्यं नाम महामुने ।
प्राकृतं वैकृतं चेति मण्डले द्वे समासतः ॥ १९ ॥

अब दूसरे सांख्यशास्त्र के विषय में कहते हैं—वैष्णव सङ्कल्प ही महर्षि कपिल के द्वारा सांख्य रूप से उत्पन्न हुआ। वह पूर्व में जिस प्रकार उत्पन्न हुआ वह सब मुझसे उसी प्रकार सुनिए। हे महामुने! वह सांख्यतन्त्र साठ भेदों वाला है, उसके संक्षेप में प्राकृत और वैकृत दो मण्डल हैं ॥ १८-१९ ॥

प्राकृतमण्डलवर्णनम्

प्राकृतं मण्डलं तत्र द्वात्रिंशद्भेदमिष्यते ।
तत्राद्यं ब्रह्मतन्त्रं तु द्वितीयं पुरुषाङ्कितम् ॥ २० ॥

त्रीणि तन्त्राण्यथान्यानि शक्तेर्नियतिकालयोः ।
गुणतन्त्राण्यथ त्रीणि तन्त्रमक्षरपूर्वकम् ॥ २१ ॥
प्राणतन्त्रमथान्यत्तु कर्तृतन्त्रमथेतरत् ।
सामितन्त्रमथान्यत्तु ज्ञानतन्त्राणि पञ्च च ॥ २२ ॥
क्रियातन्त्राणि पञ्चाथ मात्रातन्त्राणि पञ्च च ।
भूततन्त्राणि पञ्चेति त्रिंशद् द्वे च भिदा इमाः ॥ २३ ॥
प्राकृतं मण्डलं प्रोक्तं वैकृतं मण्डलं शृणु ।

उसमें प्राकृत मण्डल के ३२ भेद कहे गए हैं । उसमें प्रथम ब्रह्मतन्त्र द्वितीय पुरुष तन्त्र, अन्य तीन तन्त्र—शक्ति तन्त्र, नियति तन्त्र और काल तन्त्र हैं । इसी प्रकार तीन गुण तन्त्र—अक्षरतन्त्र, प्राणतन्त्र तथा कर्तृतन्त्र हैं । इसके अतिरिक्त सामितन्त्र उसके पश्चात् पाँच ज्ञानतन्त्र, पाँच क्रियातन्त्र, पाँच मात्रातन्त्र और पाँच भूततन्त्र हैं । इस प्रकार कुल ये ३२ भेद हुये । यहाँ तक हमने प्राकृतमण्डल कहा । अब वैकृतमण्डल के भेद सुनिए ॥ २०-२४ ॥

वैकृतमण्डलवर्णनम्

अष्टाविंशतिभेदं तन्मण्डलं वैकृतं स्मृतम् ॥ २४ ॥
कृत्यकाण्डानि पञ्चादौ भोगकाण्डं तथाऽपरम् ।
वृत्तकाण्डं तथैकं तु क्लेशकाण्डानि पञ्च च ॥ २५ ॥
त्रीणि प्रमाणकाण्डानि ख्यातिकाण्डमतः परम् ।
धर्मकाण्डमथैकं च काण्डं वैराग्यपूर्वकम् ॥ २६ ॥
अथैश्वर्यस्य काण्डं च गुणकाण्डमतः परम् ।
लिङ्गकाण्डमथैकं च दृष्टिकाण्डमतः परम् ॥ २७ ॥
आनुश्रविककाण्डं च दुःखकाण्डमतः परम् ।
सिद्धिकाण्डमथैकं च काण्डं काषायवाचकम् ॥ २८ ॥
तथा समयकाण्डं च मोक्षकाण्डमतः परम् ।
अष्टाविंशतिभेदं तदित्थं विकृतिमण्डलम् ॥ २९ ॥
षष्टितन्त्राण्यथैकैकमेषां नानाविधं मुने ।
षष्टितन्त्रमिदं सांख्यं सुदर्शनमयं हरेः ॥ ३० ॥
आविर्बभूव सर्वज्ञात् परमर्षेर्महामुने ।

वह वैकृतमण्डल २८ भेदों वाला कहा गया है । सर्वप्रथम ५ कृत्यकाण्ड हैं । इसके बाद भोगकाण्ड वृत्तकाण्ड ५ क्लेशकाण्ड तीन प्रमाणकाण्ड इसके बाद ख्यातिकाण्ड, इसके बाद धर्मकाण्ड, फिर वैराग्यकाण्ड, ऐश्वर्यकाण्ड, गुणकाण्ड, लिङ्गकाण्ड, दृष्टि-काण्ड, आनुश्रविककाण्ड, दुःखकाण्ड, सिद्धकाण्ड, काषायकाण्ड, समय और मोक्षकाण्ड इस प्रकार यह विकृतिमण्डल २८ भेद का कह दिया गया । इस प्रकार कुल साठ तन्त्र हुये । इसके अतिरिक्त हे मुने! इनमें प्रत्येक के नाना भेद हैं, यह विष्णु के सुदर्शनमय

सांख्य का साठ भेद हमने कहा जो सर्वज्ञ महर्षि कपिल के द्वारा उत्पन्न हैं ॥ २४-३१ ॥

योगशास्त्रस्वरूपवर्णनम्

विष्णुसङ्कल्परूपं च महद्योगानुशासनम् ॥ ३१ ॥

योगशास्त्र के स्वरूप का वर्णन—अब विष्णु सङ्कल्प से उत्पन्न महान् योगानुशासन शास्त्र के विषय में सुनिए ॥ ३१ ॥

योगे संहिताद्वयम्

हिरण्यगर्भादुद्भूतं तस्य भेदानिमाञ्शृणु ।
आदौ हिरण्यगर्भेण द्वे प्रोक्ते योगसंहिते ॥ ३२ ॥
एका निरोधयोगाख्या कर्मयोगाह्वया परा ।

यह योगानुशासन हिरण्यगर्भ से उत्पन्न हुआ है । उसके इन भेदों को सुनिए सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ने दो योगसंहिताओं को कहा । एक निरोधयोग के नाम से कही जाती है दूसरी संहिता कर्मयोग के नाम से कही गई है ॥ ३२-३३ ॥

निरोधसंहिताया द्वादशविधत्वम्

संहिता तु निरोधाख्या तत्र द्वादशधा स्मृता ॥ ३३ ॥
अङ्गतन्त्रमथाद्यं तु दोषतन्त्रमतः परम् ।
उपसर्गाभिधं तन्त्र तथाधिष्ठानकं परम् ॥ ३४ ॥
आधारतन्त्रं योगं च बहिस्तत्त्वाधिकारवत् ।
रिक्तयोगाख्यतन्त्रं च पूर्णयोगाख्यमेव च ॥ ३५ ॥
सिद्धियोगाख्यया त्रीणि मोक्षतन्त्रमतः परम् ।
इति द्वादशभेदास्ते निरोधायाः प्रकीर्तिताः ॥ ३६ ॥

निरोधसंहिता के बारह भेद—उसमें निरोधसंहिता के बारह भेद कहे गए हैं । १. पहला अङ्गतन्त्र, २. दूसरा दोषतन्त्र, ३. उपसर्गतन्त्र, ४. अधिष्ठानतन्त्र, ५. आधारतन्त्र, ६. योगतन्त्र जो बाहरी तत्त्वों के अधिकार से युक्त है । ७. रिक्तयोगाख्य तन्त्र, ८. पूर्णयोगाख्यतन्त्र, तीन सिद्धाख्य तन्त्र, इसके अतिरिक्त बारहवाँ मोक्ष तन्त्र है । इन निरोध नामक योग के १२ भेदों को हमने कहा ॥ ३३-३६ ॥

कर्मसंहितायाश्चातुर्विध्यम्

ब्रह्मणा गदितास्तत्र चतस्रः कर्मसंहिताः ।
नानाकर्ममयी त्वेका परा त्वेका क्रियामयी ॥ ३७ ॥
बाह्याभ्यन्तररूपेण द्वे अपि द्विविधे स्मृते ।

कर्मसंहिता के चार भेद—योग के कर्मयोग वाले दूसरे भेद को सुनिए । ब्रह्मदेव ने चार संहिताओं का प्रतिपादन किया । उसमें एक नाना कर्ममयी है और दूसरी मात्र एक क्रियामयी इन दोनों के बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो-दो भेद कहे गए हैं ॥ ३७-३८ ॥

योगानुशासनं शास्त्रमिति षोडशविस्तरम् ॥ ३८ ॥
सुदर्शनमयं विष्णोरुदितं तत् प्रजापतेः ।

इस प्रकार यह योगानुशासन शास्त्र १६ भेदों के विस्तार में प्रतिपादित है । वह प्रजापति विष्णु के द्वारा सुदर्शन रूप में प्रगट हुआ है ॥ ३८-३९ ॥

पाशुपतस्वरूपवर्णनम्

तन्त्रं पाशुपतं नाम पशुपाशप्रमोचनम् ॥ ३९ ॥
मद्वक्त्रान्निःसृतं विष्णोः सङ्कल्पप्रविजृम्भितम् ।

पाशुपतस्याष्टकाण्डत्वम्

अष्टकाण्डमिदं प्रोक्तं मया तन्त्रमनुत्तमम् ॥ ४० ॥

पशुओं (जीवों) को पाश (माया) से मुक्त करने वाला पाशुपत नामक तन्त्र है जो विष्णु के सङ्कल्प से प्रकाशित होकर मेरे (अहिर्बुध्न्य के) मुख से प्रगट हुआ है । इसे मैंने स्वयं ही आठ काण्डों में कहा है ॥ ३९-४० ॥

पतिकाण्डमथाद्यं तु पशुकाण्डमतः परम् ।
पाशकाण्डं तृतीयं तु प्रोक्तं पञ्चप्रभेदतः ॥ ४१ ॥
शुद्धचर्या च मिश्रा च काण्डे द्वे परिकीर्तिते ।
देवकाण्डमथो षष्ठं दीक्षाकाण्डमतः परम् ॥ ४२ ॥
सायुज्यमष्टमं प्रोक्तं काण्डं पाशुपतं महत् ।
अष्टकाण्डमिदं शास्त्रं सुदर्शनमयं हरेः ॥ ४३ ॥
दिव्यं पाशुपतं शास्त्रं मयैवोक्तं महामुने ।

पहला पतिकाण्ड दूसरा पशुकाण्ड तीसरा पाशकाण्ड इसके पाँच भेद है । एक शुद्धचर्या, दूसरी मिश्रचर्या इस प्रकार दो भेद पहले कह आये हैं कुल ५ भेद हुये । छठां देवकाण्ड, सातवाँ दीक्षाकाण्ड और आठवाँ सायुज्यकाण्ड है । इस प्रकार हमने पाशुपतशास्त्र के आठ भेदों को कहा । हे महामुने ! यह विष्णु का सुदर्शनमय शास्त्र, जिसे दिव्य पाशुपतशास्त्र कहते हैं उसे आठ काण्डों में मैंने ही कहा है ॥ ४१-४४ ॥

पाञ्चरात्रस्वरूपवर्णनम्

यत् तत् सौदर्शनं विष्णोः सात्त्वतं नाम जृम्भितम् ॥ ४४ ॥
भेदो दशविधस्तस्य संक्षेपेण प्रकीर्तितः ।
भगवत्संहिता त्वाद्या तथान्या कर्मसंहिता ॥ ४५ ॥
विद्यामयी तृतीया च चतुर्थी कालसंहिता ।
कर्तव्यसंहिता त्वन्या षष्ठी वैशेषिकी क्रिया ॥ ४६ ॥
सप्तमी गदिता तत्र पूज्या संयमसंहिता ।
अष्टम्यधिकृते चिन्ता नवमी मार्गसंहिता ॥ ४७ ॥
सात्त्वती गीयते शुद्धा दशमी मोक्षसंहिता ।

एतावत् सात्त्वतं शास्त्रमाविरासीत् सनातनात् ॥ ४८ ॥

विष्णु के सङ्कल्प से सात्वत शास्त्र के रूप में जो प्रकाशित हुआ है, उसके दस भेद हैं जो संक्षेप में इस प्रकार से कहे गए हैं—पहली 'भगवत्संहिता', दूसरी 'कर्मसंहिता', तीसरी 'विद्यामयी संहिता', चौथी 'कालसंहिता', पाँचवीं 'कर्त्तव्य संहिता', छठी 'वैशेषिकी', सातवीं 'पूज्या' 'संयम संहिता' के नाम से कही गई है, आठवीं 'चिन्ता संहिता', नवीं 'मार्गसंहिता' और दशवीं 'मोक्षसंहिता' है। इस प्रकार दश संहिताओं में 'सात्वतशास्त्र' कहा गया है। इतने परिमाण वाले सात्वतशास्त्र सनातन पुरुष के द्वारा उत्पन्न हुए हैं ॥ ४४-४८ ॥

एतानि पञ्च शास्त्राणि मूलभूतानि वै मुने।
युगे युगे विभज्यन्ते विष्णुसङ्कल्पचोदितैः ॥ ४९ ॥
तत्तत्कर्तृसमाख्यातास्तास्तास्त्रय्यादिसंहिताः ।
प्रादेशिक्यो निवर्तन्ते ह्रासकालानुकालतः ॥ ५० ॥

हे मुने! त्रयी, सांख्य, योगानुशासन, पाशुपत और सात्वत इस प्रकार पाँच शास्त्र मूलभूत हैं जो युग-युग के अनुसार विष्णु के सङ्कल्प की प्रेरणा से प्रविभक्त होते रहते हैं। उन-उन त्रय्यादि संहिताओं को तथा उनके करने वालों को भी हमने कहा। काल के ह्रास और अनुकूलता तथा प्रदेशों के भेद से इन संहिताओं में भेद हो जाता है ॥ ४९-५० ॥

शास्त्राभासप्रवृत्तौ कारणम्

हिंस्राणां मोहनार्थाय सङ्कल्पा एव वैष्णवाः।
शास्त्राभासाः प्रवर्तन्ते देवब्रह्मर्षिवक्त्रतः ॥ ५१ ॥

हिंसा में रुचि रखने वालों को मोहित करने के लिए वे ही विष्णु के सङ्कल्प (सात्वतशास्त्र) देवता, ब्राह्मण और ऋषियों के मुख से शास्त्राभास के रूप में प्रगट होते हैं ॥ ५१ ॥

उक्तार्थनिगमनम्

एष प्रमाणयोर्व्यूहो दिव्यः सौदर्शनः परः।
शब्दार्थप्रविभागेन गदितस्ते मया मुने ॥ ५२ ॥

हे महामुने! इस प्रकार शब्द और अर्थ वाले प्रमाण का सुदर्शनमय श्रेष्ठ व्यूह हमने आपसे कहा ॥ ५२ ॥

सुदर्शनपर्यायशब्दाः

प्राणो माया क्रिया शक्तिर्भाव उन्मेष उद्यमः।
सुदर्शनं च सङ्कल्पः शब्दाः पर्यायवाचकाः ॥ ५३ ॥

प्राण, माया, क्रिया, शक्ति, भाव, उन्मेष, उद्यम और सुदर्शन सङ्कल्प ये सभी सुदर्शन के समान पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ ५३ ॥

पञ्चानामपि शास्त्राणां भगवति निष्ठा

निष्ठा त्वेकैव शास्त्राणामेतेषां पञ्चवर्त्मनाम् ।
शास्त्रं सुदर्शनं नाम तदर्थो विष्णुरव्ययः ॥ ५४ ॥

पाँच मार्गों का प्रतिपादन करने वाले इन पाँचों शास्त्रों की निष्ठा (लक्ष्य) एक ही है। शास्त्र का नाम सुदर्शन तथा उसका अर्थ अव्ययात्मा विष्णु है ॥ ५४ ॥

प्रमाणमय उद्दिष्टो लेशतोऽयं महामुने ।
व्यूहः सौदर्शनो विष्णोः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् शब्दात्मकप्रमाण-व्यूहविशेषस्वरूपनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ७३८ ॥

हे महामुने ! हमने विष्णु के सुदर्शनमय व्यूह का लेशमात्र यह शब्द प्रमाण आपसे उपदेश रूप में कहा। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥ ५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शब्दात्मक प्रमाणव्यूह-विशेषस्वरूप-निरूपण नामक बारहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

प्रमाणार्थनिरूपणम्

प्रमाणार्थविषयकः प्रश्नः

नारदः—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते मरुतां पते।
भवानीपतये तुभ्यं नमस्ते वृषकेतन ॥ १ ॥

प्रमाणार्थनिरूपण—श्रीनारद ने कहा—हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है। हे देवस्वामिन्! आपको नमस्कार है। आप भवानीपति के लिए नमस्कार है। हे वृषकेतन! आपको नमस्कार है ॥ १ ॥

त्वद्वक्त्रकमलोद्भूता अर्था अवधृता मया।
यत् कारणं च जगतामाधारो जगतां च यः ॥ २ ॥
जगतां यत् प्रमाणं च त्रयं तदवधारितम्।
प्रमाणार्थमिदानीं मे वक्तुमर्हसि शङ्कर ॥ ३ ॥
यश्च यादृक् च यावांश्च प्रमाणास्यार्थ इष्यते।

आपके मुखकमल से उत्पन्न हुये अर्थ को मैंने धारण किया। अब जो इस जगत् का कारण है, जो इस जगत् का आधार है और जो इस जगत् का प्रमाण है ये तीनों बातें भी मुझे ज्ञात हो गईं। अब हे शङ्कर! प्रमाण शब्द का अर्थ मुझसे कहिये। वह प्रमाण जैसा है, जिस रूप का है और जितना कहा जाता है उसे बताइए ॥ २-४ ॥

तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन प्रमाणस्यार्थमुत्तमम् ॥ ४ ॥
विष्णुसङ्कल्पमूलो यो बहुधा प्रविजृम्भते।

प्रमाणशब्दनिर्वचनम्

मितिर्मा गदिता सद्भिः प्रकृष्टा मा प्रमा स्मृता ॥ ५ ॥
प्रकर्षश्च मितेः सोऽयं यद्यथार्थावधारणम्।

धीसाधकतमं यत् तत् प्रमाणमिति शब्द्यते ॥ ६ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद! अब तत्त्वतः प्रमाण शब्द के उत्तम अर्थ को सुनिए। जो विष्णु सङ्कल्प का मूल हो कर अनेक प्रकार से प्रकाशित हो रहा है। मा शब्द का अर्थ मिति है। प्रकृष्टा मा प्रमा है ऐसा सज्जन लोग कहते हैं। मिति का वह प्रकर्ष जिससे यथार्थ में निश्चय किया जाय और जो बुद्धि का साधकतम हो उसे प्रमाण शब्द से कहा जाता है ॥ ४-६ ॥

प्रमाणार्थस्वरूपम्

प्रमाणेनार्थ्यते यद्धि स प्रमाणार्थ उच्यते।
यत् पुंसो हितमत्यन्तं सर्वदेशेषु सर्वदा ॥ ७ ॥
स प्रमाणार्थ इष्टोऽत्र स द्वेधा व्यवतिष्ठते।

तस्य द्वैविध्यम्

हितं च साधनं चेति तयोस्तत्त्वमिदं शृणु ॥ ८ ॥

प्रमाण के द्वारा जो प्राप्त किया जाय वह प्रमाणार्थ है। जो सर्वकाल से सर्वदेश में पुरुष का अत्यन्त हित साधक हो वही प्रमाणार्थ कहा जाता है। इस प्रकार वह दो भेदों में स्थित है—जो हितकारी हो और जो साधन हो। उन दोनों का तत्त्व अब मुझसे सुनिए ॥ ७-८ ॥

हितस्वरूपम्

आत्यन्तिकी निवृत्तिस्तु पुंसो या दुःखसन्ततेः।
तयोपलक्षितं नित्यं सुखं यत् तद्धितं स्मृतम् ॥ ९ ॥

दुःख की परम्परा से जहाँ पुरुष की आत्यन्तिक निवृत्ति हो, उससे उपलक्षित नित्य सुख को 'हित' कहा जाता है ॥ ९ ॥

साधनस्वरूपम्

तस्य योऽव्यभिचारेण साधनत्वं प्रपद्यते।
हितसाधनमित्युक्तः सोऽर्थो वेदान्तपारगैः ॥ १० ॥

उस सुख का व्यभिचार रहित साधन ही 'हितसाधन' है ऐसा अर्थ वेदान्त के निष्णात विद्वानों ने किया है ॥ १० ॥

हितस्वरूपयाथात्म्यम्

स्वरूपभूतं यत् पुंसो हितं सुखमुदीरितम्।
भगवन्मयता सास्य भगवत्तापराह्वया ॥ ११ ॥

पुरुष का जो अपना स्वरूप (आत्मज्ञान) है वही हित है और वही सुख है ऐसा कहा गया है। जो उस पुरुष की भगवन्मयता अथवा दूसरी उसकी भगवत्ता की रूप वाली है ॥ ११ ॥

साधनद्वैविध्यम्

अत्यन्तसाधनं तस्य यत् तद् द्वेधा व्यवस्थितम् ।
विधा ज्ञानमिति त्वेका धर्म इत्यपरा विधा ॥ १२ ॥

उस भगवन्मयता के अथवा भगवत्ता के दो साधन व्यवस्थित हैं । पहला ज्ञान और दूसरा धर्म यह उसके दो साधन हैं ॥ १२ ॥

तयोर्हेतुहेतुमद्भावः

हेतुमद्धेतुभावस्तु विधयोरनयोः स्मृतः ।

ज्ञानद्वैविध्यम्

ज्ञानं तु हेतुमत् तत्र तच्च द्वेधा व्यवस्थितम् ॥ १३ ॥
साक्षात्कारमयं चैकं परोक्षं परमीर्यते ।

तयोरपि हेतुहेतुमद्भावः

हेतुमद्धेतुभावोऽयं द्वयोरपि निरूप्यते ॥ १४ ॥

इन दोनों विधाओं को हेतु-हेतुमद्भाव कहा गया है । उसमें ज्ञान हेतुमान है । वह ज्ञान भी दो प्रकारों से व्यवस्थित है । एक साक्षात्कारमय और दूसरा परोक्ष ज्ञान कहा जाता है । अब इन दोनों का हेतु-हेतुमद्भाव निरूपण करता हूँ ॥ १३-१४ ॥

हेतुमत्त्वपरोक्षं यत् परोक्षं हेतुरुच्यते ।

कर्मणां ज्ञानहेतुत्वम्

अनयोर्ज्ञानयोर्धर्मः स हेतुरिति गीयते ॥ १५ ॥
साक्षात् परोक्षे तत्साध्ये हेतुस्तन्मुखतो ह्यसौ ।

कर्मणां द्वैराश्यम्

अस्यापि द्वे विधे दृष्टे तत्त्वशास्त्राब्धिपारगैः ॥ १६ ॥
साक्षादाराधनात्मैकः परस्तु व्यवधानतः ।

व्यवहितकर्मस्वरूपम्

अपारं तत् परं ब्रह्म शक्तिमत् परमेश्वरः ॥ १७ ॥
नारायणसमाख्यातं नित्यं षाड्गुण्यमव्ययम् ।
विभूतयस्तु तस्येमे ब्रह्माद्याः स्थावरान्तिमाः ॥ १८ ॥
भावनात्रयसंमिश्रास्तत्सुदर्शनजृम्भिताः ।
या सा भूतिः पुरा शक्तेः कोट्यंशेनोदिता मया ॥ १९ ॥
तदंशलेशाद् ब्रह्माद्या विष्णुसङ्कल्पजृम्भिताः ।

जो अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) है वह हेतुमान् है और जो परोक्ष है वह हेतु है । इन दोनों प्रकारों के ज्ञान में धर्म को हेतु रूप में कहा गया है अर्थात् धर्म हेतु है और ज्ञान हेतुमान् है (द्र० १३.१२) । उस साधन हेतुभूत धर्म से साक्षात् ज्ञान और परोक्ष ज्ञान साध्य है उन

दोनों प्रकार के ज्ञान में मुख्य रूप से धर्म ही हेतु है। ज्ञान में हेतुभूत उस धर्म के भी दो भेद तत्त्वशास्त्ररूपी समुद्र के पारगामी विद्वानों ने कहे हैं। पहला आत्मा का साक्षात् आराधन तथा दूसरा व्यवधान रूप से आराधन अर्थात् वह परब्रह्म अपार है, शक्तिमान् है, परमेश्वर है और वह नारायण नाम से प्रसिद्ध है। वह नित्य है, षड्गुणों से युक्त एवं अव्यय है। ब्रह्मादि से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी उसकी विभूतियाँ हैं। वे सभी भावनात्रय से मिश्रित हैं और सुदर्शन रूप सङ्कल्प से प्रगट हुये हैं। पूर्व में हमने जो शक्ति के करोड़हवें अंश में यह सारी विभूति हैं ऐसा कहा है (द्र० ६.५) विष्णु सङ्कल्प से विजृम्भित उसके अंश के लेश से ब्रह्मादि देवता प्रगट होते हैं ॥ १५-२० ॥

एतद्विभूतिमुखतो यो ह्यकामहतैर्नरैः ॥ २० ॥
ब्रह्मार्पणेन क्रियते स धर्मो व्यवधानवान्।

इस प्रकार निष्काम लोग इन ब्रह्मादि विभूतियों के द्वारा ब्रह्मार्पण रूप से जो उपासना करते हैं वह व्यवधान धर्म है (द्र० १३.१७) ॥ २०-२१ ॥

अव्यवहितधर्मस्वरूपम्

विभूतिमत् परं ब्रह्म तदेवाव्यवधानतः ॥ २१ ॥
येन प्रीणयते योगी स साक्षाद्धर्म इष्यते।

पाञ्चरात्रस्याव्यवहितधर्मपरत्वम्

सात्त्वतं शासनं सर्वं तस्यैतस्यावबोधकम् ॥ २२ ॥

वही विभूतिमान् परब्रह्म जब योगियों के द्वारा साक्षात् रूप से आराधना कर प्रसन्न किया जाता है वह साक्षात् धर्म कहा जाता है (द्र० १३.१७)। यह सारा सात्वत शास्त्र उसी परब्रह्म का अवबोधक है ॥ २१-२२ ॥

सशिरस्कस्य वेदस्य व्यवहितधर्मपरत्वम्

यस्तु पूर्वस्त्रयीभागः परभागार्थतां गतः।
अपरस्य स धर्मस्य निष्कामानां निरूपकः ॥ २३ ॥

पूर्व में जिस त्रयीभाग को कहा गया है वह पर भागार्थता को प्राप्त कर (परब्रह्म की प्रतिपादक होकर) निष्कामों के (व्यवधान युक्त) अपर धर्म का निरूपक है ॥ २३ ॥

पाशुपतस्यैकविभूतिविषयकधर्मपरत्वम्

धर्म एकविभूतिस्थो मया पाशुपते स्मृतः।
उग्रव्रतैर्नरैः शश्वद् ब्रह्मप्रीत्यै स साध्यते ॥ २४ ॥

एक विभूति में रहने वाला पाशुपत धर्म, जिसका प्रणयन मैंने किया है, उसको ब्रह्मप्रीति के लिए उग्र व्रत वाले लोग सिद्ध करते हैं ॥ २४ ॥

सांख्यस्य परोक्षज्ञानफलकत्वम्

साक्षाच्च व्यवधानाच्च यत् तन्मोक्षस्य साधनम्।
परोक्षं तत् प्रसङ्ख्यानं ज्ञानं सांख्येन चिन्त्यते ॥ २५ ॥

वह धर्म चाहे साक्षात् आराधित हो अथवा परोक्ष रूप से दोनों ही मोक्ष के साधन हैं। उनमें यह सांख्य शास्त्र परोक्ष ज्ञान का प्रसङ्गवान करता है ॥ २५ ॥

वेदान्तानामपरोक्षज्ञानफलकत्वम्

अन्तरङ्गशमाद्यङ्गभक्तिश्रद्धापुरःसरम् ।
त्रय्यन्तैर्ब्रह्मविज्ञानमपरोक्षं विभाव्यते ॥ २६ ॥

वेदान्त शास्त्र के द्वारा अन्तरङ्ग शम, दम एवं तितिक्षादि अङ्गों से युक्त भक्तिश्रद्धा-पुरःसर अपरोक्ष ज्ञान का उपदेश किया गया है ॥ २६ ॥

योगस्यापरोक्षज्ञानाङ्गयमादिपरत्वम्

बहिरङ्गान्तरङ्गाख्ययमाद्यङ्गकलापवान् ।
चित्तवृत्तिनिरोधात्मा योगो योगानुशासने ॥ २७ ॥
शश्वदभ्यासवैराग्यपरेशप्रणिधानतः ।
साक्षात्कारावभासांख्यसिद्धशुद्धापवर्गदः ॥ २८ ॥

बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग कहे जाने वाले यम नियमादि अङ्गों वाले जिस चित्तवृत्ति-निरोधात्मक योग का योगानुशासन में उपदेश किया गया है वह निरन्तर अभ्यास, वैराग्य एवं परमात्मा में प्रणिधान करने से परब्रह्म के साक्षात् का अवभास कराने वाला है और सिद्धि प्रदान करने वाला तथा शुद्ध अपवर्ग को देने वाला है ॥ २७-२८ ॥

गुणप्रधानभावेन सर्वत्र सर्वोपदेशः

यथोक्ततत्त्वविज्ञानं नानाहेतुविधान्वितम् ।
धर्मो बहुविधश्चेति सर्वं सर्वैर्निरूप्यते ॥ २९ ॥

पूर्व में हमने जिस तत्त्वज्ञान को कहा है वह अनेक हेतुओं से अनेक प्रकार का है। धर्म भी अनेक प्रकार के हैं। इस धर्म का निरूपण सभी शास्त्र करते हैं ॥ २९ ॥

शास्त्रेषु विविधफलान्तरसाधनान्तरोपदेशस्याभिप्रायकथनम्

हितप्रवृत्तेर्लोकानां तनूकाराय पाप्मनाम् ।
रागद्वेषप्रयुक्तानामायुर्वेदोपदेशवत् ॥ ३० ॥

जिस प्रकार आयुर्वेद का उपदेश सत्य होने से सबके लिए लाभकारी है, उसी प्रकार रागद्वेष से लिप्त होने वाले पापियों के पाप के प्रशमन हेतु तथा लोकमात्र को हित में प्रवृत्त करने के लिए धर्म आवश्यक है ॥ ३० ॥

नानारूपफलावाप्त्यै नानानियमभेदिताः ।
शास्त्रैर्धर्मा विधीयन्ते नानारूपा धियस्तथा ॥ ३१ ॥

यतः इस जगत् में अनेक प्रकार की बुद्धि वाले लोग हैं, इसलिए ऐसे लोगों को अनेक प्रकार के रूपों वाले फल की प्राप्ति के लिए तथा अनेक प्रकार के नियमों के भेद वाले धर्म का निरूपण शास्त्रों ने किया है ॥ ३१ ॥

लौकिकपुरुषार्थद्वयोपक्षेपः

तदित्थं सविशेषं ते पुमर्थद्वयमीरितम् ।
अथान्यल्लौकिकं शास्त्रैः पुमर्थद्वयमीरितम् ॥ ३२ ॥

हे महामुने ! इस प्रकार हमने आपके लिए विशेष रूप से दो प्रकार के पुरुषार्थों का वर्णन किया । जिसमें लौकिक तो लोक सिद्ध है और अलौकिक शास्त्रों के द्वारा जाना जाता है ॥ ३२ ॥

अर्थकामौ तयोः कामः स्मृतो वैषयिकेरितः ।
अर्थो गोभूहिरण्यादिप्रेक्षोत्थानफलात्मकः ॥ ३३ ॥

इसके अतिरिक्त अर्थ और काम दो पुरुषार्थ हैं, जिनमें विषयों में रहने वाला काम रूप पुरुषार्थ है और गाय, भूमि, हिरण्यादि से सापेक्ष उन्नति रूप फल देने वाला अर्थ रूप पुरुषार्थ है ॥ ३३ ॥

त्रिवर्गस्य मिथः साध्यसाधनभावविवेकः

अर्थो धर्मस्य कामस्य तथार्थस्यापि साधनम् ।
धर्मो धर्मस्य कामस्य तथार्थस्यापि साधनम् ॥ ३४ ॥
कामो धर्मस्य कामस्य तथार्थस्यापि साधनम् ।
अर्थः कामश्च सर्वत्र व्यभिचारेण साधनम् ॥ ३५ ॥

यह अर्थ, धर्म, काम तथा अर्थ का भी साधन है । धर्म भी धर्म, काम तथा अर्थ का साधन है । उसी प्रकार काम भी धर्म, काम तथा अर्थ का साधन है । जिनमें अर्थ और काम सभी पुरुषार्थों में व्यभिचरित रूप से साधन कहे गए हैं अर्थात् कहीं बिना काम के अर्थावाही तथा धर्मावाप्ति हो जाती है और कहीं बिना अर्थ के कामावाप्ति तथा धर्मावाप्ति हो जाती है ॥ ३४-३५ ॥

धर्मः सर्वस्य साध्यस्य नियमेनैव साधनम् ।
तदेतत् त्रितयं प्रोक्तं त्रिवर्ग इति पण्डितैः ॥ ३६ ॥

धर्म सभी साध्य पुरुषार्थों में नियमतः साधन है अर्थात् बिना धर्म के न तो काम मिलता है और न अर्थप्राप्ति ही सम्भव है । पण्डितों ने इन्हें (धर्म, काम और अर्थ) ही त्रिवर्ग कहा है ॥ ३६ ॥

मोक्षस्य सर्वदा साध्यत्वमेव

मोक्षश्च साध्य एवेति पुरुषार्थचतुष्टयम् ।

अर्थकामयोः प्रमाणनिरूपणम्

दण्डनीतिः सवार्ता सा सोपवेदचतुष्टया ॥ ३७ ॥
प्रमाणत्वेन निर्दिष्टा पण्डितैरर्थकामयोः ।

मोक्ष साध्य है वह किसी का साधन नहीं होता । यहाँ तक पुरुषार्थ चतुष्टय का

वर्णन किया गया । पण्डितों ने अर्थ और काम के विषय में दण्डनीति और वार्त्ता के (जीवन साधन) के सहित चार उपवेदों (वास्तुवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और आयुर्वेद) को प्रमाणत्वेन निर्दिष्ट किया है ॥ ३७-३८ ॥

इतिहासादेस्तत्त्वज्ञानसहकारित्वम्

इतिहासपुराणाख्य उपवेदो हि यः स्मृतः ॥ ३८ ॥
सहायभावं शास्त्राणां तत्त्वज्ञाने व्रजत्यसौ ।
इति ते लेशतः प्रोक्ता पुरुषार्थचतुष्टयी ॥ ३९ ॥

पूर्व में हमने जो इतिहास पुराण नामक उपवेद कहे हैं । वह शास्त्रों के तत्त्वज्ञान में सहायक मात्र हैं । इस प्रकार हे महामुने ! हमने लेश मात्र पुरुषार्थ चतुष्टयी का वर्णन किया ॥ ३८-३९ ॥

धर्मादीनामन्तरङ्गसाधनानि

अन्तरङ्गममुष्यास्तु साधनं शृणु नारद ।
निर्व्याजा निरुपस्कारा दया धर्मस्य साधनम् ॥ ४० ॥
हेतुरुत्थानमर्थस्य देशकालोपपादितम् ।
हेतुः कामस्य सङ्कल्पो निर्व्याजो निरुपस्कृतः ॥ ४१ ॥
हेतुस्तु सर्वसंन्यासो मोक्षे ज्ञानपुरस्कृतः ।

अब हे नारद ! इस पुरुषार्थ चतुष्टयी के अन्तरङ्ग साधनों को सुनिए । बिना व्याज के और बिना अपेक्षा के जो दया की जाती है वह धर्म रूप पुरुषार्थ में साधन है । अर्थ का साधन हेतु उन्नति है जो देश और काल पर आधारित है । निर्व्याज एवं अपेक्षारहित सङ्कल्प काम का हेतु (साधन) है । इसके अतिरिक्त ज्ञान हो जाने पर सब कुछ का त्याग करना यह मोक्ष में हेतु (साधन) है ॥ ४०-४२ ॥

तेषामेव बहिःसाधनानि

न्याय्यं धर्मादि धर्मस्य बहिःसाधनमुच्यते ॥ ४२ ॥
बहिःसाधनमर्थस्य तन्त्रावापादिचिन्तनम् ।
कामे पाणिग्रहाद्युक्तं बहिरङ्गं विचक्षणैः ॥ ४३ ॥
निष्कामधर्मकृत्यादि बहिर्मोक्षस्य साधनम् ।
विजृम्भितमिदं भूतेः पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ ४४ ॥
सङ्कल्पो वैष्णवस्तस्य विजृम्भाहेतुरुच्यते ।

न्याय एवं धर्म तो धर्म के बहिरङ्ग साधन हैं तन्त्र एवं आवापादि चिन्तन अर्थ के बहिरङ्ग साधन हैं और पाणिग्रहण पूर्वक भार्या की अवाप्ति यह काम के बहिरङ्ग साधन हैं इसी प्रकार निष्काम धर्म कृत्यादि करते रहना यह मोक्ष का बहिरङ्ग साधन है । यही भूतियों के पुरुषार्थ चतुष्टय का विलास है जिसमें वैष्णव सङ्कल्प हेतु रूप सर्वत्र व्याप्त है ऐसा कहा गया है ॥ ४२-४५ ॥

अध्यायार्थोपसंहारः

इति ते सकला प्रोक्ता प्रमाणार्थगतिः परा।
ससाधना सप्रकारा किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां प्रमाणार्थ-
निरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
॥ आदितः श्लोकाः ७८३ ॥

हे महामुने ! इस प्रकार हमने अत्यन्त उत्कृष्ट प्रमाणार्थ का साधन का उसके प्रकार सहित निरूपण किया। अब पुनः आप क्या सुनना चाहते हैं ॥ ४५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के प्रमाणार्थ
निरूपण नामक तेरहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १३ ॥

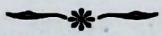

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

जीवस्य संसारहेतुतदुद्धरणप्रकारवर्णनम्

तत्रादौ मुक्तिविषयः पुनः प्रश्नः

नारदः—

अज्ञानतिमिरप्लोषिललाटनयनत्विषे ।
नमस्ते त्रिपुराराते नमस्तेऽन्तकविद्विषे ॥ १ ॥

जीव की संसार प्राप्ति के हेतु और उससे उद्धार होने के उपाय—श्रीनारद ने कहा—हे ललाट में रहने वाले तृतीय नेत्र की अग्नि से अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाले ! हे त्रिपुर के शत्रु कालान्तक ! आपको नमस्कार है ॥ १ ॥

पुरुषार्थाः श्रुताः सर्वे मुख्यगौणविकल्पिताः ।
पुरुषार्थः श्रुतो मुख्यस्तत्र मुक्त्यभिसंज्ञितः ॥ २ ॥
भगवत्तामयी प्रोक्ता मुक्तिश्च त्रिपुरद्विषा ।
तस्याश्च साधनं साक्षात् तत्त्वज्ञानं द्विधा स्थितम् ॥ ३
साधनं तस्य च प्रोक्तो धर्मो निरभिसन्धिकः ।
भूयो विस्तरतः शंस मुक्तिं तां चन्द्रशेखर ॥ ४ ॥

मैंने मुख्य और गौड़ रूपों से विकल्पित दोनों प्रकार के पुरुषार्थों को श्रवण किया। जिसमें आप ने यह बताया कि मनुष्य का मुख्य पुरुषार्थ मुक्ति संज्ञक है (द्र० १३.३७)। साथ ही त्रिपुर का वध करने वाले आप ने यह भी बताया कि वह मुक्ति भगवत्तामयी (भगवान् में सायुज्य, सामीप्य, सृष्टि तथा सारूप्य रूप से मिल जाना) है। उसका साधन भूत तत्त्वज्ञान दो प्रकार का है (द्र० १३.१४)। अब हे चन्द्रशेखर ! जिस मुक्ति का साधन निष्काम धर्म है (द्र० १३.४४) उस मुक्ति का वर्णन विस्तारपूर्वक पुनः कीजिये ॥ २-३ ॥

यतो यस्य च या मुक्तिस्तच्च मे द्वितयं वद ।
न ह्यन्यं प्रष्टुमर्हामि त्वामृते सर्ववेदिनम् ॥ ५ ॥

जिस कारण से और जिसकी जैसी मुक्ति होती है इन दोनों बातों को आप मुझे बताइये। आप सर्वज्ञ हैं। इसलिए मैं दूसरे से नहीं पूछना चाहता ॥ ५ ॥

जीवस्वरूपसंक्षेपः

अहिर्बुध्न्यः—

अनादिरपरिच्छेद्यश्चिदानन्दमयः पुमान्।
भगवन्मय एवायं भगवद्भावितः सदा॥ ६ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—यह पुरुष अनादि है और किसी के द्वारा परिच्छेद का विषय नहीं है। यह चिदानन्दस्वरूप एवं भगवन्मय है और भगवान् से भावित (उद्भूत) है॥ ६ ॥

जीवस्य भगवच्छक्त्यंशलेशत्वम्

या सा शक्तिर्महासत्ता विष्णोस्तद्धर्मधर्मिणी।
तस्याः कोट्यर्बुदांशेन शक्ती द्वे कथिते तव॥ ७ ॥
भूतिश्चेति क्रिया चेति भाव्यभावकसंज्ञिते।
भूतिः सा क्रियया ज्वाला मरुतेव प्रणर्त्यते॥ ८ ॥
नानाभेदवती भूतेर्विभूतिः कथिता पुरा।
शुद्ध्यशुद्धिवशाद् द्वेधा शुद्धा सा बहुधोदिता॥ ९ ॥
पुंशक्तिः कालमध्यन्या पुमान् सोऽयमुदीरितः।

विष्णु की शक्ति, जिसे महाशक्ति भी कहते हैं, वह भी उन्हीं के धर्म से धर्मिणी है। उसके करोड़हवें अथवा अरबहवें अंश से दो शक्तियों का उदय होता है, यह हम आपसे कह आये हैं (द्र० ३.५, ३.२७-२८)। उसका एक भेद भूति है और दूसरा भेद क्रिया है। उसी शक्ति की भाव्य भावक संज्ञा है (द्र० ७.६६)। जिस प्रकार वायु के चलने से ज्वाला बढ़ती है उसी प्रकार वह भूति भी क्रिया शक्ति के द्वारा नाचती है (द्र० ७.१३)। उस भूति की विभूति शुद्ध और अशुद्ध इनमें दो में ही से युक्त होकर नाना भेदों से युक्त है यह भी हम पहले कह आये हैं (द्र० ७.१९)। उसके भी पुरुष, शक्ति और काल ये तीन भेद हैं॥ ७-१० ॥

तस्य कालवश्यत्वात् संसारप्राप्तिः

कालशक्तिविकारस्थः सोऽयं संसरति ध्रुवम्॥ १० ॥

साधननिष्पत्त्या स्वरूपाविर्भावः

सोऽयं शास्त्रीयमासाद्य मार्गं स्वेनाभिजायते।

उसमें जो पुरुष है वही कालशक्ति से विकार को प्राप्त कर संसार में निश्चित रूप से प्रवेश कर संसारी बन जाता है। वही शास्त्रीय मार्ग को प्राप्त कर स्वयं उत्पन्न होता है॥ १०-११ ॥

तत्र पुनः प्रश्नः

नारदः—

भगवन् देवदेवेश त्रिपुरान्तक शङ्कर॥ ११ ॥
कालशक्तिविकारस्थः कथं संसरति ध्रुवम्।

कथं वोपायमासाद्य पुमान् स्वेनाभिजायते ॥ १२ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे त्रिपुरान्तक ! हे शङ्कर ! पुरुष काल शक्ति के विकार से विकृत होकर किस प्रकार निश्चित रूप से संसारी हो जाता है और किन उपायों को प्राप्त कर वह स्वयं संसार में उत्पन्न होता है ॥ ११-१२ ॥

भगवत्स्वातन्त्र्यस्यापर्यनुयोज्यत्वम्

अहिर्बुध्न्यः—

सर्वैरननुयोज्यं तत् स्वातन्त्र्यं दिव्यमीशितुः ।
अवाप्तविश्वकामोऽपि क्रीडते राजवद्वशी ॥ १३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—ईश्वर का वह दिव्य स्वातन्त्र्य सब लोगों की बुद्धि से परे है । यद्यपि वह पूर्णकाम है और वशी (जितेन्द्रिय) है फिर भी जैसे राजा के मन में क्रीड़ा करने की इच्छा होती है उसी प्रकार वह भी संसार की रचना कर कौतुक करना चाहता है ॥ १३ ॥

भगवत्सङ्कल्पस्य पञ्चधा विभागः

सङ्कल्पो नाम यस्तस्य सुदर्शनसमाह्वयः ।
सत्यप्यनन्तरूपत्वे पञ्चधा स विजृम्भते ॥ १४ ॥

उसका जो सुदर्शन नामक सङ्कल्प है यद्यपि उसके अनन्त रूप हैं फिर भी वह पाँच रूपों में प्रविभक्त किया गया है ॥ १४ ॥

सृष्टिस्थित्यन्तकारेण निग्रहानुग्रहात्मना ।

निग्रहशक्त्या जीवस्याकारादितिरोधानम्

तिरोधानकरी शक्तिः सा निग्रहसमाह्वया ॥ १५ ॥

प्रथम सृष्टि, दूसरा स्थिति, तीसरा प्रलय, चौथा निग्रह और पाँचवाँ अनुग्रह ये उसके पाँच भेद है । उसकी जो तिरोहित करने वाली शक्ति है उसी को निग्रहात्मिका शक्ति कहते हैं ॥ १५ ॥

पुमांसं जीवसंज्ञं सा तिरोभावयति स्वयम् ।
आकारैश्वर्यविज्ञानतिरोभावनकर्मणा ॥ १६ ॥

वही जीव संज्ञक पुरुष को आकार से, ऐश्वर्य से तथा विज्ञान से अपने तिरोभाव कर्म के द्वारा तिरोहित करती है ॥ १६ ॥

तिरोधायकपर्यायशब्दाः

मायाविद्या महामोहो महातामिस्रमित्यपि ।
तमो बन्धोऽथ हृद्ग्रन्थिरिति पर्यायवाचकाः ॥ १७ ॥

माया, विद्या, महामोह, महातामिस्र, तम, बन्ध एवं हृद्ग्रन्थि ये उस तिरोधायक (निग्रह) के पर्यायवाची शब्द हैं ॥ १७ ॥

जीवाणुत्वादि

आकारस्य तिरोधानादणुत्वं पुंस इष्यते ।
ऐश्वर्यस्य तिरोभावादकिंचित्करता स्मृता ॥ १८ ॥

जब पुरुष रूप जीव के आकार का तिरोधान हो जाता है तब वही पुरुष अणुत्व को प्राप्त कर लेता है । जब उसके ऐश्वर्य का तिरोभाव हो जाता है तब उसमें अकिञ्चित्करता आ जाती है ॥ १८ ॥

पुंसो विज्ञानसङ्कोचादज्ञत्वं समुदाहृतम् ।
तिरोहितः पुमाञ्छक्त्या विष्णुसङ्कल्परूपया ॥ १९ ॥
अणुः किंचित्करश्चेति किंचिज्ज्ञश्चेति कथ्यते ।

अणुत्वादेर्मलत्वं बन्धत्वं च

मलत्रयमिदं प्रोक्तं बन्धत्रयमिदं बुधैः ॥ २० ॥

जब उसके ज्ञान का तिरोभाव हो जाता है तब उसमें ज्ञान के सङ्कुचित हो जाने से अज्ञता आ जाती है । इस प्रकार पुरुष रूप जीव जब विष्णु सङ्कल्प रूप शक्ति से तिरोहित हो जाता है तब उसमें अणु किञ्चित्कर तथा किञ्चिज्ज्ञत्व कहा जाता है । बुद्धिमानों ने इसी को तीन मल या तीन बन्धन कहा है ॥ १९-२० ॥

अविद्यादिभिर्मलविवृद्धिः

तिरोभावनशक्त्यैवं वैष्णव्या बन्धमेयुषः ।
अविद्यास्मित्वरागाद्या मलं समुपचिन्वते ॥ २१ ॥

इस प्रकार वैष्णवी शक्ति की तिरोभावन शक्ति से बन्धन को प्राप्त हुये उस जीव को अविद्या, अस्मिता तथा रागादि मल घेर लेते हैं ॥ २१ ॥

इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारेच्छा

क्लिश्यद्भिः क्लेशितः क्लेशैरविद्यादिभिरीदृशैः ।
नुन्नः प्रेप्साजिहासाभ्यामागमाननुसम्पतन् ॥ २२ ॥
इष्टार्थप्राप्तयेऽनिष्टविघाताय च लालसः ।
कर्म तत् कुरुते कामी शुभाशुभफलोदयम् ॥ २३ ॥

उस समय संसार में पड़ा हुआ, क्लेश देने वाली अविद्या के क्लेशों को प्राप्त करता हुआ वह जीव प्रेप्सा (अपने पूर्व स्वरूप ईश्वरत्व) तथा जिहासा (मायामय जीवत्व के परित्याग) से अभिप्रेरित होकर अपने इष्टार्थ की प्राप्ति के लिए तथा अनिष्ट निवारण की इच्छा करता हुआ कामनावश शुभाशुभ फल देने वाले उन-उन कर्मों को करता है ॥ २२-२३ ॥

कर्मवशात् जात्यायुर्भोगप्राप्तिः

ततः कर्मविपाकस्थः शुभाशुभविमिश्रितान् ।
जात्यायुरनुबन्धान् स प्राप्नोति विधिचोदितः ॥ २४ ॥

तदनन्तर उन-उन कर्मों के विपाक (परिणाम) स्वरूप दैववश शुभाशुभ से मिले हुये जाति, आयु और भोगों को प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

सुखादिवासनास्तास्ताः सञ्चिनोति शनैः शनैः ।
एषा निग्रहशक्तेस्तु तिरोधानपरम्परा ॥ २५ ॥

फिर धीरे-धीरे उन-उन सुख की वासनाओं का सञ्चय करता है इस प्रकार तिरोधान शक्ति की परम्परा उसके लिए बनी रहती है ॥ २५ ॥

तिरोधाने सहकारिकारणम्

अंशौ यौ कालशक्त्याख्यौ भूतेः समनुवर्तिनौ ।
ताभ्यां पुंसस्तिरोभावं तनुते निग्रहात्मिका ॥ २६ ॥

भूति के और दो भेद जिनका नाम काल और शक्ति है वे भी उस तिरोधान के साथ ही रहती हैं । इस प्रकार उन दोनों के साथ निग्रहात्मिका सुदर्शनाख्या शक्ति पुरुष के तिरोभाव को विस्तृत करती रहती है ॥ २६ ॥

सृष्ट्यादीनां सञ्चितकर्ममूलकत्वम्

अजस्य त्वनया शक्त्या तिस्रः सृष्ट्यादिशक्तयः ।
सञ्चितैः सम्प्रवर्तन्ते तैस्तैः कर्मभिरूर्जितैः ॥ २७ ॥

परमात्मा की इसी शक्ति से तीनों सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय रूप वाली शक्तियाँ उन-उन किये गए संचित कर्मों से जीव को संसार बन्धन में प्रवृत्त करती रहती हैं ॥ २७ ॥

सहेतुकस्य बन्धस्यानादित्वम्

बन्धोऽनादिरयं प्रोक्तो बन्धहेतुश्च नादिमान् ।

इस प्रकार जीव का बन्ध अनादि है और उसके बन्ध का हेतु भी आदिमान् नहीं (अनादि) है ॥ २८ ॥

बद्धजीवे भगवत्कृपाविर्भावः

एवं संसृतिचक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः ॥ २८ ॥
जीवे दुःखाकुले विष्णोः कृपा काप्युपजायते ।

कृपाया अनुग्रहशक्तिपातरूपत्वम्

या ह्युक्ता पञ्चमी शक्तिर्विष्णुसङ्कल्परूपिणी ॥ २९ ॥

इस प्रकार संसार चक्र में अपने कर्म के द्वारा भ्रमण करते हुये दुःख से आकुल जीव पर कोई अहैतुकी भगवत्कृपा उत्पन्न होती है । जिसे हम विष्णु की सङ्कल्परूपिणी पञ्चमी शक्ति कह आये हैं (द्र० १४.१४-१५) ॥ २८-२९ ॥

अनुग्रहात्मिका शक्तिः सा कृपा वैष्णवी परा ।
शक्तिपातः स वै विष्णोरागमस्थैर्निगद्यते ॥ ३० ॥

वही भगवान् की कृपा विष्णु की अनुग्रहात्मिका शक्ति है। आगमशास्त्र को जानने वालों ने इसी को विष्णु का शक्तिपात कहा है ॥ ३० ॥

कृपाविषयस्य जीवस्य कर्मसाम्यप्राप्तिः

अनुग्रहात्मना शक्त्या सुदर्शनमयात्मना।
स्वीकृतो हि यदा विष्णोः करुणावर्षरूपया ॥ ३१ ॥
समीक्षितस्तदा सोऽयं करुणावर्षरूपया।
कर्मसाम्यं भजत्येव जीवो विष्णुसमीक्षितः ॥ ३२ ॥
शक्तिपातः स वै जीवमुत्तारयति संसृतेः।
कर्मणी च समे तत्र तूष्णींभावमुपागते ॥ ३३ ॥

सुदर्शनमयी अनुग्रहात्मिका विष्णु की करुणावर्षिणी शक्ति जब जीव को इस प्रकार अपनाती है तब उसकी करुणावर्षा से देखा जाता हुआ यह विष्णु समीक्षित जीव अपने (सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण) कर्मों को सम बना लेता है अर्थात् उसके ये तीनों कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार कर्मों के साम्य हो जाने पर और उनके द्वारा होने वाले जीव के भोगों के नष्ट हो जाने पर वह शक्तिपात जीव को संसार रूप संसृति से पार कर देता है ॥ ३१-३३ ॥

सदृष्टान्तं कर्मणामुदासितृत्वोपपादनम्

यथा हि मोषकाः पान्थे परिबर्हमुपेयुषि।
निवृत्तमोषणोद्योगाः समाः सन्त उदासते ॥ ३४ ॥
अनुग्रहात्मिकायास्तु शक्तेः पातक्षणे तथा।
उदासाते समीभूय कर्मणी ते शुभाशुभे ॥ ३५ ॥

जैसे मालटाल लिए हुये किसी धनी मुसाफिर को लुटेरे भयवश लूट सकने में असमर्थ होने के कारण जैसे-तैसे कुछ करने में असमर्थ रह कर उदासीन हो जाते हैं। उसी प्रकार भगवान् की अनुग्रहात्मिका शक्ति के पातक्षण में शुभाशुभ कर्म भी समतल जैसे होकर अकिञ्चित्कर हो जाते हैं ॥ ३४-३५ ॥

मुमुक्षोर्मोक्षोपायप्राप्तिप्रकारः

तत्पातानन्तरं जन्तुर्युक्तो मोक्षसमीक्षया।
प्रवर्तमानवैराग्यो विवेकऽभिनिवेशवान् ॥ ३६ ॥

उस अनुग्रहात्मिका भगवच्छक्ति के पात होते ही जीव मोक्ष की जिज्ञासा से वैराग्य में प्रवृत्त हो जाता है और विवेक में अपना अभिनिवेश (हठ) करने लगता है ॥ ३६ ॥

आगमाननुसञ्चिन्त्य गुरूनप्युपसद्य च।
लब्धसत्त्वप्रकारैस्तैः प्रबुद्धो बोधपालनः ॥ ३७ ॥

शास्त्रों को देखता हुआ गुरुओं के पास जाकर उन-उन सत्त्वों के प्रकारों को प्राप्त कर प्रबुद्ध हो जाता है और मान-ज्ञान प्राप्ति के प्रयत्न में तत्पर हो जाता है ॥ ३७ ॥

अक्षिण्वन् गुरुसम्बोधं क्षिण्वन् क्लेशादिकानपि ।
विचिन्वन् सर्वतः सारमुपचिन्वन् परां धियम् ॥ ३८ ॥
सांख्ययोगसमावेशी सत्कर्मनिरतः स्वयम् ।
उग्रव्रतधरो ज्ञानी वेदान्तज्ञाननिश्चलः ॥ ३९ ॥
संहतैर्विगृहीतैश्च मार्गैरिभिः सुनिश्चयैः ।
क्लेशेन महता स्थानं वैष्णवं प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

गुरु प्राप्त ज्ञान को बढ़ाते हुये, अविद्या जनित क्लेशादि को विनष्ट करते हुये, सब प्रकार से तत्त्वों की खोज करते हुये परमात्मा में बुद्धि लगाकर सांख्य योग में आविष्ट हो जाता है। इस प्रकार सत्कर्म में लगकर कठिन तपस्या करते हुये ज्ञानी जीव वेदान्त ज्ञान में अपनी अविचल श्रद्धा रखते हुये समुदायात्मक अथवा पृथक् मार्ग द्वारा निश्चित रास्ते से महान् क्लेशों को सहता हुआ वैष्णव पद को प्राप्त करता है ॥ ३८-४० ॥

लब्धज्ञानस्य मोक्षप्राप्तिः

सम्प्राप्य ज्ञानभूयस्त्वं निर्मलीकृतचेतनः ।
अनाविलमसंक्लेशं वैष्णवं तद्विशेत् पदम् ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां जीवस्य संसारहेतु-
तदुद्धरणप्रकारवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ८२४ ॥

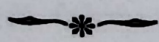

तदनन्तर प्रचुर ज्ञानावाप्ति से अपने चित्त को निर्मल बना कर सर्वथा शुद्ध और दुःखरहित विष्णु पद में प्रवेश कर जाता है ॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के जीव के
संसार हेतु तथा उससे उद्धार नामक चौदहवें अध्याय की शैवागमावतार
महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ०
सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १४ ॥

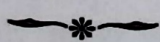

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अधिकारिनिरूपणम्

ध्यातो धृतात्मभिश्चक्रमध्यस्थो मधुसूदनः ।
पायादपायात् संसाररूपकूपात्तु नः परः ॥

चक्र के मध्य में रहने वाले पर-मधुसूदन, जिनका ध्यान धृतात्मा लोग करते हैं, वे इस संसार रूपी कूप से हमारी रक्षा करें ।

अधिकारिविषयः प्रश्नः

नारदः—

देवदेव नमस्तेऽस्तु वृषकेतन शङ्कर ।
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं दिव्यं रहस्यं ज्ञानमुत्तमम् ॥ १ ॥

अधिकारी निरूपण—हे वृषकेतन ! हे शङ्कर ! आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! मैंने आपकी कृपा से दिव्य एवं रहस्यपूर्ण उत्तम ज्ञान का श्रवण किया ॥ १ ॥

प्रश्नशेषं मम ब्रूहि यत् पृष्टोऽसि मया पुरा ।
पुरुषार्था हि ये प्रोक्ताश्चत्वारः सकलाश्रयाः ॥ २ ॥
के हि तानधिकुर्वन्ति तन्मे विस्तरतो वद ।

हे प्रभो ! अब पूर्व में पूछे गए मेरे शेष प्रश्न का उत्तर दीजिये । सब लोगों को आश्रय देने वाले जो चार पुरुषार्थ कहे गए हैं उनके अधिकारी कौन-कौन लोग हैं? हमें विस्तार पूर्वक कहिये ॥ २-३ ॥

तत्प्रतिवचने प्रथमं सात्त्विकरीतिप्रतिपादनम्

अहिर्बुध्न्यः—

ये हि ते मनवो नाम विद्यागर्भाः पुरोदिताः ॥ ३ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा इति विभेदिताः ।
मानवास्तत्प्रसूता ये तथा मानवमानवाः ॥ ४ ॥
मुखबाहूरूपादेभ्यो ब्राह्मणाद्याः समुत्थिताः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा इत्यपि ते स्मृताः ॥ ५ ॥

द्वितये ते यथायोगमधिकुर्वन्ति तानिमान् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—पूर्व में हमने विद्यागर्भ के उत्पन्न होने वाले जिन मनुओं को कहा है और जिनके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार भेद हैं, वे मानव तथा उन मानवों से उत्पन्न मानव ब्राह्मणादि जो मुख, बाहू, ऊरु और पैर से उत्पन्न हुये हैं । जिन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा जाता है । वे इस पुरुषार्थ के दो-दो भागों (मोक्ष, धर्म और अर्थ, काम) में अपनी योग्यता के अनुसार इस पर अधिकार करते हैं ॥ ३-६ ॥

मनुसन्ततिजानां पाञ्चरात्राधिकारः

ये पुरा कथिताः पञ्च सिद्धान्ताः सर्वसम्मताः ॥ ६ ॥
मनुसन्ततिजास्तत्र सात्त्वतं त्वधिकुर्वते ।

तेषां तन्निष्ठया भगवत्प्राप्तिः

त्रयोदशविधं कर्म गुणैः सांयमिकैर्युतम् ॥ ७ ॥
कुर्वाणाः पञ्चकालस्थास्ते यान्ति पुरुषोत्तमम् ।

इसके पहले जो सर्वसम्मत पाँच सिद्धान्त हम पहले कह आये हैं (द्र० १२.३) उस सात्वतशास्त्र पर वे मनु की सन्ततियों से उत्पन्न लोग अधिकार रखते हैं । इस प्रकार समतादि गुणों से युक्त तेरह प्रकार के कर्मों को पाँचों काल में करते हुये वे मनुसन्तति से उत्पन्न लोग पुरुषोत्तम को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ६-८ ॥

तेषु त्रैवर्णिकानां चातुराश्रम्यम्

विहितं चातुराश्रम्यं त्रयाणां तत्र नारद ॥ ८ ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो भिक्षुरित्यपि ।

तेषां शुश्रूषया शूद्रस्य भगवत्प्राप्तिः

शूद्रः शुश्रूषया तेषां भगवत्कर्मसाधनात् ॥ ९ ॥
अरागरोषलोभः सञ्छनैर्याति हरेः पदम् ।

हे नारद ! उनमें तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनके लिए क्रमशः ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम विहित हैं और शूद्र उनकी सेवापूर्वक भगवत्कर्म करता हुआ राग, रोष और लोभ से रहित होकर धीरे-धीरे विष्णु पद को प्राप्त करता है ॥ ८-१० ॥

अन्यतमाश्रमस्थानामपि तेषां मोक्षसिद्धिः

सद्ब्रह्मयाजिनस्ते वै शुद्धाः स्वाध्यायतत्पराः ॥ १० ॥
अनन्ययाजिनो विप्रा आसृष्टेरधिकारिणः ।
मातापितृभ्यां तरुणाः प्राग्बुद्धेः साधु पालिताः ॥ ११ ॥
आचार्यनयसम्पन्नास्ते शुश्रूषणतत्पराः ।
सम्यक् सप्तपदार्थज्ञा नियमस्थाः समाहिताः ॥ १२ ॥

प्रकृतिज्ञानसम्पन्नाः प्रमादपरिवर्जिताः ।
त्यक्तकामाः सुधृतयः शुचयः संयतेन्द्रियाः ॥ १३ ॥
सिद्धा नाम महाभागाः समाप्तज्ञाननिश्चयाः ।
धिया समाप्तकर्माणश्चरणैरन्विताः शुभैः ॥ १४ ॥
आसमाप्तेः समास्थाय चतुर्णामेकमाश्रमम् ।
पञ्चकालिकमच्छिद्रं कुर्वाणाः शतवार्षिकम् ॥ १५ ॥
विवेकजां परां प्राप्य कर्मणोऽन्ते शुभां धियम् ।
प्रद्योतमानविज्ञाना निर्धूतप्राकृतोद्यमाः ॥ १६ ॥
सहस्रार्चिषमीशानं लक्ष्मीपतिमनाविलम् ।
क्षेत्रज्ञं सर्वभूतानां वासुदेवं विशन्ति ते ॥ १७ ॥

किसी भी आश्रम में रहकर नारायण का भजन, स्वाध्याय में तत्पर अथवा अनन्य याजी ब्राह्मण समस्त सृष्टि के अधिकारी कहे गए हैं । जिनके माता-पिता ने भली प्रकार बुद्धि उत्पन्न होने से पहले पाल-पोष कर तरुण बनाया है, जो आचार्य से विनयी बनाये गए हैं और उनकी शुश्रूषा में तत्पर रहने वाले हैं, द्रव्य गुणादि सातों पदार्थों का ज्ञान रखने वाले हैं, सावधानी से नियम का पालन करते हैं । जो प्रकृति ज्ञान सम्पन्न एवं प्रमाद आलस्यादि दोषों से रहित है । निःस्पृह और धैर्य सम्पन्न है, शुचि एवं इन्द्रियों को वश में रखने वाले हैं, जो सिद्ध एवं भाग्यवान् है, जिन्होंने ज्ञान के निश्चय को समाप्त कर लिया है (अर्थात् ज्ञान के अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच चुके हैं), जिन्होंने बुद्धिपूर्वक कर्म का परित्याग कर दिया है, जो शुभ आचरणों से युक्त हैं वे जीवन की समाप्ति तक चार आश्रमों में कोई एक आश्रम का आश्रय लेकर, पाँचों काल में बिना किसी त्रुटि (दोष के) सौ वर्ष पर्यन्त उस आश्रम के कर्मों को करते हुये, कर्म के अन्त में विवेक से उत्पन्न पर एवं कल्याणकारिणी बुद्धि को प्राप्त कर ज्ञान से देदीप्यमान् एवं प्राकृत उद्यम को त्याग देने वाले साधक सहस्र किरणों वाले सूर्य के समान सबके ईश्वर एवं निर्दोष लक्ष्मीपति सम्पूर्ण प्राणियों के निवासभूत क्षेत्रज्ञ विष्णु में लीन हो जाते हैं ॥ १०-१७ ॥

गार्हस्थ्यस्याश्रमान्तरोपजीव्यत्वम्

अग्निमान् बहुमात्रावानेकः कौटुम्ब आश्रमः ।
व्रतादिनिरताः शुद्धास्त्रयोऽन्येऽनग्नयः स्मृताः ॥ १८ ॥

एक गृहस्थ आश्रम में रहकर बहुत मात्रा में धनादि संग्रह कर अग्निहोत्र करे । इसके अतिरिक्त शेष तीन आश्रम व्रतादि में निरत रहने से शुद्ध हो जाते हैं, उन्हें अग्निहोत्र की आवश्यकता नहीं कही गई है ॥ १८ ॥

कौटुम्बमुपजीवन्ति ते त्रयो ह्यूर्ध्वरेतसः ।

सात्त्विकरीतिनिगमनम्

गदिता सात्त्विकी रीतिरिति ते लेशतो मुने ॥ १९ ॥

गृहस्थ के अतिरिक्त अन्य तीन आश्रम में ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) रह कर गृहस्थाश्रमी के द्वारा भिक्षा प्राप्त कर प्राण धारण करें। हे मुने! यहाँ तक हमने आश्रमों के सात्विकी वृत्ति का वर्णन आपसे किया ॥ १९ ॥

त्रय्यादिरीतिकथनारम्भः

एवं विस्तरतो मेऽद्य रीतिमन्यां निशामय।

मुखबाहूरुपज्जानां त्रय्याद्यधिकारः

ये हि ब्रह्ममुखादिभ्यो वर्णाश्चत्वार उद्गताः ॥ २० ॥
ते सम्यगधिकुर्वन्ति त्रय्यादीनां चतुष्टयम्।

त्रयीनिष्ठानां फलसिद्धिः;
सांख्यादिनिष्ठानां क्रमात् पञ्चरात्रारोहणं च

त्रयीस्था एव सिध्यन्ति सांख्यादिष्वपि च त्रिषु ॥ २१ ॥
आरोहन्तीच्छया तेऽपि सात्त्वतं शासनं परम्।

अब आप विस्तारपूर्वक मुझसे इस समय अन्य रीति को सुनें। जो चार ब्राह्मणादि चार वर्ण ब्रह्मदेव के मुख से उत्पन्न हुये हैं, वे ही ठीक प्रकार से त्रयी (वेद) आदि पर अधिकार रखते हैं। जो त्रयी के अधिकारी हैं वे ही सांख्य पाशुपत तथा योग शास्त्रों में सिद्धि प्राप्त करते हैं। यदि उनकी इच्छा हो तो वे भी सात्वत शास्त्र पर अपना अधिकार रख सकते हैं ॥ २०-२१ ॥

पाशुपतनिष्ठानां त्रयीधर्माननुष्ठातृत्वम्

प्राप्ताः पाशुपतं ये हि धर्मं ब्राह्मणपूर्वकाः ॥ २२ ॥
न धर्ममनुतिष्ठन्ति त्रयीस्थं ते पुनर्मुने।
पञ्चरात्रं प्रविश्येव नान्यं धर्मं वितन्वते ॥ २३ ॥

सांख्यानां नैष्कर्म्यम्

निष्कर्माणः स्मृताः सांख्याः प्रसङ्ख्यानैकतत्पराः।

जो ब्राह्मणादि वर्ण पाशुपत धर्म की दीक्षा ले चुके हैं, हे मुने! पुनः वे त्रयी धर्म के आचरण के अधिकारी नहीं रहते। इसी प्रकार पाञ्चरात्र में प्रवेश करने वालों को अन्य धर्म में अधिकार नहीं है। क्योंकि ध्यान मात्र में तत्पर रहने वाले सांख्य शास्त्र वेत्ता निष्कर्म कहे गए हैं ॥ २२-२४ ॥

योगनिष्ठानां वैदिककर्मानुष्ठातृत्वम्

नित्यनैमित्तिकैर्युक्तो योगी योगाङ्गवाञ्छया ॥ २४ ॥
कुर्यादलब्धलाभाय लब्धवृद्धय एव च।
ब्रह्मिष्ठो वैदिकं कर्म नित्यं नैमित्तिकं तथा ॥ २५ ॥

योगी जनों को योगाङ्गों की प्राप्ति करने की इच्छा से सर्वदा नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करते रहना चाहिए और अलब्ध के लिए तथा लब्ध की वृद्धि के

लिए भी प्रयत्न करते रहना चाहिए। इससे वैदिक नित्य, नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान करने वाले ब्रह्मिष्ठ हो जाते हैं ॥ २४-२५ ॥

वर्णाश्रमतद्धर्माणां निरूपणम्

त्रय्यादिमार्गगा रीतिर्नारदैषा प्रदर्शिता।
वर्णाश्रमविभागं मे धर्मैः सह निशामय ॥ २६ ॥

हे महामुने! इस प्रकार वेदत्रयी में बताई हुई रीति का निर्देश मैंने आपसे किया। अब धर्मों के साथ-साथ वर्णाश्रम विभाग का वर्णन मुझसे सुनिए ॥ २६ ॥

चत्वारो वर्णाः;
आद्यानां त्रयाणां वेदाध्ययनं द्विजातित्वं च

वर्णाश्चत्वार उद्दिष्टा ब्राह्मणादिक्रमेण ये।
अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः पूर्वे भूत्वा द्विजातयः ॥ २७ ॥

ब्राह्मणादि क्रम से जिन चार वर्णों को हम पढ़ आये हैं उनमें तीन वर्णों को (यज्ञोपवीत संस्कार से युक्त) द्विजाति बनकर वेदों का अध्ययन करना चाहिए ॥ २७ ॥

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा, एकजातित्वं च

चतुर्थ एकजातिस्ताञ्छुश्रूषेतानहङ्कृतः।

याजनाध्यापनप्रतिग्रहा ब्राह्मणस्यैव

ब्राह्मणो नाम यो वर्ण आद्यो ब्रह्ममुखोद्गतः ॥ २८ ॥
स त्रीनध्यापयेदेतान् ब्राह्मणादीननुक्रमात्।
याजयेच्च यथाकामं वृत्त्यर्थमनसूयया ॥ २९ ॥
त्रिभ्यश्च प्रतिगृह्णीयादेष वैशेषिको विधिः।

चौथा वर्ण जिसे शूद्र कहते हैं वह अहङ्काररहित है। अतः उसे इन तीन वर्णों की सेवा करनी चाहिए। पहला वर्ण ब्राह्मण है, जो ब्रह्मदेव के मुख से उत्पन्न है। वह क्रमशः इन ब्राह्मणादि तीन वर्णों का अध्यापन करे और अपनी जीविका के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के इच्छानुसार इनका यज्ञ करावे और इन्हीं तीन से प्रतिग्रह भी ले यह उसकी विशेषतायुक्त विधि है ॥ २८-३० ॥

शस्त्रधारणादिकं क्षत्रियस्य

शस्त्राणां धारणं नित्यं क्षत्रजातेर्विशेषणम् ॥ ३० ॥
क्षतत्राणं यथाशास्त्रं प्रजानां परिपालनम्।

क्षत्र जाति की विशेषता यह है कि वह निरन्तर शस्त्र धारण करे। निर्बलों की रक्षा तथा प्रजा वर्ग का यथाशास्त्र पालन करना यह क्षत्रियों का कर्त्तव्य है ॥ ३०-३१ ॥

कृष्यादिकं वैश्यस्य

विशो वैशेषिकी वृत्तिः कृषिगोरक्षवाणिजम् ॥ ३१ ॥

कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य यह वैश्य की विशेष वृत्ति है ॥ ३१ ॥

इज्याध्ययनदानानि त्रयाणां तुल्यानि

इज्याध्ययनदानं तु द्विजातीनामिदं समम् ।
नित्यं धर्मार्थमेवैतत् तत्र हिंसादिवर्जनम् ॥ ३२ ॥

इज्या, अध्ययन और दान ये समस्त द्विजातियों के समान कर्म हैं जो बिना हिंसा के धर्म की दृष्टि से किया जाना चाहिए ॥ ३२ ॥

शुश्रूषा शूद्रस्य धर्मो वृत्त्यर्था च

शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो वृत्त्यर्थमेव च ।
श्रेष्ठा ब्राह्मणशुश्रूषा कनिष्ठे त्वपरे स्मृते ॥ ३३ ॥

शूद्र का एकमात्र धर्म यह है कि वह वृत्ति के लिए ऊपर कहे गए तीनों वर्णों की सेवा करे । उसमें ब्राह्मण की सेवा उत्तम है और वर्णों की सेवा अपेक्षा कृत लघु है ॥३३॥

चतुर्णां सामान्यधर्माः

अहिंसा सत्यमक्रोधः स्वदारनिरतिर्दया ।
चतुर्ष्वेतेषु धर्मोऽयं सामान्येन विधीयते ॥ ३४ ॥

अहिंसा, सत्य, अक्रोध, अपनी स्त्री में रति और दया ये धर्म सामान्यतः इन चारों वर्णों के लिए विहित हैं ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणोत्तमक्षत्रिययोश्चातुराश्रम्यम्

ब्रह्मणश्चातुराश्रम्यं क्षत्रस्य तु कथञ्चन ।

क्षत्रियवैश्ययोराद्यमाश्रमत्रयम्

त्रयं चाद्यं क्षत्रविशोर्नियतं धर्मलक्षणम् ॥ ३५ ॥

ब्राह्मण के लिए चारों आश्रम विहित हैं किन्तु क्षत्रिय के किसी प्रकार नहीं । क्षत्रिय और वैश्य के लिए आदि के तीन (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ) आश्रम नियत रूप से धर्म के रूप में कहे गए हैं ॥ ३५ ॥

त्रैवर्णिकानां प्रागुपनयनात् कामचारः

आचार्यजन्मनः पूर्वमव्रतास्ते द्विजातयः ।

उपनयने द्वितीयं जन्म

आचार्याज्जन्म सावित्र्यां द्वितीयं दिव्यमिष्यते ॥ ३६ ॥

वे द्विजाति आचार्य से जन्म होने के पहले (उपनयन संस्कार से पहले) किसी प्रकार के नियम के अधिकारी नहीं है अर्थात् कामाचार का व्यवहार कर सकते हैं । आचार्य के द्वारा जब सावित्री में उनका जन्म होता है वही उनका दिव्य और द्वितीय जन्म कहा जाता है ॥ ३६ ॥

यज्ञदीक्षायां तृतीयम्

ते त्रयो यज्ञदीक्षायां जन्म प्राप्य तृतीयकम् ।

तेषां स्वाध्यायनिष्ठानां देवतुल्यत्वम्

ब्राह्मणाः सवनस्थार्याः सवनान्ते यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥
स्वाध्याये वर्तमानास्ते देवाः सर्वेऽपि ते त्रयः ।

आश्रमधर्माः

इति ते कथिता वर्णा आश्रमानपि मे शृणु ॥ ३८ ॥

जब वे यज्ञ में दीक्षा लेते हैं तब वह उनका तृतीय जन्म कहा जाता है । ब्राह्मण त्रिकाल स्नान एवं संध्या करे । स्नान के अनन्तर तीनों वर्ण वाले द्विजाति अपने अधिकार के अनुसार स्वाध्याय करे तो वे सभी देव हैं । यहाँ तक हमने आपसे वर्णों के विषय में कहा । अब आश्रम के विषय में सुनिए ॥ ३७-३८ ॥

उपकुर्वाणब्रह्मचारिधर्माः

आचार्याज्जन्म सम्प्राप्य तदन्ते नियतं वसन् ।
तद्धर्मकारी तन्निष्ठस्तद्भक्तस्तत्परायणः ॥ ३९ ॥
तन्निवेदितसर्वार्थो भिक्षार्थी तत्कुलाद्बहिः ।
कर्मशेषेण चाचार्यादिच्छन् स्वाध्यायमत्वरः ॥ ४० ॥
उपासीत बहिः संध्ये नित्यस्नाय्यनसूयकः ।
कुर्वन्निन्द्रियसंरोधं भूतानामनुकम्पकः ॥ ४१ ॥
वह्निं समिद्भिरिन्धान उभे संध्ये समाहितः ।
धर्मज्ञसमयस्थं चाप्याचरन्नात्मनो व्रतम् ॥ ४२ ॥
उपकुर्वाणको नाम स्वाध्याये सिध्यति द्विजः ।

आचार्य द्वारा जन्म प्राप्त हो जाने पर अर्थात् उपनीत हो जाने पर जो नियमतः उनके सन्निकट रह कर उन्हीं के समान धर्म का आचरण करे, उनमें निष्ठा और भक्ति रखे, मनसा-वाचा-कर्मणा उन्हीं में परायण हो, उन्हें अपना सर्वस्व निवेदन करे, आचार्य के कुल मात्र से भिक्षा न लेकर अन्य कुलों से भिक्षा माँग कर भोजन करे, आचार्य से ही स्वाध्याय की इच्छा रखे, जल्दीबाजी न करे, नित्य स्नान कर गाँव से बाहर नदी तट अथवा किसी पवित्र स्थान में सन्ध्योपासन करे, गुरु की निन्दा न करे, इन्द्रियों को सदा अपने वश में रखे, प्राणियों पर दया करे, नित्य समिधा से दोनों संध्याओं में सावधानीपूर्वक होम करे । धर्मज्ञों के आचरण में तत्पर रहकर अपने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे तो वह ब्रह्मचारी उपकुर्वाणक कहा जाता है और उसे स्वाध्याय से सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ३९-४३ ॥

समाप्तब्रह्मचर्यस्येच्छया आश्रमान्तरप्राप्तिः

वेदस्नायी व्रतस्नायी गुरवे दक्षिणां ददत् ॥ ४३ ॥

नैष्ठिकब्रह्मचारिधर्माः

प्राप्यानुज्ञां गुरोरिच्छेच्चतुर्णामेकमाश्रमम् ।
यदीच्छेद् ब्रह्मचर्यं स ब्रह्मचारी स्वमाश्रमम् ॥ ४४ ॥
आचार्यमेव सेवेत युक्त आ देहपातनात् ।
जिज्ञासुर्ब्रह्मचारी स लभेत ज्ञानमुत्तमम् ॥ ४५ ॥
अन्यथा पुण्यलोपः स्यादिति वेदानुशासनम् ।

इस प्रकार वेद में निष्णात एवं ब्रह्मचर्यव्रत में निष्णात हो कर गुरु को दक्षिणा से सन्तुष्ट कर गुरु की आज्ञा से चार आश्रमों में एक आश्रम में रहने की इच्छा करे । यदि ब्रह्मचर्य आश्रम की इच्छा करे तो अपने आश्रम में रह कर आचार्य की सेवा मरणपर्यन्त करे । ऐसा जिज्ञासु ब्रह्मचारी उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लेता है । इससे विरुद्ध आचारण करने वाले के पुण्य का लोप हो जाता है । ऐसी वेद भगवान् की आज्ञा है ॥ ४४-४६ ॥

गृहस्थधर्माः

अथ चेद्रोचयेत् कर्तुं गार्हस्थ्यं धर्ममुत्तमम् ॥ ४६ ॥
लब्धानुज्ञो गुरोः स्नात्वा सम्प्राप्य विधिवत् स्त्रियम् ।
तया सह चरेद्धर्मं नित्यं स्वाध्यायतत्परः ॥ ४७ ॥
श्राद्धकृत् सत्यवादी च नित्यं चैवातिथिप्रियः ।
सङ्कोचिनीं चरन् वृत्तिमनसूयुरलोलुपः ॥ ४८ ॥
स्नातकव्रतशाली च पञ्चयज्ञपरायणः ।

गृहस्थस्यापि पाञ्चरात्रधर्मावश्यकता

पञ्चकालरतो नित्यं दयाक्षान्तिधृतिस्थितिः ॥ ४९ ॥
अक्रोधसत्यह्रीविद्याशौचास्तेयदमस्थितः ।
अनायासो ह्यकृपणः शास्त्रीये मङ्गले रतः ॥ ५० ॥

यदि वह स्वयं गृहस्थ आश्रम में जाने की इच्छा करे तो गुरु की आज्ञा लेकर स्नान कर विधिपूर्वक स्त्री से विवाह करे और उसके साथ धर्म का आचारण करे, नित्य स्वाध्याय करे, श्राद्ध करे, सत्य बोले और नित्य अतिथि का सत्कार करे । सङ्कोचनी वृत्ति (कम से कम में निर्वाह करने वाली वृत्ति) का आचरण करे । किसी की निन्दा न करे और न किसी वस्तु की लालच ही करे । स्नातक व्रत का आचरण करे और देव ऋषि यज्ञ देवयज्ञादि पाँचों यज्ञ में परायण रहे । पाँचों काल में कर्म में निरत रहे । दया, क्षमा एवं धैर्य में स्थित रहे । अक्रोध, सत्य, लज्जा, विद्या, शौच, अस्तेय एवं दम का आचरण करे । आयास (बहुत परिश्रम) न करे । कृपणता न रखे । शास्त्रीय मङ्गल का अनुष्ठान करे ॥ ४६-५० ॥

निष्कामकर्मिणो गृहस्थस्यापि मोक्षप्राप्तिः

मनसा कर्मणा वापि यज्ञान् सर्वान् समाचरेत् ।

अकामहतया बुद्ध्या त्यक्ताहङ्कारलोभया ॥ ५१ ॥
सत्तर्कव्यवसायाभ्यां लोचनाभ्येत्यसम्भवम् ।
श्रौतस्मार्तक्रियानित्यो नित्यनैमित्तिके रतः ॥ ५२ ॥
ईदृग्गृहस्थो जिज्ञासुः प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ।
प्राप्तवेदान्तविज्ञानो वैष्णवं श्रयते पदम् ॥ ५३ ॥

निष्काम रहकर अहङ्कार तथा लोभरहित बुद्धि और मन तथा कर्म द्वारा सभी यज्ञों का आचरण करें । अपने उत्तम तर्कों तथा व्यवसाय (प्रयत्न) से युक्त रहकर जन्म के कष्टों को स्मरण रखे । श्रौतस्मार्त्त क्रियाओं में एवं नित्य नैमित्तिक कर्मों में लगा रहे । ऐसा जिज्ञासु गृहस्थ उत्तम ज्ञान प्राप्त कर और वेदान्त के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति कर वैष्णव पद प्राप्त कर लेता है ॥ ५१-५३ ॥

सकामस्य गृहस्थस्य ब्रह्मलोकप्राप्तिः

केवलो धर्मनित्योऽसौ ब्रह्मलोके महीयते ।

केवल नित्यधर्म का आचरण करे तो वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ ५४ ॥

वानप्रस्थधर्माः

गार्हस्थ्यादथवा पूर्वं वानप्रस्थ्यं श्रयेत् पदम् ॥ ५४ ॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं वनं चाथ समाश्रयेत् ॥ ५५ ॥
ग्राम्याहारं परित्यज्य वन्याहारोपयोगवान् ।
बहिरात्मनि वाप्यग्निं जुह्वद्यज्ञपरायणः ॥ ५६ ॥

यदि गृहस्थाश्रम से वैराग्य हो जाय तो वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए । गृहस्थ जब अपने को देखे कि बाल पक गए हैं और लड़के को लड़का हुआ देख ले, तब वन का आश्रय ले । ग्राम्य में होने वाले अन्नादि आहार का परित्याग करे । वन्याहार से निर्वाह करे । अपनी आत्मा में अथवा बाहर अग्नि का आधान कर होमपूर्वक यज्ञ करे ॥ ५४-५६ ॥

वत्सरे वत्सरे त्रीणि तपांसि विधिवच्चरेत् ।

वानप्रस्थस्यापि निष्कामकर्मिणो मोक्षप्राप्तिः

कुर्वन् वनस्थः शास्त्रार्थानकामहतया धिया ॥ ५७ ॥

प्रत्येक वर्ष में तीन-तीन महा तप का आचरण करे वन में निवास करते हुये निष्काम भाव से शास्त्र प्रतिपादित अर्थों को करता रहे ॥ ५७ ॥

सेवमानो व्रतस्थश्च तास्ता दीक्षाः समाहितः ।
वृत्तिसङ्कोचकृच्छ्रभ्रस्तत्त्वजिज्ञासया युतः ॥ ५८ ॥
सम्प्राप्य तत्त्वविज्ञानं वैष्णवं श्रयते पदम् ।

ब्रह्मचर्यपूर्वक नियम धारण करते हुये उन-उन दीक्षाओं का सावधानी से पालन करे। वृत्ति (आवश्यकता) का सङ्कोच करे और तत्त्व जिज्ञासा में लगा रहे। ऐसा वानप्रस्थी वैष्णव पद को प्राप्त कर लेता है ॥ ५८-५९ ॥

सकामस्य तस्य ब्रह्मलोकप्राप्तिः

केवलो धर्मनित्यश्च महाप्रस्थानमाचरन् ॥ ५९ ॥
वीतशोकभयो वन्यो ब्रह्मलोके महीयते।

केवल नित्य धर्म का आचरण करे और महाप्रस्थान का आचरण करे। शोक एवं भय का परित्याग करे तो ऐसा वानप्रस्थी पुरुष ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥५९-६०॥

संन्यासिधर्माः

काषायवसनं प्राप्य द्वाभ्यामादित एव वा ॥ ६० ॥
द्वयोरेकस्य वा पश्चात् पारिव्राज्यं समाचरेत्।
प्राजापत्यां निरुप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥ ६१ ॥
लब्धानुज्ञो गुरोर्वाथ कर्मश्रान्तो महाव्रती।
समारोप्याग्निमानग्नींश्चतुर्थाश्रममावसेत् ॥ ६२ ॥

दो आश्रमों (ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ) के अनन्तर अथवा मात्र एक (ब्रह्मचर्य) ही के अनन्तर अथवा तीन (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ) आश्रम के पश्चात् काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण कर सन्यासाश्रम ग्रहण करे। उसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम प्राजापत्य इष्टि कर सारे वेदों को दक्षिणा में प्रदान करे अथवा जब कर्म करते करते थक जाय तब गुरु की आज्ञा ले महाव्रत का अनुष्ठान करें। अपनी आत्मा में अग्नि का आरोपण कर अग्निमान बन कर चतुर्थाश्रम (सन्यासाश्रम) में प्रवेश करें ॥ ६०-६२ ॥

विमुक्तः सर्वदोषेभ्यो विरक्तो विषयेषु च।
उच्चावचां विचिन्वंश्च गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥
अन्वीक्षमाणः सूक्ष्मं च परमात्मानमात्मना।
प्रसङ्ख्यानपरो नित्यं वेदान्तज्ञानतत्परः ॥ ६४ ॥
समाधिस्थश्च सततमुग्रव्रतपरोऽपि वा।
वास्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैकमुक्षतः ॥ ६५ ॥
विद्वेषमनुरागं वा द्वयोरप्यविचिन्तयन्।
वायुभूतः खवत् स्वस्थ उर्वीस्थिरमना मुनिः ॥ ६६ ॥
वारिवच्चार्द्रचेतास्तु शुचिर्ज्वलनवत् सदा।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यः शून्यागारसमाकृतिः ॥ ६७ ॥
धियालोचितसर्वार्थो धिया त्यक्तपरिग्रहः।
धिया स्वीकृतसच्छास्त्रो धिया तृप्तः सुशुद्धया ॥ ६८ ॥
दत्तसर्वाभयो योगी सर्वैर्दत्ताभयस्तथा।

स्वाध्यायाद्योगमासीनो योगात् स्वाध्यायमामनेत् ॥ ६९ ॥
अब्रुवन् केनचित् किंचित् प्राप्ते कालेऽप्यविब्रुवन्।
समः सर्वेषु भूतेषु मातृवत् पितृवत् सदा ॥ ७० ॥
आत्मज्योतिरात्मरतिः प्रसीदन्नात्मनि स्वयम्।
प्रज्ञाप्रासादमारूढो विमुक्तः सर्वतो जनैः ॥ ७१ ॥
भूमिष्ठानिव शैलस्थः पश्यन् सर्वानवस्थितान्।
कैश्चिन्मूक इति प्रोक्तः कैश्चिद्धीर इतीप्सितः ॥ ७२ ॥
कैश्चित् कः स्विदिति प्रोक्तः कैश्चिद् घोर इतीरितः।
उपेक्षाकरुणामैत्रीमुदितालिङ्गितः सदा ॥ ७३ ॥
विवेकबोधसन्तोषैर्नित्यं परिजनैर्वृतः।
भैक्षाशी तुष्टिसम्पूर्णो धर्मैरीदृग्गुणैर्युतः ॥ ७४ ॥

विषयों से विरक्त रहे। पापों से विमुक्त रह कर अपने आत्मा की ऊँची-नीची गतियों को देखते हुये आत्म-ज्ञान से सूक्ष्म परमात्मा का दर्शन करते हुये योगी वेदान्त ज्ञान में तत्पर रहकर ध्यान परायण रहे। निरन्तर समाधि धारण करे अथवा उग्र व्रत का आचरण करता रहे। यदि कोई एक बाहू को वसूले (लोहमय एक प्रकार का शस्त्र) से काटे अथवा कोई एक बाहू को चन्दन लगाकर भूषित करे, फिर भी दोनों में विद्वेष अथवा अनुराग न करे। वायु के समान चलता रहे। आकाश के समान अपने में प्रतिष्ठित रहे (निर्लिप्त रहे)। पृथ्वी के समान दृढ़ रहे। जल के समान आर्द्रचित्त (दयालु) रहे। आग के समान सर्वदा पवित्र रहे। गङ्गा के हृदय के समान अक्षोभ्य (अनाविल गन्दगी से रहित) रहे। शून्यागार के समान शान्त रहे। बुद्धि से संसार की असारता का ध्यान कर सभी प्रकार के परिग्रहों से मुक्त रहे। बुद्धि से सच्छास्त्र का आचरण करे और अपनी शुद्ध बुद्धि से नित्य तृप्त रहें। इस प्रकार सबको अभय प्रदान करने वाला तथा सभी से अभय प्राप्त करने वाला योगी स्वाध्याय से योग का आश्रय ले अथवा योग से स्वाध्याय का आचरण करे किसी से कुछ न बोले। बोलने की आवश्यकता हो तो भी न बोले। सभी प्राणियों में मातृवत् पितृवत् व्यवहार करे। आत्मप्रकाश, आत्मज्ञान में लगा रहे। स्वयं अपने में प्रसन्न रहे। प्रज्ञाप्रसाद पर आरुढ़ रहे। सभी लोगों से अलग रहे। पहाड़ पर खड़े होकर भूमि स्थित सभी को देखता रहे। किसी के द्वारा 'यह बहिरा है' किसी के द्वारा 'यह धीर है' किसी के द्वारा 'यह कौन पागल है' किसी के द्वारा 'यह पापी है' अथवा 'निष्पाप है' इस प्रकार से कहा जाता हुआ भी वह योगी उपेक्षा, करुणा, मैत्री एवं मुदिता से युक्त रहे। निरन्तर विवेक बोध और सन्तोष रूप परिजनों के द्वारा अपने को घिरा समझे। भिक्षाहार करे और सर्वदा सन्तुष्ट रहे ॥ ६३-७४ ॥

सन्यासिनः परमपुरुषोपासनान्मोक्षप्राप्तिः

प्रदीप इव शान्तार्चिः परिव्राड् ध्यानमास्थितः।
देहसंस्कारनाशेन वैष्णवं श्रयते पदम् ॥ ७५ ॥

इन-इन गुणों से युक्त हुआ योगी परिवार निर्वात (एक लौ से) जलने वाले प्रदीप के समान ध्यान में परायण रहकर देह के संस्कार का नाश कर विष्णु पद का आश्रय प्राप्त कर लेता है ॥ ७५ ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

इति वर्णाश्रमा ये ते तुल्यवैशेषिकैर्युताः ।
धर्मास्ते लेशतः प्रोक्ताः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् अधिकारि-
निरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ९०० ॥

हे नारद ! यहाँ तक हमने समान एवं विशेषता से युक्त वर्णाश्रम धर्म का निरूपण लेश मात्र किया । अब आप क्या सुनना चाहते हो? ॥ ७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्र रहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अधिकारी
निरूपण नामक पन्द्रहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

वर्णोत्पत्तिनिरूपणम्

रक्षा तदधिकारिविषयकः प्रश्नः

नारदः—

भगवंस्त्रिदशारिघ्न सर्वज्ञ वृषकेतन ।
प्रमाणार्थः श्रुतोऽस्माभिः सहेतुः सविपर्ययः ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे देवताओं के शत्रुओं का वध करने वाले ! हे सर्वज्ञ सदाशिव ! भगवन्, हमने हेतु तथा विपर्यय (सृष्टि और प्रलय द्र० १० अं०) से युक्त प्रमाणार्थ सुना ॥ १ ॥

सर्वस्यास्य च का रक्षा कश्च रक्षाधिकारवान् ।
सप्रकारमिदं द्वन्द्वं भगवन् वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

इन सभी प्रमाणार्थों की रक्षा कौन करता है और कौन उस रक्षा का अधिकारी है? हे भगवन् ! मेरे दोनों प्रश्नों का उत्तर भेद निरूपण सहित कीजिये ॥ २ ॥

तत्प्रतिवचनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

सुदर्शनमयी रक्षा देवस्य हरिमेधसः ।
स्वमृते विष्णुसङ्कल्पं रक्षान्या न विधीयते ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—श्रीभगवान् विष्णु की सुदर्शनमयी शक्ति ही उसकी रक्षिका है । भला विष्णु के सङ्कल्प के अतिरिक्त और कौन है जिससे उसकी रक्षा सम्भव हो? ॥ ३ ॥

वस्तुनिष्ठसामर्थ्यस्य सुदर्शनात्मकत्वम्

या सा दिव्या क्रियाशक्तिर्विष्णुशक्त्यंशसम्भवा ।
सुदर्शनाह्वया देवी सर्वकृत्यकरी विभोः ॥ ४ ॥

तत्तद् वस्तुओं में रहने वाली दिव्य क्रियाशक्ति जो विष्णुशक्ति के अंश से उत्पन्न है जो सुदर्शना देवी के नाम से पुकारी जाती है वही विष्णु शक्ति सृष्टि की रक्षा आदि सारे कार्यों को सम्पन्न करती है ॥ ४ ॥

तन्मयं विद्धि सामर्थ्यं सर्वं सर्वपदार्थजम् ।
तत्त्वानां तात्त्विकानां च चेतनाचेतनात्मनाम् ॥ ५ ॥
प्रमाणानां विचित्राणां भावाभावयुगस्य च ।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य मुक्तेर्बन्धत्रयस्य च ॥ ६ ॥
यद्यत् स्वकार्यसामर्थ्यं तत्तत् सौदर्शनं वपुः ।

समस्त पदार्थों में रहने वाली जो सामर्थ्य है वह सब सुदर्शन से ही उत्पन्न है । सम्पूर्ण तत्त्वों, तात्विकों, चेतनों, अचेतनों, विचित्र प्रमाणों, भाव तथा अभाव वालों, धर्म, अर्थ, काम, मुक्ति तथा तीनों प्रकार के बन्धनों में रहने वाला जो अपने कार्य का सामर्थ्य है वह सब सुदर्शन का ही शरीर है ॥ ५-७ ॥

शस्त्रास्त्रव्यूहस्य रक्षासाधनत्वम्

उक्ता शस्त्रास्त्ररूपा ते विष्णुसङ्कल्पविक्रिया ॥ ७ ॥
यया देवो जगन्नाथः काले काले जनार्दनः ।
अवतीर्याथवाविश्य भूतानि लघयेद्भुवम् ॥ ८ ॥

जैसा कि हम पहले कह आए हैं, शस्त्र और अस्त्र के रूप में विष्णुसंकल्प की जो विक्रियाँ हैं वो इस जगत की उसी प्रकार रक्षा करती हैं जिस प्रकार जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु समय-समय पर अवतार लेकर अथवा प्राणियों में आविष्ट होकर जगत् के भार को हल्का करते हैं ॥ ७-८ ॥

मन्त्रग्रामस्यापि रक्षासाधनत्वम्

नानामन्त्रमयी चान्या यन्त्रकोशविचित्रिता ।
वेदतन्त्रोभयोद्भूता नानाप्रसवशालिनी ॥ ९ ॥
साक्षाद्विष्णोः क्रियाशक्तिः शुद्धसंविन्मयी परा ।

वह शक्ति प्रथम तो नानामन्त्रमयी है और दूसरी यन्त्र रूपी कोश में रहने से विचित्र सामर्थ्य वाली है । वह वेद तथा तन्त्र शास्त्रों से उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के फलों को देने वाली है । शुद्ध सविन्मयी परानाम से कही जाने वाली वही विष्णु की साक्षात् क्रियाशक्ति है ॥ ९-१० ॥

मन्त्रमयरक्षायां ब्राह्मणस्यैवाधिकारः

सर्वतत्त्वार्थपारज्ञः सर्वविद्याविशारदः ॥ १० ॥
अस्कन्ननित्यनैमित्तः शुद्धाभिजनसंमतः ।
त्रिशुक्लो निस्त्रिसंदेहः षट्कर्मविधिपारगः ॥ ११ ॥
ब्राह्मणो ब्रह्मयोनिस्थः स्वदारनिरतः शुचिः ।
अधिकुर्यात् क्रियाशक्तिं विष्णोर्मन्त्रमयीं पराम् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण पदार्थों के तत्त्वों का जानकार, सर्वविद्याविशारद, जिसने कभी भी अपने

नित्य नैमित्तिक कर्मानुष्ठान का त्याग नहीं किया है, जो शुद्ध देश का रहने वाला, त्रिशुक्ल (विद्या, कर्म और योनि), तीन प्रकार के संदेह भ्रम, प्रमाद विस्मतिरूप त्रिदोष से रहित है और अपने षट् कर्म (अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, प्रतिग्रह के ग्रहण और त्याग) रूप विधि को जानने वाला है। ऐसा ब्राह्मण जो विशुद्ध ब्राह्मण और ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न, अपनी स्त्री से प्रेम करने वाला तथा मन वाणी और कर्म से पवित्र है वही इस परा विष्णु की मन्त्रमयी तथा क्रियाशक्ति का सच्चा अधिकारी है ॥ १०-१२ ॥

ब्राह्मणस्यापि राजानवष्टब्धस्य रक्षायामसामर्थ्यम्

ब्राह्मणो नानवष्टब्धस्तया कार्यमिहार्हति।
अवष्टभ्य तु राजानं जगतोऽर्थे तया चरेत् ॥ १३ ॥

किन्तु उपर्युक्त लक्षण युक्त भी ब्राह्मण यदि राजाश्रित न हो तो वह इस कार्य के योग्य नहीं रहता। अतः राजा का आश्रय लेकर ही संसार की भलाई के लिए इस मन्त्रशास्त्र का आश्रय ले ॥ १३ ॥

राजप्रशंसा

राजा हि परमं भूतं सर्वदेवमयो विभुः।
क्रियाशक्तेरधिष्ठानं वैष्णव्या भगवन्मयः ॥ १४ ॥

क्योंकि राजा सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है, वह सर्वदेवमय है, प्रभु है। विष्णु की क्रियाशक्ति का अधिष्ठान है और विष्णुस्वरूप तो है ही क्योंकि 'नाविष्णुः पृथ्वीपतिः' ऐसा कहा गया है ॥ १४ ॥

मूर्धतो हि पुरा देवो राजानमसृजत् प्रभुः।
मूर्धाभिषिक्तस्तेनासौ सर्वभूतोपरि स्थितः ॥ १५ ॥
द्विगुणो ब्राह्मणो राजा वेदशास्त्रेषु गीयते।

ब्रह्मदेव ने पूर्वकाल में राजा को अपने मूर्धा से उत्पन्न किया है। इसलिए राजा का मूर्धाभिषेक किया जाता है। अतः वह समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिए वेद और शास्त्रों ने कहा भी है कि ब्राह्मण राजा सबसे दुगुना है ॥ १५-१६ ॥

राजद्विषां दृष्टादृष्टयोः प्रत्यवायः

यस्तु तं द्वेष्टि सम्मोहात् स हरिं द्वेष्टि दुर्मतिः ॥ १६ ॥
यो हरिं द्वेष्टि सम्मोहात् स लक्ष्मीं द्वेष्टि मानवः।
लक्ष्म्या द्वेष्टा तु दुर्मेधाः सर्वधर्मेषु हीयते ॥ १७ ॥
स भ्रष्टः सर्वलोकेभ्यः सर्वदेवबहिष्कृतः।
अप्रतिष्ठे तमस्यन्धे समास्तिष्ठति शाश्वतीः ॥ १८ ॥

जो दुर्मति मोहवश राजा से द्रोह करता है, वह विष्णु से द्वेष करता है और जो मानव विष्णु से द्वेष करता है, वह साक्षात् महालक्ष्मी से द्वेष करता है। इस प्रकार लक्ष्मी द्वेष्टा-दुर्बुद्धि सारे धर्मों से हीन कहा गया है। वह सभी लोकों से भ्रष्ट होता है। सम्पूर्ण

देव उसका बहिष्कार करते हैं तथा वह चिरकाल पर्यन्त अप्रतिष्ठ नामक नरक में निवास करता है ॥ १६-१८ ॥

अतो राजा अवश्यं बहु मन्तव्यः

ऐहिकामुष्मिकीं लक्ष्मीमतः प्रेप्सुरुदारधीः ।
राजानं बहु मन्येत सर्वलोकाधिदैवतम् ॥ १९ ॥

इसलिए बुद्धिमान् पुरुष यदि इस लोक की अथवा उस लोक की सम्पत्ति चाहे तो सारे लोक के अधिदैवत स्वरूप राजा का आदर करें ॥ १९ ॥

केवलयोर्ब्राह्मणनृपयोर्लक्ष्म्या अस्थिरत्वम्

ब्राह्मणे केवले लक्ष्मीर्न वसत्यतिमार्दवात् ।
अत्यौग्र्याद् बिभ्यती क्षत्रे केवले नेच्छति स्थितिम् ॥ २० ॥

केवल ब्राह्मण में इसलिए लक्ष्मी नहीं रहती कि वह बड़ा ही कोमल होता है । केवल क्षत्रिय से इसलिए डरती है कि वह उग्र होता है । इसलिए केवल क्षत्रिय में भी निवास नहीं करती ॥ २० ॥

संसृष्टयोस्तयोर्लक्ष्म्याः स्थैर्यम्

ब्रह्मक्षत्रे तु सम्पृक्ते ह्यग्नीषोममयात्मनि ।
निवसत्यतिसम्प्रीता ग्रीष्मे शीत इव ह्रदे ॥ २१ ॥

जिसमें ब्रह्म और क्षत्र तेज दोनों ही सम्मिलित है जो न केवल अग्न्यात्मक (क्रोधी) और न केवल सोमात्मक (शीतल स्वभाव वाला) है अपितु उभय धर्म सम्बद्ध है उसमें लक्ष्मी बड़े प्रेम से रहती है । जिस प्रकार ग्रीष्म में शीतल ह्रद में निवास करने वाला रहता है उसी प्रकार लक्ष्मी (भी व्यक्ति के पास) रहती हैं ॥ २१ ॥

तत्र हेतुः

द्वे हि ते बिभृतो लोकस्थितिं सम्भूय तेजसी ।
तयोर्हि सकला शक्तिः स्थिता विष्णोः क्रियात्मिका ॥ २२ ॥

इस प्रकार ऊपर कहे गए अग्नि और सोम ये उभयात्मक तेज लोक स्थिति को धारण करते हैं, क्योंकि उनमें विष्णु की सारी क्रियात्मिका शक्ति निहित है ॥ २२ ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तत्र दृष्टान्तकथनम्

महत्या हि यथा नद्याः कुसरो न धृतेः क्षमम् ।
एवं लघुर्नरो नैव क्रियाशक्तेर्धृतौ क्षमः ॥ २३ ॥
पारावारो यथा धीरो महतीं तां प्रतीच्छति ।
ब्रह्मपृक्तं तथा क्षत्रं क्रियाशक्तिं प्रतीच्छति ॥ २४ ॥
पूर्यमाणं महानद्या कुतटाकं विदीर्यते ।
रक्ष्यमाणस्तथाप्येको नैव पर्याप्यते तया ॥ २५ ॥

जिस प्रकार बहुत बड़ी नदी को छोटा तालाब धारण करने में समर्थ नहीं होता। इसी प्रकार क्षुद्र मनुष्य भी विष्णु की क्रिया शक्ति को धारण करने में समर्थ नहीं होते। जिस प्रकार गम्भीर समुद्र ही उस बहुत बड़ी नदी को धारण करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार ब्रह्मशक्ति (सौम्यता) से युक्त क्षत्र शक्ति (अग्न्यात्मक स्वभाव) ही उस विष्णु की क्रियाशक्ति को धारण करने में समर्थ होती है। जिस प्रकार महानदी के मिलने पर छोटा तालाब विदीर्ण हो जाता है। उसी प्रकार एक ब्राह्मण (अकेले) अथवा मात्र क्षत्रिय उस विष्णु की क्रियाशक्ति को धारण करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं ॥ २३-२५ ॥

राजार्थं प्रयुक्ताया अपि क्रियाशक्तेः
सर्वप्रजोपकारकत्वकथनम्

यथा समुद्रगामिन्यां महत्यां सरिति ध्रुवम्।
उपस्नेहेन पूर्यन्ते सरांस्यन्यानि भूयसा ॥ २६ ॥
प्रयुक्तायां क्रियाशक्तौ चक्रे वै चक्रवर्तिनः।
चक्रस्था हि प्रजाः सर्वाः समेधन्ते तथा श्रिया ॥ २७ ॥

जिस प्रकार महासमुद्र में जाने वाली नदी के जल से बहुत से तालाब तथा अन्य जलाशय परिपूर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार चक्रवर्त्ती राजा द्वारा चक्र में प्रयुक्त क्रियाशक्ति के प्रयोग से चक्र में रहने वाली सारी प्रजायें श्री समृद्धि से सम्पन्न हो जाती हैं ॥ २६-२७ ॥

चक्रवर्त्यादीनां क्रियाशक्तावधिकारतारतम्यम्

चक्रवर्ती नृपः पूर्वां द्वितीयां मण्डलेश्वरः।
अधिकुर्यात् क्रियाशक्तिं तृतीयां विषयेश्वरः ॥ २८ ॥
महामात्रो द्विजातिर्वा यो बह्वी रक्षति प्रजाः।
इमां नैको नरः कुर्यादिकस्मै मानवाय तु ॥ २९ ॥

चक्रवर्त्ती राजा पूर्व में कही गई (शस्त्रास्त्र रूपा) शक्ति का तथा मण्डलेश्वर द्वितीय मन्त्रमयी शक्ति का और अपने विषय में सामान्य रहने वाला राजा, महामात्र या द्विजाति अथवा जो बहुत प्रजाओं की रक्षा करता हो, वह इस तृतीय मन्त्रस्वरूपा शक्ति का प्रयोग करे। किन्तु कोई भी मनुष्य एक मनुष्य के लिए इस शक्ति का प्रयोग न करे ॥ २८-२९ ॥

क्रियाशक्तिस्वरूपकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

अधिकारः क्रियायाश्च शक्तेस्ते सम्प्रदर्शितः।
रूपमस्या यथावन्मे गदतस्तन्निशामय ॥ ३० ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद! हमने यहाँ तक आपसे क्रियाशक्ति का अधिकार प्रदर्शित किया। अब जिस प्रकार का इसका रूप है उसे मैं कह रहा हूँ आप उसे श्रवण कीजिए ॥ ३० ॥

सामान्यतः शक्तेर्द्वैविध्यम्

उन्मेषः परमः शक्तेर्विष्णोः कोट्यंशकोटितः ।
भाव्यभावकभेदेन स द्विधा व्यवतिष्ठते ॥ ३१ ॥

विष्णु शक्ति का करोड़हवाँ अंश का करोड़हवाँ अंश, जो प्रथम उन्मेष (प्रकाश अङ्कुर) है वह भाव्यभावक भेद से दो प्रकार का कहा गया है ॥ ३१ ॥

भावको विष्णुसङ्कल्पः सुदर्शनपराह्वयः ।

शक्तेः पर्यायशब्दाः

सैषा देवी क्रियाशक्तिः सामर्थ्यं योग इत्यपि ॥ ३२ ॥
पारमेष्ठ्यं महातेजो मायायोग इतीदृशैः ।
शब्दैः प्रकारसामर्थ्यः सङ्कल्पः सोऽभिधीयते ॥ ३३ ॥

उसमें भावक विष्णु का सङ्कल्प रूप सुदर्शन नाम से कहा जाता है । उसी को देवी की क्रियाशक्ति, सामर्थ्य तथा योग नाम से पुकारा जाता है, पुनः वही सङ्कल्प पारमेष्ठ्य, महातेज, मायायोग और प्रकार सामर्थ्य आदि इसी प्रकार के शब्दों से कहा जाता है ॥ ३२-३३ ॥

भावकस्य भूत्यंशप्रवर्तकत्वम्

भाव्यो नाम य उन्मेषः सा भूतिरिति गीयते ।
शुद्ध्यशुद्धिमयी सेति पूर्वमेव निदर्शितम् ॥ ३४ ॥

प्रथम भाव्य नाम का उन्मेष (द्र० १६.३१) भूति नाम से कहा जाता है । वह शुद्धमयी और अशुद्धमयी भेद वाली है, ऐसा हम पहले कह आये हैं ॥ ३४ ॥

ज्वलनस्येव सा ज्वाला सङ्कल्पेन प्रतन्यते ।
एको नारायणो देवस्तस्य भावानुगामिनी ॥ ३५ ॥
तस्या देव्याः क्रियाशक्तेः स्थितिं मन्त्रमयीं शृणु ।

जिस प्रकार आग से ज्वाला फैलती है, उसी प्रकार वह (भूति) भी सङ्कल्प के द्वारा फैलती है । अब भगवान् नारायण देव की भावानुगामिनी उस क्रियाशक्ति की जिसमें स्थिति है उस मन्त्रमयी शक्ति को सुनिए ॥ ३५-३६ ॥

क्रियाशक्तेर्नादात्मकत्वम्

उद्यती सा क्रियाशक्तिर्भजते नादरूपताम् ॥ ३६ ॥

नादस्य दीर्घघण्टाध्वनिसाम्यम्

तं नादं परमं विद्धि दीर्घघण्टानदोपमम् ।

तस्य योगिमात्रप्रत्यक्षविषयत्वम्

परमैर्योगिभिः स्वान्ते स साक्षात् क्रियते स्वयम् ॥ ३७ ॥

वह मन्त्रमयी शक्ति जब उत्पन्न होना चाहती है, तब वह प्रथम नाद स्वरूप में प्रकट होती है। वह उत्कृष्ट नाद बहुत देर तक होने वाले घण्टानाद के समान समझिये, अत्यन्त ऊँचे योगी लोग उस नाद का स्वयं अपने अन्तस्तल में साक्षात्कार करते हैं ॥ ३६-३७ ॥

क्वचिदुन्मेषात् तस्य बिन्दुरूपत्वम्

स बुद्बुदवदम्भोधौ क्वचिदुन्मेषमृच्छति।
अनुद्रुतगतैः सोऽथ योगिभिर्बिन्दुरुच्यते ॥ ३८ ॥

कहीं-कहीं वही नाद समुद्र में बुद्बुद् के समान गम्भीर शब्द करता है। उसका अनुसरण करने वाले योगी जन उसी नाद को बिन्दु भी कहते हैं ॥ ३८ ॥

बिन्दोर्नामनामिरूपेण द्वैविध्यम्

नामनामिस्वरूपेण स बिन्दुर्भिद्यते द्विधा।

नाम्नः शब्दब्रह्मत्वम्

तत्र नामोदयं प्राप्य शब्दब्रह्मप्रवर्तते ॥ ३९ ॥

वह बिन्दु नाम और नामी के रूप में दो प्रकार के भेदों वाला है। उसमें नामोदय को प्राप्त कर शब्द ब्रह्म का प्रवर्त्तन होता है ॥ ३९ ॥

नामिनो भूतिरूपत्वम्

प्राप्य नाम्युदयं भूतिः पूर्वोद्दिष्टा प्रवर्तते।

वर्णोत्पत्तिकथनारम्भः

नामोदयमिदानीं मे मन्त्राध्वानं मुने शृणु ॥ ४० ॥

पुनः नामी का उदय प्राप्त कर वही बिन्दु पूर्व में कही गई भूति के रूप में प्रगट होता है। उसमें भी, हे मुने! अब आप नामोदय वाले मन्त्राध्वा को सुनिए ॥ ४० ॥

सा हि बिन्दुमयी शक्तिः स्वेच्छया नामतां गता।
अवर्णोऽप्येकधा पूर्वमनुत्तरमयात्मना ॥ ४१ ॥

वह बिन्दुमयी शक्ति स्वेच्छा से जब नाम को प्राप्त करती है तब वह अकेले सर्वप्रथम अवर्ण रूप में प्रगट होती है। जिससे श्रेष्ठ और कोई वर्ण नहीं कहा गया है ॥ ४१ ॥

बिन्दोर्द्वैविध्यम्

स्वरव्यञ्जनभेदेन स द्विधा व्यवतिष्ठते।
बिन्दुशक्तेरमुष्यास्तु भूयोऽपि शृणु विस्तरम् ॥ ४२ ॥

वही अकार पुनः स्वर व्यञ्जन भेद से दो प्रकार के रूप में स्थित होता है। अब हे नारद! उसी बिन्दुशक्ति का दूसरे प्रकार से विस्तार सुनिए ॥ ४२ ॥

उदेत्येषा विसृष्टाख्या शब्दसर्गमयी परा।

एकानेकविचित्रार्था नानावर्णविकारिणी ॥ ४३ ॥
साक्षात् सोमस्वरूपा सा लक्ष्म्याः शब्दमयी तनुः ।
स्वरव्यञ्जनरूपेण सा विवर्तं प्रपद्यते ॥ ४४ ॥

जब यह विसृष्टा (बिन्दु) नाम वाली शक्ति, जो शब्दसर्गमयी एवं परा है, उदय को प्राप्त होती है, तब वह एक, अनेक अथवा विचित्र अर्थों वाली, नाना वर्णों के एवं विकारों से युक्त होती है । वही सोम स्वरूपा है और लक्ष्मी का शब्दमय शरीर है जो स्वर और व्यञ्जन के भेद से बृहत्ता को प्राप्त होता है ॥ ४३-४४ ॥

अकारात्मना तस्य समुन्मेषः

अ इत्यादिसमुन्मेषः सोऽनुत्तर उदीर्यते ।

वह उदीयमान बिन्दु उन्मेष को प्राप्त होता है । तब सर्वप्रथम उसका रूप 'अ' के रूप में प्रगट होता है । इसीलिए उसे अनुत्तर (सर्वप्रथम होने से श्रेष्ठ) भी कहा जाता है ॥ ४५ ॥

अकारस्य सर्ववाग्रूपत्वम्

सर्वा वागयमेवैकस्तत्तदाकारभेदवान् ॥ ४५ ॥

इसी अकार में सारा वर्ण निहित है जो तत्तद्वर्णों के आकार रूप में भिन्न-भिन्न रूप से प्रगट होता है ।

बिन्दोरिकारोकारात्मना समुन्मेषः

स इच्छन्निरिति व्यक्त उन्मिषन्नुरिति स्मृतः ।

यथोक्तवर्णत्रयस्य सर्वस्वरविभावकत्वम्

एत एव त्रयो वर्णाः सर्वस्वरविभावनाः ॥ ४६ ॥

जब वह अकार पुनः उन्मेष को प्राप्त होता है तब इ के रूप में तथा पुनः उन्मेष प्राप्त होने पर 'उ' के रूप में प्रगट होता है । यही तीन वर्ण (अ, इ और उ) सारे स्वरों को प्रगट करने वाले हैं ॥ ४६ ॥

तेषां दीर्घतापत्तिः

अनुत्तरः स आनन्द आभावं प्रतिपद्यते ।
इरिच्छया स ईशान ईभावं प्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥

वही अनुत्तर (सर्वप्रथम) आनन्द रूपवाला अ आभाव को प्राप्त होता है । पुनः वही 'इ' अपनी इच्छा से ईशान होकर ई भाव को प्राप्त करता है ॥ ४७ ॥

उरुन्मिषन्नूनरूप ऊभावं प्रतिपद्यते ।

एषामुत्पत्तिः

अनुत्तरेच्छासन्धानादेकारो नाम जायते ॥ ४८ ॥

'उ' उन्मिष होते ही उन रूप को प्राप्त कर ऊ भाव को प्राप्त होता है । पुनः अनुत्तर

'अ' इच्छा 'इकार' की संधि हो जाने पर उसका नाम एकार होता है। पुनः वही अ ए से संधिभाव को प्राप्त कर ऐ भाव को प्राप्त करता है ॥ ४८ ॥

अनुत्तराद्भवन् भूय ऐभावं प्रतिपद्यते।
दिव्यादनुत्तरोन्मेषादोकारो नाम जायते ॥ ४९ ॥
अनुत्तराद्भवन् भूय औभावं प्रतिपद्यते।

तेषां सन्ध्यक्षरत्वम्

संध्यात्मान इमे कूटाश्चत्वारः समुदाहृताः ॥ ५० ॥

दिव्य अकार जब उन्मेष से संधि को प्राप्त होता है तब वह 'ओकार' नाम वाला होता है। फिर वही ओ जब अकार से संधित होता है तब औकार भाव को प्राप्त होता है। इस प्रकार ये चार ए ऐ ओ और औ कूट स्वर सन्धिसंयुक्त कहे गए हैं ॥ ४९-५० ॥

तेषामवयवार्थाविष्करणम्

अनुत्तरेच्छायोगेन ह्योधमानः स ए स्मृतः।
भूयोऽनुत्तरसंयोगादै चाप्यैश्वर्यवान् स्मृतः ॥ ५१ ॥

अनुत्तर (अकार) और इच्छा (इकार) से सन्धि होने पर बढ़ने के कारण वह 'ए' ऐसा कहा जाता है, फिर अं पुनः ए से संयुक्त (सन्धि) हो जाने पर ऐश्वर्यशालि 'ऐ' कहा जाता है ॥ ५१ ॥

दिव्यादनुत्तरोन्मेषादोतः सर्वत्र ओ स्मृतः।
अनुत्तरात् स सम्भूय और्जित्यादौगतिं गतः ॥ ५२ ॥

दिव्य अकार जब अनुत्तर से संधित होता है तो ओ कहा जाता है। पुनः अकार से सन्धित होकर और्जित होने से 'औ' भाव को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

ऋलृवर्णोत्पत्तिः

एकत्रिभागयो ऋद्ध्या अरयो ऋ स्मृतो बुधैः।
अलयोश्च तथा लृत्वमाकारः स्यादनुत्तरः ॥ ५३ ॥

जब अकार का एक भाग और र् तथा य् का तीन भाग मिल जाता है तब बुद्धिमान् लोग उसे 'ऋ' ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार 'आ' का एक भाग तथा ल और य् का तीन भाग जब संयुक्त हो जाता है तब उसे लृ कहते हैं ॥ ५३ ॥

भूयोऽप्यनुत्तरोद्योगात् प्लवमानस्तथा स्मृतः।
एवं चतुर्दशोद्योगान्नानाकारविभाविनी ॥ ५४ ॥
नटीव कुण्डलीशक्तिराद्या विष्णोर्विजृम्भते।
अस्य रूपद्वयं सूक्ष्मं सृष्टिसंहारकारणम् ॥ ५५ ॥

यह दूसरा लृ भी वर्ण समाम्नाय तथा तन्त्रशास्त्रों में पठित है (देखिये शारदातिलक-तन्त्रम्)। वर्णों की गणना के प्रसङ्ग में फिर जब अकार के साथ वही ल और अ संयुक्त

होकर ऊपर उठते हैं तब उसे दूसरा 'ल्' कहते हैं। इस प्रकार विष्णु की आद्याशक्ति कुण्डलिनी नटी के समान पूर्वोक्त दश अवस्था (द्र० १६.४५ में १ अवस्था, ४६ श्लो० २ अवस्था, ४७ में २, ४८ में २, ४९ में २ और ५० में १ = १०) को प्राप्त कर अनेक प्रकार के वर्णों को प्रगट करती है। इसके सृष्टि तथा संहार में कारणभूत दो सूक्ष्म रूप हैं ॥ ५४-५५ ॥

अनाख्येया महासत्ता क्रियाशक्तिः क्रमेण सा।
शब्दात्मना विवर्त्यन्ती सा पुरा याति सृष्टिताम् ॥ ५६ ॥
सृष्टिः सर्गो विसर्गश्च विसर्जनमितीदृशैः।

नाभौ कुण्डल्याः पश्यन्तीत्वम्

मूलाधारात् समुद्यन्ती सा शान्ता सा निरञ्जना ॥ ५७ ॥
अङ्क्ष्यन्ती साञ्जनैस्तैस्तैः संस्कारैः समनुत्तरम्।
दृष्टिदृश्यात्मतां प्राप्य शब्दार्थत्वविवर्तिनी ॥ ५८ ॥
पश्यन्ती नाम नाभौ सा योगदृश्योदयं गता।
शक्तिः सा वैष्णवी सत्ता मन्त्रमाता समञ्जना ॥ ५९ ॥
अधिकारक्षयं यान्ति योगिनस्तां गता धिया।

पहला रूप जो महासत्ता के नाम से कहा जाता है अनिर्वचनीय है और दूसरा रूप क्रियाशक्ति है जो शब्द स्वरूप से विवर्त्तित होकर सृष्टि करता है। जिसे सृष्टि सर्ग, विसर्ग एवं विसर्जन इन शब्दों से भी कहा जाता है। जब वह शान्ता तथा मायारहित कुण्डलिनी मूलाधार से उठकर पश्चात् मायायुक्त संस्कारों से लिप्त होकर दृष्टि से दृश्यभाव को प्राप्त होकर नाभि स्थान में शब्द और अर्थ के रूप में विवर्त्तभाव को प्राप्त होती है, तब उसे पश्यन्ती कहते हैं। वहाँ वह योग के द्वारा दृश्यमान होती है और वही कुण्डलिनी वैष्णवी शक्ति साकार रूप से सभी मन्त्रों की जननी होती है और योगियों की बुद्धि द्वारा अधिकार एवं क्षय (?) को प्राप्त करती है ॥ ५६-६० ॥

तस्या हृदब्जे विस्तारः

विजृम्भणोन्मुखी लक्ष्मीः पश्यन्ती सा क्रियामयी ॥ ६० ॥
भावं संस्कृत्य संस्कारैः समर्थाख्यां विवर्तनाम्।
भृङ्गीव निनदन्ती सा हृदब्जे याति विस्तृतिम् ॥ ६१ ॥
वाच्यवाचकभावेन लोलीभूता क्रियामयी।
तदा संस्कृतयः सर्वाः स्मृतीः पुष्यन्ति वाच्यगाः ॥ ६२ ॥

जब वही क्रियामयी पश्यन्ती नाम वाली लक्ष्मी विकासोन्मुखता को प्राप्त कर संस्कार से भाव (पदार्थ) को संस्कृत कर समर्थनाम्नी विवर्त्तन् को प्राप्त कर हृदयकमल में भ्रमर के समान गुञ्जार करती हुई वाच्य-वाचक भाव से चञ्चल तथा क्रियाशील होकर विस्तार प्राप्त करती है, तब सभी संस्कृतियों के स्मृति भाव को प्राप्त कर वाच्यार्थ को पुष्ट करती हैं ॥ ६०-६२ ॥

तस्याः कण्ठदेशे विसर्गात्मना परिणामः

एवंविधा क्रियाशक्तिस्तत्तद्वाच्यविवक्षया ।
शब्दरूपं समास्थाय कूटस्थं व्यक्तिवर्जितम् ॥ ६३ ॥
सा यात्यनुत्तरस्पृष्टा कण्ठं शक्तिर्विसर्गिणी ।
पुनः सानुत्तरे स्थित्वा चतुर्दशविभाविनी ॥ ६४ ॥

विसर्ग (सृष्टि) करने वाली वह शक्ति इस प्रकार तत्तत्स्थानों से होती हुई कण्ठ स्थान को जाती है । इसी प्रकार चतुर्दश स्थान (मूलाधार, नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, दन्तोष्ठ, कण्ठतालु, कण्ठौष्ठ जिह्वामूलीय, उपध्मानीय तथा नासिका) को भी प्राप्त कर तत्तद् वर्णों को प्रगट करती है ॥ ६३-६४ ॥

अनुत्तरोत्तरा याति कण्ठे हेति विजृम्भणम् ।
ततः सादिमयी भूत्वा कान्तव्यञ्जनशालिनी ॥ ६५ ॥

जब वह सृष्टि के लिए कण्ठ स्थान प्राप्त कर विकसित होती है तब सादि बन कर मनोहर व्यञ्जनयुक्त वर्णों को जन्म देती है । इसी प्रकार अन्य स्थानों को भी प्राप्त कर वर्णों की उत्पत्ति करती है ॥ ६५ ॥

अनुत्तरमयी भूयो बिन्दौ सम्प्रतितिष्ठति ।
बिन्दुः संहार इत्युक्तो विसर्गः सृष्टिरुच्यते ॥ ६६ ॥

फिर तत्तत्स्थानों से वर्णों को उत्पन्न कर अपने बिन्दु स्थान को लौट आती है । बिन्दु को संहार कहते हैं और विसर्ग को सृष्टि कहा जाता है (द्र० १७) ॥ ६६ ॥

इमौ द्वौ सृष्टिसंहारौ लेशतस्ते निदर्शितौ ।
मत्तः शृणु मुने भूयः स्वराणां विविधां ततिम् ॥ ६७ ॥

हे नारद ! इस प्रकार सृष्टि और संहार का निदर्शन मैंने आपसे संक्षेप में किया । अब हे मुने ! मुझसे स्वरों का नाना प्रकार का विस्तार सुनिए ॥ ६७ ॥

स्वराणामवान्तरभेदनिरूपणम्

यदादित्रितयं पूर्वं स्वरकूटस्थमीरितम् ।
अष्टादशविधं तत्तु प्रत्येकं योगिनां मतम् ॥ ६८ ॥

स्वरों का अवान्तर भेद—पूर्व में हमने जो आदि के कूटस्थ तीन स्वरों को कहा है उनमें प्रत्येक के अठारह अठारह भेद हैं ऐसा योगियों ने कहा है ॥ ६८ ॥

स्वरव्यञ्जनकूटौ यौ ऋ ऌ इत्युदितौ पुरा ।
आद्योऽष्टादशधान्त्यस्तु तयोर्द्वादशभेदवान् ॥ ६९ ॥

इसी प्रकार स्वर व्यञ्जन के कूट (अ र ल से मिश्रित) जो मैंने पूर्व में (द्र० १६.५३-५५) ऋ ऌ दो वर्णों को कहा है उसमें प्रथम ऋ के १८ भेद तथा ऌ के १२ भेद हैं ॥ ६९ ॥

इति स्वराणां पञ्चानामशीतिश्चतुरुत्तरा ।
स्वरकूटास्तु चत्वारो ये तेषामीदृशी भिदा ॥ ७० ॥
शतानि त्रीण्यथैकारा विंशतिश्चतुरुत्तरा ।
एवं पञ्च सहस्राणि शतान्यष्टावनुष्टुभाम् ॥ ७१ ॥

अ इ उ मिलाकर ५४ तथा ऋ के १८ और ऌ के बारह कुल मिलाकर ८४ भेद हुये और जो आगे के चार स्वरकूट ए ऐ ओ औ हैं इनके भी भेद उसी प्रकार समझना चाहिए । इसी प्रकार सभी वर्णों के भेद पाँच हजार एक सौ आठ हुये ॥ ७०-७१ ॥

ऐकारः कथितः सम्यक् शिक्षातत्त्वविशारदैः ।
ओकारश्च तथौकार इयद्भेदौ प्रकीर्तितौ ॥ ७२ ॥

शिक्षा तत्त्व विशारदों ने इस प्रकार ऐकार को कहा है । ओकार तथा औकार के भी इतने ही भेद जानना चाहिए ॥ ७२ ॥

रम्यौ गौरौ यमित्येव सङ्ख्या सम्भूय संधिगा ।
योगिनस्तां प्रपश्यन्ति मन्यन्ते मनसा नराः ॥ ७३ ॥

रम्य, गौर और यम् इस प्रकार संधि को लेकर सारी सङ्ख्या इतनी ही है । योगी लोग उसे ध्यान द्वारा देखे हुये हैं । इसलिए मनुष्य भी मन से उतनी ही सङ्ख्या को मान्यता देते हैं ॥ ७३ ॥

सम्भूय स्वरसङ्ख्या तु स्तब्धौ गौरो यमित्यसौ ।
द्विस्तावन्तः स्वरा ज्ञेयाः सृष्टिसंहारभेदिताः ॥ ७४ ॥

स्वरों की सङ्ख्या भी इसी प्रकार स्तब्ध, गौर और यम् सृष्टि (विसर्ग यथा अः) संहार (विन्दु यथा अं) भेद से स्वरों की सङ्ख्या दुगुनी जाननी चाहिए ॥ ७४ ॥

सर्गयुक्ता बिन्दुयुक्ताः केवला इति ये त्रिधा ।
देहोऽर्थः सङ्ग इत्येव ते सम्भूय चतुर्दश ॥ ७५ ॥

ये स्वर कहीं विसर्ग से युक्त (अः), कहीं बिन्दु से युक्त (यथा अं), कहीं केवल (यथाच्यु) भेद से तीन प्रकार के होते हैं इसी प्रकार देह, अर्थ और सङ्ग कुल मिलाकर १४ सङ्ख्या हुई ॥ ७५ ॥

सृष्टिः सोमः समाख्याता बिन्दुः सूर्य उदीर्यते ।

स्वराणां सूर्यचन्द्रकिरणात्मता

पूर्वे सप्त स्वराः सूर्यकिरणाः परिकीर्तिताः ॥ ७६ ॥
सोमस्य किरणा ज्ञेया आकारादय उत्तरे ।

तयोरहोरात्रप्रवर्तकत्वम्

अहर्नयति सूर्यस्तु स्वरैः पिङ्गलया चरन् ॥ ७७ ॥

सृष्टि (विसर्ग) को सोम कहा जाता है। बिन्दु (अनुस्वार) सूर्य नाम से पुकारा जाता है। पूर्व के सात स्वर (अ इ उ ऋ ए ओ और अः) सूर्य की किरण हैं। इसी प्रकार उत्तर के आकारादि स्वर (आ ई ऊ ॠ इत्यादि) सोम की किरण हैं। इन स्वरों के द्वारा पिङ्गला नामक नाड़ी से चलता हुआ दिन उत्पन्न करता है ॥ ७६-७७ ॥

रात्रिं सृजति सोमस्तु स्वरैः स्वैरिडया चरन्।

परशक्तेः सुषुम्नासञ्चारित्वम्

स्वराणां या परा विष्णोः कूटस्था शक्तिरुज्ज्वला ॥ ७८ ॥
सुषुम्नया सञ्चरते शब्दब्रह्म वितन्वती।
इति ते लेशतः प्रोक्ता स्वराणां गतिरुत्तमा ॥ ७९ ॥

सोम इन्हीं स्वरों से ईडा नामक नाडी से चलता हुआ रात्रि की सृष्टि करता है। जो सभी स्वरों से उत्तम है और जो विष्णु की कूटस्था उज्ज्वला शक्ति है वह शक्ति सुषुम्ना के द्वारा शब्दब्रह्म का निर्माण करती हुई सञ्चरण करती है। इस प्रकार, हे नारद! मैंने सभी स्वरों की उत्तमगति का लेश मात्र निरूपण किया ॥ ७८-७९ ॥

व्यञ्जनसृष्टिकथनारम्भः

अथ व्यञ्जनसृष्टिं ते कथयामि मुने शृणु।

विसर्गस्य वासुदेवमूर्तित्वम्

अनुत्तरोत्तरा सृष्टिर्या सा हेति पुरोदिता ॥ ८० ॥
आदिव्यूहस्य देवस्य वासुदेवस्य सा तनुः।
अच्युतो बिन्दुयुक्तोऽसौ रुन्धन्नाधारमादिमम् ॥ ८१ ॥
साग्निं दीपयते नादं योगारम्भे तु योगिनाम्।
अच्युतः सृष्टियुक्तोऽसावूर्ध्वसृष्टिं करोति च ॥ ८२ ॥

व्यञ्जन सृष्टि—हे मुने! अब व्यञ्जन सृष्टि आपसे कहता हूँ सावधान होकर सुनिए। पूर्व में अनुत्तरोत्तरा सृष्टि (अकार) जिसका दूसरा नाम हेति भी है। वह आदिव्यूह वाले देवाधिदेव विष्णु का शरीर है। जैसा कि 'आकारो वासुदेव स्यात्' कहा गया है वही अच्युत (अकार) बिन्दु से युक्त होकर (अ) योगिजनों के योगारम्भ काल में मूलाधार को रोककर अग्नियुक्त नाद को प्रदीप्त करता है। इस प्रकार अच्युत (अकार) सृष्टि (विसर्ग) से युक्त होने पर ऊर्ध्वसृष्टि करता है ॥ ८०-८२ ॥

अच्युतः सृष्टियुक्तस्तु बहिःसृष्टिं करोत्ययम्।

तस्मादूष्मणामुत्पत्तिस्तेषां चातुरात्म्यं च

हात् सात् षात् शात्ततः शश्वच्छक्त्यूष्माण उदीरिताः ॥ ८३ ॥

वही सृष्टियुक्त (सविसर्ग) अच्युत (अकार) ह स ष और श से बाह्य सृष्टि भी करता है। यही शश्वच्छक्ति ऊष्मा नाम से भी कही जाती है ॥ ८३ ॥

चातुरात्म्यमिदं प्रोक्तं चतुर्ब्रह्मेति शब्दितम् ।

क्षकारसहितानां तेषां ब्रह्मशब्दवाच्यत्वम्

क्षेण कूटेन संयोगात् पञ्चब्रह्मेति शब्दितम् ॥ ८४ ॥

यही ह स ष और श ऊषा संज्ञक वर्ण चातुरात्म्य तथा चतुर्ब्रह्म के नाम से कहे गए हैं । जब क्ष रूप कूट वर्ण से ये संयुक्त होते हैं, तब इन्हें पञ्चब्रह्म भी कहा जाता है ॥ ८४ ॥

क्षस्तु सत्यस्य बीजं तु प्रोक्तः सात्त्वतशासने ।
कषकूटमुशन्त्यन्ये नित्यं तत्प्रतिरूपकम् ॥ ८५ ॥

सात्वतशास्त्र में 'क्ष' वर्ण को सत्य का बीज भी कहा गया है । कोई लोग उस 'क्ष' वर्ण को क् और ष वर्णों का कूट (मिलाकर) मानते हैं ॥ ८५ ॥

अन्तःस्थानामुत्पत्तिस्तेषां संज्ञात्रयं च

शाद्वस्तस्माल्ल उद्दिष्टो लाद्रो राद्यः प्रजायते ।
धारणा नाम विज्ञेया याद्या विश्वस्य धारणात् ॥ ८६ ॥
अन्तःस्था इति च प्रोक्ता अन्तःस्थपुरुषेशयाः ।
अवस्था इति च प्रोक्ता ईशावतरणक्रमे ॥ ८७ ॥

फिर उसी शकार से व, फिर वकार से ल वर्ण उत्पन्न हुआ । फिर लकार से र तथा र से य की उत्पत्ति हुई । य र ल और व ये वर्ण विश्व को धारण करते हैं । इसलिए इन्हें धारणा भी कहते हैं तथा अन्तःस्थ पुरुष के भीतर सोने के कारण इन्हें अन्तःस्थ भी कहा जाता है । ईशावतरण क्रम में इन्हीं वर्णों को (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया) अवस्था भी कहा गया है ॥ ८६-८७ ॥

मकारोत्पत्तिः

यकारादीशशक्तिस्थान्मकारो नाम जायते ।
अनुत्तरोत्तरो बिन्दुर्म इति प्रतिशब्द्यते ॥ ८८ ॥

मकार की उत्पत्ति—ईश्वर की शक्ति में रहने वाले यकार से मकार नामक वर्ण उत्पन्न हुआ । सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला बिन्दु इस मकार का दूसरा नाम है ॥ ८८ ॥

तस्य सर्वचेतनसमष्टिरूपत्वं जीववाचित्वं च

चेतनानां तु सर्वेषां समष्टिः सा निगद्यते ।
अस्मदर्थोऽयमुद्दिष्टः सोऽयमुत्तमपूरुषः ॥ ८९ ॥

यह मकार सभी चेतनों की समष्टि कहा गया है । इसे 'अस्मद्' (मैं) इस अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है जो तीन प्रकार के पुरुषों में उत्तम पुरुष से अभिहित होता है ॥ ८९ ॥

भकारोत्पत्तिस्तस्य च प्रकृतिवाचित्वम्

सूक्ष्मेक्षयानुवृद्धौ सा प्रकृत्या भोग्यरूपया।
भ इत्येव मकारात् सा पुनः स्थूला विविच्यते ॥ ९० ॥

भकार की उत्पत्ति—पुनः सूक्ष्म ज्ञान के बढ़ जाने पर उस मकार से भोग्यरूप प्रकृति युक्त भकार उत्पन्न हुआ। अतः उसे स्थूला प्रकृति भी कहते हैं ॥ ९० ॥

बादिटान्तत्रयोदशवर्णोत्पत्तिः

भोगोपकरणाकारा बहिरन्तर्व्यवस्थया।
त्रयोदशात्मना व्यक्ता बाद्या टान्ता महामुने ॥ ९१ ॥

हे महामुने! उस मकार से बाहरी और भीतरी व्यवस्था के कारण भोग के उपकरण रूप आकार वाले त्रयोदशात्मक वर्ण ब (औष्ठ स्थानीय) के आदि से लेकर 'ट' वर्ण पर्यन्त (ब फ प न ध द थ त ण ढ ड ठ और ट) उत्पन्न हुये ॥ ९१ ॥

बादित्रयस्य महदहङ्कारमनोवाचित्वम्;
तवर्गस्य ज्ञानेन्द्रियवाचित्वम्

बुद्धिश्चाहङ्कृतिश्चैव मनश्चेति मनीषिभिः।
बादित्रितयमुद्दिष्टं नादि तान्तं तु धीन्द्रियम् ॥ ९२ ॥

ब से लेकर तीन वर्णों (ब फ और प) को मनीषियों ने क्रमशः बुद्धि, अहङ्कार और मन कहा है तथा न से लेकर त पर्यन्त वर्णों को (न ध द थ और त) ज्ञानेन्द्रियों के नाम से कहा है ॥ ९२ ॥

टवर्गस्य कर्मेन्द्रियवाचकत्वम्

णादि टान्तं तु कर्माख्यमथ भोग्योद्भवो द्विधा।

चवर्गोत्पत्तिः; तस्य तन्मात्रवाचित्वम्

ञादि चान्तं तु तन्मात्रपञ्चकं प्रविजृम्भते ॥ ९३ ॥

ण से लेकर ट पर्यन्तवर्ण (ण ढ ड ठ और ट) इन्हें कर्मेन्द्रियों की संज्ञा दी है। इस प्रकार बुद्धीन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों ही भोग्य के लिए उत्पन्न हुये हैं। म से लेकर च पर्यन्त पाँच वर्ण (ञ, झ, ज, छ और च) पञ्च तन्मात्राओं के रूप हैं ॥ ९३ ॥

कवर्गोत्पत्तिः; तस्य महाभूतवाचित्वम्

ङादिः पञ्चमहाभूता कान्तान्या वर्णसन्ततिः।
यस्माद्यस्योद्भवो वर्णात् तत्त्वसृष्ट्यां तु तत् स्मरेत् ॥ ९४ ॥

इससे अतिरिक्त अन्य 'ङ' से लेकर क पर्यन्त वर्ण (ङ, घ, ग, ख और क) ये वर्ण समूह पञ्चमहाभूत नाम से कहे गए हैं। इस प्रकार जिस वर्ण से जिसकी सृष्टि कही गई हैं। तत्त्व सृष्टि में उस वर्ण का स्मरण करना चाहिए ॥ ९४ ॥

ळकारोत्पत्तिः

लस्यैव करणान्यत्वे ळकारो नाम जायते ।

ळकार का जब कोई दूसरा कारण होता है तब उसका नाम ळकार कहा जाता है ।

व्यञ्जनानां वैविध्यम्

चतुस्त्रिंशदिति प्रोक्ता वर्णास्ते व्यञ्जनात्मकाः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार हे नारद ! हमने ३४ व्यञ्जन वर्णों (५ कर्वगादि मिलाकर २५ यकार से लेकर हकार पर्यन्त वर्ण कुल ३३ और एक अन्य ळकार) को आपसे कहा ॥ ९५ ॥

एवमेकैकशो योगाद्भेदाः स्युर्बहवः स्वरैः ।
चतुःपञ्चाशदुद्दिष्टाः ककारास्तत्र वै मुने ॥ ९६ ॥

इन व्यञ्जनों का जब एक-एक स्वर से संयोग होता है तो इनके बहुत से भेद हो जाते हैं । हे मुने ! उसमें केवल क कार ही ५४ भेद वाला कहा गया है ॥ ९६ ॥

किकाराश्च कुकाराश्च कृकाराश्च तथाविधाः ।
क्लृकारास्तत्र षट्त्रिंशत् केकारा रसधीर्मुने ॥ ९७ ॥

इसी प्रकार किकार, कुकार तथा कृकार भी उतने ही भेद वाले हैं । क्लृकार के ३६ भेद हैं (क्योंकि उसमें दीर्घ नहीं होता) केकार के ६१ भेद हैं ॥ ९७ ॥

तथाविधाश्च कोकारा योगिभिः सङ्ख्यया स्मृताः ।
स्तब्धस्वार्थोऽयमित्येवं कैकारो योगिभिः स्मृतः ॥ ९८ ॥

योगियों ने कोकार की भी उतनी ही (६१) सङ्ख्या कही है । योगियों ने कैकार को स्तब्ध और स्वार्थ कहा है ॥ ९८ ॥

कौकाराश्च तथासङ्ख्याः सप्त संहत्य ते पुनः ।
देहोऽर्थः सङ्ग इत्येवं सङ्ख्याताः परमर्षिभिः ॥ ९९ ॥
वेगव्यञ्जनसङ्ख्यैव देहोऽर्थः साङ्गभेदिताः ।
नीतिमत्प्रतिभा हेति सङ्ख्यया जायते मुने ॥ १०० ॥

कौकार की सङ्ख्या ७ जोड़कर ६८ कही गई है । महर्षियों द्वारा देहार्थ सङ्ग से इतनी सङ्ख्याओं को कहा है । वेग एवं व्यञ्जन के सङ्ख्याओं को ही देह एवं अर्थ से अङ्ग के सहित भेदित किया है । हे मुने ! नीतिमत्, प्रतिभा और हेति सङ्ख्या होती है ॥ ९९-१०० ॥

स्वरव्यञ्जनसंयोगादियं सङ्ख्या समीरिता ।
एकद्वित्र्यादिसंयोगैर्व्यञ्जनानां क्रमात् क्रमात् ॥ १०१ ॥
केवलानां सस्वराणां ततः सङ्ख्याविधिः स्मृतः ।

वर्णमातृकाया भगवच्छक्तिप्रोतत्वम्

पदवाक्यप्रमाणादिनानाकोरकशालिनी ॥ १०२ ॥

वर्णस्तम्बा ज्ञानमूला शब्दशक्तिर्हि वैष्णवी ।
विष्णुना देवदेवेन तेन शक्तिमता स्वयम् ॥ १०३ ॥
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन प्रोतेयं वर्णसन्ततिः ।

यह सङ्ख्या हमने स्वर और व्यञ्जन के संयोग से होने वाली कही है । एक दो और तीन व्यञ्जन वर्णों के संयोग से व्यञ्जन की सङ्ख्या अनन्त है । इसलिए केवल स्वर-युक्त वर्णों की सङ्ख्या की गणना कही गई । इस वैष्णवी शब्द शक्ति की पद, वाक्य तथा प्रमाणादि (व्याकरण, मीमांसा और न्यायवैशेषिक आदि) नाना प्रकार की कलिकायें हैं । इसके वर्ण ही स्तम्ब (गुच्छे) हैं तथा ज्ञान ही इसका मूल (जड़) है । यह वर्णसङ्गति शक्तिमान् देवाधिदेव विष्णु के साथ स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों से गुँथी हुई है ॥ १०१-१०४ ॥

भगवदाज्ञया रुद्रांशस्यापि वर्णमातृकाधिष्ठातृत्वम्

तदाज्ञयास्मदंशैश्च रुद्रैर्नानाविधैरियम् ।
मन्त्रयोनिरियं देवी मातृकाधिष्ठिता सदा ॥ १०४ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां वर्णोत्पत्ति-
निरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १०४ ॥

ये मातृकायें ही उन विष्णु की आज्ञा से हमारे (अहिर्बुध्न्य के) अंश वाले नाना प्रकार के रुद्रों से अधिष्ठित हैं और यही मातृका देवी सभी मन्त्रों की योनि (उत्पत्ति स्थान) भी है ॥ १०४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के वर्णो-
त्पत्तिनिरूपण नामक सोलहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

वर्णसंज्ञानिरूपणम्

ध्यायिनां सुखदं नित्यं ज्वालाजटिलकुन्तलम् ।
सुदर्शनाख्यं तद्दिव्यं महः किमपि धीमहि ॥

ध्यान करने वालों को सर्वदा सुख देने वाले और अपने प्रचण्ड तेज की ज्वाला से जटिल कुन्तल वाले सुदर्शन नामक किसी महान् दिव्य तेज का मैं ध्यान करता हूँ ।

वर्णमातृकाधिष्ठातृरूपप्रश्नः

नारदः—

नमस्ते शर्व सर्वज्ञ सर्वासुरनिबर्हण ।
स्थूलसूक्ष्मपरैर्भावैर्यथा वर्णा अधिष्ठिताः ॥ १ ॥
विष्णुना देवदेवेन रुद्रैश्च भवदंशकैः ।
तथा तं मे परं भावं वक्तुमर्हसि शङ्कर ॥ २ ॥

वर्णसंज्ञानिरूपण—श्रीनारद ने कहा—हे सम्पूर्ण असुरों का वध करने वाले ! हे सर्वज्ञ ! हे शर्व ! आपको नमस्कार है । हे भगवन् ! ये वर्ण जिस प्रकार देवाधिदेव विष्णु से तथा आप के अंशभूत रुद्रों से एवं स्थूल, सूक्ष्म एवं पर भावों से जिस प्रकार अधिष्ठित हैं । हे शङ्कर ! मुझसे उस परभाव का वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

विष्णुशक्तिमया वर्णा विष्णुसङ्कल्पजृम्भिताः ।
अधिष्ठिता यथा भावैस्तथा तन्मे निशामय ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! ये वर्ण विष्णुशक्तिमय हैं तथा विष्णु के सङ्कल्प द्वारा उत्पन्न होते हैं । ये जिस प्रकार के भावों से अधिष्ठित हैं वह मुझसे सुनिए ॥ ३ ॥

वर्णाधिष्ठातृवैष्णवरूपाणि

प्रथमश्चाप्रमेयश्च व्यापकोऽकार उच्यते ।
आनन्द आदिदेवश्च गोपनश्चाः स्मृतो बुधैः ॥ ४ ॥

प्रथम अप्रमेय और व्यापक इन शब्दों से अकार कहा जाता है । बुद्धिमानों ने आनन्द आदिदेव तथा गोपन शब्द से आकार का बोध कहा है ॥ ४ ॥

इष्ट इद्धश्च रामश्च इकारः परिपठ्यते ।
विष्णुश्च पञ्चबिन्दुश्च माया ईकार उच्यते ॥ ५ ॥

इष्ट, इद्ध तथा राम शब्द से इकार पढ़ा जाता है, इसी प्रकार विष्णु, पञ्चबिन्दु तथा माया से दीर्घ ईकार का बोध होता है ॥ ५ ॥

उकार उदयश्चापि ह्युद्दामो भुवनाह्वयः ।
प्रज्ञाधारश्च लोकेश ऊर्ज ऊकार उच्यते ॥ ६ ॥

उदय, उद्दाम तथा भुवन ये ह्रस्व उकार के नाम हैं । प्रज्ञाधार, लोकेश और ऊर्ज इनसे दीर्घ ऊकार का बोध होता है ॥ ६ ॥

ऋकार ऋतधामा च सत्यश्चाङ्कुश एव च ।
ज्वाला प्रसरणश्चैव ऋकारो विष्टराह्वयः ॥ ७ ॥

ऋतधाम, सत्य और अङ्कुश इनसे ह्रस्व ऋ का बोध होता है । ज्वाला, प्रसरण तथा विष्टर ये दीर्घ ऋकार के नाम है ॥ ७ ॥

ऌकारस्तारकः प्रोक्तो लिङ्गात्मा भगवानिति ।
ॡकारो दीर्घघोणश्च देवदत्तस्तथा विराट् ॥ ८ ॥

ऌकार को तारक, लिङ्गात्मा और भगवान् कहा जाता है । दीर्घघोण, देवदत्त तथा विराट् ये दीर्घ ॡकार के नाम है ॥ ८ ॥

एकारस्तु जगद्योनिस्त्र्यक्षो विग्रह एव च ।
ऐकारश्च तथैश्वर्यं योगी ह्यैरावणस्तथा ॥ ९ ॥

जगद्योनि, त्र्यक्ष और विग्रह ये एकार के नाम हैं । ऐश्वर्य, योगी एवं ऐरावण ये ऐकार के नाम हैं ॥ ९ ॥

ओदनश्चौतदेवश्च विक्रम्योकार उच्यते ।
और्वो भूधरसंज्ञश्चाप्यौः स्मृतो ह्यौषधात्मकः ॥ १० ॥

ओदन, ओतदेव तथा विक्रम्य इन शब्दों से ओकार कहा जाता है । और्व, भूधर और औषध ये औकार के नाम है ॥ १० ॥

त्रैलोक्यैश्वर्यदो व्यापी व्योमेशौंकार एव च ।
अङ्कारः सृष्टिकृत् प्रोक्तो विसर्गः परमेश्वरः ॥ ११ ॥

त्रैलोक्यैश्वर्यद, व्यापी और व्योम ये ॐकार के नाम हैं । अङ्कार को सृष्टिकृत् से कहा जाता है तथा विसर्ग (अः) परमेश्वर शब्द से कहा गया है ॥ ११ ॥

ककारः कमलश्चैव करालः प्रकृतिः परा ।
खकारः खर्वदेहश्च वेदात्मा विश्वभावनः ॥ १२ ॥

कमल, कराल तथा परा, प्रकृति ये ककार के नाम है । खर्वदेह, वेदात्मा तथा विश्वभावन इनसे खकार का बोध होता है ॥ १२ ॥

गकारस्तु गदध्वंसी गोविन्दश्च गदाधरः ।
घकारस्त्वथ घर्मांशुस्तेजस्वी दीप्तिमांस्तथा ॥ १३ ॥

ङकार एकदंष्ट्राख्यो भूतात्मा भूतभावनः ।
चन्द्रांशुश्चंचलश्चक्री चकारः परिकीर्त्यते ॥ १४ ॥

गदध्वंसी, गोविन्द और गदाधर ये गकार के नाम हैं । घर्मांशु, तेजस्वी तथा दीप्तिमान् ये घकार के नाम हैं । एकदंष्ट्र, भूतात्मा और भूतभावन ये ङकार के नाम हैं । चन्द्रांशु और चलचक्री इन शब्दों से चकार कहा जाता है ॥ १३-१४ ॥

छन्दःपतिश्छलध्वंसी छकारश्छन्द एव च ।
अजितो जन्महन्ता च जकारः शाश्वतः स्मृतः ॥ १५ ॥

छन्दःपति, छलध्वंसी और छन्द ये छकार के नाम हैं । अजित, जन्महन्ता तथा शाश्वत ये जकार के नाम हैं ॥ १५ ॥

झकारो झषसंज्ञस्तु सामगः सामपाठकः ।
ञकार उत्तमाख्यश्च ईश्वरस्तत्त्वधारकः ॥ १६ ॥

झष, सामग तथा सामपाठक नाम से झकार कहा गया है उत्तम, ईश्वर तथा तत्त्वधारक से ञकार का बोध होता है ॥ १६ ॥

विश्वाप्यायकरश्चन्द्री ट आह्लाद उदीरितः ।
धाराधरो नेमिसंज्ञष्ठकारः कौस्तुभो मतः ॥ १७ ॥

विश्वाप्यायकर, चन्द्री और आह्लाद ये टकार के नाम हैं । धाराधर, नेमि तथा कौस्तुभ इनसे ठकार का बोध होता है ॥ १७ ॥

मौसलो दण्डधारश्च डकारोऽखण्डविक्रमः ।
ढकारो विश्वरूपश्च दृढकर्मा प्रतर्दनः ॥ १८ ॥

मौसल, दण्डधार और अखण्डविक्रम ये डकार के नाम हैं । विश्वरूप, दृढ़कर्मा और प्रतर्द्दन ये ढकार के नाम हैं ॥ १८ ॥

णकारोऽभयदः शास्ता वैकुण्ठः परिकीर्तितः ।
तकारस्ताललक्ष्मा च वैराजः स्रग्धरस्तथा ॥ १९ ॥

अभयद, शास्ता तथा वैकुण्ठ से णकार को कहा गया है । ताललक्ष्मा, वैराज तथा स्रग्धर ये तकार के नाम हैं ॥ १९ ॥

धन्वी भुवनपालश्च थकारः सर्वधारकः ।
दत्तावकाशो दमनो दकारः शान्तिदः स्मृतः ॥ २० ॥

धन्वी, भुवनपाल तथा सर्वधारक इन पदों से थकार का बोध होता है और दत्तावकाश, दमन तथा शान्तिद इनसे दकार का बोध होता है ॥ २० ॥

धकारः शार्ङ्गधृग्धामा माधवश्च प्रकीर्तितः ।
नरो नारायणः पन्था नकारः समुदाहृतः ॥ २१ ॥

शार्ङ्गधृक्धाम और माधव ये धकार के नाम हैं । नर, नारायण और पन्था ये नकार के नाम हैं ॥ २१ ॥

पकारः पद्मनाभश्च पवित्रः पश्चिमाननः ।
फकारः फुल्लनयनो लाङ्गली श्वेतसंज्ञितः ॥ २२ ॥

पद्मनाभ, पवित्र और पश्चिमानन ये पकार के नाम हैं । फुल्लनयन, लाङ्गली तथा श्वेत इन शब्दों से फकार का बोध होता है ॥ २२ ॥

बकारो वामनो ह्रस्वः पूर्णाङ्गः स च कथ्यते ।
भल्लातको भकारश्च ज्ञेयः सिद्धिप्रदो ध्रुवः ॥ २३ ॥

वामन, ह्रस्व और पूर्णाङ्ग इनसे बकार का बोध होता है । भल्लातक, भकार सिद्धिप्रद तथा ध्रुव ये भकार के नाम जानना चाहिए ॥ २३ ॥

मकारो मर्दनः कालः प्रधानः परिपठ्यते ।
चतुर्गतिर्यकारश्च सुसूक्ष्मः शङ्ख उच्यते ॥ २४ ॥

मर्दन, काल और प्रधान ये मकार के नाम पढ़े गए हैं । चतुर्गति, सुसूक्ष्म और शङ्ख ये यकार के नाम हैं ॥ २४ ॥

अशेषभुवनाधारो रोऽनलः कालपावकः ।
लकारो विबुधाख्यश्च धरेशः पुरुषेश्वरः ॥ २५ ॥

अशेषभुवनाधार, कालपावक और अनल ये र के नाम हैं । विबुध, धरेश और पुरुषेश्वर ये लकार के नाम कहे गए हैं ॥ २५ ॥

वराहश्चामृताधारो वकारो वरुणः स्मृतः ।
शकारः शङ्करः शान्तः पुण्डरीकः प्रकीर्तितः ॥ २६ ॥

वराह, अमृताधार और वरुण शब्द से वकार जानना चाहिए । शङ्कर, शान्त और पुण्डरीक ये शकार के नाम है ॥ २६ ॥

नृसिंहश्चाग्निरूपश्च षकारो भास्करस्तथा ।
सकारस्त्वमृतस्तृप्तिः सोमश्च परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

नृसिंह, अग्निरूप तथा भास्कर ये षकार के नाम हैं । अमृत, तृप्ति और सोम इन पदों से सकार का बोध होता है ॥ २७ ॥

सूर्यो हकारः प्राणस्तु परमात्मा प्रकीर्तितः ।
अनन्तेशः क्षकारस्तु वर्गान्तो गरुडः स्मृतः ॥ २८ ॥

प्राण, परमात्मा तथा सूर्य ये हकार के नाम हैं। अनन्तेश, वर्गान्त तथा गरुड़ ये क्षकार के नाम से कहे जाते हैं ॥ २८ ॥

बिन्दुः संहार इत्युक्तो विसर्गः सृष्टिरुच्यते।
विष्णुशक्तिमया एते स्थूलसूक्ष्मपरात्मकाः ॥ २९ ॥
अप्रमेयादयो भावाः शतं सार्धमुदीरिताः।

बिन्दु से संहार तथा विसर्ग से सृष्टि का बोध होता है। ये सभी वर्ण स्थूल, सूक्ष्म तथा परात्मक हैं तथा विष्णु शक्तिमय कहे गए हैं। इस प्रकार अप्रमेयादिभाव सार्धशत (१५०) की सङ्ख्या में कहे गए हैं ॥ २९-३० ॥

वर्णाधिष्ठातृरौद्ररूपाणि

अहिर्बुध्न्यः—

वर्णास्तेऽधिष्ठिता यैस्तैर्मदंशै रुद्रसंज्ञितैः ॥ ३० ॥
तान्निबोध महाभागानक्षरस्थान् महामुने।
श्रीकण्ठानन्दसूक्ष्मेशास्त्रिमूर्तिरमरेश्वरः ॥ ३१ ॥
अङ्घ्रीशो भारभूतिश्च तिथिः स्थाणुर्भवाह्वयः।
चण्डीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः ॥ ३२ ॥
अक्रूरश्च महासेनः स्युरेताः स्वरमूर्तयः।
ततः क्रोधीशचण्डीशपञ्चान्तकशिवोत्तमाः ॥ ३३ ॥
तथैकरुद्रः कूर्मैकनेत्राह्वचतुराननाः।
अजेशः शर्वसोमेशौ लाङ्गली दारिकस्तथा ॥ ३४ ॥
अर्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाषाढदण्डिनौ।
अत्रिर्मीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी तथा ॥ ३५ ॥
चलगण्डद्विगण्डौ च समहाकालवालिनौ।
भुजङ्गेशः पिनाकी च खड्गीशश्च बकस्तथा ॥ ३६ ॥
श्वेतो भृगुर्वकुलीशः संवर्तक इतीरितः।
रुद्रमूर्तय उद्दिष्टा मदीया वर्णपालिकाः ॥ ३७ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महाभाग! हे नारद! अब जिस प्रकार वर्ण मेरे अंश वाले रुद्रों में अधिष्ठित हैं उनके नामों को सुनिए। श्रीकण्ठ, आनन्द, सूक्ष्मेश, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर, अङ्घ्रीश, भारभूति, तिथि, स्थाणु, भव, चण्डीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर एवं महासेन इतनी षोडश स्वरों की मूर्तियाँ हैं। इसके अनन्तर क्रोधीश, चण्डीश, पञ्चान्तक, शिवोत्तम, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र, चतुरानन, अजेश, शर्व, सोमेश, लाङ्गली, दारिक, अर्द्धनारीश्वर, उमाकान्त, आषाढ़, दण्डी, अत्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, चलगण्ड, द्विगण्ड, महाकाल, वाली, भुजङ्गेश, पिनाकी, खड्गीश, बकेश श्वेत, भृगु, वकुलीश और संवर्त्तक ये (३४) इतनी रुद्रमूर्तियाँ कही गई हैं। जो वर्णों पर अधिष्ठित रहकर उनका पालन करती हैं।

विमर्श—श्रीकण्ठ आदि नामों में जहाँ ईश पद नहीं कहा गया है, वहाँ सर्वत्र ईश पद जोड़ना चाहिए। द्र० मन्त्रमहोदधिः (२१.१००) ॥ ३०-३७ ॥

वर्णचक्रपद्मनिरूपणम्

तथा वर्णमयं चक्रं पद्मं चापि निबोध मे।
प्रणवोऽक्षः समुद्दिष्टः शक्तिर्नाभिरुदीरिता ॥ ३८ ॥

वर्णचक्रपद्म का वर्णन—अब वर्णमय चक्र तथा उसमें रहने वाले वर्णमय पद्म का वर्णन मुझसे सुनिए। प्रणव चक्र का अक्ष है और शक्ति उसकी नाभि है ॥ ३८ ॥

अकचाष्टतपाश्चैव सवर्ग्या अरपद्धतिः।
यादयो नेमिरुद्दिष्टा गरुडः प्रधिरुच्यते ॥ ३९ ॥

अ क च ट त प वर्गों के सहित ये अराओं की पद्धतियाँ हैं। यादि नेमि कही गई है क्ष उसकी प्रधि कही गई है ॥ ३९ ॥

प्रणवः कर्णिका प्रोक्ता शक्तिः केसरपद्धतिः।
स्वरद्विरष्टकं वर्गा अन्तःस्था ऊष्मभिः सह ॥ ४० ॥
पत्राष्टकमिदं प्रोक्तं गरुडो दीप्तिरुच्यते।
इति चक्राब्जमध्यस्था मातृकावर्णमालिनी ॥ ४१ ॥

वर्णमय पद्म का वर्णन—प्रणव उसकी कर्णिका है। शक्ति केसर-पद्धति है। १६ स्वर वर्ग वाले वर्ण (क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग), ऊष्मा श ष स ह के साथ अन्तःस्थ वर्ण (य र ल व) ये उसके आठ पत्ते हैं और गरुड़ (क्षकार) उसकी दीप्ति है। इस प्रकार चक्र और पद्म के मध्य में रहने वाले वर्णमालिका का निरूपण हमने किया ॥ ४०-४१ ॥

वर्णमातृकात्मकवैष्णवशक्तिस्वरूपवर्णनम्

मन्त्रयोनिर्महादेवी वैष्णवी षड्गुणात्मिका।
आदिवर्णप्रक्लृप्ताङ्गा वर्गाभरणभूषिता ॥ ४२ ॥
पद्मगर्भप्रतीकाशा शङ्खपङ्कजधारिणी।
प्रणवेनाथ शक्त्या च श्रिया संक्लृप्तदेहिका ॥ ४३ ॥

वर्णमातृकात्मकवैष्णवशक्ति का प्रतिपादन—जो मातृकायें सभी मन्त्रों की योनि (उत्पत्ति स्थान) तथा षड्गुणयुक्त वैष्णवी महादेवी के रूप में कही गई हैं, उन वर्णमातृका वैष्णवी शक्ति का अङ्ग अकारादि वर्णों से विरचित हैं। वह वर्ग (क वर्गादि) रूप आभरण से आभूषित तथा कमलगर्भ के समान स्वच्छ है तथा शङ्ख पङ्कज धारण करने वाली हैं, प्रणव शक्ति तथा श्री से उनके शरीर की रचना हुई है ॥ ४२-४३ ॥

स्वरसम्पूर्णवदना कचक्लृप्तकरद्वया।
टतक्लृप्तपदद्वन्द्वा पादिक्लृप्तोदरा शुभा ॥ ४४ ॥

सम्पूर्ण स्वर उनके मुख हैं। क वर्ग और च वर्ग उनके दोनों हाथ हैं। ट वर्ग और त वर्ग ये दोनों उनके दो पैर हैं और प वर्ग से उनका उदर निर्मित है ॥ ४४ ॥

यरप्राणोष्मका देवी लकारवरहारिणी।
वकारकाञ्चीसुभगा शषकुण्डलधारिणी ॥ ४५ ॥

उन वर्णमातृका देवी के य र ये प्राणोष्मा हैं। वह लकार की सुन्दरमाला धारण किये हुये हैं और वकार काञ्ची है तथा श ष रूप कुण्डल को धारण किये हुये हैं ॥ ४५ ॥

सहृत्का हान्तरात्मा च क्षप्रभा वर्णमालिनी।
पाशाङ्कुशकराग्रा च वाणी ध्येया विपश्चिता ॥ ४६ ॥

सकार उनका हृदय है, हकार उनकी अन्तरात्मा है और क्ष उनकी प्रभा है। इस प्रकार की वर्णमालिनी वाणी का ध्यान विद्वज्जनों को करना चाहिए, जिनके हाथ के अग्रभाग में पाश और अङ्कुश विराजमान हैं ॥ ४६ ॥

प्रथमं वैष्णवशक्त्याराधनम्

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण पुरैवाराधयेद्गिरम्।
लब्धानुज्ञस्ततो देव्या गुरुपङ्क्तिं समर्च्य च ॥ ४७ ॥
गणेशमभिपूज्याथ मन्त्रानिष्टान् समुद्धरेत्।

सर्वप्रथम आगे कहे जाने वाले मन्त्र से वाणी का ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर देवी से आज्ञा लेकर गुरुपङ्क्ति (गुरु-गुरु के गुरु और दादा गुरु) की अर्चना करनी चाहिए। फिर गणेश की पूजा कर इष्ट मन्त्रों का उद्धार करना चाहिए ॥ ४७-४८ ॥

वैष्णवरूपैरेव वैष्णवमन्त्रोद्धरणम्

अप्रमेयादिभिर्भावैर्वैष्णवानुद्धरेत् सुधीः ॥ ४८ ॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि वह अप्रमेयादि भावों से वैष्णव मन्त्र का उद्धार करे ॥४८॥

रौद्रमन्त्राणां रौद्ररूपैरुद्धरणम्; शक्तिमन्त्राणां शक्तिरूपैः

रौद्रान् रुद्रैस्ततः शाक्तान् भारत्यंशैः समुद्धरेत्।

इसी प्रकार रुद्र शक्ति की आराधना कर रुद्रमन्त्रों की तथा सरस्वती के अंश से शाक्त मन्त्रों का उद्धार करे ॥ ४९ ॥

यद्यपि व्यापका मन्त्रा नित्यं सिद्धा महामुने ॥ ४९ ॥
स्युः शक्तिशालिनो मन्त्रा एवं सृष्टिविचिन्तनात्।

उक्तक्रमोल्लङ्घने प्रत्यवायः

उज्झित्वोक्तक्रमं यो हि मन्दात्मा मन्त्रमुद्धरेत् ॥ ५० ॥
भवन्ति शापदा मन्त्रास्तस्य शास्त्रातिवर्तिनः।

हे महामुने! भले ही वे मन्त्र व्यापक तथा नित्य सिद्ध क्यों न हों। सृष्टि (वाणी)

का ध्यान कर तदनन्तर मन्त्रोद्धार करने से मन्त्र शक्तिशाली होते हैं। किन्तु जो मन्दात्मा ऊपर कहे गए क्रमों का उल्लङ्घन कर मन्त्रों का उद्धार करता है उस शास्त्र उच्छृङ्खल के उद्धृत मन्त्र विपत्ति प्रदान करते हैं ॥ ४९-५१ ॥

अनुल्लङ्घनेऽभ्युदयः

अनुज्झित्वा क्रमं सर्वं यः सुधीर्मन्त्रमुद्धरेत्।
तस्याध्ययनमात्रेण मन्त्रः सिद्धिं प्रयच्छति ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां वर्णसंज्ञा-
निरूपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १०५५ ॥

जो बुद्धिमान् पुरुष क्रम का उल्लङ्घन किये बिना मन्त्रोद्धार करता है उसके अध्ययन मात्र से मन्त्र उसे सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ ५१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के वर्ण संज्ञा निरूपण नामक सत्रहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

मन्त्रोद्धारः

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़-पापसमूहों को नष्ट करता है । हम सुदर्शन के उस दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

शक्तिमन्त्रोद्धारः

अहिर्बुध्न्यः—

शक्तिं समुद्धरेत् पूर्वमग्नीषोमात्मना स्थिताम् ।
विष्णुस्थां परमात्मस्थां स्पृशन्तीं व्यापिनीं पुनः ॥ १ ॥

साधक सर्वप्रथम अग्नि (र) और सोमात्मक (स्) रूप से स्थित रहने वाली शक्ति का उद्धार करे । जो विष्णु में तथा परम आत्मा में स्थित है, पुनः जो सर्वथा स्पर्श करने वाली है तथा सर्वत्र व्याप्त रहने वाली है ॥ १ ॥

वाणीं हृदयमादाय योजयेदन्तरात्मना ।
हृदा पुनः समायोज्य योजयेदूष्मणो द्वयम् ॥ २ ॥
पञ्चबिन्दुं महाशक्तिं स्मरेदथ तदासनाम् ।
व्योमेशमाश्रयन्तीं तां स्मरेदथ धिया पुनः ॥ ३ ॥

साधक बोली जाने वाली अपनी वाणी को हृदय में सोच कर उसे अन्तरात्मा से युक्त करे, फिर उसे हृदय से युक्त कर दोनों ऊष्मा से संयुक्त करे । इसके बाद उसकी आसनभूता पञ्चबिन्दु (ईकार रूपा माया) का स्मरण करे । पुनः व्योमेश (ॐ कार) का आश्रय लेटी हुई (ॐ ईं) उसका बुद्धि से स्मरण करे ॥ २-३ ॥

संक्षेपतस्तत्प्रभावः

इयं दिव्या महाशक्तिः सोमसूर्याग्निभूषणा ।
माया नाम तनुर्विष्णोस्त्रैलोक्यैश्वर्यदोज्ज्वला ॥ ४ ॥
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन शक्तिरेषा निदर्शिता ।

सौदर्शनानां मन्त्राणामियं योनिर्महामुने ॥ ५ ॥
विष्णुसङ्कल्परूपाणां ये चान्ये वैष्णवा भुवि ।
इयं सा परमा शक्तिरहन्तेयं हरेः परा ॥ ६ ॥
विचित्रानेकशब्दार्थतत्तत्सङ्कल्पकोरका ।

यही दिव्य महाशक्ति है जो सोम (स्), सूर्य (ह) तथा अग्नि (र) रूप भूषण धारण करने वाली है । माया इसका नाम है और यही विष्णु का शरीर है । त्रैलोक्य का ऐश्वर्य देने वाली तथा प्रकाश से सम्पन्न है, पूर्व में हम स्थूल एवं सूक्ष्म भेद से शक्ति के दो स्वरूप कह आये हैं (द्र० ३.२-३८) । सुदर्शन के सभी मन्त्रों की तथा विष्णु के सभी मन्त्रों की यही जननी है । इतना ही नहीं जो भूमि पर अन्य समस्त वैष्णव हैं, हे महामुने ! उनकी तो यह परमा शक्ति है । किं बहुना, यही विष्णु की अहन्ता है (विष्णु को इसी का अभिमान है) । विचित्र अनेक शब्दार्थों वाले तत्तत्सङ्कल्पों (वेद) की यह कोरका (जन्मदात्री) है ॥ ४-७ ॥

युग्मान्तैरादिभिः षड्भिराद्यन्तस्वरषट्कयोः ॥ ७ ॥
अङ्गक्लृप्तिः समुद्दिष्टा शक्त्या मेलितया स्वया ।

यही सुदर्शन की शक्तिभूता दशाक्षरी महाविद्या है जो स्थूलपरा तथा सूक्ष्मपरा आकार वाली है और विष्णुसङ्कल्परूपिणी है । यह तत्तद् विचित्र सङ्कल्पों के सद्भावों तथा असद्भावों की जन्मदात्री है । विष्णु की यह सर्वश्रेष्ठ सुदर्शनचक्र में रहने वाली स्थिति (शक्ति) सभी पदार्थों में अनुस्यूत है । आकाश से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जितने भी ऐश्वर्यों के भेद हैं उनमें रहने वाली है । सुदर्शन की सूक्ष्म रूपा शक्ति कार्यों के कारणादि का आदि और अन्त के ६, ६ स्वरों (आदि के ६ स्वर अ आ इ ई उ ऊ तथा अन्त के छः स्वर ए ऐ ओ औ अं अः) में शक्ति ने अपने को मिलाकर अपने शरीर की रचना की है—ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥ ७-८ ॥

मनसाभ्यस्य तां शक्तिं सन्तोषावधि वैष्णवीम् ॥ ८ ॥
समुद्धरेन्महामन्त्रं सौदर्शनमनन्यधीः ।

साधक सर्वप्रथम वैष्णवी शक्ति का (द्र० १७.४-२९) अप्रमेय से विष्णु शक्तिमय मन से तब तक अभ्यास करे जब तक सन्तोष न हो जावे । इसके बाद पूर्ण अभ्यास हो जाने पर एकाग्रचित्त हो सुदर्शन महामन्त्र का इस प्रकार उद्धार करे ॥ ८-९ ॥

सुदर्शनदशाक्षरमन्त्रोद्धारः

अमृतं शक्तिहृद्भूतमप्रमेयेन वर्णयेत् ॥ ९ ॥
दिव्यं तदन्तरात्मानं परमात्मानमञ्जसा ।
योजयेत् प्रथमेनैव तत्स्थां तृप्तिं तु केवलाम् ॥ १० ॥
केवलं तत्स्थितं सोमं तत्स्थितं च स्मरेत् सुधीः ।
अशेषभुवनाधारं तत्स्थमानन्दमेव च ॥ ११ ॥
कालपावकमादाय दुष्टपापेन्धनानलम् ।
योजयेद् व्यापकेनैव नानाविधविभाविना ॥ १२ ॥

सुदर्शनदशाक्षर मन्त्रोद्धार—शक्ति के हृदय से उत्पन्न अमृत (स द्र० १७.२७) को अप्रमेय (अ द्र० १७.४) से कल्पित करे। तदनन्तर दिव्य आत्मस्वरूप परमात्मा (हकार द्र० १७.२९) को अञ्जस प्रथम (अ द्र० १७.४) से युक्त करे। फिर उसमें रहने वाली केवल तृप्ति (स, द्र० १७.२७) तथा उसमें रहने वाले सोम (स द्र० १७.२७) का सुधी साधक स्मरण करे। फिर अशेषभुवनाधार ('र' द्र० १७.२५) तथा उसमें रहने वाले आनन्द (आ द्र० १७.४) का स्मरण करे। तदनन्तर दुष्ट पापरूप इन्धन को जलाने वाले कालपावक ('र' द्र० १७.२५) को लेकर अनेक प्रकार की विधि उत्पन्न करने वाले व्यापक (अ द्र० १७.४) से युक्त करे॥ ९-१२॥

विमर्श—चतुरक्षरी कूट—स ह अ सह त्र्यक्षर कूट स् र आ = स्त्रा

दशाक्षरी महाविद्या—स् अ ह् अ स् स् र् आ र् अ = सहस्रार॥ ९-१२॥

संक्षेपतस्तत्प्रभाववर्णनम्

दशाक्षरी महाविद्या शक्तिः सौदर्शनी त्वियम्।
स्थूलसूक्ष्मपराकारा विष्णुसङ्कल्परूपिणी॥ १३॥
तत्तद्विचित्रसङ्कल्पसदसद्भावभाविनी।
सर्वभावानुगा विष्णोः परा सौदर्शनी स्थितिः॥ १४॥
आकाशादिपृथिव्यन्तभूतिभेदानुयायिनी।
सूक्ष्मा सौदर्शनी शक्तिः कारणादिविभागिनी॥ १५॥

संक्षेप में दशाक्षरी मन्त्र का प्रभाव—यही सुदर्शन की शक्तिभूता दशाक्षरी महाविद्या है जो स्थूलपरा तथा सूक्ष्मपरा आकार वाली है। विष्णु संकल्परूपिणी है। तत्तद् विचित्र संकल्पों के सद्भावों तथा असद् भावों की जन्मदात्री है। विष्णु की यह सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन चक्र में रहने वाली स्थिति (शक्ति) सभी पदार्थों में अनुस्यूत है आकाश से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जितने भी ऐश्वर्यों के भेद हैं उनमें रहने वाली है। सुदर्शन की सूक्ष्मरूपा शक्ति कार्यों के कारणादि का विभाग करने वाली है॥ १३-१५॥

तत्तद्दुरितदैत्यौघतमोविध्वंसनात्मिका।
स्थूलचक्रस्वरूपाढ्या विष्णोः साङ्कल्पिकी स्थितिः॥ १६॥
स्वरव्यञ्जनकूटस्थैः पूर्णेयं चतुरक्षरी।
निदानं सर्वसिद्धीनामपदं लोभनाशयोः॥ १७॥
कूटे त्र्यर्णमये त्वस्याः परतः प्रायशः स्थितेः।
याभ्यां षडक्षरी सैषा विद्या भुवनकारिका॥ १८॥

इसके अतिरिक्त तद्तद् पाप रूपी दैत्य समूहों का तथा तमोगुणों की विध्वंसनात्मिका शक्ति स्थूलचक्र स्वरूपा है। दोनों ही विष्णु के सङ्कल्पात्मक स्थिति वाली है। ऊपर कहे गए दशाक्षरी महाविद्या के स्वर व्यञ्जन के कूटस्थ (मिला देने पर स ह) हो जाने पर सुदर्शन की चतुरक्षरी महाविद्या बन जाती है जो सभी सिद्धियों के प्रदान में कारण है। इसी दशाक्षरी महाविद्या के तीन वर्ण वाले कूट (समूह स्त्रा) की स्थिति में साधक को न

लोभ होता है न उसकी किसी वस्तु का विनाश ही होता है। उपर्युक्त त्र्यक्षरी कूट के दो बार उच्चारण से षडक्षरी महाविद्या बन जाती है जो (द्र० स्त्रा स्त्रा) सारे भुवनों की रचना करती है ॥ १६-१८ ॥

त्रेधा पञ्चमबीजकथनम्

परमात्मानमादाय योजयेदुदयेन तु।
प्रधानं संस्पृशेद्भूयः परं बीजं तु पञ्चमम् ॥ १९ ॥

अब तीन प्रकार से होने वाले पञ्चम बीज को कहते हैं—परमात्मा (ह द्र० १७.२८) को लेकर उदय (उ द्र० १७६) से युक्त करे। फिर प्रधान (म० द्र० १७.२४) को स्पर्श करे (हुँ)। यह सर्वश्रेष्ठ पञ्चम बीज कहा गया है ॥ १९ ॥

सूर्यमुद्दामकालाढ्यं सूक्ष्मं तद्बीजमुच्यते।
सप्राणं भुवनाधारं रक्षोदुरितमर्दनम् ॥ २० ॥
स्थूलं तु पञ्चमं बीजं सौदर्शनमनुत्तमम्।

सूर्य (ह, द्र० १७.२८) को उद्दाम (उ, द्र० १७.४) काल से (र, द्र० १७.२५) युक्त करे तो वह सूक्ष्म पञ्चम बीज होता है (सूं) प्राण (ह, द्र० १७.२८) को भुवनाधार (र द्र० १७.२५) से युक्त करे तो वह राक्षसों तथा पापों का विनाश करने वाला स्थूल पञ्चम बीज हूँ कहा गया है। ये सभी सुदर्शन के उत्तम बीज कहे गए हैं ॥ २०-२१ ॥

यत्तत् साङ्कर्षणं घोरं लाङ्गलं परमायुधम् ॥ २१ ॥
योजयेदप्रमेयेण चन्द्रिकाकेवलेन च।
परं तत् परमं षष्ठं दीप्तिशालि सुदर्शनि ॥ २२ ॥

अब तीन प्रकार से होने वाले षष्ठ बीज को कहते हैं—जो सङ्कर्षण का सर्वश्रेष्ठ और महाघोर आयुधलाङ्गल (फ, द्र० १७.२२) है। उसे अप्रमेय (अ, द्र० १७.२४) से तथा केवल चन्द्रिका से (फँ फँ) युक्त करे तो वह सर्वश्रेष्ठ दीप्तशाली सुदर्शन का षष्ठबीज बन जाता है ॥ २१-२२ ॥

सर्वशास्त्रार्थकूटस्थमिति तेजोऽप्रमेयकम्।
षष्ठे परा स्थितिर्बीजे सेयं नारद दर्शिता ॥ २३ ॥

सभी शास्त्रों के अर्थ में कूटस्थ एवं अप्रमेय तेज स्वरूप (अकार द्र० १७.४) षष्ठ बीज (अं) में परा रूप से स्थित है। हे नारद! इस प्रकार मैंने षष्ठ बीज कहा ॥ २३ ॥

तत् फुल्लनयनाकारं फुल्लैर्यन्नयनैर्वृतम्।
प्रथितं प्रथमाक्रान्तं विश्वाप्ययकृदुज्ज्वलम् ॥ २४ ॥
सूक्ष्मं षष्ठं समुद्दिष्टं बीजं सौदर्शनं परम्।
यस्मान्नयति सन्मार्गं छित्त्वाघं बाह्यमान्तरम् ॥ २५ ॥
प्रथते च मुहुर्वृद्ध्या विश्वमाप्याययत्यपि।
इयं ते मध्यमावस्था सूक्ष्मा षष्ठी प्रदर्शिता ॥ २६ ॥

जो विकसित नेत्रों से आवृत्त तथा फुल्लनयनाकार (फ, द्र० १७.२२) स्वरूप है तथा प्रथम (अ, द्र० १७.४) से आक्रान्त होकर लोक में प्रसिद्ध है । फ विश्व का संवर्धन करने वाला तथा प्रकाश स्वरूप है वह सुदर्शन का सूक्ष्म षष्ठ बीज है । वह बाहरी तथा भीतरी समस्त पापों का प्रक्षालन कर सन्मार्ग में साधक को ले जाता है तथा धीरे-धीरे उसे वृद्धि से संयुक्त करता है और विश्व का आप्यायन करता है । इस प्रकार, हे नारद ! मैंने आपसे मध्यमावस्था (द्वितीयावस्था) में रहने वाले सूक्ष्म षष्ठ बीज का उपदेश किया ॥ २४-२६ ॥

श्वेताख्या व्यापकाक्रान्ता आह्लादेन तु केवलम् ।
षष्ठी स्थूला समुद्दिष्टा त्रिधा नारद ते मुने ॥ २७ ॥

हे नारद ! श्वेत (फ द्र० १७.२२) कहा जाने वाला व्यापक (अ, द्र० १७.४) से आक्रान्त केवल आह्लाद (ट्, द्र० १७.१७) अर्थात् 'फट्' यह सुदर्शन का षष्ठ स्थूल बीज कहा जाता है । इस प्रकार, हे मुने ! श्रीनारद षष्ठ बीज को तीन प्रकार से हमने आपसे कहा ॥ २७ ॥

स्थाणुं छित्त्वा यथा दग्ध्वा पूर्वं केदारकारकः ।
फलप्रापणबीजानि प्रथयित्वा च वारिणा ॥ २८ ॥
आप्याय्य शान्तसन्तापो व्याप्नुवन् विविधं फलम् ।
आह्लादं लभतेऽतीव सेयं षष्ठी परा मुने ॥ २९ ॥
इति ते दर्शिता शश्वच्छक्तिः सा षोडशाक्षरी ।

जिस प्रकार धान की क्यारी बनाने वाला कृषक सर्वप्रथम खेत में रहने वाले निरर्थक वृक्षों को काट कर उसे जला देता है, फिर उसे जल से सिञ्चन कर फल प्राप्त कराने वाले उत्तम बीजों को बो देता है, फिर धीरे-धीरे उसे बढ़ाकर अनेक प्रकार के फलों की प्राप्ति कर अपना श्रम दूर कर देता है तथा प्रसन्नता प्राप्त करता है, उसी प्रकार, हे मुने ! यह षष्ठ बीज सर्वोत्कृष्ट है । इस प्रकार मैंने आपसे निरन्तर शक्ति से परिपूर्ण षोडशाक्षरी बीज का वर्णन किया ॥ २८-३० ॥

सुदर्शनगायत्री

स्वशक्त्या तु समाक्रान्ता गायत्री सेयमीरिता ॥ ३० ॥

अपनी शक्ति से समाक्रान्त इसी षोडशाक्षरी को सुदर्शन गायत्री कहा जाता है ॥३०॥

पुनः शक्तिमन्त्रवैभवः

एषा सौदर्शनी शक्तिर्भवबीजक्षयङ्करी ।
जप्तार्चिता हुता ध्याता तारयत्येव साधकम् ॥ ३१ ॥

यह षोडश अक्षरों वाली सुदर्शन की शक्ति संसार के बीज को क्षय करने वाली है । इसका जप करने से, अर्चन करने से, होम करने से तथा ध्यान करने से साधक मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ३१ ॥

अस्याः प्रातिस्विकं बीजं चतुर्थं कूटमुत्तमम्।
स्मृता प्रातिस्विकी शक्तिस्तृप्तिः सोमामृतात्मिका॥ ३२ ॥

इसका प्रातिस्विक् चतुर्थ कूट सर्वश्रेष्ठ है, (स ह) यह प्रातिस्विकी शक्तितृप्ति करने वाली (स, द्र० १७.२७) सोम का आप्यायन करने वाली (स, द्र० १७.२७) तथा अमृतात्मिका (स, द्र० १७.२७) अमृतस्वरूपा है ॥ ३२ ॥

शक्तिमन्त्रस्य प्रथमद्वितीयाक्षराभ्यां पुरुषसूक्तश्रीसूक्तयोराविर्भावः

अक्षरादादिमादस्याः सूक्तं पौरुषमुद्गतम्।
द्वितीयाक्षरसम्भूतं श्रीसूक्तं नाम यन्मुने॥ ३३ ॥

हे मुने! इस शक्ति के आदि अक्षर स से सहस्रशीर्षा इत्यादि पुरुषसूक्त तथा द्वितीयाक्षर ह से हिरण्यवर्णामित्यादि श्रीसूक्त का अविर्भाव हुआ है ॥ ३३ ॥

संक्षेपतो मन्त्रार्थवर्णनम्

सहयोर्यत् स्मृतं ज्ञानं तत् सहस्रारमुच्यते।
सहो बलं समाख्यातं तत् स्रवत्यखिलेन यत्॥ ३४ ॥
तत् सहस्रं समाख्यातमनन्तं प्राणनं च तत्।
अरं ज्ञानं समाख्यातं नित्यशुद्धं निरञ्जनम्॥ ३५ ॥

स तथा ह इन दो अक्षरों से जो ज्ञान होता है वही सहस्रार कहा जाता है। 'सह' का अर्थ बल है। वह बल समस्त सृष्टि से स्रवित होता है। इसलिए उसी को सहस्र कहते हैं। वही अनन्त तथा प्राणियों में प्राणन करता है। अर का अर्थ—अर् ज्ञान को कहते हैं वह नित्यशुद्ध तथा निरञ्जन है ॥ ३४-३५ ॥

ज्ञानक्रियात्मिका शक्तिरिति सौदर्शनी कला।
सम्प्राप्योदयमुद्दामं भुवनस्य कृते स्वयम्॥ ३६ ॥
प्राणसूर्यात्मिका भूत्वा परमात्मस्वरूपिणी।
निहत्य दुरितं शश्वद्विश्वमाप्याययन्त्यपि॥ ३७ ॥
श्वेता प्रसन्नभूयिष्ठा स्वयमानन्दते मुहुः।
संहृतैर्विगृहीतैश्च वाक्यैर्वर्णैः पदैरपि॥ ३८ ॥
लेशतोऽर्थगतिः प्रोक्ता विस्तृत्या नैव शक्यते।

ज्ञानात्मिका शक्ति तथा क्रियात्मिका शक्ति यह दो सुदर्शन की कलायें हैं। यही कलायें भुवन के निर्माण के लिए स्वयं उद्दाम (उ) रूप से उदय (उ) को प्राप्त कर, प्राणसूर्यात्मिका (हकार) होकर परमात्मस्वरूपिणी बन जाती हैं तथा समस्त पापतापों को विनष्ट कर विश्व का आप्यायन करती हैं। श्वेता (फ) रूपा शक्ति अत्यन्त प्रसन्न होकर स्वयं विश्व को आनन्दित करती है। इस प्रकार हमने समूह रूप से तथा अलग-अलग रूपों से वाक्य, वर्ण एवं पदों द्वारा सहस्रार शब्द का अर्थ नाम मात्र वर्णन किया। बहुत विस्तारपूर्वक इसका अर्थ करना सम्भव नहीं है।

विमर्श—सहस्रार—स् अ ह् अ् स् र् आ र् अ इन वर्णों का अर्थ (द्र० १७ अध्याय)। सह का अर्थ (द्र० १८.३४) स्र का अर्थ स्रवित होना (द्र० १८.३४) अर का अर्थ (द्र० १८.३५)। यहाँ पद रूप से इसका अर्थ किया गया है। सहस्रार का अर्थ सहस्रों अरों वाला यह वाक्यार्थ है। इस प्रकार वर्ण, पद तथा वाक्य से निष्पन्न होने वाला अर्थ किया गया (द्र० १८.३६+३९) है ॥ ३६-३९ ॥

सुदर्शनसप्ताक्षरी

प्रणवेन समाक्रान्ता सेयं सप्ताक्षरी स्मृता ॥ ३९ ॥

प्रणव लगा देने पर यह षष्ठाक्षरी शक्ति ही सप्ताक्षरी बन जाती है ॥ ३९ ॥

सुदर्शनाष्टाक्षरी

स्वशक्त्या च समाक्रान्ता सेयमष्टाक्षरी स्मृता।

सुदर्शननवाक्षरी

श्रिया समेता भूयोऽपि स्मृता सैषा नवाक्षरी ॥ ४० ॥

अपनी शक्ति (ह्रीं) को सुदर्शन सप्ताक्षरी में मिला देने से सुदर्शन अष्टाक्षरी विद्या बन जाती है ॥ ४० ॥

सुदर्शन नवाक्षरी ॐ स्रीं स्रां स्रा प्रिया अष्टाक्षरी मन्त्र में श्रीँ लगा देने से सुदर्शन की नवाक्षरी (ॐ ह्रीं श्रीं स्रा स्रां) प्रिया बन जाती है ॥ ४० ॥

अथाङ्गसिद्ध्यर्थाङ्गमन्त्रः

अथास्या अङ्गसिद्ध्यर्थमेकमङ्गं निशामय।
चन्द्रांशुमुद्धरेत् पूर्वमप्रमेयेण भूषयेत् ॥ ४१ ॥

हे नारद! अब अङ्ग की शुद्धि के लिए इसके एक अङ्ग को श्रवण करिए। सर्वप्रथम चन्द्राशु (चकार, द्र० १७.१४) फिर अप्रमेय (अ, द्र० १७.१४) से उसे भूषित करे ॥ ४१ ॥

अशेषभुवनाधारं परप्रकृतिसंयुतम्।
आनन्देन समाक्रान्तं द्वितीयं कूटमुद्धरेत् ॥ ४२ ॥

अशेषभुवनाधार (र, द्र० १७.२५) को आनन्द (आ, द्र० १७.४) से आक्रान्त करे और उसे पर प्रकृति से संयुक्त मिला देवे (रा)। इस प्रकार द्वितीय कूट का उद्धार करे ॥ ४२ ॥

चतुर्गतिमथादाय ह्यप्रमेयेण भूषयेत्।
ततोऽमृतमुपादायाप्यमृताधारभूषितम् ॥ ४३ ॥
आनन्दयोजितं पश्चात् परमात्मानमुद्धरेत्।
आनन्दपूरितः सोऽयं मन्त्रः सर्वाङ्गमन्त्रराट् ॥ ४४ ॥

चतुर्गति (यकार द्र० १७.२४) को लेकर अप्रमेय (अ द्र० १७.४) य स्वा से भूषित करे (य) इसके बाद अमृत (सकार) उसे अमृताधार (व) से भूषित सा करे। फिर

उसमें आनन्द (आ द्र० १७.४) मिला देवे । स्वा फिर परमात्मा (सकार द्र० १७.२८) लगाकर उद्धार करे । पश्चात् आनन्द (आ० १७.४) से युक्त करे (सा) तो वह मन्त्र सभी अङ्गमन्त्रों का राजा बन जाता है ॥ ४३-४४ ॥

अतिचञ्चलदीप्ताग्निः फुल्लत्कमलसंनिभः ।
सूर्यानलसहस्राभ आदिदेवसमद्युतिः ॥ ४५ ॥
नित्यतृप्तश्च मन्त्रात्मा सूक्ष्मावस्थ उदाहृतः ।
करालाकारवर्णाभा स्फुरच्चक्रायुतान्विता ॥ ४६ ॥
निहत्य दुरितं सर्वं प्राणेन स्वेन तेजसा ।
सोमसूर्यात्मिका भूत्वा गोपायति जगत्त्रयम् ॥ ४७ ॥

अत्यन्त चञ्चल प्रदीप्त अग्नि तथा फूले हुये कमल एवं सहस्रों सूर्य की आभा के समान, आदिदेव महादेव के समान तेजस्वी तथा नित्य तृप्त रहने वाले इस मन्त्रात्मा की सूक्ष्मावस्था का यही स्वरूप कहा गया है । यह कराल आकार के वर्ण की आभा से तथा चलते हुये चक्र से युक्त मन्त्र अपने तेज से तथा अपने प्राण से समस्त पापों का क्षय कर सूर्यात्मक रूप से तीनों जगत् की रक्षा करता है ॥ ४५-४७ ॥

इति स्थूला गतिर्दिव्या चक्रमन्त्रस्य दर्शिता ।
इदं नानाविधैर्बीजैर्हृदयाद्यङ्गसन्ततौ ।
योजयेच्चक्रमन्त्रं तु यथा तन्मे निशामय ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां मन्त्रोद्धारो
नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
॥ आदितः श्लोकाः ११०३ ॥

हे नारद ! इस प्रकार हमने चक्र की स्थूल गति तथा दिव्य गति आपसे कही । हृदयादि अङ्गों में अनेक प्रकार के बीजों से इस चक्र मन्त्र का, जिस प्रकार न्यास करना चाहिए, उसे मैं कह रहा हूँ आप सुनिए ॥ ४८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के मन्त्रोद्धार
नामक अट्ठारहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर
मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १८ ॥

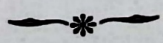

अथैकोनविंशोऽध्यायः

अङ्गोपाङ्गमन्त्रोद्धारः

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म-जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पाप समूहों को नष्ट कर देता है । हम उन सुदर्शन देवता के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

हृदयमन्त्रः

अहिर्बुध्न्यः—

यत्तज्ज्ञानमयं दिव्यं गुणानां प्रकृतिः परा ।
पञ्चानां तु बलादीनां नित्यशुद्धं निरञ्जनम् ॥ १ ॥
तन्नाम हृदयं मन्त्रं स षाड्गुण्यमयो यतः ।
तस्य वाचकमाकारमुद्धरेन्मनसा सुधीः ॥ २ ॥
ज्ञानत्वादप्रमेयश्च प्रथमो व्यापकः स्मृतः ।
आनन्द आदिदेवश्च गोपनश्चेति षड्विधाः ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—जो दिव्य हृदय मन्त्र नित्यशुद्ध निरञ्जन है, ज्ञानमय है तथा पाँचों बल आदि गुणों की परा प्रकृति की परा प्रकृति है उसका नाम ही हृदय मन्त्र है, क्योंकि वह षाड्गुण्यमय है । उसके वाचक आकार का सुधी साधक मन से उद्धार करे । वह ज्ञान स्वरूप होने से अप्रमेय, प्रथम, व्यापक, आनन्द, आदिदेव तथा गोपन इस प्रकार ६ भेदों वाला है ॥ १-३ ॥

क्रमात् संहत्य तज्ज्ञानं साङ्कर्षणमनुत्तमम् ।
तत्तद्विशेषसंयोगाद्विशेष्यस्तन्मयः सदा ॥ ४ ॥
इत्याभावसमायोगाज्ज्ञानात्मा मन्त्रराट् स्वयम् ।
हृदयाय नमः पश्चाद्व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

इस प्रकार सङ्कर्षण सम्बन्धी उस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को क्रमशः एकत्रित कर तत्तद्विशेष्य के संयोग से विशेषित कर तन्मय हो जावे । इस प्रकार आभाव के समायोग से वही

आकार स्वयं ज्ञानात्मा तथा मन्त्रराज है। उसी की अभिव्यक्ति के लिए 'आ हृदयाय नमः' ऐसा उच्चारण कर हृदय में न्यास करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

शिरोमन्त्रः

रमणीया समिद्धा च येच्छा देवस्य शाश्वती।
सर्वत्राप्रतिघा दिव्या ह्यमृताधारभेदिता ॥ ६ ॥

उस देव की शाश्वती इच्छा रमणीय है। सर्वतोभावेन जाज्वल्यमाना सर्वत्र अप्रतिहता, दिव्या तथा अमृताधार (व द्र० १७.२६) का भी भेदन करने वाली है ॥ ६ ॥

वीति बीजेन निर्दिष्टा तच्चैश्वर्यं महद्धरेः।
ऐश्वर्यं च शिरःस्थाने यत्तत् सर्वोपरि स्थितम् ॥ ७ ॥
अविघातात्मकं यत्तदिच्छाया रूपमुत्तमम्।
समिद्धं रमणीयं तदमृतस्याश्रयः परः ॥ ८ ॥
वीति तद्द्योतकं बीजं तेन संयोजयेच्छिरः।

वही इच्छा 'वी' इस बीज से कही जाती है जो परमात्मा का महान् ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य सर्वोपरि होने से शिरः स्थानीय है। अविघातात्मक है। इच्छा का उत्तम स्वरूप समिद्ध, रमणीय एवं अमृत का सर्वश्रेष्ठ आश्रय है। अतः उसके 'वी' द्योतक बीज को शिर से संयुक्त करना चाहिए ॥ ७-९ ॥

तेन संयोजितश्चक्रमन्त्र ऐश्वर्यबृंहितः ॥ ९ ॥
इच्छामिन्धान एवास्य मन्त्रिणः सम्प्रकाशते।
ततस्तच्छिरसे स्वाहा व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

'वी' इस बीज से संयुक्त किया गया चक्रमन्त्र ऐश्वर्य को बढ़ाता है और मन्त्रज्ञ की इच्छा को बढ़ाते हुये सम्प्रकाशित करता है। इसलिए उसकी अभिव्यक्ति के लिए 'वी' शिरसे स्वाहा कह कर शिर में न्यास करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

शिखामन्त्रः

अमृता सोमरूपा च या सा तृप्तिमयी परा।
जगत्प्रकृतिरीशाना विष्णुशक्तिः परावरा ॥ ११ ॥
तस्या यो भुवनाकार उद्दाम उदयोऽमलः।
सु इत्येवं समाख्याता शक्तिस्तेनोदिता सती ॥ १२ ॥
विशेषयति रूपेण चक्रमन्त्रं सनातनम्।
तया स भेदितः शक्त्या शक्त्यात्मा सम्प्रकाशते ॥ १३ ॥
या सा कुण्डलिनी शक्तिर्हृदयस्था समीरिता।
योगिभिर्या शिखा तस्या दिव्या दीपाकृतिः परा ॥ १४ ॥
प्रसरत्यूर्ध्वभागे तु शिखास्थाने विराजते।
अतः शक्तेः शिखास्थाने न्यासस्तस्यास्ततः स्मृतः ॥ १५ ॥

शिखायै वषडित्येवं व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत्।

जो अमृता, सोमरूपा तृप्तिमयी, जगत्प्रकृति, सबकी अधीश्वरी, विष्णुशक्ति एवं परावरा है अर्थात् 'स्' स्वरूपा द्र० १७.२७, उसका जो उद्दाम उदय तथा अमल (स्वच्छ रहने वाला) का आकार है, उकार (वह द्र० १७.६)। इस प्रकार जो शक्ति 'सु' नाम से विख्यात है, उसका उच्चारण सनातन चक्रमन्त्र को रूप से विशिष्ट बनाता है, उसी शक्ति से भेदन किये जाने के कारण चक्रशक्ति की आत्मा, जिसे योगी जन हृदय में रहने वाली कुण्डलिनी शक्ति भी कहते हैं, वह प्रकाशित होती है। उस कुण्डलिनी की परा दीप की आकृति वाली शिखा शरीर के ऊर्ध्वभाग में रहने वाले शिखास्थान में ऊपर की ओर वर्धमान होकर फैलती है। अतः 'सु' इस शक्ति से शिखा स्थान में न्यास करना कहा गया है। उसी की अभिव्यक्ति के लिए 'सु शिखायै वषड्' ऐसा प्रयोग करना चाहिए॥ ११-१५॥

कवचमन्त्रः

ऊर्जो नाम समुद्दिष्टो बलं विष्णोः स्वमूर्जितम्॥ १६॥
प्रज्ञाधारणसामर्थ्यं नित्यतृप्तिमयं परम्।
सर्वकार्यैः समुद्युक्तः श्रमाभावे हि तृप्यति॥ १७॥
अशेषभुवनाधारस्तद्बलं परिगीयते।
बले बलं धारणेद्धा बिभर्ति सकलं जगत्॥ १८॥
चतुर्गतिमयं यत्तत् प्राणानां परिगीयते।
व्यानापानादिका सा च प्रोक्ता गतिचतुष्टयी॥ १९॥
चतुर्गतिमयः प्राणो बलं तत् परिगीयते।
अजितो भगवान् येन जयत्यखिलमच्युतः॥ २०॥

विष्णु का सर्वसमृद्ध अपना बल 'ऊर्ज' नाम से कहा जाता है। उसी में प्रज्ञा धारण करने की सामर्थ्य है वही नित्यतृप्त तथा सर्वोत्कृष्ट है। उसी बल का उपयोग समस्त कार्यों में उपयुक्त होने से किया जाता है। उस बल को कभी थकान नहीं होता अतः थकान न होने के कारण वह सर्वदा तृप्त रहता है। वही बल अशेषभुवनाधार (र द्र० १७.२५) के रूप में कहा जाता है और बल में बल धारण करने से बढ़ा हुआ वही बल समस्त संसार को धारण करता है। वही व्यान अपानरूप से कहा जाता है। जिसकी चार प्रकार की गति कही जाती है, य बीज रूप द्र० १७.२४। अतः प्राण को चारगतियों वाला बताया गया है। इसी प्राणरूप बल से भगवान् अच्युत किसी से जीते नहीं जाते। वे अजित हैं॥ १६-२०॥

एतैर्गुणैः समायुक्तं बलं तद्वैष्णवं महत्।
अप्रमेयमनाद्यं तत् सूर्यशब्देन गीयते॥ २१॥

इन गुणों (द्र० १९.१७) से युक्त रहने के कारण वह महान् वैष्णव बल अप्रमेय है, अनादि है और उसे सूर्य शब्द से कहा जाता है॥ २१॥

बलेन भेदितो मन्त्रो बलात्मा व्यवतिष्ठते।
बलं चाखिलगात्रेषु मूर्छितं विपुलं महत्॥ २२॥

अंसयोस्तदभिव्यक्तिरतस्तत्रैव विन्यसेत् ।
कवचाय हुमित्येव व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥

बल से भेदन किया गया मन्त्र भी बलात्मा रूप से स्थित रहता है । यह महान्, विपुल बल सारे शरीर में फैला हुआ है । किन्तु उसकी अभिव्यक्ति दोनों कन्धों में होती है । इसलिए उसकी अभिव्यक्ति के लिए दोनों कन्धों में ही 'सूर्य कवचाय हुँ' मन्त्र से न्यास करना चाहिए ॥ २२-२३ ॥

अस्त्रमन्त्रः

महत्ता न्यूनताभावः स च स्यादविकारिता ।
अव्याहतस्वसङ्कल्पः सुशब्दार्थो निरूपितः ॥ २४ ॥

न्यूनता का जहाँ अभाव है उसे ही महान् कहा जाता है वह सर्वदा विकार रहित रहता है । पहले हम कह आये हैं कि अव्याहत सङ्कल्प यही 'सु' शब्द का अर्थ है ॥२४॥

चेतनाचेतनं विश्वं स्वसङ्कल्पेन भावयन् ।
यः स्यादविकृतः सोऽस्य भावो माहासुदर्शनः ॥ २५ ॥
तद्वीर्यं तच्च शास्त्रोक्तं यद् दुष्टदमनात्मकम् ।
शान्तिदं सर्वपापानां शङ्करं जगतामपि ॥ २६ ॥
विकारविरहो दैत्यमर्दिनः परमात्मनः ।
महासुदर्शनित्येवं तद्वीर्यं बहुधोच्यते ॥ २७ ॥
वीर्येण भेदितो मन्त्रो वीर्यात्मा व्यवतिष्ठते ।
तस्य हस्ततलं स्थानं ततस्तत् तत्र विन्यसेत् ॥ २८ ॥
ततोऽस्त्राय फडित्येवं व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत् ।

जो चेतना-चेतनात्मक इस जगत् को अपने सङ्कल्प से उत्पन्न करता है और इतना करने पर भी विकाररहित रहता है । उसी की क्रिया महासुदर्शन रूप से अभिव्यक्त होती है । उस सुदर्शन का वीर्य दुष्टदमनात्मक है—ऐसा शास्त्रों में कहा गया है । वह शान्ति प्रदान करता है तथा सभी पापों से रक्षा कर सारे जगत् का कल्याण करता है । दैत्य के मर्दन करने वाले उस परमात्मा में किसी भी प्रकार के विकार की सम्भावना नहीं है । बहुधा उसी के वीर्य को महासुदर्शन नाम से अभिहित किया जाता है । यतः बल से भेदन किया गया मन्त्र भी वीर्यात्मा रूप से स्थित होता है अतः उस सुदर्शन का स्थान हाथ में है, इसलिए दोनों हाथों में ही उससे न्यास करना चाहिए । उसकी अभिव्यक्ति के लिए 'महासुदर्शन अस्त्राय फट्' ऐसा कह कर दोनों हाथों में मन्त्रन्यास का प्रयोग करना चाहिए ॥ २५-२९ ॥

नेत्रमन्त्रः

अन्तर्बोधस्वरूपो यः प्राकृतध्वान्तनाशनः ॥ २९ ॥
सूर्यवत् तपतस्तस्य या ज्वालाप्यूर्ध्वगामिनी ।
पुरुषाणामशेषाणामैश्वर्यान्निरपेक्षता ॥ ३० ॥
अमृताधाररूपत्वमनिशं जन्मघातकम् ।

नैरपेक्ष्येण यत् तस्य तत् तेजः समुदाहृतम् ॥ ३१ ॥
ज्वालाशब्देन तत् तेजो वैष्णवं बहुधेर्यते ।
तेजसा भेदितो मन्त्रस्तेजोरूपोऽवतिष्ठते ॥ ३२ ॥
तेजसो नयनं स्थानमतस्तत् तत्र विन्यसेत् ।
वौषण्नेत्रत्रयायेति व्यत्यासाद् व्यक्तये पठेत् ॥ ३३ ॥

जो अन्तःकरण के ज्ञान का स्वरूप है तथा प्रकृतिजन्य अन्धकार का विनाशक, अत्यन्त तेजस्वी सूर्य के समान जिसकी ज्वाला ऊपर की ओर उठ रही है, जो सम्पूर्ण पुरुषों के ऐश्वर्य से सर्वथा निरपेक्ष है, जिसका स्वरूप अमृताधार (व द्र० १७.२६) है जो निरन्तर जन्म का विघात करने वाला है, जो सर्वथा किसी की अपेक्षा नहीं रखता, उसी वैष्णव तेज को बहुधा लोग ज्वाला शब्द से अभिहित करते हैं । तेज से भेदन किया गया मन्त्र भी तेज रूप में स्थित हो जाता है । उस तेज का मुख्य स्थान नेत्र है । अतः तेज का न्यास नेत्र में ही करना चाहिए । उसी की अभिव्यक्ति के लिए 'तेजः नेत्रत्रयाय वौषट्' ऐसा पढ़ना चाहिए ॥ २९-३३ ॥

इति षाड्गुण्यरूपेयं दर्शिता तेऽङ्गसन्ततिः ।
उपाङ्गसन्ततिश्चैव न्यसनीया विपश्चिता ॥ ३४ ॥

हे नारद ! इस प्रकार हमने (पूर्वोक्त १९.१-३३) वीर्य, ऐश्वर्य, शक्तिबल, सुदर्शन, तेज) भगवान् के षड्गुण स्वरूपों से अङ्गन्यास का प्रकार कहा । इसके बाद बुद्धिमान् साधकों को उपाङ्ग द्वारा भी न्यास करना चाहिए । 'ॐ मनसा सह ज्ञानाय नमः शं कुक्षौ न्यस्यामि' आदि ॥ ३४ ॥

उपाङ्गमन्त्रः

कुक्षिपृष्ठांसयुग्मोरुजानुपादयुगेषु चं ।
शाद्यर्णान् व्यापिसंयुक्तान् ज्ञानाद्यैर्नमसा सह ॥ ३५ ॥
विन्यसेत् षड्गुणात्मैव मन्त्रिदेहः प्रजायते ।

कुक्षि, पृष्ठ, दोनों कन्धा, दोनों ऊरु, दोनों जानु तथा दोनों पैरों में व्यापी (ॐ) से संयुक्त ज्ञानादि के साथ मन से शादिवर्णों (श ष स ह क्ष त्र) का न्यास करे । ये वर्ण उपर्युक्त षड्गुणों की आत्मा ही है, इनके द्वारा न्यास करने से साधक का शरीर मन्त्रमय हो जाता है ॥ ३५-३६ ॥

अप्रमेयो गदध्वंसी पन्थाः स्वर्गापवर्गयोः ॥ ३६ ॥
इच्छामयो हि यो भावो विष्णुसङ्कल्पजृम्भितः ।
अशेषदुरितप्लोषात् सोऽग्निरित्युच्यते बुधैः ॥ ३७ ॥
अग्निना भेदितो मन्त्रस्त्वग्न्यात्मा व्यवतिष्ठते ।
प्राकारं कल्पयेत् तेन परितः पावकाकृतिम् ॥ ३८ ॥
अग्निप्राकारमध्यस्थो दुर्निरीक्षोऽभिजायते ।
संस्मरंश्चक्रगायत्रीं परितश्चक्रमुद्रया ॥ ३९ ॥

ऊर्ध्वाधस्तिर्यगाकारं मुद्रयेदात्मनो बहिः ।
अग्निप्राकारतः पूर्वं चक्रमुद्राथवा भवेत् ॥ ४० ॥

अप्रमेय (अ), गदध्वंसी (ग्), स्वर्ग तथा अपवर्ग का पन्था (न), इच्छामय (इ), इसका जो भाव (अर्थात् अग्नि) यह विष्णु के सङ्कल्प से उत्पन्न हुआ है । समस्त पापों को नष्ट करने के कारण बुद्धिमान् लोग उस भाव को अग्नि शब्द से अभिधान करते हैं । अग्नि से भेदित मन्त्र भी अग्न्यात्मा रूप से स्थित रहता है । उसी अग्नि से निर्मित अग्निमय प्राकार की कल्पना भी अपने शरीर में करनी चाहिए । क्योंकि चारों ओर चंक्रमण से अग्नि प्राकार के मध्य में रहने वाले संयुक्त चक्र गायत्री का स्मरण करता हुआ साधक सर्वथा दुर्निरीक्ष्य हो जाता है । वह अपने से बाहर, ऊपर, नीचे और तिरछे के सभी स्थानों को बन्द कर अपना आकार सुरक्षित रखता है अथवा अग्नि प्राकार में स्थित रहने से पूर्व साधक चक्रमुद्रा धारण कर लेवे । इससे भी सुरक्षा सम्भव है ॥ ३६-४० ॥

चक्रगायत्री

हृदयं चाथ चक्राय विद्महेपदमादिमम् ।
मन्त्रनाथस्य नेत्रादिपदं सूक्ष्मोऽथ धीमहि ॥ ४१ ॥
गायत्र्या आद्यनवमे ततश्चैवानिवारितः ।
ततः समस्तरूपं तु गायत्र्या दशमं पदम् ॥ ४२ ॥
उदिता चक्रगायत्री सप्तविंशतिकीर्तिता ।

'हृदयं चाथ चक्राय' इसके बाद 'विद्महे' यह चक्र गायत्री का आदि पद है, इसके बाद 'मन्त्रनाथस्य नेत्रादिपदं सूक्ष्मोऽथ धीमहि' यह पद है । गायत्री के आदि पद के अनन्तर नवम अक्षर का आरम्भ त से आरम्भ कर 'ततश्चैवानिवारितः' यह पद कहे । फिर दशम पद पढ़कर समस्त गायत्री पढ़े । इस प्रकार २७ अक्षरों की गायत्री हमने कहा । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—हृदयं चाथ चक्राय विद्महे मन्त्रनाथस्य नेत्रादिपदं सूक्ष्मोऽथ धीमहि ॥ ४१-४३ ॥

चक्राद्यस्त्रमन्त्राः

अथ सौदर्शनास्त्राणां मन्त्रानेतान् निबोध मे ॥ ४३ ॥
ओं नमो भगवन् विष्णो सर्वेषामादिमं समम् ।
चक्रमूर्तिधरेत्येवं गदामूर्तिधरेति च ॥ ४४ ॥
शार्ङ्गमूर्तिधरेत्येवं खड्गमूर्तिधरेति च ।
चक्राद्यस्त्रचतुष्कं तु ततः सेनापतेपदम् ॥ ४५ ॥
सर्वत्र सममुच्चार्य वदेत् प्रातिस्विकं ततः ।
मन्त्रनाथो भवेच्चक्रे षड्वर्णोऽथ गदादिषु ॥ ४६ ॥
कौमोदकि महाशार्ङ्ग महाखड्गेत्युदीरयेत् ।
वर्मास्त्रे च ततो युञ्ज्यादेष मौनविधिक्रमः ॥ ४७ ॥

चक्राद्यस्त्रमन्त्र—हे नारद ! अब सुदर्शन के अस्त्रों एवं मन्त्रों को मुझसे सुनिए ।

आगे कही जाने वाली आसनमन्त्र की चार गायत्री में सभी के आदिपद में 'ॐ नमो भगवन् विष्णो' इतना उच्चारण करना चाहिए। इसके बाद 'चक्रमूर्तिधर, गदामूर्तिधर, शार्ङ्गमूर्तिधर एवं खड्गमूर्तिधर उच्चारण करना चाहिए। इन चार चक्रादि अस्त्र के बाद तुल्य रूप से 'सेनापते' पद कहकर 'प्रतिस्विक' कहे। इस प्रकार छः वर्णों से गदा आदि अस्त्रों में एवं चक्र में रहने वाली मन्त्रनाथ गायत्री होती है। फिर कौमोदकि, महाशार्ङ्ग, महाखड्ग का उच्चारण करे। फिर कवच का अस्त्रों में संयोजन करे। यही चार गायत्री हैं, जिनका उच्चारण मौन होकर करे।

विमर्श—१. चक्रमूर्तिधरगायत्री 'ॐ नमो भगवन् विष्णो चक्रमूर्तिधर सेनापते प्रातिस्विकम् (कवचाय हुं)। २. गदामूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो कौमोदकि सेनापते प्रातिस्विकम् (कवचाय हुम्)। ३. शार्ङ्गमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो महाशार्ङ्गी सेनापते (कवचाय हुं)। ४. महाखड्गगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो महाखड्ग सेनापते प्रातिस्विकम् (कवचाय हुं)॥ ४४-४७॥

इमाश्चतस्रो गायत्र्यश्चक्रादीनामुदीरिताः।
शङ्खादीनां चतुर्णां तु मन्त्रानेतान्निबोध मे॥ ४८॥

हे नारद! इस प्रकार हमने चारों अस्त्र की गायत्री का वर्णन किया। अब शङ्खादि चारों की मन्त्रगायत्री मुझसे सुनिए॥ ४८॥

ओं नमो भगवन् विष्णो सर्वेषामादितः समम्।
शङ्खमूर्तिधरेत्येवं हलमूर्तिधरेति च॥ ४९॥
मुसलमूर्तिधरेत्येवं शूलमूर्तिधरेति च।
सेनापतेपदं पश्चात् सर्वेषां तुल्यमुच्चरेत्॥ ५०॥
महाथ पाञ्चजन्याय स्वाहेत्येकाधिको मनुः।
महाहलाय स्वाहेति मन्त्रोऽप्येकाधिकः स्मृतः॥ ५१॥
महा च मुसलायाथ स्वाहेत्यभ्यधिको मनुः।
महाशूलाय स्वाहेति स चाप्यभ्यधिको मनुः॥ ५२॥

शङ्खादि चारों की मन्त्रगायत्री—आगे कही जाने वाली समस्त गायत्री के पूर्व सभी के आदि में 'ॐ नमो भगवन् विष्णो' यह उच्चारण करना चाहिए। तदनन्तर शङ्खमूर्ति गायत्री में शङ्खमूर्तिधर, हलमूर्तिगायत्री में हलमूर्तिधर, मुशलगायत्री में मुसलमूर्तिधर और शूलमूर्तिगायत्री में शूलमूर्तिधर ऐसा उच्चारण करना चाहिए। तदनन्तर सर्वत्र समान रूप से 'सेनापते पाञ्चजन्याय स्वाहा' आदि पद का उच्चारण करना चाहिए।

विमर्श—१. शङ्खमूर्तिगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो शङ्खमूर्तिधर सेनापते महापाञ्चजन्याय स्वाहा। २. हलमूर्तिगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो हलमूर्तिधर सेनापते महाहलाय स्वाहा। ३. मुसलमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो मुसल-मूर्तिधर सेनापते महामुसलाय स्वाहा। ४. शूलमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो शूलमूर्तिधर सेनापते महाशूलाय स्वाहा॥ ४९-५२॥

इमाश्चतस्रो गायत्र्यः शङ्खादीनां प्रदर्शिताः ।
दण्डादीनामथाष्टानामिमान् मन्त्रान् निबोध मे ॥ ५३ ॥

हे नारद ! इस प्रकार मैने शङ्खादि की चार गायत्री का वर्णन किया । अब दण्डादि आठ अस्त्रों की आगे कही जाने वाली आठ गायत्रियों को मुझसे सुनिए ॥ ५३ ॥

दण्डाद्यस्त्रमन्त्राः

ओं नमो भगवन् विष्णो सर्वेषामादितः समम् ।
दण्डमूर्तिधरेत्येवं कुन्तमूर्तिधरेति च ॥ ५४ ॥
शक्तिमूर्तिधरेत्येवं पाशमूर्तिधरेति च ।
अङ्कुशमूर्तिधराय कुलिशमूर्तिधरेति च ॥ ५५ ॥
परशुमूर्तिधरायाथ ततः शतमुखेति च ।
अनलमूर्तिधरेत्येवं प्रातिस्विकपदक्रमः ॥ ५६ ॥
सेनापतेपदं पश्चात् सर्वेषां सममुच्चरेत् ।
महादण्डायाथ नमो मन्त्र एवाधिकः स्मृतः ॥ ५७ ॥
महाकुन्तायाथ नमो मन्त्रोऽप्येकोऽधिकः स्मृतः ।
महाशक्तये च नमो मन्त्रोऽप्येकोऽधिकः स्मृतः ॥ ५८ ॥
महापाशायाथ नमो मन्त्रोऽप्येकोऽधिकः स्मृतः ।
महाङ्कुशाय नम इत्येषोऽप्यधिक उच्यते ॥ ५९ ॥
महा च कुलिशायाथ नम इत्यपि तादृशः ।
महापरशवे चाथ नम इत्यपि तादृशः ॥ ६० ॥
महाशतमुखेत्येवमनलाय ततो नमः ।
अयं मन्त्रस्त्रयस्त्रिंशद्वर्णो वह्न्ययुतप्रभः ॥ ६१ ॥
इत्यस्त्राणामिमे मन्त्रा रूपतस्ते निदर्शिताः ।

दण्डादि आठ गायत्री के प्रथमतः सर्वत्र 'ॐ नमो भगवन् विष्णो' ऐसा उच्चारण करना चाहिए । फिर क्रमशः दण्डमूर्तिधर, कुन्तमूर्तिधर, शक्तिमूर्तिधर, पाशमूर्तिधर, अङ्कुशमूर्तिधर, कुलिशमूर्तिधर, परशुमूर्तिधर एवं शतमुख-अनलमूर्तिधर प्रातिस्विक क्रम से इतना उच्चारण करना चाहिए । फिर 'सेनापते महादण्डाय नमः, महाकुन्ताय नमः, महाशक्तये नमः, महापाशाय नमः, महाङ्कुशाय नमः, महा कुलिशाय नमः, महापरशवे नमः और महाशतमुखानलाय नमः पद का उच्चारण करना चाहिए । यह आठवाँ मन्त्र ३३ वर्णों का है जो १० हजार अग्नियों के समान तेजस्वी है । हे नारद ! इस प्रकार हमने अस्त्रों के इन मन्त्रों का आपको निदर्शन कराया ॥ ५४-६२ ॥

विमर्श—१. दण्डमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो दण्डमूर्तिधर सेनापते महादण्डाय नमः । २. कुन्तमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो कुन्तमूर्तिधर सेनापते महाकुन्ताय नमः । ३. शक्तिमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो शक्तिमूर्तिधर सेनापते महाशक्तये नमः । ४. पाशमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो पाशमूर्तिधर

सेनापते महापाशाय नमः । ५. अङ्कुशमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो अङ्कुश-मूर्तिधर सेनापते महाङ्कुशाय नमः । ६. कुलिशमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो कुलिशमूर्तिधर सेनापते महाकुलिशाय नमः । ७. परशुमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो परशुमूर्तिधर सेनापते महापरशवे नमः । ८. महाशतमुखअनलमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो शतमुखअनलमूर्तिधर सेनापते महाशतमुखानलाय नमः ।

अत्रानुक्तस्य संहितान्तरात् ग्रहणम्

आधाराद्यासनाकारो द्वारपर्यन्तपूजनम् ॥ ६२ ॥
मुद्रा च विविधाकारा यस्य यस्य च यादृशी ।
अभिषेकविधिश्चैव दीक्षानियम एव च ॥ ६३ ॥
भूतशुद्धिविधिश्चैव ध्यानानि विविधानि च ।
सर्वं जयाश्रुतं कार्यं तत्तद्वैशेषिकं विना ॥ ६४ ॥

जो यहाँ नहीं कहे गए उन्हें अन्य संहिताओं से जानना चाहिए । इन मन्त्रों का आधार आदि, आसन, आकार द्वारपर्यन्तपूजन जिस-जिस मन्त्र की जैसी-तैसी अनेक प्रकार की मुद्रायें, अभिषेक विधि, दीक्षा नियम, भूतशुद्धि तथा अनेक प्रकार के ध्यान जयाख्य संहिता ग्रन्थ में वर्णित रीति से करना चाहिए । उसमें अपनी तरफ से कोई विधि न करे ॥६२-६४॥

अमुद्राणामिहास्त्राणां दण्डादीनां महामुने ।
कार्या समन्विता दिव्या शक्तिमुद्रास्त्रमुद्रया ॥ ६५ ॥
इति ते लेशतः प्रोक्तः सौदर्शनविधिक्रमः ।
ग्रहणादिप्रकारोऽयं वक्ष्यते शृणु तं मुने ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् अङ्गोपाङ्ग-मन्त्रोद्धारो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ११६९ ॥

हे महामुने ! मैं तो कहता हूँ कि यहाँ पर दण्डादि इन महान् अस्त्रों की गायत्री बिना अन्य मुद्रा किये केवल शक्तिमुद्रा से ही सारा दिव्य कार्य सम्पन्न करे । हमने, हे नारद ! सुदर्शन की विधि का क्रम यहाँ लेशमात्र वर्णन किया । अब इसके ग्रहणादि का प्रकार आगे के अध्याय में कहूँगा, उसे सुनिए ॥ ६५-६६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अङ्गोपाङ्ग-मन्त्रोद्धार नामक उन्नीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

मन्त्रग्रहणादिदीक्षाविधानम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जो एक बार ध्यान करने मात्र से संसार के करोड़ों पापसमूहों को नष्ट कर देता है। हम उन सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं।

आचार्यलक्षणम्

अहिर्बुध्न्यः—

वेदवेदान्ततत्त्वज्ञो विद्यास्थानविचक्षणः ।
ऊहापोहविधानज्ञो दैवपित्र्यक्रियापरः ॥ १ ॥
अवक्ता चापवादानामकर्ता पापकर्मणाम् ।
अमत्सरी परोत्कर्षे परदुःखे घृणापरः ॥ २ ॥
दयावान् सर्वभूतेषु हृष्टः परसुखोदये ।
पुण्येषु मुदितायुक्त उपेक्षावान् कुबुद्धिषु ॥ ३ ॥
तपःसन्तोषशौचाढ्यो योगस्वाध्यायतत्परः ।
पाञ्चरात्रविधानज्ञस्तन्त्रान्तरविचक्षणः ॥ ४ ॥
तन्त्राणामन्तरज्ञश्च मन्त्राणां कृत्यतत्त्ववित् ।
पदवाक्यप्रमाणज्ञो हेतुवादविचक्षणः ॥ ५ ॥
सामान्यस्यापवादस्य वेत्ता यन्त्रविचक्षणः ।
कुण्डमण्डलभेदज्ञः क्रियाकारविचक्षणः ॥ ६ ॥
अध्यात्मज्ञानकुशलः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ।
सदन्ववायसम्भूत आचार्यो नाम वैष्णवः ॥ ७ ॥

मन्त्रग्रहण, दीक्षाविधि और आचार्य के लक्षण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—वेदवेदान्त का तत्त्वज्ञ, विद्या स्थान में विचक्षण, ऊहापोह (तर्क) शास्त्र में विशारद, सर्वदा देवकार्य तथा पितृकार्य करने वाला, किसी की निन्दा न करने वाला, पाप ताप न करने वाला,

दूसरे के अभ्युदय से न जलने वाला, दूसरे के दुःख से दुःखी होने वाला, समस्त प्राणियों पर दया करने वाला, दूसरे के अभ्युदय से प्रसन्न, पुण्यात्माओं को देख कर मुदितायुक्त, मूर्खों की उपेक्षा करने वाला, तप, सन्तोष तथा शौचाचार का धनी, योग एवं स्वाध्याय में तत्पर, पाञ्चरात्र के विधान को जानने वाला तथा अन्यान्य तन्त्रों में विचक्षण, तन्त्रों में परस्पर होने वाले अन्तर का जानकार, मन्त्रों की ठीक-ठीक क्रिया जानने वाला, पद, वाक्य तथा प्रमाण (व्याकरण, मीमांसा, न्याय) को जानने वाला, तर्कशास्त्र में गति रखने वाला, सामान्य तथा अपवाद शास्त्रों को जानने वाला, यन्त्र निर्माण में निपुण, कुण्ड तथा मण्डल के भेदों को जानने वाला, क्रिया (शिल्प) शास्त्रों में निपुण, अध्यात्मवेत्ता, शान्त, दान्त, विद्वान्, जितेन्द्रिय और उत्तम वंश में जन्म लेने वाला विशेष कर वैष्णव ये आचार्य के लक्षण हैं ॥ १-७ ॥

शिष्यलक्षणम्

आचार्यमाश्रयेच्छिष्यः श्रेयोऽर्थी सुसमाहितः ।
विनयव्रतशाली च द्विजातिः संस्कृतः शुचिः ॥ ८ ॥
ब्रह्मचर्यपरो धीमान् स्वदारनिरतोऽथवा ।
अच्छलेन यथावत् स्वकृताकृतनिवेदकः ॥ ९ ॥
संसाराङ्गारमध्यस्थः पच्यमानः स्वकर्मभिः ।
भवन्तं शरणं प्राप्त उपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः ॥ १० ॥
इत्येवं प्रतिपद्येत शिष्य आचार्यसत्तमम् ।

शिष्य के लक्षण—अपना कल्याण चाहने वाला शिष्य एकाग्र हो उत्तम प्रकार के आचार्य का आश्रय ले । विनयी, द्विजाति, संस्कारवान्, पवित्र, ब्रह्मचारी, बुद्धिमान् अथवा मात्र अपनी स्त्री से रति करने वाला, बिना कपट के अपने कृत्य तथा अकृत्य को गुरु से निवेदन करने वाला ऐसा शिष्य संसार रूपी अङ्गार के मध्य में रहकर तथा अपने कर्म वश ताप प्राप्त होने पर श्रेष्ठ आचार्य के पास जावें और निवेदन करे कि 'महाराज मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे उपदेश कीजिये' ॥ ८-११ ॥

दीक्षाक्रमः

इत्येवं सम्प्रपन्नाय शिष्यायाच्छलवादिने ॥ ११ ॥
प्रत्यक्षाभिः परोक्षाभिरुपाधिभिरनेकधा ।
शोधितायैकरूपाय रहस्याम्नायगोपिने ॥ १२ ॥
अशठायानसूयाय लोभमोहाद्यसेविने ।
संवत्सरं परीक्ष्यैवं परितः परितो धिया ॥ १३ ॥
निष्कम्पाय वदेद्विद्यां यावती यादृशी च सा ।

दीक्षा विधान—इस प्रकार शरण में प्राप्त हुये निष्कपट रूप से अपना दुःख निवेदन करने वाले शिष्य को अपनी शरण में आया देख कर आचार्य परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप से अनेक प्रकार से उसकी धर्म परीक्षा एक संवत्सर पर्यन्त करे । जब उसे शुद्ध, अपने में

अनन्य भक्ति रखने वाला, गुप्ततत्त्वों का सङ्गोपन करने वाला, कोई दुराव न रखने वाला, किसी की निन्दा न करने वाला, लोभ एवं मोह से विवर्जित आदि गुणों से युक्त देखे और सब प्रकार से बुद्धि में पारङ्गत देखे तब ऐसे दृढ़ भक्त शिष्य को जैसी और जितनी भी विद्या हो उसका उपदेश करे ॥ ११-१४ ॥

अङ्गन्यासकरन्यासौ

मातृकामादितो देवीं विन्यसेद्वपुषि स्वके ॥ १४ ॥
अङ्गन्यासकरन्यासौ मन्त्रवर्णैः समाचरेत् ।
मृजेत् प्रकोष्ठमेकैकं त्रिर्मन्त्रेण त्रिरूपिणा ॥ १५ ॥
एवं पाणितलद्वन्द्वमङ्गुलीष्वथ विन्यसेत् ।
उभाभ्यां मध्यमाग्राभ्यामुभयस्मिंस्तलद्वये ॥ १६ ॥
तारकं तारिकां लक्ष्मीं प्रणवाद्यन्तगां न्यसेत् ।
प्रणवाद्यन्तगं सोमं मध्यमेऽङ्गुष्ठपर्वणि ॥ १७ ॥
सबिन्दुं विन्यसेत् प्राणमेवं तर्जनि पर्वणि ।
न्यसेद्वर्णांस्तृतीयादीनङ्गुल्यन्तरपर्वसु ॥ १८ ॥
लाङ्गलं परमास्त्रं तु न्यसेदूर्ध्वांगुलीष्वथ ।

अङ्गन्यास एवं करन्यास—सर्वप्रथम अपने शरीर में मातृकाओं द्वारा देवी का न्यास करे । जिस मन्त्र की दीक्षा देनी हो उस मन्त्र के वर्ण से अङ्गन्यास तथा करन्यास करे । तीन रूप वाले मन्त्र से तीन-तीन बार अपने प्रकोष्ठ को शुद्ध करे । इसी प्रकार दोनों हाथ के तलवे तथा अङ्गुलियों का भी न्यास करे । दोनों हाथ की मध्यमा अङ्गुलियों से दोनों हाथ के तलवे में, आदि तथा अन्त में प्रणव लगा कर तारक (ॐकार) तारिका और लक्ष्मी (श्री) से न्यास करे । तदनन्तर प्रणव को आदि में तथा अन्त में लगा कर सोम (सकार द्र० १७.२७) से अङ्गुष्ठ के मध्य में रहने वाले पर्व का न्यास करे । इसी प्रकार बिन्दु सहित प्राण (हकार द्र० १७.२८) वाले मन्त्र से तर्जनी के पर्व का तथा तृतीयादि वर्णों (स्ना र) का अन्य अङ्गुलियों के पर्वों में न्यास करे । लाङ्गल परमास्त्र (फट् द्र० १७.२२) से अङ्गुलियों के ऊपरी भाग में न्यास करे ॥ १४-१९ ॥

ऋष्यादीनां स्थानभेदः

ऋषिं शिरसि विन्यस्येच्छन्दो वदनगोचरम् ॥ १९ ॥
नारायणमनाद्यन्तं देवतां हृदये स्मरेत् ।

ऋष्यादि के न्यास का स्थान—इसके बाद मन्त्र के ऋषि से शिर का न्यास, मन्त्र के छन्द से मुख का न्यास तथा मन्त्र के देवता स्वरूप अनाद्यन्त नारायण के नाम से हृदय का न्यास करे ॥ १९-२० ॥

परसूक्ष्मस्थूलमन्त्राणामृषयः

पराकारस्य मन्त्रस्य परमात्मा ऋषिः स्मृतः ॥ २० ॥
सङ्कर्षणस्तु सूक्ष्मस्य स्थूलस्याहमृषिः स्मृतः ।

पर, सूक्ष्म एवं स्थूल मन्त्र के ऋषि—पराकार (निर्गुण ब्रह्म) मन्त्र के परमात्मा ऋषि हैं, सूक्ष्म मन्त्र के सङ्कर्षण ऋषि हैं तथा स्थूल मन्त्र का मैं अहिर्बुध्न्य ऋषि हूँ ॥ २०-२१॥

सुदर्शनमन्त्रस्याथर्वणवेदसारतमत्वम्

अथर्वाङ्गिरसो नाम पञ्च शाखा महामुने ॥ २१ ॥
तासु त्वन्तर्हितो दिव्यः कृतान्तो मन्त्रराट् स्वयम् ।

सुदर्शन मन्त्र का आथर्वणवेद साररूपत्व—हे महामुने ! अथर्वाङ्गिरस की पाँच शाखायें हैं उसमें यह दिव्य कृतान्त मन्त्रराज (सुदर्शन) सार रूप से निहित है ॥२१-२२॥

सङ्कर्षणाज्ञया अहिर्बुध्न्येन तदुद्धरणम्

मया त्रेतायुगादौ तु तप्त्वा वर्षायुतं तपः ॥ २२ ॥
दिव्यात् सङ्कर्षणादेशात् परमेण समाधिना ।
सर्व आथर्वणो वेदो मथितस्तु शनैः शनैः ॥ २३ ॥
मथ्यमानात् ततस्तस्माद् दध्नो घृतमिवोद्धृतः ।
मन्त्रोऽयं सपरीवारः साङ्गोपाङ्गः सनातनः ॥ २४ ॥
स्थूलस्य मन्त्रनाथस्य ततो मामृषिमूचिरे ।
दैवी ब्राह्मी तथार्षी च गायत्री छन्द उच्यते ॥ २५ ॥
परः सूक्ष्मस्तथा स्थूलः परमात्मा च देवता ।

भगवान् सङ्कर्षण की आज्ञा से अहिर्बुध्न्य द्वारा मन्त्रोद्धार—मैंने त्रेतायुग के आदि में दस हजार वर्ष तक घोर तपस्या की । इस प्रकार समाधि में लीन होकर मैंने दिव्य देवता सङ्कर्षण देव के आदेश से धीरे-धीरे अथर्ववेद का मन्थन किया । इस प्रकार मन्थन करते-करते जिस प्रकार दही से घृत प्राप्त होता है, उसी प्रकार यह सनातन मन्त्र भी परिवार के साथ साङ्गोपाङ्ग प्राप्त हुआ । तभी से लोगों ने मुझे इस स्थूल मन्त्रराज का गुरु कहना प्रारम्भ कर दिया । दैवी, ब्राह्मी तथा आर्षी गायत्री इस मन्त्र का छन्द है और पर, सूक्ष्म तथा स्थूल परमात्मा इस मन्त्र के देवता हैं ॥ २२-२६ ॥

देहे संहारन्यासक्रमः

विन्यसेदथ गात्रेषु मन्त्रनाथं सनातनम् ॥ २६ ॥
परसूक्ष्मादिभावेन सोमार्कानलदीधितिम् ।
प्रणवादित्रयं मूर्ध्नि ललाटे सोममेव च ॥ २७ ॥
आस्ये सूर्यं गले स्त्रां च हृदि रं नाभिगं तु हुं ।
मूलाधारे तु फट्कारं तारादित्रितयं हृदि ॥ २८ ॥
नाभौ समूलगं हं च पादयोः स्त्रां च रं हृदि ।
हुं वक्त्रे फट् शिरोदेशे ततः सर्वात्मना क्रिया ॥ २९ ॥

इस सनातन मन्त्रराज से गुरु अपने शरीर का न्यास करे । पर, सूक्ष्म तथा स्थूल इसके भेद हैं । सोम, सूर्य तथा अग्नि ये उसकी दीप्तियाँ हैं । प्रणव लगाकर आदि के

तीन अक्षर (?) से शिर में, सोम (सकार द्र० १७.२७) से ललाट में, सूर्य (हकार द्र० १७.२८) से मुख में, 'स्रा' से हृदय में, 'रं' से नाभि में, 'हु' से मूलाधार में और पुनः 'हुं फट्' से मूलाधार में न्यास करे। पुनः तारादि त्रितय (तार 'ॐ', तारिक 'ह्रीं' एवं लक्ष्मी 'श्रीं') से हृदय में, 'स' से नाभि में, 'हं' से तथा 'स्रां' से पैर में, 'रं' से हृदय में, 'हुं' से मुख में तथा 'फट्' से शिरो देश में न्यास करे। इसके बाद सम्पूर्ण मन्त्र से सारे अङ्गों में न्यास करे ॥ २६-२९ ॥

अङ्गोपाङ्गन्यासः

हृदयादीन्यथाङ्गानि स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत्।
उपाङ्गेषु तथा न्यासं मान्त्रैर्वर्णैः समाचरेत्॥ ३० ॥

हृदयादि अङ्गों का अपने स्थान पर ही न्यास करे, पुनः मन्त्र के तत्तद् वर्णों से उपाङ्ग का न्यास करे ॥ ३० ॥

देहस्य त्रेधा विभावनम्

स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन देहं विद्यात् ततस्त्रिधा।
अङ्गप्रत्यङ्गकोशाढ्यं प्रत्यक्षं स्थूलमुच्यते॥ ३१ ॥
पुर्यष्टकं तु सूक्ष्माख्यं परमाणव उच्यते।
वह्न्यर्ककोटिसङ्काशज्वालाकोलाहलाकुले ॥ ३२ ॥
त्रिविधे मन्त्रनाथेऽस्मिंस्त्रिविधं भावयेद्वपुः।
तेजो दिव्यं महच्छुभ्रं मनःस्थं हृत्स्थमव्ययम्॥ ३३ ॥
नारायणमयं ध्यायेदात्मानं ज्योतिषां पतिम्।

न्यास कर लेने के अनन्तर देह के स्थूल, सूक्ष्म तथा पर भेद से तीन प्रकार की भावना करे। जिसमें अङ्ग प्रत्यङ्ग तथा कोश हो एवं जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है, वह बना हुआ स्थूल देह है, आठ पुरियों वाला सूक्ष्म देह है और परमाणु वाला पर देह है। तदनन्तर करोड़ों सूर्य के समान ज्वालाओं के कोलाहल से आकुलित त्रिविध मन्त्रराज में तीनों प्रकार के देह की भावना करे। तदन्तर अपनी आत्मा का ध्यान दिव्य तेज समन्वित महान् उज्ज्वल मन तथा हृदय में रहने वाले सभी ज्योतियों के पति नारायणमय स्वरूप में ध्यान करे ॥ ३१-३४ ॥

ततस्तच्चक्रमध्याक्षसोमसूर्यानलात्मनि ॥ ३४ ॥
मज्जयित्वा स्वमात्मानं निर्वासनमथोद्धरेत्।

तदनन्तर चक्र के मध्य में रहने वाले अक्ष में, जो सोम, सूर्य तथा अग्न्यात्मक आत्मा वाला है, उसमें अपनी आत्मा को स्नान करावें। फिर बिना वस्त्र के उसे वहाँ बाहर करे और पूर्व शरीर को त्याग देवे ॥ ३४-३५ ॥

सृष्टिन्यासः

ततः परादिभावस्थान् मन्त्रनाथान् सनातनान्॥ ३५ ॥
तेनैव क्रमयोगेन तनूस्ता विसृजेत् पुनः।

तासु प्रवेश्य चात्मानं पुनर्न्यासं समाचरेत् ॥ ३६ ॥
हस्तदेहादिगो न्यासो यावत् पूर्वमुदाहृतः ।

सृष्टिन्यास—इसके बाद पर, सूक्ष्म तथा स्थूल भाव में रहने वाले सनातन मन्त्रराज में उसी क्रम से अपनी आत्मा को प्रवेश कराकर जैसा कि पूर्व में कहा गया है उसी प्रकार हाथ तथा शरीर में पुनः न्यास करे (द्र० २०. २६-३०) ॥ ३५-३७ ॥

शिष्यावेक्षणम्

अथ मन्त्रतनुर्दिव्यो मन्त्रात्मा मन्त्रसारथिः ॥ ३७ ॥
विष्णुसङ्कल्पजं रूपं वहन् सौदर्शनं वपुः ।
नेत्रैः शिष्यमवेक्षेत वह्न्यर्केन्दुमयैः क्रमात् ॥ ३८ ॥

शिष्य का गुरु द्वारा अवेक्षण—इस प्रकार अपने को मन्त्रात्मक शरीर, मन्त्रात्मा तथा मन्त्र सारथि के रूप में विष्णु के सङ्कल्प से उत्पन्न सुदर्शन रूप को धारण कर वह आचार्य, अग्नि, सूर्य तथा सोमात्मक नेत्रों से क्रमशः शिष्य को देखे ॥ ३७-३८ ॥

शिष्यस्य संहारन्यासः

अथ स्थूलादिभावेन दहेन्मन्त्रेण तद्धिया ।
पूर्वोक्तक्रमयोगेन शिष्यात्मानं परात्मनि ॥ ३९ ॥
निमज्जयित्वेत्याद्यं तु क्रमं सर्वं समाचरेत् ।

फिर स्थूल, सूक्ष्म तथा पर भाव से अपने में सुदर्शन बुद्धि करते हुये । पूर्वोक्त क्रम से शिष्य की आत्मा को उसका पूर्व पापमय शरीर जलाकर परमात्मा में स्नान कर पूर्वोक्त सभी क्रम करे ॥ ३९-४० ॥

सृष्टिन्यासः

मनसा शुष्कदग्धोत्थे शिष्यदेहे तथा तथा ॥ ४० ॥
विन्यसेत् क्रमयोगेन मन्त्रन्यासं धिया ततः ।

इस प्रकार मन से शिष्य के देह को उस-उस क्रम से जलाकर नवीन शरीर वाला बनावे और उसके शरीर में पूर्वोक्त क्रम योग से बुद्धि द्वारा मन्त्र-न्यास करे ॥ ४०-४१ ॥

मन्त्रोपदेशः

अथ तस्योपदेष्टव्यः सहाङ्गो मन्त्रनायकः ॥ ४१ ॥
सार्थः सप्रतिपत्तिश्च यो यो भावः पुरोदितः ।
एवं गृहीतमात्रे तु मन्त्रनाथे सनातने ॥ ४२ ॥
उत्पद्यते स्वयं चित्ते प्रत्ययो दैवनिर्मितः ।

मन्त्रोपदेश—ऐसा कर लेने के अनन्तर शिष्य को अङ्ग सहित अर्थ, ज्ञान तथा माहात्म्य सहित भाव जैसा कि पूर्व में कहा गया है इस प्रकार मन्त्रराज का उपदेश करे । इस प्रकार शिष्य के उपर्युक्त विधि से सनातन इस मन्त्रराज को ग्रहण कर लेने पर उसके चित्त में स्वयं एक दैवी चमत्कार उत्पन्न हो जाता है ॥ ४१-४३ ॥

शिष्यकृत्यम्

सम्यगित्थं गृहीतेन मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥ ४३ ॥
कृतार्थं मन्यमानः स्वं गुरवेऽथ निवेदयेत् ।
आत्मानमथ चात्मीयं यत् किंचिदुत विद्यते ॥ ४४ ॥
विना पापमनिष्टं च सर्वं तस्मै निवेदयेत् ।
एवं निवेद्य मन्वीत कृतार्थोऽहमिति स्वयम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार मन्त्रशास्त्र का विद्वान् शिष्य जब अपने गुरु से मन्त्र ग्रहण कर लेवे तब अपने को कृतार्थ मान कर गुरु को अपनी आत्मा तथा जो कुछ भी आत्मीय (आत्मसम्बधित) पदार्थ है सब निवेदन कर दे । किन्तु अपना पाप और अनिष्ट निवेदन न करे । तदनन्तर अपना सर्वस्व गुरु को दे कर मैं अब कृतार्थ हो गया ऐसी भावना करे ॥ ४३-४५ ॥

एवं धियो ह्यच्छलेन मन्त्रः स्वेन प्रकाशते ।
भावस्य तारतम्येन तत्तद्दीक्षादिसाधनम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार की बुद्धि से बिना छल के मन्त्र लेने वाले शिष्य के हृदय में मन्त्र स्वयं प्रकाश उत्पन्न करता है । भाव की तारतम्यता से (अर्थात् भावों के नीचा ऊँचा होने के कारण) दीक्षादि साधन भी उसी-उसी प्रकार फल प्रदान करते हैं ॥ ४६ ॥

दीक्षया दीक्षयित्वाथ पात्रयित्वाथवा धिया ।
संस्कारेणाथर्वणेन यद्वा संस्कृत्य मन्त्रतः ॥ ४७ ॥
मन्त्रोऽयमुपदेष्टव्यो गुरुणा गुरुसेविनः ।

उपर्युक्त क्रम की दीक्षा से दीक्षित कर तन्त्र बुद्धि से उसे मन्त्र का पात्र बनाकर अथर्ववेद में कहे गए मन्त्र से संस्कार द्वारा संस्कृत कर तब गुरु उस गुरुसेवी शिष्य को मन्त्र का उपदेश करे ॥ ४७-४८ ॥

क्षुद्रार्थं मन्त्रो न प्रयोज्यः

इत्थं ग्रहणसिद्धेन साधनेनाथ वाग्यतः ॥ ४८ ॥
मन्त्रेणानेन सिद्धेन कुर्याल्लोकहितं सुधीः ।
न जातु यस्य कस्यापि क्षुद्रस्यात्मन एव वा ॥ ४९ ॥
लौकिकेऽर्थे विधिः कार्यः क्षुद्रकृत्यं हि तत् स्मृतम् ।

इस प्रकार मन्त्र ग्रहण से सिद्ध साधन द्वारा (वाग्यतः) वाणी पर संयम रखने वाला बुद्धिमान् शिष्य इस सिद्ध मन्त्र से लोक कल्याण करे । कभी भी जिस किसी क्षुद्र मनुष्य के लिए अथवा अपने हित के लिए अथवा लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए इस मन्त्र का प्रयोग न करे क्योंकि यह सब क्षुद्र कार्य हैं ॥ ४८-५० ॥

मन्त्रप्रयोगविषयाः

त्रैलोक्यस्याथ रक्षायै भुवश्चक्रस्य वा कृते ॥ ५० ॥

राष्ट्रस्य वाथ राज्ञो वा राजमात्रस्य वा कृते ।
भावायैव विधिः कार्यो नैवाभावाय कर्हिचित् ॥ ५१ ॥

त्रैलोक्य की रक्षा के लिए, भूचक्र के कल्याण के लिए, राष्ट्र, राजा अथवा अनेक राज समूहों के कल्याण के लिए इसका प्रयोग करे । किन्तु किसी के अभाव (विनाश) के लिए इसका अनुष्ठान कदापि न करे ॥ ५०-५१ ॥

पुरश्चरणार्थप्रदेशविधिः

पर्वताग्रे नदीतीरे विष्णोरायतनेऽपि वा ।
ऋषीणामाश्रमे वापि सिद्धानामालयेऽपि वा ॥ ५२ ॥
गवामायतने वापि वह्न्यायतन एव वा ।

पर्वत के ऊपर, नदी के तट पर अथवा विष्णुमन्दिर में अथवा ऋषियों के आश्रम में अथवा किसी सिद्ध स्थान में अथवा गोष्ठ में अथवा अग्निहोत्र वाले घर में इससे अनुष्ठान करे ॥ ५२-५३ ॥

कृच्छ्रादिभिः शरीरशोधनम्

त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशोध्य स्वं गायत्रीनियुतेन वा ॥ ५३ ॥
त्रिभिर्वा ब्रह्मकूर्चोत्थैः स्नानैः सात्त्वतचोदितैः ।

पुरश्चरणाङ्गनियमाः

अहरेकं हरेर्बिम्बमापादमवलोकयेत् ॥ ५४ ॥

चन्द्रायण आदि तीन कृच्छ्र व्रतों से अथवा दस लाख गायत्री जप से अथवा तीन ब्रह्मकूर्च से उत्पन्न स्नान से जैसा कि सात्वत शास्त्र में कहा गया है शुद्ध होकर एक दिन पर्यन्त विष्णु की प्रतिमा का पादान्त दर्शन करे ॥ ५३-५४ ॥

ततो भैक्षहविष्याशी यावकेनोत वर्तयेत् ।
पयोव्रतो हविष्याशी यथा वा शक्नुयान्नरः ॥ ५५ ॥
जपेल्लक्षाणि षण्मन्त्री जुहुयाच्चायुतानि षट् ।
तावच्च तर्पयेत् तोयैर्ब्राह्मणानथ तर्पयेत् ॥ ५६ ॥

तदनन्तर भिक्षा अथवा हविष्याशी अथवा यावक गोमूत्र में पकाए गए जव से अथवा दूध पीकर अथवा हविष्यान्न खा कर अथवा जैसी शक्ति हो उसके अनुसार शरीर का निर्वाह करते हुये, मन्त्रज्ञ पुरुष इस मन्त्र का छः लाख जप करे और साठ हजार मन्त्र से हवन करे । तदनन्तर उतने ही मन्त्र से देवता का तर्पण कर ब्राह्मण भोजन करावें ॥ ५५-५६ ॥

मन्त्रसिद्धिः, तेन लोकसंरक्षा

अच्छलेनेतिवृत्तस्य मन्त्रनाथः प्रसीदति ।
प्रसन्नेनाथ मन्त्रेण रक्षा लोकानुकम्पया ॥ ५७ ॥
राजार्थितेन वै कार्या नार्थकार्पण्यतः क्वचित् ।

इति ते दर्शितः सम्यङ् मन्त्रनाथस्य विस्तरः ।

मन्त्रसिद्धि और उससे लोकरक्षा—इस प्रकार बिना छल की वृत्ति से निर्वाह करने वाले भक्त पर मन्त्रराज स्वयं कृपा करते हैं और मन्त्र की सिद्धि हो जाने पर लोक के कल्याण की कामना से रक्षा करे। इस मन्त्रराज का अनुष्ठान राजा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर करे। अर्थ कार्पण्य (सङ्कट) से कदापि न करे। इस प्रकार, हे नारद! मैंने आपको मन्त्रराज का विस्तार प्रदर्शित किया ॥ ५७-५८ ॥

मन्त्रानधिकारिणः

नादान्तैः श्रावणीयोऽयं नैव यादृशतादृशैः ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां मन्त्रग्रहणादि-
दीक्षाविधानं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ आदितः श्लोका १२२७ ॥

मन्त्र के अनधिकारी—इसे अदान्त (अजितेन्द्रिय) को कभी न देना चाहिए अथवा जैसे-तैसे कहीं भी किसी को नहीं देना चाहिए ॥ ५८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के मन्त्र-
ग्रहणादि दीक्षाविधान नामक बीसवें अध्याय की शैवागमावतार
महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ०
सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

ज्योतिर्मयरक्षानिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पाप समूहों को नष्ट कर देता है । हम उस सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

रक्षाप्रकारप्रश्नः

नारदः—

नमो निखिलगीर्वाणगणश्रेयोविधायिने ।
नमस्ते त्रिपुराराते भूयो गौरीगुरो नमः ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—समस्त देवसमूहों के कल्याण करने वाले अहिर्बुध्न्य ! आपको नमस्कार है । त्रिपुरासुर का वध करने वाले आपको नमस्कार है । गौरी के पूज्य आपको नमस्कार है ॥ १ ॥

अत्यद्भुतमिदं दिव्यं वेदान्तेष्वपि दुर्लभम् ।
श्रुतं भगवतो वाक्यं कृतार्थोऽहमनेन वै ॥ २ ॥

यह बात जो आपने कही यह अत्यन्त अद्भुत तथा दिव्य है । यह ज्ञानवेदान्त ग्रन्थों में भी दुर्लभ है । आपकी इन बातों का हमने श्रवण किया इससे हम कृतार्थ हो गए ॥ २ ॥

भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि त्वद्वाक्यामृतमुत्तमम् ।
का रक्षा कीदृशी चैव कार्या मन्त्रेण मन्त्रिणा ॥ ३ ॥

हे देव ! अब मैं आपके वाक्यरूपी उत्तम अमृत को पुनः सुनना चाहता हूँ । वह रक्षा क्या है? कैसी है? मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र से किस प्रकार अपनी रक्षा करनी चाहिए ।

रक्षाया द्वैविध्यम्

अहिर्बुध्न्यः—

रक्षा तु द्विविधा मान्त्री मन्त्रनित्येन धीमता ।
कार्या ज्योतिर्मयी पूर्वं पश्चात् तत्र च वाङ्मयी ॥ ४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—मन्त्र से की जाने वाली रक्षा दो प्रकार की होती है। मन्त्र का नित्य अनुष्ठान करने वाले बुद्धिमान् साधक को सर्वप्रथम ज्योतिर्मयी रक्षा करनी चाहिए इसके बाद वाङ्मयी रक्षा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

अक्षकल्पनम्

यत् तद् दिव्यं महज्ज्योतिरक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
सूर्यस्य यः परः सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रस्य यः परः ॥ ५ ॥
अग्नेरग्निः परो दीप्तेस्तेजस्तत्तेजसामपि।
नित्यतृप्तं सदानन्दमुदयास्तमयोज्झितम् ॥ ६ ॥
तदक्षं कल्पयेद् दिव्यमथ नाभिं स्मरेद् बुधः।

जो वह महान् दिव्य ज्योति अक्षर एवं शाश्वत ब्रह्म कही जाती है, जो सूर्य से भी परे सूर्य है, चन्द्रमा से परे चन्द्रमा है, जाज्वल्यमान अग्नि से परे अग्नि है, किं बहुना जो समस्त तेजों का तेज है। वह ज्योति नित्य तृप्त है और सदा आनन्द स्वरूप है। जिसका उदय एवं अस्त कभी होता ही नहीं। उसी में अक्ष की कल्पना करनी चाहिए। इसके बाद उसकी नाभि की कल्पना करनी चाहिए ॥ ५-७ ॥

नाभिकल्पनम्

तद्धर्मधर्मिणीं शक्तिं ब्रह्मणोऽनपगामिनीम् ॥ ७ ॥
अनाकारामनौपम्यां लक्षयन्तीं सदा जगत्।

पूर्वोक्त ब्रह्म (द्र० २१.५) में रहने वाले धर्म के समान धर्मवाली उसकी शक्ति में नाभि की कल्पना करनी चाहिए। जो कभी ब्रह्म से अलग नहीं होती। उसका कोई आकार नहीं है। उसकी बराबरी का भी कोई नहीं है और सारा जगत् उसी से प्रकाशित होता है।

शक्तेः श्रीशब्दवाच्यत्वं तन्निर्वचनं च

श्रयन्तीं श्रीयमाणां च शृणन्तीं शृण्वतीमपि ॥ ८ ॥
महानन्दां महाभासां निर्विकारां निरेषणाम्।

जो शक्ति सबकी आश्रयभूता है। जिससे सब अपना आश्रय चाहते हैं, जो सबके कर्मों का परिपाक करती हैं। किं बहुना सभी बातों को जो सुन लेती है, जो महान् आनन्द से परिपूर्ण है। महा प्रकाशशीला वह सभी प्रकार के विकारों से रहित एवं इच्छा से रहित है ॥ ८-९ ॥

श्रियः षाड्गुण्यपूर्णता

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजः प्रभावतीम् ॥ ९ ॥
अनन्तानन्तरूपां तामभेद्यां सर्वभेदिनीम्।
नन्दां भद्रां जयां पूर्णां रिक्ता चैवामृतां हराम् ॥ १० ॥

जो शक्ति ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज से उद्भासित हो रही है। जो अनन्त अनन्त स्वरूप वाली है। वह स्वयं अभेद्य है किन्तु सबका भेदन करने वाली भी

है। (तिथियों के रूप में) वही नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, रिक्ता, अमृता तथा हरा नाम वाली है ॥ ९-१० ॥

त्रिरूपामत्रिरूपां च सर्वप्रत्यक्षसंमताम् ।
निषेधैरनिषेध्यां तामविधेयां विधिक्रमैः ॥ ११ ॥
अवाच्यां वाचिकां नित्यां गौरीं लक्ष्मीं सरस्वतीम् ।

गौरी, लक्ष्मी एवं सरस्वती इन तीन रूपों में होती हुई भी वह इन तीनों से परे भी है । परोक्ष होते हुये भी सबके सामने प्रत्यक्ष रहने वाली है । किसी भी प्रकार का निषेध उसे निषिद्ध नहीं बना सकता । सब प्रकार के विधिक्रमों से वह अविधेय (स्वतन्त्र) है, वह सबका वाचक हो कर भी सबसे अवाच्य है ॥ ११-१२ ॥

अरकल्पनम्

अराणि पञ्च कृत्यानि शक्तेस्तस्याः प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥
तिरोभावं सृजिं चैव स्थितिं संहृत्यनुग्रहौ ।

उस शक्तिस्वरूपा लक्ष्मी के अरकल्पना रूप पञ्चकृत्य में ही उस सुदर्शन के पाँच अरे की कल्पना करनी चाहिए (द्र० १४-१५) । वे पञ्चकृत्य तिरोभाव, सृष्टि, स्थिति, निग्रह तथा अनुग्रह हैं ॥ १२-१३ ॥

नेमिकल्पनम्

व्यूहं व्यूहान्तरं चैव नेमिभावं प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥
सच्चिदानन्दसंदोहमस्पन्दस्पन्दलक्षणम् ।
सर्वक्रियास्पदं शुद्धमक्रियास्पदसेवितम् ॥ १४ ॥
उदयास्तमयस्थं तदुदयास्तमयोज्झितम् ।
अवस्थाविधुरं नित्यं शश्वच्चतुरवस्थितम् ॥ १५ ॥
अपदं चाक्रमं चैव क्रमास्थितचतुष्पदम् ।
अनायुधमसंरम्भं सर्वायुधसमन्वितम् ॥ १६ ॥
शास्त्रशास्त्रार्थतद्भेदं फलक्लृप्तिविचक्षणम् ।
चन्द्रार्काग्निसहस्रौघकोटिकोट्यर्बुदोपमैः ॥ १७ ॥
स्वभासां निचयैर्ध्वस्तसमस्तदुरितोदयम् ।

व्यूह तथा व्यूहान्तर में नेमि की कल्पना करनी चाहिए (द्र० अ० ५, १०) । वह नेमि सच्चिदानन्दसन्दोह, अस्पन्द तथा स्पन्द लक्षणों वाला है । वह शुद्ध सम्पूर्ण क्रियाओं का आस्पद होते हुये अक्रिया का भी आस्पद है । उदय एवं अस्तमय में स्थित हो कर भी उदय अस्तमय से वर्जित है । निरन्तर चारों अवस्था (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय) में होते हुये भी किसी अवस्था में न रहने वाला है । क्रम में स्थिति तथा चतुष्पाद हो कर भी पद से तथा क्रम से रहित है । सभी प्रकार के आयुधों से युक्त होकर भी अनायुध एवं निष्क्रिय है । शास्त्र तथा अशास्त्र दोनों ही उसके भेद हैं, फिर भी वह फल देने में अत्यन्त पटु है । सहस्रसमूह वाले करोड़ों तथा करोड़ों अर्बुद वाले चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि के

समान अपने प्रकाश समूहों से वह समस्त उत्पन्न तथा आगे उत्पन्न होने वाले पाप समूहों को विनष्ट करने वाला है ॥ १३-१८ ॥

विभवेशादीनां नेमिबाह्यस्थानकल्पनम्

नेमिबाह्यस्थितान् ज्वालान् विभवेशाननुस्मरेत् ॥ १८ ॥
चन्द्रार्काग्निसहस्राभान् संविदानन्दलक्षणान् ।
सर्वाकारान् निराकारान् सर्वाभीष्टफलप्रदान् ॥ १९ ॥
कान्तिज्वालाकुलालीढरक्षोदैत्येन्द्रदानवान् ।
धूम्रां ज्वालाकुलोत्थां च सृष्टिं शुद्धेतरां स्मरेत् ॥ २० ॥
त्रैलोक्यं धरणीं चक्रं मण्डलं वा तदीश्वरम् ।
अक्षस्थं कल्पयेत् तस्य यदीच्छेद्रक्षितुं धिया ॥ २१ ॥

उन विभवेशादिकों की नेमि के बाहर कल्पना—ज्वालायुक्त उन विभवेशादिकों (द्र० ५) की नेमि से बाहर कल्पना करनी चाहिए, जो सहस्रों चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि के समान आभा वाले हैं। जो ज्ञान तथा आनन्द लक्षणों से युक्त हैं। अनेक आकार के होने पर भी जो निराकार हैं और सभी अभीष्टफलों को देने वाले हैं। जो अपनी कान्ति की ज्वालाओं से राक्षसेन्द्र, दैत्येन्द्र तथा समस्त दानवों को ग्रस्त कर रहे हैं। जो धूम्र वर्ण के है तथा ज्वालासमूहों से व्याप्त है। फिर विभवेशादिकों की कल्पना के बाद अपनी रक्षा के लिए शुद्धेतर सृष्टि, त्रैलोक्य धरणीचक्र, मण्डल तथा मण्डलेश्वरों की अक्ष में कल्पना करनी चाहिए ॥ १८-२१ ॥

एवं ध्यायिन आनुषङ्गिकं फलम्

इत्थं विचिन्तयेद् यत्र मन्त्री मन्त्रार्थतत्परः ।
तत्र नश्यन्ति पाप्मान आधयो व्याधयोऽपि वा ॥ २२ ॥
ईतयोऽरातयश्चैव न क्लेशा दधते पदम् ।
राजा विजयते नित्यं शश्वत् स्निह्यन्ति मन्त्रिणः ॥ २३ ॥
नित्यं माद्यन्ति मित्राणि सुख्यन्ति सुहृदस्तथा ।
बध्नन्ति बान्धवाः प्रीतिं सन्तः सन्ति च सन्ततम् ॥ २४ ॥
पोष्याः पुष्यन्ति चार्थानां श्रयन्ति श्रिय एव च ।
ऋध्नुवन्ति प्रजा नित्यं प्रसीदन्त्यः परस्परम् ॥ २५ ॥
कामैर्धर्मान् निबध्नन्ति धर्मैरर्थाननेकशः ।
अर्थैः कामान् निबध्नन्ति तथा धर्मानशेषतः ॥ २६ ॥
धर्मैरर्थान् निबध्नन्ति तथा कामानशेषतः ।
धर्मार्थाभ्यां तथा कामं कामार्थाभ्यां तथेतरम् ॥ २७ ॥
अर्थं च धर्मकामाभ्यां सञ्चिन्वन्ति सदा नराः ।

इस प्रकार अक्ष नाभि अर तथा नेमि की कल्पना करने वाले साधकों के आनुषङ्गिक फल का प्रतिपादन—मन्त्र के अर्थों को जानने वाले मन्त्रज्ञ साधक के इस प्रकार की

कल्पना से सब प्रकार के पाप, आधियाँ (दैवी विपत्ति), व्याधियाँ, ईति (मानसिक दुःख) और अराति (शत्रु) तो नष्ट हो ही जाते हैं किसी प्रकार के क्लेश भी उसे नहीं सताते। इसका ध्यान करने वाला राजा सर्वत्र विजय प्राप्त करता है। मन्त्री सर्वथा उससे प्रेम करने लग जाते हैं। मित्र सर्वदा उसे हर्षित करते हैं। उसके सुहृदगण उसे सर्वदा सुखी बनाने की चेष्टा करते हैं। बन्धुगण उसमें सर्वदा प्रीति रखते हैं। किं बहुना सन्त लोग उसे सर्वदा प्राप्त होते हैं। उसके पोष्य वर्ग उसे अर्थ से पुष्ट करते रहते हैं। श्री सर्वदा उसके आश्रय में रहती है। प्रजा एक दूसरे को प्रसन्न करती हुई उसे समृद्ध बनाती रहती है तथा सम्पूर्ण कामनाओं द्वारा धर्म का निबन्धन होता है। उसके राज्य में रहने वाले लोग काम से धर्म का, धर्म से अनेक प्रकार के अर्थों का, अर्थ से काम का तथा सम्पूर्ण धर्म का सञ्चय करते हैं। इसी प्रकार धर्म तथा अर्थ से काम का, काम एवं अर्थ से धर्म का, धर्म और काम से अर्थ का सञ्चय करते हैं॥ २२-२८॥

मुख्यफलकथनम्

सर्वे स्वधर्मनिरतास्तथा कल्याणभागिनः॥ २८॥
सम्प्राप्य भगवज्ज्ञानं प्राप्नुवन्ति परं पदम्।

मुख्यफल कथन—उस राजा के राज्य के सभी लोग अपने-अपने धर्म में निरत होकर कल्याण के भागी होते हैं। किं बहुना सम्पूर्ण प्रजा ज्ञान प्राप्त कर पर पद (मोक्ष) प्राप्त कर लेती है॥ २८-२९॥

अध्यायार्थनिगमनम्

इति ज्योतिर्मयी रक्षा लेशतस्ते निदर्शिता।
रक्षां तु वाङ्मयीं प्रोक्तां गृणतो मे निशामय॥ २९॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां ज्योतिर्मयरक्षा-
निरूपणं नाम एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ आदितः श्लोकाः १२५६॥

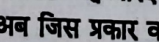

इस अध्याय के निष्कर्ष का कथन—हे नारद! इस प्रकार हमने आपसे लेशमात्र ज्योतिर्मयी रक्षा का वर्णन किया। अब जिस प्रकार वाङ्मयी रक्षा का स्वरूप होता है उसे मेरे द्वारा श्रवण कीजिए॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के ज्योतिर्मयी-
रक्षानिरूपण नामक बीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई॥ २१॥

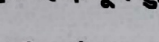

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

मन्त्रमयरक्षानिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस अरे का मात्र एक बार किया गया ध्यान साधक के जन्म जन्मान्तरों के करोड़ पापसमूहों का विनाश करता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

तत्रादौ चतुःब्रह्मचक्रम्

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु मन्त्रमयीं रक्षां वाङ्मयी या निगद्यते ।
यस्मिन् विश्वमिदं प्रोतं सदेवासुरमानुषम् ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब उस मन्त्रमयी रक्षा को सुनिए जिसे वाङ्मयी रक्षा कहते हैं । जिसमें देवता, असुर तथा मानव सम्बन्धी समस्त विश्व अनुस्यूत है ॥ १ ॥

मन्त्रनाथः पुरा यो हि षड्वर्णः समुदाहृतः ।
कामधुक् साधकेन्द्राणामचिन्त्याश्चर्यबृंहितः ॥ २ ॥

पूर्व में हमने जो छः वर्णों वाला मन्त्र नाथ कहा है (द्र० १८.१८) वह श्रेष्ठ साधकों के लिए समस्त कामनाओं को देने वाला है, अचिन्त्य है तथा आश्चर्य से परिपूर्ण है ॥ २ ॥

तं तारशक्तिश्रीबीजैर्ग्रथितं कल्पयेन्मनुम् ।
तारेण वेष्टयेत् त्रिस्तं तथा शक्त्या तथा श्रिया ॥ ३ ॥

उस मन्त्र को तार एवं शक्ति (ॐ ह्रीँ) तथा श्री बीज से युक्त कर विशेष मन्त्र की कल्पना करनी चाहिए । फिर उसे तार (ॐ) से तीन बार वेष्टित करना चाहिए । फिर उसे शक्तिमन्त्र (ह्रीँ) से तथा पुनः श्रीबीज (श्रीँ) से घेर देवे ॥ ३ ॥

विलिखेत् परितो भूयः सहग्रथितमातृकम् ।
परितो विलिखेद् बाह्ये साध्यनाम विदर्भितम् ॥ ४ ॥
मन्त्रेश्वरं बहिर्भूयस्तारशक्तिश्रियो लिखेत् ।
अक्षक्लृप्तिरियं दिव्या देवैरपि सुदुर्लभा ॥ ५ ॥

स्त्राकारं कल्पयेन्नाभिं शक्तिश्रीकारलोलितम् ।
स्त्राकारग्रथितेनैव मन्त्रनाथेन वेष्टयेत् ॥ ६ ॥
शक्तिश्रीतारग्रथितां मातृकां बहिरालिखेत् ।
अप्रमेयं ततस्तारं प्रथमं शक्तिमप्यतः ॥ ७ ॥
व्यापकं च श्रियं चेति क्रमात् पूर्वमरं लिखेत् ।
अप्रमेयेण ग्रथितं पार्श्वयोर्मन्त्रमालिखेत् ॥ ८ ॥

इसके बाद उसके चारों ओर सह से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखना चाहिए । इसके बाद उसके बाहर चारों ओर साध्य नाम (जिसके रोग-शोक को हरण करने के लिए यन्त्र का निर्माण करना हो) ग्रथित कर मन्त्रेश्वर (द्र० १८.१८) लिखे । फिर तार (ॐ) शक्ति (ह्रीँ) फिर श्री (श्रीँ) लिखे । इस प्रकार के अक्ष का निर्माण देवताओं के लिए भी दुर्लभ है । इसके बाद शक्ति (ह्रीँ) श्री (श्रीँ) सम्पुट 'स्त्रा' लिखकर नाभि की कल्पना करनी चाहिए । फिर 'स्त्रा' से ग्रथित मन्त्रनाथ लिखकर उसे वेष्टित करे । उसके बाहर शक्ति (ह्रीँ) श्री (श्रीँ) तार (प्रणव ॐ) से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । उसके बाद बाहर अप्रमेय (अकार द्र० १७.४) इसके बाद तार (ॐ), इसके बाद प्रथम (अ, द्र० १७.४) इसके बाद शक्ति (ह्रीँ) लिखे । इसके बाद व्यापक (अ, द्र० १७.४), फिर श्री (श्रीँ) पूर्व के अरे पर लिखे उसके दोनों ओर अप्रमेय (अ, द्र० १७.४) से ग्रथित मन्त्रराज लिखे ॥ ४-८ ॥

उद्दामादिक्रमेणैव दक्षिणं चारमालिखेत् ।
प्रासादादिक्रमेणैव पश्चिमं चारमालिखेत् ॥ ९ ॥
व्योमेशादिक्रमेणैवमुत्तरं चारमालिखेत् ।
इयं चतुररी दिव्या सुरैरपि सुपूजिता ॥ १० ॥

इसके बाद उद्दाम (उकार द्र० १७.६) आदि के क्रम से दक्षिण अरे पर लिखे । प्रासादादि? (ऐं) (ॐ श्री) पश्चिम अरे पर तथा व्योमेश (औं) आदि क्रम से उत्तर दिशा के अरे पर लिखे । इस प्रकार चार अरों वाला यह दिव्य चक्र देवगणों से भी पूज्य होता है ॥ ९-१० ॥

आद्यन्तयोररराणां च रेफं मन्त्राक्षरं लिखेत् ।
कालानलसमज्योतिर्भवेदरचतुष्टयम् ॥ ११ ॥

अरों के आदि तथा अन्त में रेफ लिखकर फिर मन्त्राक्षरों को लिखे । इस प्रकार निर्माण किया गया चार अरों वाला यह दिव्य चक्र कालानल के समान प्रकाशयुक्त होता है ॥ ११ ॥

परितः कल्पयेन्नेमिं वैष्णवं तु षडक्षरम् ।
शक्तितारररमाबीजैर्ग्रथितं वर्मवेष्टितम् ॥ १२ ॥

पुनः उसके चारों ओर शक्ति (ह्रीँ) तथा (ॐ) रमा बीज (श्रीँ) से ग्रथित वर्म

(कवचाय हुँ) से वेष्टित छः अक्षरों वाले वैष्णव मन्त्र को लिख कर नेमि की कल्पना करे ॥ १२ ॥

शक्तितारमाश्चैव परितस्त्रिस्त्रिरालिखेत् ।
फट्कारशक्तितारश्रीग्रथितां मातृकां पुनः ॥ १३ ॥
प्रधिभूमौ लिखेच्चक्रमेतच्चतुररं स्मृतम् ।

उसके चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ) तथा रमा (श्रीँ) लिखे । इस मन्त्र को तीन -तीन बार लिखे । फिर फट्कार, तदनन्तर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ), श्री (श्रीँ) से ग्रथित मातृका वर्णों को प्रधि में लिखे । इसी को चार अरों वाला चक्र कहते हैं ॥ १३-१४ ॥

षडरविष्णुचक्रम्

तारकात्मकमेतत्तु चक्रमक्षं प्रकल्पयेत् ॥ १४ ॥
तारशक्तिरमाबीजैर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
परितो विलिखेच्चक्रं पूर्वमक्षीकृतं हि यत् ॥ १५ ॥
नामवर्णान् लिखेद् बाह्ये तारादित्रयदर्भितान् ।
वैष्णवेन षडर्णेन ग्रथितं मन्त्रनायकम् ॥ १६ ॥
परितो विलिखेद् बाह्ये तद्बहिः सहदर्भिताम् ।
मातृकां विलिखेत् सर्वमिदमक्षं विचिन्तयेत् ॥ १७ ॥

षडक्षरों वाले विष्णु चक्र का निर्माण—इस षडरों वाले चक्र का तारकात्मक (ॐ स्वरूप) अक्ष निर्माण करे । पहले जिस अक्ष का निर्माण किया गया है, उसके चारों ओर तार (ॐ), शक्ति (ह्रीँ), रमा (श्रीँ) से ग्रथित मन्त्र नायक लिखे । इसके बाद तारादि त्रय (ॐ श्रीँ ह्रीँ) से दर्भित साध्य के नाम वाले वर्णों को लिखे । उसके बाद चारों ओर वैष्णव षडर्ण से ग्रथित मन्त्रनायक (ॐ सहस्रार ईं नमः) लिखे । उसके बाद सह से दर्भित मातृका वर्णों को लिखे । यह सारी क्रिया उसी अक्ष में करे ॥ १४-१७ ॥

वैष्णवेन षडर्णेन शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्त्राकारं परमाद्भुतम् ॥ १८ ॥
स्त्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत् ।
रेफं च प्रणवं रेफं प्रणवं शक्तिमेव च ॥ १९ ॥
रेफं च प्रणवं पश्चाच्छ्रियं पश्चान्महामुने ।
रेफं चेति लिखेत् पूर्वमरं कालानलद्युतिम् ॥ २० ॥

शक्ति (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ), तारक (ॐ) से ग्रथित छः अक्षरों वाले वैष्णव मन्त्र से परमाद्भुत नाभि की कल्पना करे । उसके चारों ओर (स्त्राकार से ग्रथित मातृका) औं को लिखे । हे महामुने ! रेफ प्रणव, इसके बाद रेफ प्रणव और शक्ति (ह्रीँ), फिर रेफ प्रणव, इसके बाद श्री (श्रीँ), फिर रेफ लिखे । इस प्रकार कालानल के समान प्रकाश वाले पूर्व के अरे का निर्माण करे ॥ १८-२० ॥

प्रणवालोलितं मन्त्रमाग्नेयमरमालिखेत् ।
रेफं विं प्रणवं रेफं विं शक्तिं रेफमेव च ॥ २१ ॥
विं श्रियं रेफमित्येवं दक्षिणं चारमालिखेत् ।
रेफं ष्णं प्रणवं रेफं ष्णं शक्तिं रेफमेव च ॥ २२ ॥
ष्णं (श्रियं रेफमित्येवं नैर्ऋतं चाप्यरं लिखेत् ।
रेफं वें प्रणवं रेफं वें शक्तिं रेफमेव च ॥ २३ ॥
वें श्रियं) रेफमित्येवं वारुणं चाप्यरं लिखेत् ।
रेफं नं प्रणवं रेफं नं शक्तिं रेफमेव च ॥ २४ ॥
नं श्रियं रेफमित्येवं वायव्यं चारमालिखेत् ।
रेफं मों प्रणवं रेफं मों शक्तिं रेफमेव च ॥ २५ ॥
मों श्रियं रेफमित्येवमैशानं चाप्यरं लिखेत् ।
तत्तदक्षरसंदिष्टं मन्त्रं तत्पार्श्वयोर्लिखेत् ॥ २६ ॥

इसके बाद प्रणव से आलोलित मन्त्र आग्नेय अरे में लिखे । रेफ विं प्रणव, रेफ विं शक्ति (ह्रीँ), रेफ विं श्री (श्रीँ), फिर रेफ, इस प्रकार दक्षिण के अरे पर लिखे । तदनन्तर रेफ-ष्ण श्री (श्रीँ), तदनन्तर पुनः रेफ, इस प्रकार नैर्ऋत्य के अरे पर लिखे । रेफ वें प्रणव, रेफ वें शक्ति (ह्रीँ), फिर रेफ वें श्री (श्रीँ), तदनन्तर रेफ, यह पश्चिम के अरे पर लिखे । रेफ नं प्रणव, रेफ नं शक्ति, फिर रेफ नं श्री (श्रीँ), इसके पश्चात् रेफ, इस प्रकार वायव्य अरे पर लिखे । रेफ मों प्रणव, रेफ मों शक्ति (ह्रीँ), रेफ मों श्री (श्रीँ), फिर रेफ, यह ईशान कोण के अरे पर लिखे । उन-उन अक्षरों से ॐ ह्रीं श्रीं रे से संयुक्त ॐ विष्णवे नमः इस मन्त्र को अरे के दोनों पार्श्वभाग में लिखे ॥ २१-२६ ॥

दशाक्षराण्यराणि स्युः प्रत्येकं षडिमानि तु ।
इयं हि षडरी दिव्या देवैरपि सुपूजिता ॥ २७ ॥

ये छः वैष्णवाक्षर उक्त प्रकार प्रत्येक दश-दश अक्षरों से युक्त (द्र० २२.१९-२६) हो जाते हैं । यही षडक्षरी महाविद्या है जो देवताओं से भी पूजित है ॥ २७ ॥

परितो विलिखेन्नेमिं मन्त्रमष्टाक्षरं बुधः ।
हङ्कारं विलिखेन्नेमिं शक्तिश्रीतारलोलितम् ॥ २८ ॥

बुद्धिमान् साधक इसके अनन्तर नेमि का निर्माण करे । उसके चारों ओर अष्टाक्षर मन्त्र लिखे । नेमि पर शक्ति (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ) तथा तार (प्रणव) से लोलित 'हं' लिखे ॥ २८ ॥

शक्तितारारमास्त्रिस्त्रिरालिखेत् परितो बहिः ।
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रथिमालिखेत् ॥ २९ ॥
एतत्तु षडरं चक्रं षड्विंशार्णविनिर्मितम् ।

उसके बाद बाहर चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ), रमा (श्रीँ) इन बीज मन्त्रों को तीन-तीन बार लिखे। उसके बाहर प्रधि पर फट्कार युक्त मातृका वर्णों को लिखे। यही षडक्षर चक्र है जो २६ अक्षरों से बना हुआ है (द्र० २२.२७ कुल योग १६ इसके बाद द्र० २२.२८, कुल योग २४, हुं फट् = २६) ॥ २९-३० ॥

अष्टारनारायणचक्रम्

षडरं कल्पयेच्चक्रमक्षमेतन्महाद्युति ॥ ३० ॥
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण चक्रमष्टारमालिखेत्।
महाबलं महाभीमं कालानलसमद्युति ॥ ३१ ॥
विधानमस्य चक्रस्य यथावदवधारय।
विलिखेत् परितो मन्त्रं तारादित्रयलोलितम्। ३२ ॥

सर्वप्रथम अत्यन्त तेजस्वी छः अरों वाले अक्ष सहित चक्र की कल्पना करे। इसके बाद अष्टाक्षर मन्त्र से आठ अरों वाला चक्र बनावे। यह अष्टारचक्र महाबलवान् एवं कालानल के समान महाभयङ्कर है। हे नारद! अब इस अष्टारचक्र को मैं जिस प्रकार कहता हूँ उसे सुनिए। सर्वप्रथम तार (ॐ), शक्ति (ह्रीँ) इन तीनों से संयुक्त अष्टाक्षर मन्त्र को चारों ओर लिखे ॥ ३०-३२ ॥

नामवर्णान् लिखेद्बाह्ये तारादित्रयलोलितान्।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण ग्रथितं मन्त्रनायकम् ॥ ३३ ॥
परितो विलिखेद् बाह्ये तद्बहिः सहदर्भिताम्।
मातृकां विलिखेत् सर्वमिदमक्षं विचिन्तयेत् ॥ ३४ ॥

उसके बाहर तारादित्रय (ॐ ह्रीँ श्रीँ) से संयुक्त साध्य के नाम वर्णों को लिखे। उसके बाहर चारों ओर अष्टाक्षर मन्त्र से संयुक्त मन्त्रराज (ॐ सहस्रार ईं नमः) लिखे। फिर उसके भी बाहर चारों ओर स ह से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे। यह सब अक्ष पर ही लिखना चाहिए ॥ ३३-३४ ॥

अष्टाक्षरेण मन्त्रेण शक्तिश्रीबीजतारकैः।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्त्राकारं परमाद्भुतम् ॥ ३५ ॥

इसके बाद शक्ति (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ), तारक (ॐ) से संयुक्त अष्टाक्षर मन्त्र से ग्रथित स्त्रा से परमाद्भुत नाभि की कल्पना करे ॥ ३५ ॥

स्त्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत्।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा बहिरष्टाक्षरं लिखेत् ॥ ३६ ॥
रेफं च प्रणवं तारं रेफं तारं च तारिकाम्।
रेफं तारं श्रियं चैव रं चेति प्रागरं लिखेत् ॥ ३७ ॥

उसके चारों ओर 'स्त्रा' से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे, यही नाभि कही जाती है। उसके बाद अष्टाक्षर मन्त्र लिखे। फिर रेफ, प्रणव (ॐ), तार, फिर रेफ तार

तारिका? (ह्रीँ), फिर रेफ तार श्री (श्रीँ), फिर रं इतने अक्षरों को पूर्व के अरे पर लिखे ॥ ३६-३७ ॥

रेफं नं तारकं रेफं न शक्तिं रेफनौ तथा।
श्रियं रेफमिति प्राज्ञोऽप्याग्नेयं कल्पयेदरम् ॥ ३८ ॥

रेफ नं तारक (ॐ), रेफ नं शक्ति (ह्रीँ), रेफ नं श्री (श्रीँ), फिर रेफ इतने अक्षर आग्नेय अरे पर बुद्धिमान् साधक लिखे ॥ ३८ ॥

रेफं मों तारकं रेफं मों शक्तिं रेफमोंद्वयम्।
श्रियं रेफं च मतिमानरं याम्यं क्रमाल्लिखेत् ॥ ३९ ॥

रेफ मों तारक (ॐ), रेफ नां शक्ति (ह्रीँ), रेफ ॐ इन दोनों के बाद श्री (श्रीँ), फिर रेफ इतने अक्षरों को मतिमान् साधक दक्षिण अरे पर लिखे ॥ ३९ ॥

रेफं नां तारकं रेफं नां शक्तिं रेफमेव च।
नां श्रियं रेफमित्येवं नैर्ऋतं च लिखेदरम् ॥ ४० ॥

रेफ नां तारक (ॐ), रेफ नां शक्ति (ह्रीँ), रेफ नां श्री (श्रीँ), फिर रेफ—इस प्रकार नैर्ऋत अरे की कल्पना करे ॥ ४० ॥

रेफं रां तारकं रेफं रां शक्तिं रेफमेव च।
रां श्रियं रेफमित्येवं वारुणं च लिखेदरम् ॥ ४१ ॥

फिर रेफ रां तारक (ॐ), रेफ रां शक्ति (ह्रीँ), रेफ रां श्री (श्रीँ), फिर रेफ—इन अक्षरों को पश्चिम के अरे पर लिखना चाहिए ॥ ४१ ॥

रेफं यं तारकं रेफं यं शक्तिं रेफमेव च।
यं श्रियं रेफमित्येवं वायव्यं च लिखेदरम् ॥ ४२ ॥

रेफ यं तारक (ॐ), रेफ यं शक्ति (ह्रीँ), रेफ यं श्री (श्रीँ), फिर रेफ, इन अक्षरों को वायव्य कोण पर लिखना चाहिए ॥ ४२ ॥

रेफं णां तारकं रेफं णां शक्तिं रेफमेव च।
णां श्रियं रेफमित्येवं कौबेरं च लिखेदरम् ॥ ४३ ॥

रेफ णां तारक (ॐ), रेफ णां शक्ति (ह्रीँ), रेफ णां श्री (श्रीँ), फिर रेफ—इन अक्षरों को उत्तर दिशा के अरे पर लिखना चाहिए ॥ ४३ ॥

रेफं यं तारकं रेफं यं शक्तिं रेफमेव च।
यं श्रियं रेफमित्येवमैशानं च लिखेदरम् ॥ ४४ ॥

रेफ यं तारक (ॐ), रेफ यं शक्ति (ह्रीँ), रेफ यं श्री (श्रीँ), फिर रेफ—इतने अक्षर ईशान कोण के अरे पर लिखना पड़ता है ॥ ४४ ॥

तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः।
अष्टारीयं महापुण्या सुरासुरनमस्कृता ॥ ४५ ॥

इसी प्रकार उन-उन अक्षरों (ॐ ह्रीं श्रीं रं) से संयुक्त ॐ नमो नारायणाय इस मन्त्र को अरे के दोनों पार्श्वभाग पर लिखना चाहिए। यह आठ अरों वाला महाचक्र महापुण्यदायक है। इसे देवता तथा असुर दोनों ही नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥

परितः कल्पयेन्नेमिं द्वादशाक्षरमद्भुतम्।
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ॥ ४६ ॥

इसके चारों ओर द्वादशाक्षर से संयुक्त अत्यन्त अद्भुत नेमि की कल्पना करनी चाहिए। तार (ॐ), तारा (ह्रीं) एवं अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित 'हुं' बाहर लिखे ॥ ४६ ॥

शक्तितारारमास्त्रिस्त्रिः परितो बहिरालिखेत्।
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ॥ ४७ ॥
नारायणं महाचक्रमेतन्नारायणेरितम्।
अक्षं कृत्वा चक्रमेतद् द्वादशारं बहिर्लिखेत्।
वासुदेवं महाचक्रं विधिं तस्य निशामय ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां मन्त्रमयरक्षा-
निरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १३०४ ॥

उसके बाहर चारों ओर शक्ति (ह्रीं), तार (ॐ), रमा (श्रीं) इनको तीन-तीन बार लिखे। उसके बाहर फट् से संयुक्त मातृका वर्णों को प्रधि पर लिखे। यही नारायण महाचक्र है, जिसे नारायण ने स्वयं अपने मुख से कहा है। इसी चक्र को अक्ष बनाकर बाहर १२ अरों वाला चक्र निर्माण करे। इसे वासुदेव चक्र कहते हैं। अब इसकी विधि हे नारद! सुनिए ॥ ४७-४८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के मन्त्रमय
रक्षानिरूपण नामक बाइसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

वासुदेवादियन्त्रनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पापसमूहों को विनष्ट करता है हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

द्वादशारचक्रम्

अहिर्बुध्न्यः—

द्वादशारस्य चक्रस्य क्रमोऽयं परिगीयते ।
पाप्मानो विप्रदूयन्ते यस्य स्मरणमात्रतः ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिस द्वादशारचक्र के स्मरण मात्र से पाप बहुत दूर भाग जाते हैं उसके निर्माण का क्रम इस प्रकार है ॥ १ ॥

नारायणाह्वयं चक्रं यत् पूर्वं समुदीरितम् ।
तदक्षं कल्पयेन्मन्त्री वक्ष्यमाणविधानतः ॥ २ ॥

हमने जिस नारायण चक्र का पूर्व में वर्णन किया है (द्र० २२.३०-४६) उसके अक्ष की रचना आगे कही जाने वाली विधि से करनी चाहिए ॥ २ ॥

तारतारानुताराभिर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
परितो विलिखेद् बाह्ये चक्रान्नारायणाह्वयात् ॥ ३ ॥
नामवर्णान् लिखेद् बाह्ये तारादित्रयलोलितान् ।
द्वादशाक्षरमन्त्रेण ग्रथितं मन्त्रनायकम् ॥ ४ ॥

नारायण नामक चक्र के बाहर चारों ओर तार (ॐ), तारा (ह्रीं) तथा अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित मन्त्रराज लिखे । फिर उसके बाहर तार शक्ति एवं श्री (ॐ ह्रीँ श्रीं) से ग्रथित साध्यनाम लिखे । उसके भी बाहर द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) से ग्रथित मन्त्रनायक लिखे ॥ ३-४ ॥

परितो विलिखेद् बाह्ये तद्बहिः सहदर्भिताम् ।
मातृकां विलिखेत् सर्वमेतदक्षं विचिन्तयेत् ॥ ५ ॥

उसके भी बाहर स् ह् से दर्भित मातृका वर्णों को लिखे । इस प्रकार इन सभी वर्णों से अक्ष की कल्पना करनी चाहिए ॥ ५ ॥

द्वादशाक्षरमन्त्रेण शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितां कल्पयेन्नाभिं स्त्राकारं परमाद्भुतम् ॥ ६ ॥

शक्ति (ह्रीँ), श्री (श्रीँ) तथा तार (ॐ) से ग्रथित द्वादशाक्षर मन्त्र द्वारा अत्यन्त अद्भुत स्त्रा के आकार में नाभि की कल्पना करे ॥ ६ ॥

स्त्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत् ।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा द्वादशाराण्यथो लिखेत् ॥ ७ ॥

इसके बाद चारों ओर स्त्राकार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे इस प्रकार नाभि की रचना करे । तदनन्तर द्वादश अरों का इस प्रकार निर्माण करे ।

दिक्षु द्वे द्वे अरे लिख्याद्विदिक्ष्वेकैकमप्युत ।
रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारिके ॥ ८ ॥
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा ।
अराणि द्वादशैवं च द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ९ ॥

चारों दिशाओं में दो-दो अरे (कुल ८), इसके बाद चारों कोनों में एक-एक (कुल चार योग १२) अरे का निर्माण करे । रेफ, मन्त्र का एक अक्षर, तार, फिर रेफ, मन्त्र का एक दूसरा अक्षर, तार (ॐ) फिर रेफ, मन्त्र का तीसरा मन्त्राक्षर, फिर लक्ष्मी (श्रीँ), फिर रेफ, इस क्रम से द्वादशाक्षर विद्या के सभी मन्त्रों को द्वादशार पर लिखे ॥ ८-९ ॥

प्रागादीशानपर्यन्तं कल्पयेन्मन्त्रवित्तमः ।
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः ॥ १० ॥
द्वादशारी महाविद्या सेयं सर्वेश्वरप्रिया ।
परितः कल्पयेन्नेमिं जितन्ताख्यमहामनुम् ॥ ११ ॥
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ।
शक्तितारमास्त्रिस्त्रिरालिखेत् परितो बहिः ॥ १२ ॥
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ।
वासुदेवाह्वयं चक्रमेतद् देवैरभिष्टुतम् ॥ १३ ॥
अस्य चक्रस्य माहात्म्यं वक्तुं शक्यं न मादृशैः ।

मन्त्रवेत्ता ऊपर कहा गया क्रम पूर्व दिशा से आरम्भ कर ईशान कोण में समाप्त करे । इसके बाद उसके दोनों पार्श्व भाग में उन-उन अक्षरों से संयुक्त द्वादशाक्षर मन्त्र लिखे । इस प्रकार द्वादश अरों वाली महाविद्या की रचना करे ।

वासुदेव चक्र—यही सर्वेश्वर भगवान् विष्णु को अत्यन्त प्रिय है । इसके बाद नेमि की कल्पना करे । उसके चारों ओर—

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥ लक्ष्मीतन्त्र २४.६९

इस जितन्ता नामक महामन्त्र को लिखे । उसके भी बाहर तार (ॐ) तारा (ह्रीँ) अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित हुं को लिखे, उसके भी बाहर शक्ति (ह्रीँ) तार (ॐ) रमा (श्रीँ) इस बीज मन्त्र को तीन-तीन बार लिखे । इसके बाद बाहर प्रधि पर फट्कार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यही वासुदेव नामक चक्र है । जिसकी देवता लोग भी प्रशंसा करते हैं । इसका माहात्म्य मेरे जैसे लोगों के द्वारा अवर्णनीय है ॥ १०-१४ ॥

अजिताख्यद्वात्रिंशदरचक्रम्

अक्षं कृत्वा चक्रमेतद् द्वात्रिंशदरमालिखेत् ॥ १४ ॥

अक्ष बना कर इस चक्र में ३२ अरों का निर्माण करना चाहिए ॥ १४ ॥

अजिताख्यमिदं चक्रं सुरासुरनमस्कृतम् ।
अस्य चक्रस्य विधिवद् विधानमुपदिश्यते ॥ १५ ॥

अजित नाम से कहा जाने वाला यह चक्र देवता तथा असुरों से भी नमस्कार किया जाता है । हे नारद ! अब इस चक्र का विधान कर रहा हूँ ॥ १५ ॥

वासुदेवाह्वयं चक्रमस्याक्षं परिकल्पयेत् ।
यथा तथा विधानेन विधानं शृणु साम्प्रतम् ॥ १६ ॥

वासुदेव नामक चक्र को इस अजित चक्र का अक्ष बनाना चाहिए । जिस जिस विधान से इसका निर्माण किया जाता है, हे नारद! अब उसके विधान को सुनिए ॥ १६ ॥

तारतारानुताराभिर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
परितो विलिखेन्मन्त्री वासुदेवाह्वयाद् बहिः ॥ १७ ॥
तारादिग्रथितान् साध्यनामवर्णान् लिखेद्बहिः ।
जितन्ताग्रथितं मन्त्रं परितो बहिरालिखेत् ॥ १८ ॥
मातृकां विलिखेद् बाह्ये सहद्वन्द्वविदर्भिताम् ।
विद्यादजितचक्रस्य सम्यगक्षमिदं बुधः ॥ १९ ॥
जितन्ताख्येन मन्त्रेण शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्त्राकारं परमाद्भुतम् ॥ २० ॥

वासुदेव नामक चक्र के बाहर चारों ओर साधक तार (ॐ) तारा (ह्रीँ) अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित मन्त्रराज लिखे । उसके भी बाहर तार, तारा एवं अनुतारा से ग्रथित साध्य नाम (जिसके लिए यन्त्र का निर्माण करना है) वाले वर्णों को लिखे । सह इन दो अक्षरों से अनुस्यूत मातृका वर्णों को उसके भी बाहर लिखे । बुद्धिमान् साधक इसी को अजित चक्र का उत्तम अक्ष समझे । फिर शक्ति बीज (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ) एवं तारक (ॐ) ग्रथित जितन्ता ('जितं ते पुण्डरीकाक्ष' द्र० लक्ष्मीतन्त्र २४.६९) मन्त्र से स्त्र के आकार वाले परमाद्भुत नाभि की रचना करे ॥ १७-२० ॥

स्त्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत् ।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा पुण्डरीकाक्षसंमता ॥ २१ ॥
द्वात्रिंशतमराण्यस्य परितो नाभिमालिखेत् ।
दिक्षु चत्वारि चत्वारि लिखेदष्टसु वै क्रमात् ॥ २२ ॥
रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारिके ।
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा ॥ २३ ॥
द्वात्रिंशतमराण्येवं लिखेत् सम्यग्जितंतया ।
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः ॥ २४ ॥

फिर उसके बाहर चारों ओर स्त्राकार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यही इसकी नाभि कही जाती है । जिसे भगवान् विष्णु भी स्वीकार करते हैं । इसके बाद नाभि के चारों ओर ३२ अरों की रचना करे । तदनन्तर आठों दिशाओं में क्रमशः चार-चार के क्रम से रेफ, मन्त्राक्षर, तार, फिर रेफ, मन्त्राक्षर, तारिका (ह्रीँ), फिर रेफ, मन्त्राक्षर, लक्ष्मी, फिर रेफ, इस प्रकार चार-चार वर्णों को आठों दिशाओं में लिखे । तदनन्तर ३२ अरों पर—

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥ लक्ष्मीतन्त्र २४.६९

इस जितन्ता मन्त्र के ३२ अक्षरों को भली-भाँति लिखे । उसके दोनों पार्श्वभाग में तत्तदक्षरसंयुक्त मन्त्र को लिखे ॥ २१-२४ ॥

सा द्वात्रिंशदरी दिव्या देवदेवजयप्रदा ।
परितः कल्पयेन्नेमिं नृसिंहानुष्टुभं पराम् ॥ २५ ॥
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ।
शक्तितारररमास्त्रिस्त्रिः परितो बहिरालिखेत् ॥ २६ ॥
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ।
अजिताख्यमिदं चक्रं पुण्डरीकाक्षसम्मतम् ॥ २७ ॥
येनाद्य पुण्डरीकाक्षो दैत्यान् विजयतेऽखिलान् ।
एतदत्यद्भुतं चक्रं कथ्यते वैष्णवं यशः ॥ २८ ॥
नित्ययुक्तोऽत्र सन्मन्त्री जगद्विजयतेऽखिलम् ।

वही द्वात्रिंशदरी महाविद्या है जो देवाधिदेव विष्णु को जय प्रदान करती है । उसके चारों ओर नृसिंह के अनुष्टुप् छन्द वाले मन्त्र से उत्कृष्ट नेमि की रचना करे । उसके बाहर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ), अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित हुं लिखे । उसके भी बाहर चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ), रमा (श्रीँ) तीन-तीन बार लिखे । इसके बाद उसके बाहर प्रधि पर फट्कार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यही अजित नामक चक्र है । जिसे भगवान् विष्णु भी स्वीकार करते हैं । इसी चक्र के प्रभाव से भगवान् विष्णु समस्त दैत्यों पर विजय प्राप्त करते हैं । यह अत्यन्त अद्भुत चक्र विष्णु के यश का विस्तार

करता है । इसका नित्य पूजन करने वाला मन्त्रज्ञ साधक समस्त जगत् पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ २५-२९ ॥

नारसिंहद्वात्रिंशदरचक्रम्

अक्षीकृत्यैतच्चक्रं तु चक्रमन्यत् प्रवर्तते ॥ २९ ॥
महाविष्णुमयं घोरं भद्रं मृत्युविमर्दनम् ।
विधानं शृणु तस्येदं कथ्यमानं मयानघ ॥ ३० ॥

अजित नामक इस चक्र को अक्ष बनाकर अन्य चक्र प्रवृत्त होते हैं । वह चक्र महाविष्णुमय है, घोर है और भद्र करने वाला एवं मृत्यु का भी मर्द्दन करने वाला है । अब उस चक्र का हे नारद ! मैं वर्णन करता हूँ उसे सुनिए ॥ २९-३० ॥

तारतारानुताराभिर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
अजिताख्यान्महाचक्रात् परितो बहिरालिखेत् ॥ ३१ ॥
तारादिग्रथितान् साध्यनामवर्णान् बहिर्लिखेत् ।
उग्रवीरादिमन्त्रेण ग्रथितं मन्त्रनायकम् ॥ ३२ ॥
परितो विलिखेद् बाह्ये सहग्रथितमातृकम् ।
महाविष्णुमयं ह्येतदक्षं चक्रस्य शोभनम् ॥ ३३ ॥

अजित नाम वाले इस चक्र के बाहर चारों ओर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ), अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित मन्त्रराज को लिखे । इसके बाद बाहर तार-तारा तथा अनुतारा से ग्रथित साध्य नाम (जिस कार्य के लिए यन्त्र का निर्माण किया जा रहा हो) लिखे । फिर उग्र वीरादि इस मन्त्र से ग्रथित मन्त्रराज लिखे । उसके भी बाहर चारों ओर सह से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यह नारसिंह नामक चक्र का अत्यन्त शोभनीय महाविष्णुमय अक्ष है ॥ ३१-३३ ॥

उग्रवीरादिमन्त्रेण शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्त्राकारं परमाद्भुतम् ॥ ३४ ॥

इसके बाद शक्ति बीज (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ) तथा तार (ॐ) से ग्रथित स्त्रा के आकार में परमाद्भुत नाभि की कल्पना करे ॥ ३४ ॥

स्त्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत् ।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा महाविष्णुमयी परा ॥ ३५ ॥

उसके बाहर चारों ओर स्त्राकार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यही नारसिंह चक्र की नाभि कही जाती है जो सर्वोत्कृष्ट एवं महाविष्णुमयी है ॥ ३५ ॥

द्वात्रिंशतमराण्यस्य परितो नाभिमालिखेत् ।
दिक्षु चत्वारि चत्वारि लिखेदष्टसु वै क्रमात् ॥ ३६ ॥
रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारके ।
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा ॥ ३७ ॥

इसके बाद नाभि के चारों ओर ३२ अरों की रचना करे। इसके बाद आठों दिशाओं में चार-चार के क्रम से रेफ, मन्त्राक्षर, तार (ॐ), रेफ, मन्त्राक्षर, तारक (ह्रीँ), रेफ, मन्त्राक्षर, लक्ष्मी तथा तार इस क्रम से लिखे ॥ ३६-३७ ॥

द्वात्रिंशतमराण्येवं नृसिंहानुष्टुभा लिखेत्।
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः ॥ ३८ ॥
सा द्वात्रिंशदरी विद्या दुष्टदैत्यनिबर्हणी।
अस्य चक्रस्य नेमिं तु त्रीणि छन्दांसि कल्पयेत् ॥ ३९ ॥
गायत्रीं त्रिष्टुभं चैव तथानुष्टुभमेव च।
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ॥ ४० ॥
शक्तितारमास्त्रिस्त्रिः परितो बहिरालिखेत्।
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ॥ ४१ ॥
एतदत्यद्भुतं घोरं दुष्टदानवसूदनम्।
नारसिंहं महाचक्रं मृत्युञ्जयमिति श्रुतम् ॥ ४२ ॥
प्रेतापस्मारकूष्माण्डदैत्यदानवराक्षसाः ।
डाकिन्यो भूतयोगिन्यो याश्चान्याः क्रूरजातयः ॥ ४३ ॥
स्मरणादस्य चक्रस्य विनश्यन्त्येव सर्वदा।

नृसिंह के अनुष्टुप् छन्द वाले श्लो० 'उग्रं वीरं महामत्यु'मित्यादि को ३२ अरों पर लिखे। दुष्टों तथा दैत्यों का विनाश करने वाली ३२ अरों वाली वही द्वात्रिंशदरी विद्या है। इस चक्र की नेमि पर गायत्री त्रिष्टुप तथा अनुष्टुप छन्दों को लिखना चाहिए। इसके बाद तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) तथा अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित हुं बाहर लिखना चाहिए। उसके बाद भी बाहर चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ) तथा रमा (श्रीँ) तीन-तीन बार लिखना चाहिए। इसके भी बाहर प्रधि में फट्कार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखना चाहिए। यह नरसिंह चक्र अत्यद्भुत है। यह महाभयानक है तथा दुष्टों एवं दानवों का विनाश करने वाला है। किं बहुना मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कराने वाला है, ऐसा हमने सुना है। इस चक्र के स्मरण मात्र से प्रेत, अपस्मार (मृगी), कूष्माण्ड, दैत्य, दानव, राक्षस, डाकिनी, भूत, योगिनी तथा अन्य क्रूर जातियाँ सर्वदा के लिए नष्ट हो जाती हैं ॥ ३८-४४ ॥

शतारज्योतिश्चक्रम्

अक्षीकृत्यैतच्चक्रं तु ज्योतिश्चक्रं प्रवर्तते ॥ ४४ ॥
ज्योतींषि त्रीणि च्छन्दांसि गायत्र्यादीन्यसंशयम्।
विधिज्ञैस्तस्य चक्रस्य विधानं विहितं शृणु ॥ ४५ ॥
यदेतत् प्रथितं ज्योतिर्दिवि प्रत्यक्षमुत्तमम्।
एषा तदिति गायत्री वेदानां जननी परा ॥ ४६ ॥
यदेतदग्निहोत्रस्थं ज्योतिर्वहति वै हुतम्।
जातवेदस इत्येषा त्रिष्टुबग्निमयी तनुः ॥ ४७ ॥

रसैः पुष्णाति यद्विश्वं ज्योतिर्नयननन्दनम् ।
तत् त्रियम्बकमित्येषानुष्टुबिन्दुमयी तनुः ॥ ४८ ॥

इस नरसिंह चक्र को अपना अक्ष बनाकर ज्योतिश्चक्र प्रवृत्त होता है । ज्योतिश्चक्र में गायत्री, त्रिष्टुप् एवं अनुष्टुप् इन तीन छन्दों का निःसन्देह निवास है । विधिज्ञों ने इस चक्र का जैसा विधान कहा है, हे नारद ! अब उसे सुनिए । आकाश में सर्वप्रसिद्ध उत्तम जो यह ज्योतिश्चक्र दिखाई पड़ रहा है, यही वह गायत्री है । जो सारे वेदों की जननी है । अग्निहोम से उठने वाली ज्योति, जो हवि का वहन करती है तथा जिसे जातवेदा कहते हैं, यह त्रिष्टुप् रूपा अग्निमयी उस ज्योति का शरीर है । जो अपने रसों से विश्व का पोषण करती है तथा नेत्रों में आह्लाद उत्पन्न करती है और जो तीन नेत्रों वाली त्रियम्बक है वह उस ज्योति का अनुष्टुप् तथा चन्द्रमय शरीर है ॥ ४४-४८ ॥

ज्योतिर्भिर्धार्यते विश्वं बोधतापनहर्षणैः ।
विरुद्धोपक्रमैर्विश्वं भोक्तृभोग्यमयात्मभिः ॥ ४९ ॥
यत् पूर्वमुदितं चक्रं महाविष्णुमयं महत् ।
तदक्षं कल्पयेन्मन्त्री त्रिभिर्ज्योतिर्भिरुत्तमैः ॥ ५० ॥
छन्दोभिः कल्पयेदक्षं तारादिग्रथितं पुरा ।
महाविष्णुमयाद् बाह्ये विलिखेन्मन्त्रनायकम् ॥ ५१ ॥
तारादिग्रथितांश्चापि साध्यवर्णान् लिखेद् बहिः ।
छन्दोभिर्ग्रथितं मन्त्रं मन्त्री तद्बहिरालिखेत् ॥ ५२ ॥
मातृकां विलिखेद् बाह्ये सहद्वयविदर्भिताम् ।
एतदक्षं समुद्दिष्टं ज्योतिश्चक्रस्य नारद ॥ ५३ ॥

ये सभी ज्योतियाँ बोध, ताप तथा हर्ष से विश्व को धारण करती हैं । विरुद्धोपक्रम से यह सारा विश्व भोक्तृत्व तथा भोग्यात्मक रूप वाला है । हमने पूर्व में जिस महान् विष्णु स्वरूप चक्र का वर्णन किया है (द्र० २३.२९.४३) इन तीन उत्तम ज्योतियों से उसी चक्र द्वारा अक्ष का निर्माण करना चाहिए । इस प्रकार छन्दों से अक्ष का निर्माण कर महाविष्णु-मय चक्र से बाहर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ), अनुतारा (श्रीँ) से ग्रथित मन्त्रराज लिखना चाहिए । फिर उसके भी बाहर तारादि से ग्रथित साध्य वर्ण लिखना चाहिए । फिर उसके भी बाहर स ह इन दो अक्षरों से अनुस्यूत मातृका वर्णों को लिखे । हे नारद ! यही उस ज्योतिष्चक्र का अक्ष कहा जाता है ॥ ४९-५३ ॥

त्रिभिस्तदाद्यैश्छन्दोभिः शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्त्राकारं परमाद्भुतम् ॥ ५४ ॥
स्त्राकारग्रथितां चापि मातृकां बहिरालिखेत् ।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा वेदवेदान्तपूजिता ॥ ५५ ॥
अराणि शतमस्य स्युर्विधानं तस्य मे शृणु ।

इसके बाद शक्ति बीज (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ) एवं तारक (ॐ) से ग्रथित आदिभूत

उन तीन छन्दों से स्रकार रूप परमाद्भुत नाभि की रचना करे । उसके बाहर चारों ओर स्रकार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । इसे ही शतार चक्र की नाभि कहते हैं जो वेद तथा वेदान्त से पूजित है । इस नाभि में १०० अरे बनाये जाते हैं, हे नारद ! अब उसका विधान सुनिए ॥ ५४-५६ ॥

वायुतो वह्निपर्यन्तं रक्षसः शर्वगोचरम् ॥ ५६ ॥
सूत्रद्वयं पातयित्वा चतुर्धा प्रविभज्य तु ।
अराणि पञ्च पञ्चैव क्षेत्रमेकैकमालिखेत् ॥ ५७ ॥
अराणि शतमेवं स्युर्विधानं तस्य मे शृणु ।

वायु कोण से आग्नेय कोण तक तथा नैर्ऋत्य से ईशानकोण पर्यन्त दो रेखा बना कर उसे चार भागों में प्रविभाग कर पाँच-पाँच अरों का एक क्षेत्र बनाना चाहिए । इस प्रकार १०० अरों का निर्माण हो जाता है । हे नारद ! अब उसका विधान सुनिए ॥ ५६-५८ ॥

गायत्र्यादीनि यानि स्युस्तत्र च्छन्दस्त्रयं लिखेत् ॥ ५८ ॥
रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारके ।
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा ॥ ५९ ॥
विलिखेदरगायत्रीं गायत्र्यादौ समाहितः ।
अराणां त्रिष्टुभं चैव त्रिष्टुभैव समालिखेत् ॥ ६० ॥
अनुष्टुभमराणां चानुष्टुभैव समालिखेत् ।
प्रागादिक्रमयोगेन यावदीशानगोचरम् ॥ ६१ ॥
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः ।
शतारीयं महापुण्या सा ब्रह्मास्त्रमयी परा ॥ ६२ ॥

गायत्री त्रिष्टुप् अनुष्टुप् ये जो तीन छन्द हैं, उन्हें रेफ, मन्त्राक्षर एवं तार (ॐ), फिर रेफ, मन्त्राक्षर तारा (ह्रीँ), फिर रेफ, मन्त्राक्षर, लक्ष्मी, फिर रेफ इस क्रम से लिखे । इस प्रकार समाहित चित्त हो आदि गायत्री के अरे पर गायत्री लिखे । इसी प्रकार त्रिष्टुप् के अरों पर त्रिष्टुप् छन्द ही लिखे । फिर अनुष्टुप् के अरे पर अनुष्टुप् ही लिखे । व्यतिक्रम न करे । क्रम पूर्व दिशा से आरम्भ कर ईशानकोण पर्यन्त लिख कर समाप्त करना चाहिए । फिर उसके दोनों पार्श्वभाग में तत्तदक्षर संयुक्त मन्त्र लिखना चाहिए । यह शतारी महाविद्या महापुण्यदायिनी है और परा ब्रह्मास्त्रमयी है ॥ ५८-६२ ॥

पादैः पदैरक्षरैश्च त्रिधैव प्रतिलोमया ।
ब्रह्मदण्डब्रह्मशिरो ब्रह्मास्त्रमयतेजसा ॥ ६३ ॥
आन्तरं नेमिभागं तु गायत्र्या कल्पयेत् सुधीः ।
आग्नेयास्त्रस्वरूपिण्या त्रिष्टुभा प्रतिलोमया ॥ ६४ ॥
मध्यमं नेमिभागं तु कल्पयेन्मन्त्रवित्तमः ।
अनुष्टुभा तृतीयं तु नेमिभागं प्रकल्पयेत् ॥ ६५ ॥

त्रैयम्बकास्त्ररूपिण्या वर्णशः प्रतिलोमया ।
विलिखेत् प्रतिलोमास्ता मन्त्रेण ग्रथिताः सुधीः ॥ ६६ ॥
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ।
शक्तितारारमास्त्रिस्त्रिः परितो बहिरालिखेत् ॥ ६७ ॥
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं त्रिज्योतिश्चक्रमुत्तमम् ॥ ६८ ॥
नानास्त्रग्रामसम्भिन्नं ब्रह्मज्योतिरनामयम् ।

इन छन्दों के पाद पद तथा अक्षरों के तीन प्रकार से विलोम लिखने पर ये ही ब्रह्मदण्ड, ब्रह्मशिर तथा ब्रह्मास्त्र के तेज से युक्त हो जाते हैं । सुधी साधक इस चक्र के भीतर रहने वाले नेमि को गायत्री से लिख कर रचना करे । आग्नेयस्वरूपिणी प्रतिलोम त्रिष्टुप् छन्द लिख कर मध्यम नेमि की रचना करे । इसके बाद अनुष्टुप् छन्द द्वारा तृतीय नेमि की रचना करे । आग्नेयास्त्ररूपिणी इस शक्ति का एक-एक वर्ण प्रतिलोम रूप से मन्त्र के एक-एक अक्षर से ग्रथितकर सुधी साधक लिखे । फिर उसके बाहर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) एवं अनुतारा (क्लीँ) से ग्रथित 'हुँ' लिखे । उसके भी बाहर चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ) एवं रमा (श्रीँ) इस मन्त्र को तीन-तीन बार लिखे । उसके बाहर प्रधि पर फट्कार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यह सर्वश्रेष्ठ त्रिज्योति चक्र तीनों लोकों में प्रसिद्ध है और अनेक अस्त्रसमूहों से मिश्रित अनामय ब्रह्मज्योति है ॥ ६३-६९ ॥

ब्रह्मचक्रम्

अस्माच्चक्राद् बहिः पञ्च होतारः सग्रहाः स्मृताः ॥ ६९ ॥
सम्भाराः पत्नयश्चैव दक्षिणा हृदयानि च ।
तद्बहिः शतरुद्राणि पञ्च ब्रह्माणि तद्बहिः ॥ ७० ॥
त्वरितां तद्बहिश्चैव सूक्तं पौरुषमेव च ।
श्रीसूक्तं तद्बहिश्चैव गायत्रीं व्याहृतित्रयम् ॥ ७१ ॥
प्रणवं चेति परितः पङ्क्तीरेताः क्रमाल्लिखेत् ।
एतद् ब्रह्ममयं चक्रं सर्वच्छन्दोविनिर्मितम् ॥ ७२ ॥
सर्वदुःखोपशमनं सर्वपापनिबर्हणम् ।
स्मृतिमात्रेण सर्वेषामभीष्टार्थप्रदं सदा ॥ ७३ ॥

इस चक्र से बाहर ग्रहों से संयुक्त पाँच होता कहे गए हैं और इसकी यज्ञ सामग्री (सम्भार, पत्नियाँ) दक्षिणा तथा हृदय होते हैं । उसके बाहर सौ रुद्र, उसके भी बाहर पाँच ब्रह्मा, उसके भी बाहर त्वरिता शक्ति, उसके भी बाहर पौरुष सूक्त, उसके बाहर श्रीसूक्त, उसके भी बाहर तीन व्याहृतियों से संयुक्त गायत्री मन्त्र, फिर प्रणव, तदनन्तर चारों ओर पङ्क्ति बना कर रेखा क्रमशः लिखे, यही ब्रह्ममय चक्र है जो समस्त छन्दों से निर्मित है । यह सारे दुःखों से मुक्त करने वाला है । सभी पाप-तापों का विनाशक है । किं बहुना, स्मरण मात्र से सभी प्रकार का अभीष्ट प्रदान करने वाला है ॥ ६९-७३ ॥

सहस्रारमातृकाचक्रम्

बहिः प्रवर्तते चास्मान्मातृकाचक्रमुत्तमम् ।
सोमसूर्यौर्वबिन्दूनां कूटं तु परितो लिखेत् ॥ ७४ ॥

इसके भी बाहर सर्वश्रेष्ठ मातृका चक्र की प्रवृत्ति कही गई है । इसके चारों ओर सोम, सूर्य तथा और्वर (अग्नि) के बीज का कूट लिखे ॥ ७४ ॥

तारतारानुताराभिर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
तद्बहिर्विलिखेन्मन्त्री तारादिग्रथितान् पुनः ॥ ७५ ॥
नामवर्णान् लिखेद् बाह्ये तद्बहिर्मन्त्रमिश्रितान् ।
मातृकां विलिखेद् बाह्ये सहग्रथितमातृकाम् ॥ ७६ ॥

उसके बाहर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) एवं अनुतारा (श्रीँ) से ग्रथित मन्त्रराज लिखे इसके बाद पुनः तार, तारा (ह्रीँ) एवं अनुतारा (श्रीँ) से ग्रथित मन्त्र से मिश्रित साध्य के नाम वर्णों को लिखे । उसके भी बाहर सह से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे ॥ ७५-७६॥

एतदक्षं समुद्दिष्टं मातृकाचक्रसम्भवम् ।
तारतारानुताराभिर्वर्णमातृकयापि च ॥ ७७ ॥
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्रकारं परमाद्भुतम् ।
स्रकारग्रथितां चापि मातृकां बहिरालिखेत् ॥ ७८ ॥

मातृका चक्रों से उत्पन्न यही सहस्रार मातृका का अक्ष कहा जाता है । इसके बाद तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) एवं अनुतारा (श्रीँ) से संयुक्त मातृका वर्णों से ग्रथित स्रकार लिख कर अत्यन्त अद्भुत नाभि की रचना करे । उसके बाहर स्रकार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे ॥ ७७-७८ ॥

एषा नाभिः समुद्दिष्टा शब्दब्रह्ममयी परा ।
अराण्यस्य सहस्रं स्युस्तद्विधानमिदं शृणु ॥ ७९ ॥

यही परा शब्दब्रह्ममयी नाभि कही जाती है । इसमें सहस्र अरे होते है । उसका विधान हे नारद ! सुनिए ॥ ७९ ॥

पूर्वादिषु विभक्तेषु सूत्रैः क्षेत्रेषु पूर्ववत् ।
पञ्च पञ्चाशतं कुर्यादराणि प्रतिभागशः ॥ ८० ॥
पञ्चाशद्भिस्तु विंशत्या सहस्रारं भवेत् तलम् ।
तारतारानुताराभिर्वाग्भवाद्यैस्त्रिभिस्तथा ॥ ८१ ॥
चतुर्भिर्मातृकाबीजैराद्यैरौर्वान्तिमैः स्वरैः ।
आदिद्विसप्तसम्भिन्नैः काद्यैः क्षान्तैश्च वर्णकैः ॥ ८२ ॥
त्रैलोक्यैश्वर्यदोपेतैः शतैः पञ्चभिरक्षरैः ।
तावद्भिश्चैव सृष्ट्यन्तैः सहस्रेणेति संहतैः ॥ ८३ ॥
अराणि कल्पयेदेवं सहस्रं तद्विधिं शृणु ।

सूत्र के द्वारा पूर्व से पश्चिम तक पाँच रेखा निर्माण करे। फिर उसको ५० भाग में प्रविभक्त करे। उस ५० रेखा में प्रत्येक में २०-२० अरों का निर्माण करे। इस प्रकार १००० अरों के तल का निर्माण हो जाता है। इसके बाद तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) एवं अनुतार (श्रीँ) (३) वाग्भवादि ३ (ऐं ह्रीं क्लीँ ३) आदि के चार मातृका बीजों से संयुक्त अकारादि से लेकर १४ स्वर (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ) तथा क से लैकर क्ष व्यञ्जन पर्यन्तं ३४ व्यञ्जनों को लिखे। इस प्रकार कुल ५० वर्णों के एक-एक अक्षरों को एक-एक अरों पर कुल १० बार लिख कर ५०० अरों को पूरा करे। इसी प्रकार उतने ही वर्णों को सृष्ट्यन्त (संहार) क्रम से शेष अरों पर लिखकर कुल सहस्र अरों की पूर्त्ति करे। इस प्रकार अरों की रचना करे। हे नारद! अब आगे की विधि श्रवण कीजिए॥ ८०-८४॥

रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारके॥ ८४॥
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा।
प्रागादिक्रमयोगेन लिखेदरसहस्रकम्॥ ८५॥
सहस्रारीयमुद्दिष्टा शब्दब्रह्ममयी परा।
ऐश्वर्यं बिन्दुसंयुक्तं वाग्भवं सम्प्रचक्षते॥ ८६॥
करालविबुधाख्यस्था माया व्यापिसमन्विता।
कामराजमयं बीजं सोमौर्वव्यापिसंयुता॥ ८७॥
बीजं सारस्वतमिदं वाग्भवाद्या इमे त्रयः।
कालानलस्थकमलभास्करानिलगामिनी॥ ८८॥

रेफ, मन्त्राक्षर, तार, रेफ, मन्त्राक्षर, तारा (ह्रीँ), फिर रेफ, मन्त्राक्षर, लक्ष्मी (श्रीँ) फिर रेफ इस क्रम से पूर्वादिदिशा के क्रम से उन सभी सहस्र अरों पर लिखे। यही सहस्रारीय महाविद्या है, जिसे परा शब्द ब्रह्ममयी भी कहते हैं। बिन्दु से संयुक्त माया (ईकार) इसको व्यापी (ॐ) से समन्वित (अर्थात् क्लीँ) करे। यह कामराज बीज कहा जाता है। सोम (सकार) व्यापि से संयुक्त औं (सौं) यह सारस्वत बीज है। ये तीनों ही वाग्भवादि कहे जाते हैं। कालानल (र), कमल (क), भास्कर (ष्), अनिल (ह) में रहने वाली व्यापी (ॐ) से संयुक्त माया ईकार से संयुक्त ये सर्वश्रेष्ठ मातृका के आदि बीज हैं अर्थात् रीं, कीं, षीं, ह्रीँ ये हैं॥ ८४-८८॥

माया व्यापिसमायुक्ता मातृकाबीजमादिमम्।
अशेषभुवनाधारसूर्यानलविहारिणी॥ ८९॥
पञ्चबिन्दुर्व्यापियुता द्वितीयं बीजमुच्यते।
सोमानलस्थसूक्ष्मस्थानन्दव्यापिसमन्वयः॥ ९०॥
तृतीयं बीजमुद्दिष्टं चतुर्थमपि मे शृणु।
सोमतालाङ्कसूक्ष्मस्थकालपावकगोपना॥ ९१॥
कूटीकृता व्यापियुता चतुर्थं बीजमुत्तमम्।

अशेषभुवनाधार (र), सूर्य (ह) तथा अनिल (ह) में विहार करने वाली, पञ्चबिन्दु (ई) व्यापी (ॐ) से समायुक्त मातृका के द्वितीय बीज कहे गए हैं अथात् ये रीं हीं हीं हैं। सोम (स्) अनल (ष्) में रहने वाला, सुसूक्ष्म (य) में रहने वाला आनन्द (आ) से संयुक्त व्यापी अर्थात् सां षां यां ये मातृका के तृतीय बीज कहे गए हैं। हे नारद ! अब चतुर्थ बीज को सुनिए। सोम (स्), तलाङ्क (त्), सूक्ष्मस्थ (यकार), कालपावक (र) और गोपना (आ) व्यापी से संयुक्त इनका कूट स्त्याम् मातृका का चतुर्थ बीज कहा गया है ॥ ८९-९२ ॥

बीजानीमानि चत्वारि मातृकायां महामुने ॥ ९२ ॥
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चोभयपार्श्वयोः ।
अराणां विलिखेन्मन्त्री सहस्रारविधिक्रमे ॥ ९३ ॥

हे महामुने ! ये चार ही मातृका के बीज हैं। सहस्रार चक्र की विधि के क्रम में इन मातृका वर्णों से संयुक्त मन्त्र के तत्तदक्षरों को दोनों पार्श्व में लिखे ॥ ९२-९३ ॥

मन्त्रार्णग्रथितां मन्त्री मातृकां प्रतिलोमिकाम् ।
विलिखेत् परितो मन्त्री तारादिग्रथितं च हुम् ॥ ९४ ॥
बहिर्लिखेच्छक्तितारारमास्त्रिस्त्रिर्विचक्षणः ।
फट्कारग्रथितां चापि मातृकां प्रधिमालिखेत् ॥ ९५ ॥
एतत् तन्मातृकाचक्रं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यद्बीजं मातृकाक्षाद्यं तद्बहिः प्रधिमालिखेत् ॥ ९६ ॥
ततश्चिन्तामणिं बाह्ये तद्बहिश्च लिखेत् पराम् ।
परावरां तद्बहिश्च तद्बहिः श्रियमालिखेत् ॥ ९७ ॥
तद्बहिस्तारिकां चैव तद्बहिस्तारकं परम् ।
तद्बहिश्चाङ्कुशांस्त्रिस्त्रिः पाशांस्त्रिस्त्रिश्च तद्बहिः ॥ ९८ ॥
आचक्रादीनि चाङ्गानि तद्बहिः परितो लिखेत् ।
तद्बहिश्चापि दिग्बन्धं तस्य रूपमिदं शृणु ॥ ९९ ॥

मन्त्र के अक्षर से ग्रथित प्रतिलोम मातृका को मन्त्रज्ञ साधक उन अरों के चारों ओर तथा तार, तारा और अनुतारा से ग्रथित हुँ लिखे। उसके बाहर विचक्षण साधक शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ) एवं रमा (श्रीं) इन बीजाक्षरों को तीन-तीन बार लिखे। फिर प्रधि पर फट्कार से ग्रथित मातृकाओं को लिखे। यह वह मातृका चक्र है, जहाँ सब कुछ प्रतिष्ठित है। क से लेकर क्ष वर्ण पर्यन्त जो मातृका के बीज हैं, उन्हें प्रधि के बाहरी भाग पर लिखे। उसके बाहर चिन्तामणि मन्त्र लिखे। उसके बाहर पराविद्या, उसके बाहर परावरा, उसके भी बाहर श्रीं, उसके बाहर तारा (ह्रीँ) और उसके भी बाहर तारक (ॐ) लिखे। उसके भी बाहर तीन-तीन अङ्कुश, उसके भी बाहर तीन-तीन पाश (आँ), उसके भी बाहर चारों ओर चक्र से आरम्भ कर उसके सभी अङ्गों को लिखे। उसके बाहर दिग्बन्धन करे। हे नारद ! अब उसका क्रम सुनिए ॥ ९४-९९ ॥

पुरुषाय ततः स्वाहा दिङ्नामामर्षणं ततः ।

सहेति च ततः पश्चाद्बन्धयामि विदिग्गतम् ॥ १०० ॥

पुरुषाय स्वाहा, इसके बाद दिशा का नाम, इसके बाद अमर्षणं, इसके बाद सह, फिर बन्धयामि अर्थात् पुरुषाय स्वाहा पूर्वां अमर्षणं सह बन्धयामि इस क्रम से लिखे। इस प्रकार दिशाओं का बन्धन करे ॥ १०० ॥

आत्मने च ततः स्वाहा विदिङ्नामाप्यमर्षणम्।
सहेति च ततः पश्चाद्बन्धयामि विदिग्गतम् ॥ १०१ ॥
विलिखेच्चक्रगायत्रीमग्निप्राकारमन्ततः ।
आकाशमण्डलं बाह्ये तद्बीजेन समन्वितम् ॥ १०२ ॥
वायुबीजं तु तद्बाह्ये स्वबीजेन समन्वितम्।
वह्निबीजं तु तद्बाह्ये स्वबीजेन समन्वितम् ॥ १०३ ॥
आप्यं तु मण्डलं बाह्ये स्वबीजेन समन्वितम्।

इसके बाद चारों कोणों का दिग्बन्धन इस प्रकार करे—'आत्मने स्वाहा' इसके बाद विदिक् (कोण) का नाम, फिर अमर्षण, फिर सह, इसके बाद बन्धयामि इस प्रकार से सभी विदिक् का बन्धन करे। इसके बाद चक्रगायत्री लिखे। फिर अग्निप्राकार लिखे। फिर उसके बाहर खं बीज सहित आकाशमण्डल बनावे। इसके भी बाद स्व बीज (यं) के सहित वायु बीज यं लिखे। इसके भी बाद स्वबीज रं के साथ अग्नि बीज रं लिखे। इसके बाद जल बीज (वं) के सहित आप्यमण्डल लिखे ॥ १०१-१०४ ॥

तद्बाह्ये पार्थिवं बिम्बं स्वबीजेन समन्वितम् ॥ १०४ ॥
प्राणः सूक्ष्मोऽनलश्चैव वारुणः पुरुषेश्वरः।
सव्यापिनः क्रमादेतद् व्योमादेर्बीजपञ्चकम् ॥ १०५ ॥

इसके भी बाहर 'ल' इसे स्वबीज लं के साथ पार्थिव मण्डल का निर्माण करे। व्यापक अ से युक्त प्राण (ह) यह आकाश बीज है, व्यापक (अ) से युक्त सूक्ष्म (य) यह वायु बीज है। व्यापी से संयुक्त अनल् (र्) यह अग्नि बीज है। व्यापि (अ) से संयुक्त वारुण (व) यह जल बीज है। व्यापी (अ) से संयुक्त पुरुषेश्वर (ल) यह पार्थिव बीज है। इस प्रकार पाँचों तत्त्वों के बीज का वर्णन किया ॥ १०४-१०५ ॥

अनलः कमलश्चैव भास्करो मर्दनस्तथा।
अनलः सूक्ष्म और्वश्चाप्यूर्जः पिण्डीकृता इमे ॥ १०६ ॥
सव्यापिनः स्मृतं बीजं चिन्तामणिरिदं परम्।

अनल (र्), सूक्ष्म (य्), और्व (औ) और ऊर्ज (ऊकार) इनको एक में मिला कर व्यापी से संयुक्त करे तो यह सर्वश्रेष्ठ चिन्तामणि बन जाता है। (द्र० मन्त्रमहोदधि) ॥ १०६-१०७ ॥

परा नाम महाविद्या सोमस्थौर्वस्थसृष्टिका ॥ १०७ ॥
सव्यापी सोमगो विष्णुरियं प्रोक्ता परावरा।

सौदर्शनिन कूटेन पृथिवीं परिवेष्टयेत् ॥ १०८ ॥
योनिं सुदर्शनस्याथ वेष्टयेत् तारया बहिः ।
सोमः सूर्यस्ततः सोमः कालपावकयोर्द्वयम् ॥ १०९ ॥
सौदर्शनमिदं कूटं निरचां पञ्चकं हलाम् ।
एतत् सौदर्शनं रूपं कालानलसमद्युति ॥ ११० ॥
शमयेत् कूटमेतद्वै तारयामृतरूपया ।

सोम (स) में रहने वाली और और्व (औ) में रहने वाली सृष्टिकर्मी परा नाम की महाविद्या है । व्यापी (ॐ) के साथ सोम (स) दो कालपावक (र् र्) यह सुदर्शन कूट है । ये पाँचों हल वर्ण वाले हैं । इसमें एक भी अच् नहीं रहता । कालानल के समान प्रकाश करने वाला यह सुदर्शन का रूप है । अमृतरूपा तारा (ह्रीँ) से इस कूट का शमन करना चाहिए ॥ १०७-१११ ॥

अग्नीषोमात्मकं चक्रमेतत्ते दर्शितं मुने ।
वैष्णवं परमं तेजो ध्याहि चक्रमिदं सदा ॥ १११ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां वासुदेवादि-
यन्त्रनिरूपणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
॥ आदितः श्लोकाः १४१५ ॥

हे मुने ! इस प्रकार हमने अग्नीषोमात्मक चक्र का दिग्दर्शन आपको कराया । यह वैष्णव तेज है । अतः निरन्तर इस चक्र का ध्यान कीजिए ॥ १११ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के वासु-
देवादियन्त्रनिरूपण नामक तेइसवें अध्याय की शैवागमावतार
महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज
डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी
पूर्ण हुई ॥ २३ ॥

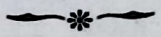

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

यन्त्रदेवताध्याननिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम्।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि॥

जिसका अरा एक बार ध्यान करने पर अनेक करोड़ों जन्मों के पाप-ताप को दूर कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं।

उक्तानामष्टानां चक्राणां संक्षेपेण फलकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

सोमसूर्यदहनप्रभोज्ज्वलं चक्रमेतदुदितं महामुने।
वाङ्मयं सकलमन्त्रसम्मितं शब्दशब्द्यमखिलं यदुद्गतम्॥ १ ॥

पूर्व में कहे गए आठ चक्रों का संक्षेप में फल कथन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महामुने नारद! चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि का फल के समान प्रकाशमान इन आठ चक्रों का हमने वर्णन किया। ये वाङ्मय चक्र सभी मन्त्रों से सम्मित हैं, सभी शब्द से वाच्य हैं और यह सारी सृष्टि इन्हीं से प्रादुर्भूत हुई है॥ १ ॥

ब्रह्मचक्रमुदितं यदान्तरं केवलं विमलधीप्रदं मुने।
विष्णुचक्रमुदितं यदद्भुतं व्याप्तिकान्तिमतिविक्रमप्रदम्॥ २ ॥

हे महामुने! हमने इन आठ चक्रों में जो ब्रह्मचक्र कहा है वह केवल बुद्धि प्रदान करने वाला है। इसके बाद जो अपना अद्भुत विष्णुचक्र कहा है वह व्यक्ति के लिए कान्ति, सुमति तथा विक्रम (बल) प्रदान करने वाला है॥ २ ॥

यत् तृतीयमुदितं महाद्भुतं
चक्रमुज्ज्वलयशोऽर्थदं तु तत्।
यत्तु चक्रमुदितं तुरीयकं
मोक्षदं मुनिगणोदितं मुने॥ ३ ॥

तीसरा जो अत्यन्त अद्भुत प्रकाशमान चक्र हमने कहा वह उज्ज्वल यश देने वाला

और अर्थ देने वाला है। हे मुने ! जो चौथा चक्र कहा है, उसका वर्णन मुनियों ने किया है और वह मोक्ष देने वाला है ॥ ३ ॥

पञ्चमं विजयदायि कीर्तिदं
षष्ठमुग्रगदमृत्युनाशनम् ।
ब्रह्मवर्चसविधायि सप्तमं
सम्पदर्थविजयार्थमष्टमम् ॥ ४ ॥

पाँचवाँ चक्र विजय देने वाला एवं कीर्त्ति प्रदान करने वाला है। छठाँ चक्र महा भयङ्कर रोगों तथा मृत्यु का विनाशक है। सातवाँ ब्रह्मवर्चस् प्रदान करने वाला तथा आठवाँ सम्पत्ति, अर्थ एवं विजय प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥

विस्तरेण तन्महिमवर्णनस्याशक्यत्वम्

एकैकशोऽल्पश इदं गदितं फलं तें
चक्राष्टके सकलयोगिमुनीन्द्रवन्द्ये ।
वर्षायुतैर्बहुभिरप्यखिलात्मकस्य
शक्त्या न विस्तृतिरमुष्य मयाभिधातुम् ॥ ५ ॥

हे नारद ! यहाँ हमने एक-एक चक्र का फल आपसे कहा—सम्पूर्ण योगीजनों एवं मुनिगणों से वन्दित इन आठ चक्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन मुझसे १० हजार वर्षों तक भी शक्य नहीं है ॥ ५ ॥

मन्त्राक्षरप्रथितभावविभेदपूर्वं
मन्त्री यजेत विधिवन्मनुदेवतास्ताः ।
आकारशक्तिपरिवारविभूषणास्त्र-
वीर्यप्रभावविषयैश्च विचिन्तयेत् ताः ॥ ६ ॥

मन्त्रज्ञ साधक मन्त्राक्षरों में कहे गए समस्त भावों को विभेदपूर्वक तत्तन्मन्त्र देवताओं का विधिपूर्वक यजन करे। उन-उन चक्र के देवताओं के आकार, शक्ति, परिवार, भूषण, अस्त्र, वीर्य, प्रभाव तथा विषयों का यजन काल में ध्यान भी करे ॥ ६ ॥

तत्तच्चक्रदेवतास्वरूपतद्ध्यानादिप्रपञ्चनम्

आद्यं निरञ्जनमशेषजगत्प्रसूति-
त्राणप्रमाथनियमोद्यदनुग्रहस्थम् ।
सम्पूर्णशक्तिमतरङ्गमहार्णवाभं
ध्यायेद्धरिं प्रणवगोचरमादिचक्रे ॥ ७ ॥

उन-उन चक्रों के देवताओं के ध्यान का विस्तार से वर्णन—आदि चक्र में माया रहित समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाले, रक्षा करने वाले एवं संहार करने वाले, नियन्त्रित करने वाले तथा उस पर अनुग्रह करने वाले, समस्त ऐश्वर्यादि शक्तियों से युक्त, शान्त, महासागर के समान स्थित, मात्र ॐकार से ज्ञात होने वाले हरि का ध्यान करे ॥ ७ ॥

श्वेतं प्रसन्नवदनं कमलायताक्षं
पीताम्बरं पृथुलवक्षसमात्मयोनिम् ।
पीनोरुदीर्घभुजवृन्दधृतारिशङ्ख-
कौमोदकीसरसिजं खलु विष्णुचक्रे ॥ ८ ॥

दूसरे चक्र में श्वेतवर्ण वाले, प्रसन्नमुख कमल के समान विशाल नेत्र वाले, पीताम्बर धारण किये हुये । परिपुष्ट वक्षःस्थल वाले, स्वयं अपने में ही रहने वाले, मोटे ऊरु वाले तथा अपने विशाल-विशाल भुजाओं में चक्र, शङ्ख, कौमोदकी एवं कमल धारण करने वाले विष्णु का ध्यान करे ॥ ८ ॥

श्यामं किरीटिनमुदारचतुर्भुजस्थ-
कौमोदकीकमलवारिजवर्यचक्रम् ।
नारायणं नयननन्दनमादिदेवं
ध्यायेच्छ्रिया सह तृतीयपदस्थचक्रे ॥ ९ ॥

तीसरे चक्र में श्याम वर्ण वाले उदार मुकुट धारण करने वाले, अपने चारों भुजाओं में कौमोदकी, गदा, कमल, शङ्ख तथा चक्र धारण किये हुये, नयनाभिराम आदिदेव श्रीनारायण का लक्ष्मी सहित ध्यान करे ॥ ९ ॥

कुन्देन्दुगौरमरविन्ददलायताक्षं
शुद्धाक्षमालममलोद्यतबोधमुद्रम् ।
बाहुद्वयीविधृतचक्रविशुद्धशङ्खं
तं वासुदेवमिति चिन्तय तुर्यचक्रे ॥ १० ॥

चतुर्थ चक्र में कुन्द तथा इन्दु के समान गौर वर्ण वाले, कमलपत्र के समान विशाल नेत्रों से संयुक्त, विशुद्ध अक्ष की माला धारण किये हुये, अमल (निर्विकार), ज्ञानमुद्रा में स्थित, अपने दो बाहुओं में चक्र एवं स्वच्छ शङ्ख धारण किये हुये उन भगवान् वासुदेव का चिन्तन करे ॥ १० ॥

शङ्खारिपङ्कजगदाङ्कुशपाशशार्ङ्ग-
सौनन्दकान् दधतमष्टभिरुग्रहस्तैः ।
तार्क्ष्यस्थितं रजतशैलनिभं पुराणं
संचिन्तयेदजितचक्रगतं पुमांसम् ॥ ११ ॥

पाँचवें अजितनामक चक्र में अपने आठों हाथों में शङ्ख, चक्र, कमल, गदा, अङ्कुश, पाश, शार्ङ्ग धनुष, सौनन्दक अस्त्र धारण किये हुये गरुड़ पर स्थित चाँदी के पर्वत के समान उद्दीप्त वर्ण वाले अनिर्वचनीय पुरुष का ध्यान करे ॥ ११ ॥

क्रूरोग्रवक्रनखकोटिनिकृत्तदैत्य-
वक्षःस्थलोच्चलितशोणितदिग्धदेहम् ।

घोरप्रकारनयनत्रयदुर्निरीक्षं
षष्ठे विचिन्तय मुने नरसिंहमीशम् ॥ १२ ॥

अपने क्रूर (निर्दयी), उग्र, वक्र नखों के अग्रभाग से हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का वक्षःस्थल विदाहरण से निकलती हुई उग्रधारा से लथ-पथ शरीर वाले, अत्यन्त भयङ्कर तीनों नेत्रों से सर्वथा दुर्निरीक्ष्य नारसिंह भगवान् का षष्ठचक्र में चिन्तन करे ॥ १२ ॥

सोमाग्निसूर्यकिरणोद्गमपुञ्जकुञ्ज-
मध्यस्थितं विधृतपद्मगदारिशङ्खम् ।
छन्दःस्थितं भुवनकारणमप्रमेयं
श्रीशं विचिन्तय मुने पुरुषं पुराणम् ॥ १३ ॥

हे महामुने ! इसके बाद चन्द्रमा, अग्नि एवं सूर्य किरणों के समान अत्यन्त प्रकाशमान निकुञ्ज पुञ्जों के मध्य में स्थित पद्म, गदा, चक्र एवं शङ्ख धारण किये हुये, छन्दःस्वरूप गरुड़ पर सवार, जगत् के कारण तथा प्रमाण से रहित भगवान् लक्ष्मीपति का सातवें एवं आठवें चक्र में ध्यान करे ॥ १३ ॥

मातृकाचक्रे लक्ष्म्या ध्येयत्वम्

गोक्षीरशङ्खहिमदीधितिदेवसिन्धु-
कुन्दप्रभाविमलपङ्कजशङ्खहस्ता ।
स्मेरप्रसन्नवदना कमलायताक्षी
ध्येया स्वचक्रभवनोपरि मातृका सा ॥ १४ ॥

गोदुग्ध, शङ्ख, चन्द्रमा, देवनदी (गङ्गा) एवं कुन्द के समान प्रभा वाली, स्वच्छ कमल एवं शङ्ख अपने हाथों में लिए हुये मन्दस्मित एवं प्रसन्न मुख वाली, कमल के समान विशाल नेत्रों वाली उन लक्ष्मी का साधक को उस मातृका चक्र में ध्यान करना चाहिए ॥ १४ ॥

आलोलशूलदशकं त्रियुगाधिकं स्वै-
र्हस्तैर्द्विरष्टभिरथो दधती जपाभा ।
चिन्तामणिस्थितिमती नयनत्रयाढ्या
शक्तिर्हरेरिति मुने मनसा विचिन्त्या ॥ १५ ॥

अपनी १६ भुजाओं में अत्यन्त चमकीले १० एवं त्रियुग (६) कुल १६ शूलों को धारण करने वाली, जपा कुसुम के समान लाल वर्ण वाली, चिन्तामणि के समान सबका अभीष्ट पूर्ण करने वाली, तीन विशाल नेत्रों वाली भगवान् विष्णु की शक्तिभूता महालक्ष्मी का मन से ध्यान करना चाहिए ॥ १५ ॥

पूर्णेन्दुशीतलरुचिर्धृतबोधमुद्रा
बाह्वन्तरस्थनिजबोधनपुस्तकाढ्या ।

देवी परा परमपूरुषदिव्यशक्ति-
श्चिन्त्याप्रसन्नवदना सरसीरुहाक्षी ॥ १६ ॥

उस मातृकाचक्र पर पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शीतल शरीर वाली, कान्ति वाली ज्ञानमुद्रा में स्थित, अपनी बाहुओं में आत्मज्ञान कराने वाली पुस्तक लिए हुये परा परमपुरुष परमात्मा की दिव्यशक्ति प्रसन्नवदना कमलायताक्षी भगवती का ध्यान करना चाहिए ॥ १६ ॥

पद्मारुणाभयवराङ्कुशपाशहस्ता-
रक्ताम्बरा विपुलवारिजपत्रनेत्रा ।
सूक्ष्मप्रभास्थितपरावरतत्त्वजाता
चिन्त्यादिशक्तिरपि सा च परावराख्या ॥ १७ ॥

कमल के समान रक्त वर्णों वाली, अपनी भुजाओं में अभय, वर, अङ्कुश एवं पाश लिए हुये, रक्तपट धारण करने वाली, विशाल कमल सरीखे नेत्रों वाली, सूक्ष्म प्रभा में स्थित, परावर तत्त्व में उत्पन्न एवं परावरा उस आदि शक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ १७ ॥

बाहुस्थपाशवलिताखिलजीववर्गा
बन्धूकपद्मकुसुमारुणदेहकान्तिः ।
पीनस्तनी मदविघूर्णितनेत्रपद्मा
लक्ष्मीशपार्श्वनिलयाखिलदेवतेयम् ॥ १८ ॥

अपनी बाहुओं में रहने वाले पाश से समस्त जीवों को अपने वश में करती हुई वन्धूक एवं कमल के समान अरुण की कान्ति से संयुक्त देह वाली, मोटे वक्षःस्थलों वाली, मद्य के आवेश में, अपने कमल के समान नेत्रों से घूरने वाली तथा लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के समीप में रहने वाली यह सारे संसार की देवता हैं ॥ १८ ॥

वक्राग्रनासिनिशिताङ्कुशकीलितेन
नम्रेण जीवनिकरेण समीड्यमाना ।
दिव्याङ्कुशस्थितिमती हरिशक्ति-
राद्या ध्येया समाधिनिरतेन महाप्रभावा ॥ १९ ॥

नासिका के टेढ़े अग्रभाग में अत्यन्त तीखा अङ्कुश लिए हुये महाप्रभाव वाली आद्या शक्ति का ध्यान समाधिस्थ पुरुष को करना चाहिए ॥ १९ ॥

अङ्गमन्त्रदेवतातद्ध्यानादिप्रपञ्चनम्

अङ्गं तु चक्रमयदेवसमानरूप-
माचक्रपूर्वमखिलं गदितं यदादौ ।
गायत्र्यपि ज्वलितपावकतुल्यवर्णा
चक्रेशतुल्यविभवा विपुलस्तनाढ्या ॥ २० ॥

चक्र में रहने वाले उन-उन देवताओं के अङ्गभूत परिवार भी उन्हीं के समान होते

हैं, यह बात चक्र निर्माण के पूर्व आदि में हम कह आये है। (द्र०) गायत्री भी जलती हुई अग्नि के समान वर्ण वाली है उसका भी प्रभाव चक्रेश के समान है, जिनके स्तन बहुत बड़े हैं ॥ २० ॥

ज्वालाकुलद्रुतसमस्तसुरारिवर्गं
प्राकारमग्निमयमेव वदन्ति सन्तः ।
व्योमस्थशक्तिरपि सूर्यसहस्रमाला
नीलाम्बुजद्युतिमती मनसा विचिन्त्या ॥ २१ ॥

जिसकी ज्वाला से समस्त सुरारिवर्ग भाग जाते हैं उस अग्निमय प्राकार को ऐसा सन्त लोग कहते हैं। आकाश में जाज्वल्यमान शक्ति भी सहस्रों सूर्यमाला के समान तेजस्विनी हैं जो नीले रङ्ग के प्रकाश के समान जगमगाती रहती है ऐसी शक्ति का मन से ध्यान करना चाहिए अर्थात् सहस्रों सूर्यमाला (हकार बीज वाली) व्योमस्थ शक्ति, जिसकी आभा नीले रङ्ग के कमल के समान है, उस आकाश बीज वाली (ह) शक्ति का मन से ध्यान करना चाहिए ॥ २१ ॥

मालां चतुर्गतिमयीं वपुषा दधाना
वायुस्थशक्तिरपि धूम्रतनुर्विचिन्त्या ।
कालानलाख्यतरुणार्कसहस्रमाला
तेजःस्थशक्तिरपि रक्ततनुर्विचिन्त्या ॥ २२ ॥

चतुर्गतिमयी (यकार बीज स्वरूपा) माला को शरीर से धारण करने वाली एवं धूम के समान शरीर की आभा वाली ऐसी वायु में रहने वाली शक्ति (य) का ध्यान करना चाहिए। दोपहर में तपते हुये सहस्रों सूर्य के समान कालानल (रु) कही जाने वाली अरुण वर्ण की तेजःस्थ शक्ति (रं) का ध्यान करना चाहिए ॥ २२ ॥

पीयूषरूपरचना सलिलस्थशक्ति-
र्ध्येया वराहनियुतायुतक्लृप्तमाला ।
उत्तप्तकाञ्चनरुचिः पुरुषेश्वराढ्या
भूशक्तिरादिपुरुषस्य विचिन्तनीया ॥ २३ ॥

पीयूष रूप के समान जिसकी रचना है और जो नियुत अयुत वराह (व) की माला वाली है ऐसी सलिलस्थशक्ति (वं) का ध्यान करना चाहिए तथा तपाये गए सुवर्ण के समान कान्तिमती पुरुषेश्वर (लं) का ध्यान करना चाहिए ॥ २३ ॥

सुदर्शनमयसर्वचक्रकूटध्यानम्

कालानलायुतसहस्रसमानरूपं
कूटं सुदर्शनमयं मनसा विचिन्त्यम् ।
तापातुरक्वथदशेषसुरारिमेदो-
निष्यन्दमेदुरितदीप्तिशिखाजटालम् ॥ २४ ॥

हजारों कालानल के समान रूप वाले सुदर्शनमय कूट (=तेज) का मन से ध्यान करना चाहिए। जिसके चमकते हुये तेज से कराहते हुये अशेष असुरों के मेद से चूते हुये उस तेज का ध्यान करना चाहिए ॥ २४ ॥

सौदर्शनसर्वमन्त्रमूलभूतशक्तिध्यानम्

सूर्येन्दुवह्निनयना तरुणार्कवर्णा
व्याप्य स्थिता जगदशेषमशेषवन्द्या ।
चक्राणि बाहुनिवहैर्दधती सहस्रं
योनिः सुदर्शनमनोरिति चिन्तनीया ॥ २५ ॥

सूर्य-इन्द्र तथा अग्नि रूप नेत्रों वाली, दोपहर के सूर्य के समान तेजस्वी, जो सबको व्याप्त कर स्थित है और समस्त जगत् से वन्दना के योग्य है, जो अपने भुजा समूहों में सहस्रों चक्र धारण करती है, जो समस्त सुदर्शन मन्त्रों की जननी है। उस शक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ २५ ॥

उक्तेषु यन्त्रेषु द्विजस्यैवाधिकारः

लेशतो गदितमेतदुदारं रक्षणं सकललोकहिताय ।
भूपतेरनुमतो द्विजवर्यो भावयेदनिशमेतदतन्द्री ॥ २६ ॥

उक्त यन्त्रों में केवल ब्राह्मण का ही अधिकार है। सम्पूर्ण संसार के हित के लिए, हे नारद! सबकी रक्षा करने वाले, परम उदार चक्ररूप यन्त्र को लेश मात्र हमने आपसे कहा। राजा की आज्ञा से ही श्रेष्ठ साधक, किन्तु ब्राह्मण, सावधानी से निरन्तर इसका प्रयोग करे ॥ २६ ॥

उक्तयन्त्राणामानुषङ्गिकफलपूर्वकमुक्तिरूप-
परमफलसाधनत्वम्

नाद्रवन्ति दुरितानि कदाचि-
द्विद्रवन्ति निखिला ग्रहरोगाः ।
वर्धते वसुमती बहुसस्या
न त्रिवर्गविहतिर्मनुजानाम् ॥ २७ ॥

इन यन्त्रों का फल यह है कि पाप-ताप कभी नहीं आते। ग्रहों से उत्पन्न होने वाले रोग बहुत दूर भाग जाते हैं। पृथ्वी धन धान्य से समृद्ध रहती है। किं बहुना, मनुष्यों के त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) को कभी आघात नहीं प्राप्त होता ॥ २७ ॥

धर्मार्थकामबहुलाश्चिरजीविनश्च
हीनाश्च पाप्मभिरुदारयशःप्रतापाः ।
आराध्य शास्त्रनिरता विहितक्रियाभि-
रन्ते विशन्ति विमलाः परमं पुमांसम् ॥ २८ ॥

शास्त्रों में लगे हुये विद्वज्जन उक्त विहित क्रियाओं के अनुसार सुदर्शन चक्र की

आराधना कर धर्म, अर्थ एवं काम से परिपूर्ण हो कर चिरजीवी हो जाते हैं। पापों से रहित होकर उदार यश एवं प्रताप से युक्त हो जाते हैं। इसके बाद विमल मति होकर परम पुरुष में मिल जाते हैं ॥ २८ ॥

सौदर्शनमन्त्रेष्वभिक्रमनाशाद्यभावः

दिव्यो विधिः कथित एष मुने समस्तो
विप्रैर्नृपैर्धृतसमाधिभिरत्र भाव्यम् ।
अस्मिन् समाधिविरही ललितक्रियोऽपि
यत्लोचितं लभत एव फलं मनुष्यः ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां यन्त्रदेवता-
ध्याननिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥
॥ आदितः श्लोकाः १४४४ ॥

सुदर्शन मन्त्रों में अभिक्रमण से कभी विनाश की सम्भावना नहीं—हे मुने ! इस प्रकार हमने सुदर्शन की दिव्य विधि कही। ब्राह्मणों को, राजाओं को तथा योगिजनों को इसमें प्रवेश करना चाहिए। समाधि न जानने वाला, किन्तु उत्तम सदाचार वाला मनुष्य भी इसमें प्रवेश कर अपने यन्त्र के अनुसार फल प्राप्त करता है ॥ २९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के यन्त्रदेवता-
ध्याननिरूपण नामक चौबीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २४ ॥

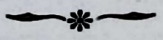

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सुदर्शनयन्त्रवैभववर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का किया गया एक बार भी ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ पापों के समूह को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

यन्त्रवैभवं प्रदर्शयितुमुक्तार्थानुवादः

नारदः—

भगवन् सम्यगाख्यातं विस्तरेण यथातथम् ।
यत्कारणं यदाधारं यत्प्रमाणमिदं जगत् ॥ १ ॥
तथा धर्मार्थकामानां स्वरूपं साधनं तथा ।
परविद्या तथा विद्या तथा चाध्यात्मसंज्ञिता ॥ २ ॥
मुक्तिश्च परमा प्रोक्ता बन्धस्तत्साधनं तथा ।
वर्णाश्रमविभागश्च तद्धर्माश्च विशेषतः ॥ ३ ॥
सर्वेषामेव वर्णानां राज्ञां रक्षाविधिस्तथा ।
राज्ञां तु रक्षणविधिर्दिव्योऽयं वर्णितस्तथा ॥ ४ ॥
कथं किल कलौ प्राप्ते राज्ञां रक्षाविधिर्भवेत् ।

मन्त्र वैभव प्रकाशित करने के लिए ऊपर कहे गए समस्त विषयों का अनुवाद—

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् आपने विस्तारपूर्वक यथार्थरूप से इस जगत् के जितने कारण, आधार और इसका जितना प्रमाण है उसे कहा । धर्म, अर्थ और काम के स्वरूपों को, उसके साधनों को, पर विद्या, अपरा विद्या, अध्यात्मसंज्ञक विद्या, वर्णाश्रमविभाग, उनके धर्म, सभी वर्णों की रक्षा की विधि के साथ-साथ राजाओं के रक्षा की विधि तथा दिव्य रूप से राजाओं की रक्षा विधि का वर्णन किया । किन्तु यह बताइये कि कलियुग प्राप्त होने पर राजाओं की रक्षा के लिए क्या उपाय करना चाहिए ॥ १-५ ॥

संक्षेपतः कलिस्वरूपकथनम्

न यक्ष्यन्ति न दास्यन्ति न होष्यन्ति द्विजातयः ॥ ५ ॥
न सर्वे स्वेषु धर्मेषु करिष्यन्ति मतिं कलौ ।
शक्तयः सर्वमन्त्राणां प्रयास्यन्ति तिरस्कृतिम् ॥ ६ ॥
निर्वीर्याश्च भविष्यन्ति राजानः सत्त्ववर्जिताः ।
निर्धना हृतराज्याश्च दस्युभिः परिपीडिताः ॥ ७ ॥

कलिस्वरूपनिरूपण—श्रीनारद ने कहा—द्विजाति लोग कलि प्राप्त होने पर न तो यज्ञ करेंगे, न दान करेंगे और न हवन करेंगे। वे अपने-अपने धर्म कर्मों में बुद्धिपूर्वक ध्यान नहीं देंगे। सभी मन्त्रों की शक्तियाँ विलुप्त हो जाएँगी। राजागण सत्त्व से रहित होकर निर्बल हो जाएँगे। जिससे वे निर्धन, हृतराज्य एवं चोर डाकुओं से पीड़ित रहेंगे ॥ ५-७ ॥

अल्पक्षीरा भविष्यन्ति गावः प्राप्ते कलौ युगे ।
प्रजाः क्षुधार्ताश्च कलाववग्रहनिपीडिताः ॥ ८ ॥
पाषण्डधर्मनिरता भगवन्तं जनार्दनम् ।
निन्दनादीन् करिष्यन्ति तमःप्राया ह्यवेदिनः ॥ ९ ॥

कलि प्राप्त होने पर गायें स्वल्पदुग्ध प्रदान करेंगी, इस कलि में रोग शोक करादि से पीड़ित प्रजा क्षुधार्त्त रहेंगी और पाषण्ड में निरत रहेंगी तथा भगवान् जनार्दन की निन्दा करेंगी। वह अत्यन्त तमोगुण तथा अज्ञान से युक्त रहेंगी ॥ ८-९ ॥

तादृशे कलौ राज्ञां रक्षाविध्युपायप्रश्नः

इत्थं दोषास्पदे काले राज्ञां रक्षाविधिः कथम् ।
सम्पत्स्यते शक्तिहीनैर्द्विजैः सत्त्वविवर्जितैः ॥ १० ॥

ऐसे कलि के प्राप्त होने पर राजाओं के रक्षा विधि का प्रश्न—इस प्रकार के दोषावह कलि में राजाओं की रक्षा का उपाय सत्त्वहीन एवं शक्तिहीन द्विजों द्वारा किस प्रकार सम्पन्न होगा? ॥ १० ॥

येनोपायेन रक्षा स्यात्तं मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।
सर्वज्ञ त्वदृते वक्तुं कः शक्नोति महेश्वर ॥ ११ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन्! जिस प्रकार राजाओं की सुनिश्चित प्रकार से रक्षा हो सके उसे आप हमें बताइये। हे महेश्वर! आप सर्वज्ञ हैं। आपको छोड़कर और कौन इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ हो सकता है ॥ ११ ॥

तत्प्रतिवचनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

साधु साधु यदेतत् त्वं पृष्टवानसि नारद ।
सत्यमेतत् कलौ रक्षाविधिर्मन्त्रैर्न युज्यते ॥ १२ ॥
तथापि भक्त इति ते कथयामि शृणुष्व तम् ।

सर्वेषामेव भूतानां राज्ञां चैव विशेषतः ॥ १३ ॥
रक्षाविधिं परं गुह्यं तन्त्राणां सारमुत्तमम् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आपने यह बहुत अच्छा प्रश्न किया है । यह तो सत्य है कि रक्षा की विधि मन्त्र द्वारा करना सम्भव नहीं । फिर भी आप भक्त हैं इसलिए आपसे उसका उपाय कहता हूँ, श्रवण करिए । यह रक्षा विधि सभी प्राणियों के लिए विशेष कर राजाओं के लिए समस्त तन्त्रों का सार है और अत्यन्त गुह्य है ॥ १२-१४ ॥

स्वकृतपितामहशिरश्छेदमहापापप्रशमाय नारायणात्
सुदर्शनयन्त्रप्राप्तिकथनम्

मम नारायणेनोक्तं पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ १४ ॥
पितामहशिरश्छेदमहापातकशान्तये ।
सर्वबाधाप्रशमनं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ १५ ॥

यह रक्षा विधि नारायण ने मुझे पुण्य बदरिकाश्रम में ब्रह्मदेव के शिरश्छेद से उत्पन्न महापाप की शान्ति के लिए कही थी । यह समस्त बाधाओं को शान्त करने वाली तथा सभी दुःखों का निवारण करने वाली है ॥ १४-१५ ॥

तन्महिमसंक्षेपः

सर्वसिद्धिप्रदं सर्वसम्पदामेककारणम् ।
पराभिचारशमनं परराज्यप्रदं शुभम् ॥ १६ ॥
कलिदोषापहरणं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
यस्य संस्मरणेनैव नृणां नश्यन्ति शत्रवः ॥ १७ ॥

यह सुदर्शन यन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है, सभी प्रकार की सम्पत्ति में कारण है । दूसरों के द्वारा किये गए मारण को शान्त करने वाला है । कलि के दोषों को दूर करने वाला तथा समस्त शत्रुओं का विनाशक है । इसके स्मरण मात्र से ही साधकजनों के शत्रुओं का विनाश हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

दस्यवो नष्टविषया विद्रवन्ति दिशो दश ।
यन्त्रं यस्य गृहे न्यस्तं तस्य सर्वं प्रसिध्यति ॥ १८ ॥
यो राजा यन्त्रमेतत्तु सादरं कारयेद् गृहे ।
तस्य भूमण्डलं सर्वं भवेद् वश्यं न संशयः ॥ १९ ॥
सौदर्शनस्य यन्त्रस्य माहात्म्यं वर्णितं मया ।

डाकू देश से भाग कर दशों दिशाओं में चले जाते हैं । जिसके घर में यह यन्त्र रहता है उसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । जो राजा इस यन्त्र को अपने घर में स्थापित करता है, सारा भूमण्डल उसके वश में हो जाता है । इसमें संशय नहीं । यहाँ तक हमने सुदर्शन यन्त्र का माहात्म्य कहा ॥ १८-२० ॥

सुदर्शननारसिंहयन्त्रफलप्रदर्शनम्

सुदर्शनेन युक्तस्य नारसिंहस्य यन्त्रकम् ॥ २० ॥
यः कारयति तस्यान्यो लोको वश्यो भवेदपि ।
एतल्लेखनमात्रेण सर्वं सम्पद्यते नृणाम् ॥ २१ ॥

सुदर्शन यन्त्र के साथ नारसिंह यन्त्र की रचना जो लोग करते हैं सारा लोक उनके वश में हो जाता है । इसके लिखने मात्र से साधक जनों को सब कुछ प्राप्त हो जाता है ॥ २०-२१ ॥

विष्णुपञ्जरयन्त्रफलप्रदर्शनम्

विष्णुपञ्जरयन्त्रस्य करणेनैव देवताः ।
सर्वाः प्रसीदन्ति सदा किं पुनर्मनुजादयः ॥ २२ ॥

विष्णुपञ्जर यन्त्र के करने से समस्त देवता सदैव प्रसन्न हो जाते हैं फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? ॥ २२ ॥

समुदितयन्त्रत्रयफलस्याशक्यवर्णनत्वम्

एषां त्रयाणां यन्त्राणां समाहारफलं मया ।
वक्तुं न शक्यते सर्वं सर्वज्ञेनापि नारद ॥ २३ ॥

तीनों यन्त्र का एकत्र निर्माण करने का फल वर्णन अशक्य है—

हे नारद ! इन तीनों यन्त्रों को एक में मिलाकर निर्माण करने का फल सर्वज्ञ होने पर भी मुझसे कहना सम्भव नहीं ॥ २३ ॥

महासुदर्शनयन्त्रफलम्

महासुदर्शनस्येह यन्त्रस्य करणाद् द्विजः ।
त्रैलोक्यं समवाप्नोति किं पुनर्मण्डलं भुवः ॥ २४ ॥

महासुदर्शन यन्त्र का फल—ब्राह्मण महासुदर्शन यन्त्र के निर्माण करने मात्र से त्रिलोकी प्राप्त कर लेता है । फिर केवल इस भूमण्डल की बात ही क्या? ॥ २४ ॥

एकत्र कल्पितसुदर्शननारसिंह-
मन्यत्र केवलसुदर्शनमुज्ज्वलाङ्गम् ।
सङ्कल्पितोभयमुखं घटितास्त्रजालं
श्रीविष्णुपञ्जरगतं युतमन्त्रजालम् ॥ २५ ॥

एक जगह सुदर्शन नारसिंह इन दोनों यन्त्रों का निर्माण करे । अन्यत्र केवल उज्वल अङ्ग वाले सुदर्शन यन्त्र का निर्माण करे । अस्त्र जाल से युक्त सङ्कल्पित उभयमुख वाला यह यन्त्र श्रीविष्णुपञ्जर के मन्त्र के जाल से घटित होना चाहिए ॥ २५ ॥

माहासुदर्शनमपुण्यकृतां जनाना-
मप्राप्यमाश्रितसुखप्रदमेकयन्त्रम् ।

तेजोमयं सकललोकनमस्कृतं यत्
तत् कारयेत् सकललोकजयं यदीच्छेत् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सुदर्शनयन्त्र-
वैभववर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १४७० ॥

यह महासुदर्शन यन्त्र पापी जनों के लिए सर्वथा अप्राप्य है। यह महाश्रेष्ठ यन्त्र अपने आश्रितों को महान् सुख देने वाला है और तेजोमय तथा सफल लोक नमस्कृत है। यदि सारे लोकों के जय की इच्छा हो तो इसका निर्माण अवश्य कराना चाहिए ॥ २६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के सुदर्शन-
यन्त्र वैभव वर्णन नामक पचीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २५ ॥

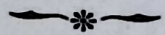

अथ षड्विंशोऽध्यायः

महासुदर्शनयन्त्रलक्षणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम्।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि॥

जिसके अरे का मात्र एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पाप तापों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज़ का ध्यान करते हैं।

विस्तरेण महासुदर्शनयन्त्रलक्षणप्रश्नः

नारदः—

विस्तरेणास्य यन्त्रस्य संस्थानं लक्षणं तथा।
श्रोतुमिच्छामि भगवंस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥ १॥

नारद ने कहा—हे भगवन्! मैं इस यन्त्र के संस्थान (प्रतिष्ठापन) तथा लक्षण को सुनना चाहता हूँ। अतः मुझ प्रश्नकर्त्ता को इसके समाधान से सन्तुष्ट कीजिये॥ १॥

तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

विस्तरेण प्रवक्ष्यामि स्वरूपं लक्षणं तथा।
अस्य यन्त्रस्य देवर्षे तन्मे कथयतः शृणु॥ २॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे देवर्षे! सुदर्शन यन्त्र के स्वरूप तथा लक्षण को विस्तार पूर्वक कह रहा हूँ आप इसे सुनिए॥ २॥

यन्त्रनिर्माणद्रव्याणि

रजतेन सुवर्णेन लोहैर्वा शिलयापि वा।
यथाधिकारं यन्त्रस्य कुर्यादर्चां तु साधकः॥ ३॥

साधक अपनी शक्ति के अनुसार चाँदी, सुवर्ण, लोहा अथवा पत्थर से बने हुये यन्त्र की अर्चा करे॥ ३॥

यन्त्रलेखनसाधनद्रव्याणि

धातुचन्दनकर्पूरकुङ्कुमागुरुजै रसैः ।
सुवर्णसूच्या यदि वा यन्त्रमेतल्लिखेत् पटे ॥ ४ ॥

धातु, चन्दन, कर्पूर, कुङ्कुम तथा अगुरु के द्वारा बनाये गए रसों से कपड़े पर सुवर्ण की लेखनी द्वारा इस यन्त्र को लिखना चाहिए ॥ ४ ॥

यन्त्रतमध्ये सौदर्शनपुरुषलेखनम्

चन्द्रमण्डलमध्ये तु तारं कुर्यात् समाहितः ।
तस्य मध्ये लिखेद् देवं रक्तवर्णं सुदर्शनम् ॥ ५ ॥

चन्द्रमण्डल के सदृश गोलाकार बनाकर सावधानी से उसमें ॐकार लिखे । उस ॐ के मध्य में लाल वर्ण के सुदर्शन देव की आकृति का निर्माण करे ॥ ५ ॥

तत्स्वरूपवर्णनम्

पिङ्गाक्षं पिङ्गकेशाढ्यं रक्ताम्बरधरं विभुम् ।
युक्तं षोडशभिर्हस्तैरष्टाभिर्वा महाद्युतिम् ॥ ६ ॥

पीले-पीले नेत्रों वाले, पीले-पीले केशों से युक्त, रक्त वर्ण का वस्त्र धारण किये हुये, १६ अथवा आठ भुजा वाले, महातेजस्वी एवं विभु सुदर्शन के स्वरूप का निर्माण करे ॥ ६ ॥

पाशाङ्कुशाब्जमुसलधनुःशङ्खगदारिभिः ।
भीषणैरायुधवरैरुपेतं जयिनां वरम् ॥ ७ ॥
तद्विष्णोः परमं रूपं नित्यं तैजसविग्रहम् ।
दंष्ट्रानिष्च्यूतसप्तार्चिर्ज्वालापल्लविताननम् ॥ ८ ॥
भूषणैर्भूषितं चित्रैर्भीषणं रोमहर्षणम् ।

विजय करने वाले, सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन के हाथों में पाश, अङ्कुश, कमल, मुशल, धनुष, शङ्ख, गदा, अरि (सुदर्शन चक्र) आदि भीषण आयुधों से युक्त करना चाहिए । तैजस शरीर धारण करने वाले उन विष्णु का यही नित्य स्वरूप है । दाँढ़ से सप्तार्चि की निकलती हुई ज्वाला से उनका मुख ज्यादा होना चाहिए । नाना प्रकार के विचित्र आभूषणों से उनका विग्रह भूषित होना चाहिए । इस प्रकार रोमहर्षण भाषित उनके स्वरूप का निर्माण करना चाहिए ॥ ७-९ ॥

स्वतेजसा जगत् सर्वं पूरयन्तं महाबलम् ॥ ९ ॥
निर्भिद्यमानदैतेयशोणिताशनलम्पटम् ।
उद्यत्प्रद्योतनशतप्रख्यं विख्यातपौरुषम् ॥ १० ॥
मनस्तत्त्वेन सततं संश्रितं वेगवत्तया ।
नारायणकराम्भोजसेवारसविशारदम् ॥ ११ ॥
जवेन विष्णुचिन्तायाः परमं मार्गदर्शिनम् ।

स्मृत्यैव स्वानुरक्तानां दृष्टादृष्टार्थसाधनम् ॥ १२ ॥
स्वभक्तप्रत्यनीकानां मारणं सुरपूजितम् ।
संस्तूयमानचरितं सिद्धगन्धर्वदानवैः ॥ १३ ॥

अपने तेज से सारे जगत् को व्याप्त करते हुये, महाबलवान् विष्णु के स्वरूप का निर्माण करना चाहिए । अपने द्वारा मारे गए दैत्यों के शोणित के भोजन में लम्पट, उदीयमान सैकड़ों सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी, महापौरुष सम्पन्न, वेग में मनस्तत्त्व से सर्वदा युक्त, नारायण कर कमलों की सेवा के रस में विशारद, विष्णु को चिन्तितावस्था में देख कर वेग से उनके मार्ग का दिग्दर्शन कराते हुये, स्मरण मात्र से अपने भक्तों के दृष्ट तथा अदृष्ट का साधन बनने वाले, अपने भक्तों के शत्रुओं का मारण करने वाले, देव पूजित, सिद्ध, गन्धर्व तथा दानवों द्वारा संस्तूयमान चरित वाले सुदर्शन चक्र के स्वरूप का निर्माण करना चाहिए ॥ ९-१३ ॥

तस्य सर्वशरण्यत्वं निर्दोषत्वं कल्याणगुणाकरत्वं च

भक्तारिभञ्जनपरं शरण्यं शरणार्थिनाम् ।
नित्यनिःसीमनिर्दोषकल्याणगुणसागरम् ॥ १४ ॥

सबको शरण देने वाले निर्दोष एवं कल्याणकारी स्वरूप का वर्णन—सुदर्शन का यह स्वरूप भक्तों के भय को दूर करने वाला । शरणार्थियों को शरण देने वाला नित्य सर्वथा निर्दोष एवं कल्याणगुण का सागर है ॥ १४ ॥

तत्पादप्रान्ते साधकनामलेखनम्

एवंभूतं समालिख्य सदानन्दं सुदर्शनम् ।
तत्पादपद्मपर्यन्ते साधकं नाम विन्यसेत् ॥ १५ ॥

सर्वदा आनन्द देने वाले सुदर्शन के इस प्रकार के स्वरूप का निर्माण कर उसके चरणकमल के नीचे साधक का नाम लिखना चाहिए ॥ १५ ॥

ततः पर्यन्ते षट्कोणचक्रलेखनम्

इन्दुबिम्बस्य पर्यन्ते षट्कोणं चक्रमालिखेत् ।
आग्नेयममितप्रख्यममोघं सर्वसाधकम् ॥ १६ ॥

उसके चारों ओर षट्कोण चक्र का लेखन—चन्द्रमण्डल के समान बनाये गए उस गोले के चारों ओर षट्कोण चक्र लिखना चाहिए । यह षट्कोण चक्र अग्नि देवता वाला, अमोघ तथा सर्वसाधक है । जिसे अमित नाम से कहा जाता है ॥ १६ ॥

तत्र षडक्षरविन्यासः

प्राच्यादिदिक्षु कोणेषु षड्वर्णान् विन्यसेन्मनोः ।

अङ्गमन्त्रन्यासः

षट्सु कोणान्तरालेषु त्वङ्गमन्त्रान् न्यसेत् क्रमात् ॥ १७ ॥

पूर्व आदि दिशाओं के कोणों में सुदर्शन मन्त्र के छः वर्णों का उल्लेख करे और (द्व स् र् अ स र) छः कोनों के बीच में क्रमशः अङ्गमन्त्रों को लिखे ॥ १७ ॥

ततश्चतुर्दलपद्मलेखनम्

अस्माद्बहिस्तथा पद्मं चतुर्दलसमन्वितम् ।

तत्र न्यसनीया वर्णाः

सबिन्दुवर्म फट् चास्य दलेष्वेषु क्रमान्न्यसेत् ॥ १८ ॥

अन्तरालेष्वन्तःस्थवर्णविन्यासः

दलान्तरालेष्वन्तःस्थान् विन्यसेत् साधकस्तथा ।

उसके भी बाहर चारपत्रों वाले पद्म का निर्माण करे । उस पद्म के चारों दलों पर प्रत्येक में सबिन्दु वर्म (कवचाय हुँ) ऐसा क्रमशः लिखे । उन दलों के बीच-बीच में साधक अन्तःस्थ (य र ल व) वर्णों को लिखे ॥ १८-१९ ॥

ततः षोडशकेसराष्टदलपद्मलेखनम्

बाह्ये तत्राष्टपत्राब्जमन्तः षोडशकेसरम् ॥ १९ ॥

इसके बाद सोलह केशरों वाले अष्टदल पद्म का निर्माण—उसके भी बाहर आठ पत्र वाले कमल का जिनमें सोलह केशर हों उसका निर्माण करे ॥ १९ ॥

केसरेषु षोडशस्वरविन्यासः

केसरेषु क्रमादस्य विलिखेत् षोडश स्वरान् ।

दलेष्वष्टाक्षरमन्त्रन्यासः

अष्टाक्षरं महामन्त्रं दलेष्वस्य समालिखेत् ॥ २० ॥

केशरों पर १६ स्वरों का लेखन—इस पद्म केशरों पर क्रमशः १६ स्वरों को लिखे । पद्म के आठ दलों पर अष्टाक्षर मन्त्र का लेखन करे । (ॐ ह्रीँ स् र आ स् र् आ)? ॥२०॥

द्वात्रिंशत्केसरषोडशदलपद्मलेखनम्

द्वात्रिंशत्केसरं चास्य बहिः षोडशपत्रकम् ।

केसरेषु कादिसान्तवर्णविन्यासः

ककारादि सकारान्तं केसरेष्वस्य चालिखेत् ॥ २१ ॥

इसके बाद बाहर ३२ केशरों से युक्त १६ पत्तों वाले पद्म दल का निर्माण करे । केशरों पर क से लेकर स पर्यन्त (ककारादि वर्ग २५ + य आदि ७ कुल योग = ३२) वर्णों को लिखे ॥ २१ ॥

दलेषु षोडशार्णमन्त्रवर्णन्यासः

दलेष्वस्य लिखेन्मन्त्रं षोडशार्णं तु वैष्णवम् ।

द्वात्रिंशत्केसरदलपद्मलेखनम्

द्वात्रिंशत्केसरदलं बाह्ये तस्य समालिखेत् ॥ २२ ॥

इसके दलों पर १६ अक्षरों वाला वैष्णव मन्त्र लिखे? उसके भी बाहर ३२ दलों वाले तथा ३२ केसरों वाले पद्मदल की रचना करे ॥ २२ ॥

केसरेषु वाराहनुष्टुभमन्त्रवर्णन्यासः

केसरेष्वस्य पद्मस्य प्राच्यादिषु यथाक्रमम् ।
मन्त्रमानुष्टुभं सम्यग्वाराहं विलिखेत् परम् ॥ २३ ॥

३२ केशरों पर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से ३२ अक्षरों वाले श्रेष्ठ वाराह अनुष्टुप् मन्त्र को सम्यक् रूप से लिखे ॥ २३ ॥

दलेषु नारसिंहानुष्टुभमन्त्रवर्णन्यासः

द्वात्रिंशति दलेष्वस्य नारसिंहं क्रमाल्लिखेत् ।
आनुष्टुभं महामन्त्रममोघं सर्वसाधकम् ॥ २४ ॥

चतुःषष्टिदलपद्मलेखनम्

तस्य बाह्ये लिखेत् पद्मं चतुःषष्टिदलैर्युतम् ।

तद्दलेषु पातालनारसिंहमन्त्रन्यासः

पातालनारसिंहाख्यं तद्दलेषु न्यसेन्मनुम् ॥ २५ ॥

३२ दलों पर अमोघ सर्वसाधक नारसिंह अनुष्टुप् (मुखम् उग्र वीरज्वलन्तसर्वत नृसिंहं भीषण भद्र मृत्युमुत्यु नमाम्यहम्) मन्त्र लिखे । उसके बाद ६४ दलों से युक्त पद्म का निर्माण करे, जिसके दलों पर पाताल नारसिंह नामक मन्त्र का लेखन करे ॥२४-२५॥

पुनरष्टदलपद्मलेखनम्

पुनश्च पद्मं विन्यस्य दलैरष्टभिरावृतम् ।

तद्दलेष्वष्टाक्षरनारसिंहमन्त्रन्यासः

अष्टाक्षरं नारसिंहं तद्दलेषु समालिखेत् ॥ २६ ॥

इसके बाद बाहर पुनः अष्टदल कमल का निर्माण करे । उसके प्रत्येक दलों पर नरसिंह के आठ अक्षरों वाले मन्त्र को लिखे ॥ २६ ॥

तद्बहिर्महिन्द्रमण्डलकल्पनम्

तद्बाह्ये मण्डलं कुर्यान्माहेन्द्रं वज्रभूषितम् ।
जाज्वल्यमानं स्वेनैव सर्वालङ्कारमण्डितम् ॥ २७ ॥

उसके भी बाहर वज्र से विभूषित, सर्वालङ्कार मण्डित, स्वतेज से जाज्वल्यमान माहेन्द्र (इन्द्र सम्बन्धी) मण्डल का निर्माण करे ॥ २७ ॥

तद्बहिः साधकनाम्ना सह तद्बीजन्यासः

तस्य बाह्ये महादिक्षु प्रागादिषु यथाक्रमम् ।
तद्बीजं विन्यसेद्धीमान्निजनाम्ना समन्वितम् ॥ २८ ॥

उसके भी बाहर पूर्वादि दिशाओं में क्रमानुसार साधक अपने नाम से समन्वित नारसिंह बीज (क्ष्रौं) का विन्यास करे ॥ २८ ॥

बहिष्कोणेष्वन्तःस्थवर्णन्यासः

बहिष्कोणेषु चतुर्षु तथान्तःस्थान् प्रकल्पयेत् ।

कोणान्तरालेषु तद्बीजन्यासः

कोणाभ्यन्तरभागेषु तद्बीजं विन्यसेत् पुनः ॥ २९ ॥

उसके भी बाहर रहने वाले चतुष्कोण में चार अन्तःस्थ वर्णों (य र ल व) को लिखे । इसके बाद उन कोणों के भीतरी भाग में पुनः नारसिंह बीज क्ष्रौं को लिखे ॥२९॥

तत्परितः स्वराणां प्रातिलोम्येन विन्यासः

परितस्तत् स्वरान् सर्वान् प्रातिलोम्येन चालिखेत् ।

तत्परितः सादिकान्ताक्षरविन्यासः

सकारादि ककारान्तं विन्यसेत् परितस्तथा ॥ ३० ॥

उसके बाद चारों ओर १६ स्वरों को प्रातिलोम्यक्रम (अः अं औ ओ इत्यादि) से लिखे । उसके भी बाहर 'स' से आरम्भ कर ककारादि ३२ व्यञ्जनों को लिखे ॥ ३० ॥

स्वनाम्ना पाशाङ्कुशाभ्यां चावेष्टनम्

विदर्भितं स्वनाम्नैव परितोऽन्त्ययुगं न्यसेत् ।
पाशेनावेष्टयेदेतदङ्कुशेन तथातुरः ॥ ३१ ॥

इसके बाद साधक अपने नाम से अनुस्यूत अन्त के दो वर्णों (ह क्ष) को लिखे । फिर पाश तथा अङ्कुश से उसे आवेष्टित करे ॥ ३१ ॥

भूपुरकल्पनम्

पुटितं भूपुरं तस्य बाह्ये कुर्यादतन्द्रितः ।

समन्तात् केशवादिमूर्तिन्यासः

केशवादीन् मूर्तिमतः समन्तादस्य विन्यसेत् ॥ ३२ ॥

इसके बाद बाहर उसके चारों ओर बड़ी सावधानी से सम्पुटित दो भूपुर का निर्माण करे । उसके चारों ओर केशवादि मूर्तियों का मूर्तिमान् स्वरूप इस प्रकार लिखे ॥ ३२ ॥

केशवस्वरूपवर्णनम्

तप्तजाम्बूनदप्रख्यं पुण्डरीकायतेक्षणम् ।
अपारकरुणं पद्मशङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ३३ ॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् ।
हारकेयूरकटककुण्डलैरुपशोभितम् ॥ ३४ ॥
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं प्रसन्नवदनं विभुम् ।
प्रागादि विन्यसेद् देवं केशवं क्लेशनाशनम् ॥ ३५ ॥

तपाये हुये सुवर्ण के समान देदीप्यमान नेत्र कमल वाले, विशाल, अपार करुणा से परिपूर्ण, पद्म, शङ्ख, चक्र और गदा लिए हुये, पिताम्बर पहने, वनमाला से विभूषित, हार, केयूर, कटक एवं कुण्डलादि आभूषणों से संयुक्त, चार बाहुओं वाली, उदार अङ्ग वाली एवं प्रसन्नमुख—ऐसी क्लेशनाशक केशव की मूर्ति का पूर्व दिशा में लेखन करना चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

नारायणस्वरूपवर्णनम्

शङ्खपद्मगदाचक्रधरं नीलाम्बुदच्छविम् ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तं कुर्यान्नारायणं ततः ॥ ३६ ॥

इसके अनन्तर शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र लिए हुये, नीले मेघ के समान शोभा वाले, सर्वालङ्कार संयुक्त नारायण की मूर्ति का लेखन करना चाहिए ॥ ३६ ॥

माधवस्वरूपवर्णनम्

पद्मकौमोदकीशङ्खचक्रधारिणमव्ययम् ।
देवमिन्दीवरश्यामं माधवं भावयेत् ततः ॥ ३७ ॥

इसके अनन्तर साधक को पद्म कौमोदकी गदा, शङ्ख तथा चक्र धारण किये हुये सर्वथा विकाररहित इन्दीवर के समान श्याम वर्ण वाले माधव मूर्ति का लेखन करना चाहिए ॥ ३७ ॥

गोविन्दस्वरूपवर्णनम्

चक्रकौमोदकीशङ्खपद्मायुधविराजितम् ।
इन्दुबिम्बनिभं कुर्याद् गोविन्दममितौजसम् ॥ ३८ ॥

इसके बाद चक्र, कौमोदकी गदा, शङ्ख एवं पद्म धारण किये हुये चक्र विम्ब के समान स्वच्छ, शीतल, आह्लादक एवं महान् तेजस्वी गोविन्द की मूर्ति का लेखन करना चाहिए ॥ ३८ ॥

विष्णुस्वरूपवर्णनम्

गदाब्जशङ्खचक्रास्त्रधरं परमभूषितम् ।
विष्णुं विश्वपतिं कुर्यात् पद्मकिञ्जल्कसन्निभम् ॥ ३९ ॥

इसके बाद गदा, कमल, शङ्ख तथा चक्रास्त्र धारण किये हुये कमल केशर के समान कोमल विश्वपति विष्णु की मूर्ति का लेखन करे ॥ ३९ ॥

मधुसूदनस्वरूपवर्णनम्

चक्रशङ्खाम्बुजगदाधारिणं करुणानिधिम् ।
रक्तपद्मदलप्रख्यं भावयेन्मधुसूदनम् ॥ ४० ॥

इसके बाद चक्र, शङ्ख, कमल एवं गदा धारण किये हुये करुणा के सागर, लाल कमल के समान अरुणवर्ण वाले मधुसूदन को लिखे ॥ ४० ॥

त्रिविक्रमस्वरूपवर्णनम्

चक्रकौमोदकीपद्मशङ्खसेवितमीश्वरम् ।
उज्ज्वलत्कनकप्रख्यं तं कुर्वीत त्रिविक्रमम् ॥ ४१ ॥

इसके बाद चक्र, कौमोदकी गदा, पद्म तथा शङ्ख से सेवित देदीप्यमान सुवर्ण के समान जाज्वल्यमान ईश्वर त्रिविक्रम को लिखे ॥ ४१ ॥

वामनस्वरूपवर्णनम्

शङ्खचक्रगदापद्मधरं परमभूषितम् ।
तरुणादित्यसङ्काशं वामनं भावयेत् ततः ॥ ४२ ॥

इसके बाद शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुये, बहुमूल्य आभूषणों से भूषित, दोपहर के सूर्य के समान तेजस्वी वामन को लिखे ॥ ४२ ॥

श्रीधरस्वरूपवर्णनम्

पद्मचक्रगदाशङ्खधरं सद्गुणसागरम् ।
पुण्डरीकनिभं देवं श्रीधरं परिकल्पयेत् ॥ ४३ ॥

इसके बाद पद्म, चक्र, गदा एवं शङ्ख धारण किये हुये, सद्गुणों के समुद्र, कमल के समान विकसित श्रीधर की मूर्ति का लेखन करना चाहिए ॥ ४३ ॥

हृषीकेशस्वरूपवर्णनम्

गदासुदर्शनयुते शङ्खपद्मे च बिभ्रतम् ।
विद्युत्प्रभं हृषीकेशं कुर्वीत कमलेक्षणम् ॥ ४४ ॥

इसके बाद गदा सुदर्शन तथा शङ्ख एवं पद्म धारण किये हुये बिजली के समान आभा वाले, कमलनेत्र हृषीकेश का उल्लेख करे ॥ ४४ ॥

पद्मनाभस्वरूपवर्णनम्

शङ्खपद्मे गदाचक्रे तथा बिभ्राणमुज्ज्वलम् ।
सहस्रादित्यसङ्काशं पद्मनाभं तु कारयेत् ॥ ४५ ॥

इसके बाद शङ्ख, पद्म, गदा, चक्र धारण किये हुये प्रकाशमान सहस्रों आदित्य के समान तेजस्वी पद्म की मूर्ति का लेखन करे ॥ ४५ ॥

दामोदरस्वरूपवर्णनम्

पद्मशङ्खगदाचक्रधरं बन्धूकसन्निभम् ।
भक्त्येकसुलभं देवं दामोदरमथ स्मरेत् ॥ ४६ ॥

इसके बाद पद्म, शङ्ख, गदा एवं चक्र धारण किये हुये बन्धूक पुष्प के समान रक्तवर्ण वाले, मात्र भक्ति से सुलभ होने वाले दामोदर का उल्लेख करे ॥ ४६ ॥

नमोऽन्तानां तत्तन्नाम्नामपि लेखनम्

एवं क्रमेण न्यस्यैतानेषां नामानि च न्यसेत् ।

नमोऽन्तान्यमुकं रक्ष रक्षेति च समन्ततः ॥ ४७ ॥

इस क्रम से इनका न्यास कर इनके नामों का भी नमोऽन्त अमुकं रक्ष-रक्ष इस प्रकार चारों ओर न्यास करे। नाम न्यास प्रकार—यथा—केशवाय नमः देवदत्तं रक्ष-रक्ष इत्यादि ॥ ४७ ॥

प्रागादिषु प्रादक्षिण्येन बीजाक्षरन्यासः

यं शं रं षं तथा लं सं वं हं चेति द्वयं द्वयम्।
प्राच्यादिषु महादिक्षु प्रादक्षिण्येन विन्यसेत् ॥ ४८ ॥

इसके बाद पूर्वादि दिशाओं में यं शं रं षं लं सं वं हं इन आठ अक्षरों में दो-दो के क्रम से प्रदक्षिण क्रम से न्यास करे ॥ ४८ ॥

ऐशान्यादिष्वप्रादक्षिण्येन बीजाक्षरन्यासः

यं शं रं षं तथा लं सं वं हं चेति युगं युगम्।
ऐशान्यादिषु कोणेषु विन्यसेदप्रदक्षिणम् ॥ ४९ ॥

इसके बाद ईशान आदि कोणों में यं शं रं षं लं सं वं हं इन आठ अक्षरों में दो-दो के क्रम से बाईं ओर से न्यास करे ॥ ४९ ॥

पुनः पाशाङ्कुशाभ्यां वेष्टनम्

पाशेन तु समावेष्ट्य अङ्कुशेनापि वेष्टयेत्।
सर्वमेतत् सबीजेन हृल्लेखमनुना वृतम् ॥ ५० ॥

इसके बाद पाश (आँ) से वेष्टित कर पुनः उसे अङ्कुश (क्रौं) से वेष्टित करे। इन सभी को हृल्लेखामन्त्र (ह्रीं) से परिवेष्टित करे ॥ ५० ॥

प्रागादिचतुर्दिक्षु विष्णुविन्यासस्तेषामायुधानि च

प्रागादिषु चतुर्दिक्षु विन्यसेद् विष्णुमव्ययम्।
चक्रकौमोदकीशार्ङ्गखड्गैर्युक्तं यथाक्रमम् ॥ ५१ ॥
साधारणौ च सर्वेषां शङ्खचक्रौ वरायुधौ।

पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः चक्र, कौमोदकी, शार्ङ्ग तथा खड्ग धारण किये हुये एक-एक आयुध सहित विष्णु का न्यास करे। ऐसे तो साधारणतया उक्त केशवादि विष्णु के स्वरूपों के शङ्ख, चक्र श्रेष्ठ आयुध कहे गए हैं ॥ ५१-५२ ॥

आग्नेयादिकोणेषु हृषीकेशन्यासः

आग्नेयादिषु कोणेषु हृषीकेशं ततो न्यसेत् ॥ ५२ ॥

आग्नेयादि चारों कोणों में हृषीकेश का न्यास करे ॥ ५२ ॥

तेषामायुधविशेषाः

शङ्खं हलं च मुसलं शूलं चैतेषु धारयेत्।

कोणान्तरालेष्वष्टसु जनार्दनविन्यासः

विकोणेष्वष्टसु तथा जनार्दनमथो न्यसेत् ॥ ५३ ॥

तेषामायुधविशेषाः

दण्डं कुन्तं तथा शक्तिं पाशमङ्कुशमेव च ।
वज्रं तथैव परशुं तथा शतमुखानलम् ॥ ५४ ॥
करेष्वमीषामेतानि विलिखेत्तु यथाक्रमम् ।

उन चारों कोनों में न्यस्त चारों हृषीकेश के आग्नेयादि कोण के क्रम से एक-एक हाथों में क्रमशः शङ्ख, हल, मुशल एवं शूल धारण कराना चाहिए । इसके बाद आठों कोणों के बीच-बीच में जनार्दन का न्यास करे । एक-एक कोण के जनार्दन के हाथों में क्रमशः दण्ड, कुन्त, शक्ति, पाश, अङ्कुश, वज्र, परशु तथा शतमुख नामक अग्नि धारण कराना चाहिए ॥ ५३-५५ ॥

तत्तत्पार्श्वेषु तत्तत्परिवारलेखनम्

प्रत्येकं परिवारांस्तु तेषां पार्श्वेषु विन्यसेत् ॥ ५५ ॥

उनमें प्रत्येक के परिवार भी उन्हीं के पार्श्वभाग में न्यस्त करे ॥ ५५ ॥

ततो भूमौ भूम्या सह पुरुषोत्तमस्मरणम्

वराहरूपिणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
भूमौ च सहितं भूम्या संस्मरेत् पुरुषोत्तमम् ॥ ५६ ॥

इसके बाद भूमि के सहित शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये हुये पुरुषोत्तम वराहदेवता का भूमि में न्यास करे ॥ ५६ ॥

अम्बरे नरसिंहस्मरणम्

अम्बरे नारसिंहं तु चिन्तयेदमितौजसम् ।
भीषणं घटितानेकभूषणं दारितासुरम् ॥ ५७ ॥

आकाश में महा भीषण, अनेक भूषणों से सुसज्जित और असुरों का दारण करने वाले श्रीनृसिंह का स्मरण करना चाहिए ॥ ५७ ॥

प्रागादिषु चक्रगदाशार्ङ्गखड्गस्मरणम्

प्राच्यां दिशि महाज्वालागतं चक्रं स्मरेद्बुधः ।
दक्षिणस्यां दिशि तथा स्मरेज्ज्वालागतां गदाम् ॥ ५८ ॥
प्रतीच्यां शार्ङ्गमत्युग्रज्वालामध्यगतं स्मरेत् ।
उत्तरस्यां दिशि तथा स्मरेत् खड्गं सुदारुणम् ॥ ५९ ॥

इसके बाद पुनः पूर्व दिशा में महाज्वाला के मध्य में स्थित चक्र का बुद्धिमान् साधक स्मरण करे । दक्षिणदिशा में ज्वाला के मध्य में संस्थित गदा का स्मरण करे । पश्चिम दिशा में अत्यन्त उग्र ज्वाला के मध्य में शार्ङ्ग धनुष का स्मरण करे और उत्तर दिशा में अत्यन्त निर्दयी खड्ग का स्मरण करे ॥ ५८-५९ ॥

अस्य यन्त्रस्यापराङ्गकल्पनाय मध्ये चतुर्विंशत्यरचक्रकल्पनम्

अपराङ्गेऽथ यन्त्रस्य मध्ये चक्राब्जसंस्थितम् ।
चतुर्विंशत्यरं चक्रं सुनेमि रुचिराकृति ॥ ६० ॥

इस यन्त्र के अपराङ्ग के मध्य में चक्र रूपी कमल में स्थित सुन्दर नेमि से संयुक्त अत्यन्त मनोहर आकृति वाले चौबीस अरों से युक्त चक्र का निर्माण करना चाहिए ॥६०॥

तन्मध्ये द्वादशदलपद्मलेखनम्

मध्येचक्रं न्यसेत् पद्मं युक्तं द्वादशभिर्दलैः ।

तत्कर्णिकायामाग्नेयमण्डलन्यासः

चक्राब्जकर्णिकास्थाने न्यसेदाग्नेयमण्डलम् ॥ ६१ ॥

इसके बाद उस चक्र के मध्य में बारह दलों वाले पद्म का निर्माण करना चाहिए । उस चक्राब्ज कर्णिका के स्थान में आग्नेय मण्डल का निर्माण करना चाहिए ॥ ६१ ॥

तन्मध्ये योगनृसिंहलेखनम्

तन्मध्ये योगपट्टेन पिनद्धाङ्गं सनातनम् ।
नारसिंहं चतुर्बाहुं चतुश्चक्रधरं परम् ॥ ६२ ॥
समासीनमशोकस्य मूले कालानलद्युतिम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वभक्तार्तिहारिणम् ॥ ६३ ॥
अपारसङ्ख्यकल्याणगुणपूर्णमहार्णवम् ।
भक्तानुकम्पिनं नित्यं सर्वलोकैकनायकम् ॥ ६४ ॥

उस आग्नेय मण्डल के मध्य में योग पट्ट से पिनद्ध अङ्ग वाले, सनातन, अपने चारों बाहुओं में चार चक्र धारण किये हुए परदेवता स्वरूप ऐसे श्रीनृसिंह का स्मरण करना चाहिये जो अशोक के मूल में बैठे हुये हैं, जिनके शरीर से कालाग्नि के समान प्रकाश निर्गत हो रहा है, जो सभी आभरणों से भूषित हैं और अपने भक्तों के सभी प्रकार का आर्त्तिहरण करने वाले हैं । वह असङ्ख्य कल्याण गुणों से परिपूर्ण महार्णव हैं और भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने वाले तथा समस्त लोकों के नायक हैं ॥ ६२-६४ ॥

तत्पादपर्यन्ते द्वयोस्तद्भृत्ययोर्विन्यासः

एवं विन्यस्य तत्पादपर्यन्ते विन्यसेदुभौ ।
तदाज्ञाकारिणौ भीमौ नीलनीरदविग्रहौ ॥ ६५ ॥
उदग्रकायौ भीमाक्षौ भीमायुधधरौ वरौ ।
दंष्ट्राकरालवदनौ विन्यसेद् वृत्तलोचनौ ॥ ६६ ॥

इस प्रकार न्यास कर श्रीनृसिंह के पैरों के पास उनकी आज्ञा करने वाले, नीले जलधर के समान दो भीमों (भृत्यों) का न्यास करे, जो शरीर में डील-डौल से बहुत ऊँचे हैं, जिनकी आँखें अत्यन्त भयावह हैं, जो महा भयानक अस्त्र धारण किये हुये हैं, जिनका मुख भयानक दाढों से अत्यन्त कराल है तथा जिनके नेत्र वृत्ताकार हैं ॥ ६५-६६ ॥

चक्रस्य प्रागादिष्वष्टशक्तिध्यानम्

चिन्तयेदथ चक्रस्य समन्तादष्ट योषितः ।
ऊर्ध्वमाबद्धकेशाढ्यास्तच्छक्तीः प्राप्तयौवनाः ॥ ६७ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्ता द्विभुजा माल्यधारिणीः ।

इस प्रकार निर्माण किये गए चक्र के पूर्वादि आठ दिशाओं में उनकी आठ शक्तियों का निर्माण करे जो युवावस्था से सम्पन्न हैं, जिनके केश ऊपर की ओर बँधे हुये हैं, जो सभी अलङ्कारों से सुसज्जित, दो भुजाओं वाले तथा माला धारण किये हुये हैं ॥ ६७-६८ ॥

प्राच्यां दिशि जयां देवीं पीतवर्णां विचिन्तयेत् ॥ ६८ ॥
आग्नेय्यां मोहिनीं देवीं श्यामलामायतेक्षणाम् ।
याम्यामनुस्मरेद् देवीं विजयां कृष्णरूपिणीम् ॥ ६९ ॥
रक्तवर्णां तथा देवीं नैर्ऋत्यां ह्लादिनीं तथा ।
अजितां पीतवर्णां तु प्रतीच्यां संस्मरेत् पराम् ॥ ७० ॥
वायव्यां दिशि मायां तु कृष्णवर्णां सनातनीम् ।
उदीच्यां रक्तवर्णां तामाशायामपराजिताम् ॥ ७१ ॥
ऐशान्यां संस्मरेत् सिद्धिं धूम्रवर्णामतः परम् ।

चक्र के पूर्व दिशा में पीत वर्ण वाली जया का, आग्नेय कोण में विशाल नेत्रों वाली एवं शरीर से श्याम वर्ण वाली मोहिनी का, दक्षिण दिशा में काले वर्ण की विजया का, नैर्ऋत्य कोण में रक्त वर्ण वाली ह्लादिनी का, पश्चिम दिशा में परा स्वरूपा पीतवर्णा अजिता का, वायव्य दिशा में सनातनी कृष्णवर्णा माया का, उत्तर दिशा में रक्तवर्ण वाली अपराजिता का तथा ईशान कोण में धूम्रवर्ण वाली सर्वोत्कृष्ट सिद्धि का स्मरण करे ॥ ६८-७२ ॥

यथोक्तलक्षणयन्त्रमहिमा

एवमेतन्महायन्त्रं महापातकनाशनम् ॥ ७२ ॥
आयुरारोग्यधनदं पुत्रमित्रकलत्रदम् ।
सर्वविघ्नोपशमनं सर्वदुष्टनिवारणम् ॥ ७३ ॥
यो यदर्थी लिखेद्यन्त्रं तत् तदस्य प्रयच्छति ।
मणिविद्रुममुक्ताढ्यं कुर्याद् यन्त्रं हिरण्मयम् ॥ ७४ ॥
राजा चेद्राज्यमाप्नोति निष्कण्टकमनामयम् ।

इस प्रकार का निर्माण किया गया यह यन्त्र महापातकों का नाश करने वाला है। आयु, आरोग्य, धन, पुत्र, मित्र एवं कलत्र प्रदान करने वाला है। समस्त विघ्नों का शमन करने वाला एवं समस्त दुष्टों को भगाने वाला है। जो कोई जिस कामना से इस यन्त्र को लिखता है, यह यन्त्र उसकी उस कामना को पूर्ण करता है। मणि विद्रुम मोती से जड़े हुये

सोने के यन्त्र का निर्माण यदि राजा करे तो वह निष्कण्टक निरामय राज्य अवश्य प्राप्त करता है ॥ ७२-७५ ॥

भूर्जपत्रलिखितस्यापि यन्त्रस्य सर्वफलसाधनता

भूर्जपत्रे लिखित्वैतत् कुङ्कुमैश्चन्दनेन तु ॥ ७५ ॥
यो मर्त्यः शिरसा धत्ते तस्य स्यात्सर्वमीप्सितम् ।
पिशाचोरगरक्षांसि क्षिप्रं नश्यन्ति तस्य वै ॥ ७६ ॥

भोजपत्र पर इस यन्त्र को कुङ्कुम अथवा चन्दन से लिख कर जो साधक उसे अपने शिर पर धारण करता है उसका सारा मनोरथ पूर्ण हो जाता है । ऐसे पुरुष के सामने पिशाच, सर्प और राक्षस शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ७५-७६ ॥

एतद्यन्त्रशिलाप्रतिष्ठाया मुक्तिसाधनत्वम्

शिलाप्रतिष्ठां यः कुर्यादितस्य जगतीतले ।
सर्वान् कामानिहावाप्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७७ ॥

जो इस यन्त्र को शिला पर लिखवा कर उसकी प्रतिष्ठा करता है वह इस संसार में अपनी सारी कामनायें पूर्णकर विष्णु सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ७७ ॥

लोहादिभिर्यन्त्रप्रतिमानिर्माणफलम्

लोहैर्वा रजतेनाथ यः कुर्यात् प्रतिमां बुधः ।
त्रिवर्गफलमाप्नोति निर्वाणमचिरात् पुनः ॥ ७८ ॥

जो बुद्धिमान् साधक लोहे पर अथवा चाँदी पर प्रतिमा बनवाता है वह धर्म, अर्थ एवं काम तो प्राप्त करता ही है शीघ्र मुक्त भी हो जाता है ॥ ७८ ॥

कर्षणादिप्रतिष्ठान्तायतननिर्माणफलम्

कर्षणादि प्रतिष्ठान्तं कुर्यादायतनं च यः ।
आप्नुवन्ति च तद्वंश्याः पुण्यलोकाननुत्तमान् ॥ ७९ ॥

यन्त्र के लेखन से आरम्भ कर प्रतिष्ठा पर्यन्त जो इस यन्त्र का आयतन (मन्दिर) निर्माण करता है उसके वंश में उत्पन्न होने वाले सभी लोग पुण्यलोक को प्राप्त करते हैं ।

भयादिषु यन्त्रस्मरणे फलम्

भयागमे च संग्रामे वादे वा यः स्मरेदिदम् ।
विजयस्तस्य हस्तस्थो नात्र कार्या विचारणा ॥ ८० ॥

भय प्राप्त होने पर अथवा संग्राम में अथवा वाद विवाद में जो इस यन्त्र का स्मरण करता है उसके हाथ में विजयलक्ष्मी निवास करती है इस विषय में संशय नहीं करना चाहिए ॥ ८० ॥

त्रिसन्ध्यं यन्त्रार्चनं मुक्तिसाधनम्

अर्चयेद्यस्त्रिसन्ध्यं वै यन्त्रमेतदनुत्तमम् ।

तापत्रयविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ८१ ॥

जो इस श्रेष्ठ यन्त्र की तीनों कालों में अर्चना करता है वह तीनों तापों से मुक्त हो जाता है। किं बहुना विष्णुलोक में भी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥ ८१ ॥

रक्षाविधौ राज्ञां वैशेषिकविध्यारम्भः

राज्ञां रक्षाविधाने तु विशेषं शृणु नारद।
राज्यार्थी हृतराज्यो वा परिभूतोऽथवा नृपैः ॥ ८२ ॥

तत्र प्रथममाचार्यपूजाविधिः

सौदर्शनस्य यन्त्रस्य प्रदातारं गुरुं परम्।
सर्वेभ्यो ह्यधिकं मत्वा तमभ्यर्च्य महाधनैः ॥ ८३ ॥

हे नारद! अब आप राजाओं की रक्षा विधि में विशेष विशेष बातें सुनिए। राज्य चाहने वाला अथवा नष्ट राज्य वाला अथवा अन्य नृपों से पराभूत राजा सुदर्शन यन्त्र के देने वाले अपने श्रेष्ठ गुरु को सर्वश्रेष्ठ मानकर पर्याप्त धन से उनकी अर्चना करे ॥ ८२-८३ ॥

ततो भगवदाराधनविधिः

ततो नारायणं देवं पुण्डरीकायतेक्षणम्।
श्यामलं पीतवसनं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ८४ ॥
आराधयेच्चतुर्बाहुमाचार्योक्तविधानतः ।

ततो यन्त्रनिर्माणम्

तप्तजाम्बूनदमयं मणिविद्रुमचित्रितम् ॥ ८५ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तं कारयेद्यन्त्रमुत्तमम्।

यन्त्रनिर्माणस्य राज्यप्राप्तिहेतुत्वम्

एतत्करणमात्रेण राज्यमाप्नोत्यनामयम् ॥ ८६ ॥

तदनन्तर गुरु के उपदेशानुसार कमल के समान विशाल नेत्र वाले श्याम वर्ण, पीताम्बर धारण किये हुये, सर्वाभरणभूषित, चतुर्बाहु युक्त नारायण की आराधना करे। इसके बाद मणि एवं विद्रुमजटित देदीप्यमान सुवर्ण पर सर्वालङ्कारभूषित इस मन्त्र का लेखन करवावे। मात्र केवल इतना करने से ही वह अपना निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर लेता है ॥ ८४-८६ ॥

प्रतिष्ठापूर्वकार्चनस्य सप्तद्वीपान्तभूमिप्राप्तिहेतुत्वम्

प्रतिष्ठाप्यार्चयेदेतत् सादरं सर्वसिद्धिदम्।
ततो भूमिमवाप्नोति सप्तद्वीपां सपत्तनाम् ॥ ८७ ॥

सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करने वाले इस यन्त्र की प्रतिष्ठा कर जो साधक उसकी अर्चना करता है वह नगर समेत सप्तद्वीपा वसुमती प्राप्त कर लेता है ॥ ८७ ॥

अन्ततस्त्रैलोक्यपालयितृत्वसिद्धिः

वश्या भवन्ति सततं सिद्धगन्धर्वदानवाः ।
त्रैलोक्यराज्यमखिलं पालयत्यवनीतले ॥ ८८ ॥

सिद्ध, गन्धर्व एवं दानव सर्वदा के लिए उसके वश में हो जाते हैं और वह इस पृथ्वी में समस्त त्रिलोकी का राज्य पालन करने में समर्थ हो जाता है ॥ ८८ ॥

परकृताभिचारपरावर्तनसिद्धिः

अभिचाराः परकृताश्चैनमप्राप्य भीषिताः ।
प्रविशन्ति प्रयोक्तारमापगेवाचलाहता ॥ ८९ ॥

शत्रुओं के द्वारा किये जाने वाले मारण प्रयोग ऐसे साधक को नहीं प्राप्त होते । वे स्वयं भयभीत होकर लौटकर प्रयोग करने वाले के पास इस प्रकार चले आते हैं जिस प्रकार नदी पहाड़ से टक्कर खाकर पीछे की ओर मुड़ जाती है ॥ ८९ ॥

अवग्रहादिपरिहारसिद्धिः

अवग्रहाश्च नश्यन्ति शत्रवो विद्रवन्ति च ।
अपमृत्युमृगव्यालचोररोगादिभिर्भयम् ॥ ९० ॥
न तस्य राज्ये भवति विद्यते तत्कुले बलम् ।

उसकी सारी बाधायें नष्ट हो जाती हैं । शत्रुगण बहुत दूर भाग जाते हैं । अपमृत्यु, सिंह, सर्प, चोर तथा रोगादि का भय उसके राज्य में नहीं होता और उसका कुल सर्वदा बल सम्पन्न रहता है ॥ ९०-९१ ॥

सर्वेषां स्वधर्मप्रवृत्तिसिद्धिः

सर्वे स्वेष्वेव धर्मेषु प्रवर्तन्ते सदा मुने ॥ ९१ ॥

ऐसे राजा के राज्य में, हे महामुने! सभी अपने-अपने धर्म में निरत रहते हैं ॥९१॥

दुर्वाससा शात्पस्येन्द्रस्य यन्त्रेणानेन पुनः स्वपदप्राप्तिः

पुरा दुर्वाससः शापाद्धृतराज्ये शचीपतौ ।
एतत्प्रसादादखिलं पुनः प्राप त्रिविष्टपम् ॥ ९२ ॥

पूर्वकाल में जब दुर्वासा के शाप से इन्द्र का राज्य असुरों ने ले लिया, तब इस मन्त्र के प्रताप से उन्हें स्वर्ग के राज्य की प्राप्ति हुई ॥ ९२ ॥

चतुर्मुखस्य भवत्सकाशाद्यन्त्रप्राप्तिः

एतत् पुरा महायन्त्रं ब्रह्मणे प्रोक्तवान् हरिः ।

चतुर्मुखेन विश्वकर्मणा यन्त्रविमानयोर्निर्मापणम्

ब्रह्मा च विश्वकर्माणमाहूयैतदकारयत् ॥ ९३ ॥
विमानं च तदारभ्य देवगन्धर्वदानवाः ।

तदा प्रभृति यन्त्रस्यैव रक्षासाधनत्वम्

अनेन रक्षणविधिं चक्रुः पूर्वे नृपास्तथा ।
तस्माद्राज्ञां च सर्वेषामेष रक्षाविधिः परः ॥ ९४ ॥

भगवान् विष्णु ने पूर्वकाल में इस यन्त्र का उपदेश ब्रह्मदेव को किया था । उन्होंने विश्वकर्मा को बुलवा कर उनसे इस यन्त्र का निर्माण कराया । उसी समय देव, गन्धर्व एवं दानवों ने चक्र का विमान निर्माण करवाया । तदनन्तर पूर्व के राजाओं ने भी इसी यन्त्र से अपनी रक्षा की । इसलिए यह राजाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ रक्षा विधि है ॥ ९३-९४ ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

अभिनवदिननाथप्रोज्ज्वलद्बिम्बतुल्यं
कमलभवमुखाद्यैः संश्रितं देववृन्दैः ।
परिगतमपि भूतैः पञ्चभिः सेव्यमानं
प्रकृतिमहदहङ्कारैः स्मरेद्यन्त्रराजम् ॥ ९५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां महासुदर्शन-
यन्त्रलक्षणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥
॥ आदितः श्लोकाः १५६५ ॥

उदीयमान एवं जाज्वल्यमानसूर्य बिम्ब के समान इस यन्त्र को ब्रह्मदेवादि के उपदेश से देवगणों ने इस यन्त्र का आश्रय लिया । पञ्चभूतों में सर्वत्र व्याप्त होते हुये भी इस यन्त्रराज की सेवा प्रकृति, महत्तत्त्व एवं अहङ्कार करते हैं । अतः इस यन्त्र का साधक को अवश्य स्मरण करना चाहिए ॥ ९५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के महा-
सुदर्शनयन्त्र लक्षण वर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय की शैवागमावतार
महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ०
सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २६ ॥

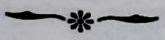

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

धारकयन्त्रनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरा का मात्र एक बार किया गया ध्यान अनेक जन्म के करोड़ों अघ समूहों को नष्ट करता है । हम उस सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

वृत्तानुवादपूर्वकं धारकयन्त्रविषयकः प्रश्नः

नारदः—

कथितो यन्त्रराजस्य देवदेवस्य विस्तरः ।
स्वरूपं साधनं चास्य प्रकारश्च फलं तथा ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने देवाधिदेव स्वरूप इस यन्त्रराज का स्वरूप, साधन, प्रकार तथा फल एवं विस्तार वर्णन किया ॥ १ ॥

अद्येदं श्रोतुमिच्छामि भगवन् परमेश्वर ।
एतदत्यद्भुतं दिव्यं ध्रियते केन भूषणम् ॥ २ ॥

हे भगवन् ! परमेश्वर ! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि इस अद्भुत एवं दिव्य भूषण को कौन धारण करता है ॥ २ ॥

न चास्य धारणे शक्तिं कस्यचित् कलयाम्यहम् ।
अतिशक्तितयास्येमं संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

इस यन्त्रराज के अत्यन्त शक्तिमान् होने के कारण किसी में भी धारण करने की शक्ति मुझे दिखाई नहीं पड़ती । अतः आप मेरे इस संशय को दूर कीजिये ॥ ३ ॥

तत्प्रतिवचनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

सत्यं न केनचिद्धर्तुं पार्यते तन्महाद्युति ।
ऋते यन्त्रान्तरादस्माद् देवर्षे शक्तिशालिनः ॥ ४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद! आप सत्य कहते हैं। यह यन्त्रराज बड़ा ही प्रभावशाली है। मात्र उसी में इसके धारण करने की क्षमता है जो इससे कहीं अधिक शक्तिशाली हो ॥ ४ ॥

शृणु तस्य मुनिश्रेष्ठ स्वरूपं वीर्यमद्य वै।

प्रथमं माहेन्द्रमण्डलनिर्माणम्

प्रथमं मण्डलं कृत्वा माहेन्द्रं वसुधात्मकम् ॥ ५ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तं यन्त्रलाञ्छनलाञ्छितम्।

तत्कोणेषु भूबीजाक्षरन्यासः

भौममेतस्य कोणेषु विन्यसेद् बीजमुत्तमम् ॥ ६ ॥
शेषाद्यैरष्टभिर्नागैर्धार्यमाणं समन्ततः।

हे मुनिश्रेष्ठ! अब उस मन्त्रराज के स्वरूप तथा प्रभाव को सुनिए। सर्वप्रथम पृथ्वी के आकार का माहेन्द्र मण्डल निर्मित करे। उसे सभी प्रकार के अलङ्कारों से संयुक्त करे। फिर आगे कही विधि के अनुसार उसमें यन्त्र का निर्माण करे। सर्वप्रथम इसके कोनों पर भौम बीज (लं) लिखे। जिसे आठों कोनों पर शेषादि आठ नाग चारों ओर से धारण किये हों। उसकी विधि इस प्रकार है ॥ ५-६ ॥

मण्डलप्राग्भागे शेषगुलिकयोर्न्यासः

प्राग्भागे मण्डलस्यास्य भीषणौ भीमलोचनौ ॥ ७ ॥
विलिखेच्छेषगुलिकौ लोकयन्तौ परस्परम्।

दक्षिणभागे वासुकिशङ्खयोः

वासुकिं शङ्खपालं च वीक्षमाणौ परस्परम् ॥ ८ ॥
दक्षिणस्यां दिशि तथा विन्यसेदस्य साधकः।

इस मण्डल के पूर्वभाग में भीषण तथा भीम नेत्र वाले शेष एवं गुलिक नामक दो नागों को लिखे जो परस्पर एक दूसरे को आमने-सामने देख रहे हों। फिर साधक मण्डल की दक्षिण दिशा में वासुकि एवं शङ्खपाल को लिखे जो परस्पर एक दूसरे को देख रहे हों ॥ ७-९ ॥

पश्चिमे तक्षकमहाम्बुजयोः

पश्चिमायां लिखेदेवं तौ तक्षकमहाम्बुजौ ॥ ९ ॥

उत्तरभागे कार्कोटकाम्बुजयोः

कार्कोटकं चाम्बुजं च लिखेदुत्तरतो मुने।
तस्य मध्ये महाज्वालामालावर्तविराजितम् ॥ १० ॥

मध्ये वह्निमण्डलकल्पना

कोणषट्कयुतं वह्निमण्डलं बीजसंयुतम्।

तन्मध्ये वायुमण्डलविन्यासः

समालिख्य च तन्मध्ये वायव्यं मण्डलं लिखेत् ॥ ११ ॥
वर्तुलं बिन्दुसंयुक्तं तद्बीजेन समन्वितम् ।

तन्मध्ये दशारचक्रलेखनम्

तन्मध्ये चक्रमतुलं प्रोज्ज्वलन्नेमिमण्डलम् ॥ १२ ॥
अरैर्दशभिराकीर्णं विन्यसेदरिमर्दनम् ।

इसी प्रकार पश्चिम दिशा में तक्षक और महाम्बुज तथा उत्तर दिशा में कार्कोटक और अम्बुज (पद्म) नामक नागों को लिखे । तदनन्तर मण्डल के मध्य में महाज्वाला की लपटों से विराजमान छः कोणों वाले वह्निमण्डल का रं बीज युक्त लेखन करे । फिर अग्नि से युक्त कर मण्डल के मध्य में गोले को बिन्दु संयुक्त कर उसके बीज (य) से युक्तकर वायु मण्डल बनावे, उसके मध्य में देदीप्यमान नेमि मण्डल से युक्त, जिसमें शत्रुमर्द्दक दश अरे लगे हों, ऐसे महान् तेजस्वी चक्र का निर्माण करे ॥ ९-१३ ॥

अरेषु सुदर्शननारसिंहमन्त्रन्यासः

मन्त्रं सौदर्शनस्यास्य नारसिंहस्य विन्यसेत् ॥ १३ ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु वर्णाभ्यामरेषु नवसु क्रमात् ।
दशमे हनशब्दं तु विन्यसेदरकेऽस्य वै ॥ १४ ॥

फिर नव अरों में दो-दो वर्ण से युक्त सुदर्शन मन्त्र तथा नरसिंह का मन्त्र लिखे । फिर दसवें अरे में हन शब्द लिखे ॥ १३-१४ ॥

चक्रमध्ये अष्टदलपद्मलेखनम्

चक्रमध्ये न्यसेत् पद्मं दलैरष्टभिरन्वितम् ।
कर्णिकाघटितं रम्यं केसरैरुपशोभितम् ॥ १५ ॥

फिर उस चक्र के मध्य में कर्णिका एवं केसर से युक्त अष्ट दल कमल का निर्माण करे ॥ १५ ॥

कर्णिकायां प्रणवन्यासः

तत्कर्णिकायां विलिखेत् तारं संसारतारकम् ।

तत्रैवाभीष्टार्थसाध्यनाम्नोर्विलेखनम्

अभीष्टमर्थं साध्यस्य नामधेयमतः परम् ॥ १६ ॥

उसकी कर्णिका में संसार को पार लगाने वाला प्रणव लिखे और साध्य अभीष्ट प्रयोजन तथा जिसका प्रयोजन हो उसका नाम भी लिखे ॥ १६ ॥

एवंभूतेन धारकयन्त्रेण सकलार्थसिद्धिः

तदेतत् परमं दिव्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
पवित्राणां पवित्रं च चोरपीडानिवारणम् ॥ १७ ॥

सर्वार्थसाधकं घोरं विश्ववन्द्यमनुत्तमम् ।

इस प्रकार से लिखा हुआ यह परम दिव्य यन्त्र सभी मङ्गलों का मङ्गल है । पवित्र को भी पवित्र करने वाला है । चोरजन्य भय को तो दूर करता ही है, सर्वार्थ साधक, अद्वितीय एवं विश्ववन्द्य भी है ॥ १७-१८ ॥

यन्त्रेणानेनेन्द्रस्य शत्रुजयप्राप्तिः

पुरा देवेषु दैतेयैरभिभूतेषु वासवः ॥ १८ ॥
बृहस्पतिं समाहूय प्रोवाचेदं वचस्तदा ।
बाधन्ते नितरामस्मानिमे दैतेयदानवाः ॥ १९ ॥
केनोपायेन भगवन् विजेष्यामो महासुरान् ।
बलहानिः कथं वैषां भविता भगवन् वद ॥ २० ॥

पूर्व काल में जब दैत्यों के द्वारा देव लोग पराजित होने लगे तब इन्द्रदेव ने बृहस्पति को बुला कर ऐसा वचन कहा—हे भगवन् ! ये दैत्य एवं दानव हम लोगों को बहुत दुःख दे रहे हैं । अतः किस प्रकार इन महान् असुरों पर हम लोग विजय प्राप्त करें? तथा इनकी बलहानि किस प्रकार हो? उसका उपाय हमें बताइये ॥ १८-२० ॥

एवं मघवता प्रोक्तः प्रोवाचेदं बृहस्पतिः ।
सौदर्शननृसिंहस्य यन्त्रस्य करणादिह ॥ २१ ॥
नश्यन्ति शत्रवः सर्वे सुराणां बलसूदन ।
इत्युक्त्वा स्थापयामास यन्त्रं मघवतः पुरे ॥ २२ ॥

इन्द्र द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर बृहस्पति ने कहा—हे बलशत्रो इन्द्र ! सुदर्शन एवं नृसिंह के यन्त्र के निर्माण से असुरों के द्वारा किए गए सारे उपद्रव नष्ट हो जावेंगे । ऐसा कह कर उन्होंने इन्द्र के सामने ही उस यन्त्र को लिख कर स्थापित कर दिया ॥ २१-२२ ॥

मणिविद्रुममुक्ताढ्यं सौवर्णममितप्रभम् ।
ततः प्रभृति दैतेया नष्टश्रीका हतत्विषः ॥ २३ ॥
पराजिता विद्रवन्ति दिशो नष्टनिकेतनाः ।
तदेतदतिवीर्यं तु यन्त्रं सुरसुपूजितम् ॥ २४ ॥

मणि, विद्रुम, मोती तथा सुवर्ण निर्मित वह यन्त्र उस अतुलनीय प्रभा से युक्त था, जिसके प्रभाव से सारे के सारे दैत्यों की श्री विनष्ट हो गई और वे हतप्रभ से हो गए । वे दैत्य अपना घर छोड़कर जैसे-तैसे जहाँ-तहाँ पलायित हो गए । इस प्रकार देवताओं से पूजित यह यन्त्र बड़ा प्रभावशाली है ॥ २३-२४ ॥

अस्यैव यन्त्रस्य पूर्वोक्तमहासुदर्शनयन्त्रधारकत्वम्

तदेतेनैव यन्त्रेण यन्त्रं सौदर्शनं परम् ।
धार्यते तत् सुरमुने विचित्रं विष्टरात्मना ॥ २५ ॥

यन्त्रमेतन्मयाख्यातमेवं माहासुदर्शनम् ।
धृतं यन्त्रेण वीर्यात्तु सुदर्शननृसिंहयोः ॥ २६ ॥

हे देवर्षे ! इसीलिए अन्य यन्त्रों की अपेक्षा यह सुदर्शन यन्त्र बड़ा विचित्र है । जो देवताओं के द्वारा भी धारण किया गया है । इस प्रकार सुदर्शन तथा श्रीनृसिंह के महावीर्य (महामन्त्र) से लिखे गए इस महासुदर्शन यन्त्र का आख्यान मैंने आपसे कहा ॥ २५-२६ ॥

राजन्वद्देशस्यैव यथोक्तयन्त्रभरणक्षमत्वम्

एतस्य तु विशिष्टस्य भरणे सैव भूः क्षमा ।
यस्याः पालयिता राजा धार्मिको दृढविक्रमः ॥ २७ ॥
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजकः परमास्तिकः ।

राज्ञो नित्यमेतदभ्यर्चनविधिः

एतदभ्यर्चयेद्राजा चक्राकारमतन्द्रितः ॥ २८ ॥
पुरुषाकारमपि वा तथैवोभयतोमुखम् ।

एतन्मन्त्रप्रदातुर्विशेषतः पूज्यत्वम्

एतन्मन्त्रप्रदातारं विशिष्टं पूजयेद् बुधः ॥ २९ ॥

इस विशिष्ट यन्त्र के भरण में वही पृथ्वी सक्षम है, जिसका पालन करने वाला राजा धार्मिक, पराक्रमी, देवता, ब्राह्मण, गौ तथा विद्वानों की पूजा करने वाला एवं परम आस्तिक हो । इस चक्राकार यन्त्र की पूजा राजाओं को आलस्यरहित होकर करनी चाहिए चाहे वह पुरुषाकार हो, अथवा चक्राकार हो, अथवा उभयाकार हो बुद्धिमान् राजा इस मन्त्र देने वाले पुरोहित की विशिष्ट पूजा करे ॥ २७-२९ ॥

एतन्मन्त्रविधिना कर्षणादिप्रतिष्ठान्तकर्मविधिः

कर्षणादीनि कर्माणि प्रतिष्ठान्तान्यमुष्य तु ।
एतन्मन्त्रोक्तमार्गेण कारयेन्नृपतिः स्वयम् ॥ ३० ॥

राजा स्वयं इस मन्त्र में कही गई विधि के अनुसार कर्षण से लेकर प्रतिष्ठान्त कर्म करे ॥ ३० ॥

तन्त्रस्यास्य सात्त्वतादिभिरेकतन्त्रत्वम्

सात्त्वतादिषु तन्त्रेषु विहितेनैव चाध्वना ।
सुदर्शनस्य मन्त्रस्य नारसिंहस्य वा मुने ॥ ३१ ॥
कल्पप्रयुक्ता विधयः सर्वे चैतस्य सन्निधौ ।
भवन्ति सकलाश्चैतत्प्रभावेण प्रयोजिताः ॥ ३२ ॥
तस्माद्यथोक्तमार्गेण प्रतिष्ठाप्यैतदर्चयेत् ।

राज्ञामेतदर्चनेन राज्यादिलाभः

राजा राज्यं जयं भूतिमायुरारोग्यमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥

हे मुने ! इस सुदर्शन मन्त्र की तथा नृसिंह मन्त्र की सभी विधियाँ कल्पोक्त हैं अथवा सात्वतादि शास्त्रों में जिस प्रकार की विधि कही गई है उसके अनुसार प्रतिष्ठा कर अर्चन करना चाहिए । ऐसा करने से राजा को राज्य, जय, भूति, आयु तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥ ३१-३३ ॥

नित्यमर्चयतः फलविशेषः

नित्यमर्चयतो राज्ञः सप्तद्वीपवती मही ।
समुद्रवसना चैषा विश्वा वश्या भविष्यति ॥ ३४ ॥

जो राजा निरन्तर इस यन्त्र की पूजा करता है, उसके वश में यह समस्त समुद्र से घिरी हुई सप्तद्वीपवती पृथ्वी हो जाती है ॥ ३४ ॥

होमार्थं प्रासादकुण्डयोर्निर्माणम्

प्रासादं लक्षणोपेतं विधाय परमासनम् ।
तत्रैव कारयेत् कुण्डं मन्त्रस्यास्य यथाविधि ॥ ३५ ॥

सर्वप्रथम इसकी अर्चा के लिए साधक सुलक्षण प्रासाद का निर्माण करे । फिर मन्त्र में कही गई विधि के अनुसार प्रतिष्ठा योग्य पीठ निर्माण कर वहीं कुण्ड की रचना करे ॥ ३५ ॥

साधकेन तत्र होमादिनिर्वर्तनम्

भूपतेर्यानि कर्माणि साधयंस्तानि साधकः ।
मन्त्रेणानेन जुहुयादस्मिन् कुण्डे समाहितः ॥ ३६ ॥

मन्त्रवेत्ता साधक को राजा के तत्तदभिलषित पदार्थों की सिद्धि के लिए उपर्युक्त कुण्ड में समाहित चित्त से इस मन्त्र द्वारा हवन करना चाहिए ॥ ३६ ॥

वैकल्पिकप्रदेशान्तरविधिः

अनेनैव तु मन्त्रेण राज्ञो रक्षाविधिर्यदि ।
विष्णोरायतने रम्ये मण्डपे मण्डितेऽथवा ॥ ३७ ॥
कृत्वैतत् कुण्डमत्रैव राजाभ्यर्च्य महाधनैः ।
एतन्मन्त्रप्रदातारं स्वकर्माण्येव कारयेत् ॥ ३८ ॥

अथवा यदि मन्त्र से राजा को अपनी रक्षा करनी हो तो वह राजा पर्याप्त धन से इस मन्त्रज्ञ की पूजा कर कुण्ड निर्माण करवा कर उसी से अपना कर्म करावे ॥ ३७-३८ ॥

पुनर्यन्त्रार्चनफलविशेषकथनम्

अनेन कृतकृत्यस्तु राजा राज्यमवाप्नुयात् ।
नीरोगो निःसपत्नश्च दीर्घायुश्च भविष्यति ॥ ३९ ॥

नागैरनेकसाहस्रैरसङ्ख्येयैश्च वाजिभिः ।
स्यन्दनैर्नरवर्यैश्च पूर्णा तस्य पुरी भवेत् ॥ ४० ॥

राजा इस मन्त्र से कृतकृत्य होकर राज्य प्राप्त करने में समर्थ होता है । वह निरोग एवं निष्कण्टक रहकर दीर्घायु प्राप्त करता है । इतना ही नहीं, उसकी वह नगरी, जिसमें वह निवास करता है, अनेक सहस्र हाथियों, असङ्ख्य घोड़ों, असङ्ख्य रथों तथा असङ्ख्य मनुष्यों से परिपूर्ण रहती है ॥ ३९-४० ॥

यश्चैनमर्चयेद्राजा यन्त्रराजमनुत्तमम् ।
सर्वमन्त्रविशिष्टत्वादर्चितास्तेन देवताः ॥ ४१ ॥

जो राजा इस सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वमन्त्र विशिष्ट इस यन्त्रराज की पूजा करता है मानो उसने समग्र देवताओं की पूजा कर ली ॥ ४१ ॥

यदर्थं योऽर्चयेदेनमात्मार्थे यतते परम् ।
सर्वेषामेव भूतानां राज्ञश्च कुरुते हितम् ॥ ४२ ॥

जो कोई भी साधक जिस किसी प्रयोजन के लिए इस यन्त्र की पूजा करता है वह मानो आत्म कल्याण करता है और सभी प्राणियों का तथा राजा का मानो हित करता है ॥ ४२ ॥

अस्मिन् मन्त्रे यन्त्रे च राज्ञामेवाधिकारः

अयं मन्त्रश्च यन्त्रं च राज्ञामेव विधीयते ।
सर्वसाधारणार्थानि मन्त्रजातानि नारद ॥ ४३ ॥

हे नारद ! यह मन्त्र और यन्त्र केवल राजाओं के लिए विहित है । अन्य समस्त मन्त्रजात सर्वसाधारण के लिए है ॥ ४३ ॥

एतदभ्यर्चनपरा मन्त्रिणो यस्य भूपतेः ।
अभिरक्षन्ति राजानमरिष्टमुखतोऽपि ते ॥ ४४ ॥

जिस राजा का मन्त्री इस यन्त्र के पूजन में निरत रहता है, वह उसके समस्त दुर्भाग्य का नाश कर उसकी रक्षा करता है ॥ ४४ ॥

एतत्प्रणामादीनामपि तत्तत्फलसाधनत्वम्

एतत्प्रणामेन समर्चनेन
सङ्कीर्तनेन स्मरणेन वाऽपि ।
सन्तोषयेत् सन्ततमस्य सर्वं
मनीषितं हस्तगतं प्रपश्येत् ॥ ४५ ॥

इस यन्त्रराज को प्रणाम करने से, पूजा करने से, सङ्कीर्त्तन करने से अथवा स्मरण करने से तथा सन्तुष्ट करने से उसके हाथ में सारे अभिलषित अपने आप दिखाई पड़ने लगते हैं ॥ ४५ ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

इति निगदितमेतद्यन्त्ररूपं समन्त्रं
सकलदुरितभेदव्यापृतं संश्रितानाम् ।
तदिह कृतविधेयो भूपतिः पूर्णकामो
भुवनतलमशेषं प्राप्नुयाच्चक्रवर्ती ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां धारकयन्त्र-
निरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १६११ ॥

इस प्रकार हमने मन्त्र के सहित इस यन्त्रराज का निरूपण किया, जो अपने आश्रितों के समस्त पापों को नष्ट करता है और जो राजा इस लोक में इसका विधेय (आज्ञाकारी) बन जाता है वह पूर्णकाम हो जाता है तथा वह चक्रवर्त्ती होकर सारी पृथ्वी का लाभ करता है ॥ ४६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के धारकयन्त्र
निरूपण नामक सत्ताइसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २७ ॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

भगवदाराधनविधिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरा का मात्र एक बार किया गया ध्यान अनेक जन्म के करोड़ों पाप समूह का विनाश करता है, हम उन चक्रसुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

आराधनविधिनिरूपणारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

आराधनविधिं वक्ष्ये समासेनैव नारद ।
आयुरारोग्यविजयभूप्रदं धनधान्यदम् ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब मैं भगवदाराधन की विधि संक्षेप में कहता हूँ जो आयु, आरोग्य, विजय, भूमि तथा धन धान्यादि प्रदान करता है ॥ १ ॥

तस्यैहिकामुष्मिकफलसाधनत्वम्

पुत्रपश्वन्नकामानां तत्तत्साधनमुत्तमम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं शान्तं पराभिभवकारणम् ॥ २ ॥

यह भगवदाराधन पुत्र, पशु तथा अन्न चाहने वालों के लिए तत्तत् उत्तम साधन है जो भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करता है । यह उपद्रव तो शान्त करता ही है, शत्रुओं का विनाश भी करता है ॥ २ ॥

तत्रादौ स्नानविधिः

तीर्थं गत्वा शुचौ देशे मृदमादाय मन्त्रतः ।
द्विधा कृत्वैकभागेन कुर्याद् देहस्य शोधनम् ॥ ३ ॥
स्नात्वाचम्य गृहीत्वान्यं मृद्भागं विन्यसेत् त्रिधा ।
वामे पाणौ दिशाबन्धं विदध्यादेक भागतः ॥ ४ ॥
गात्रालेपं ततः कुर्यादन्येनांशेन नारद ।
सङ्कल्पयेत् तृतीयांशं तीर्थपीठमतःपरम् ॥ ५ ॥

सर्वप्रथम किसी पवित्र देश के तीर्थ में जाकर मन्त्रपूर्वक (= उद्धृतासि वराहेण) वहाँ की मिट्टी ग्रहण करे और उसके दो भाग कर प्रथम भाग को शरीर में लगा कर शुद्ध करे। फिर दूसरे भाग को तीन भागों में प्रविभक्त करे। जिसमें एक भाग को बायें हाथ में लेकर दिग्बन्धन करे। फिर दूसरे भाग से शरीर में लेप करे। फिर तीसरे भाग को लेकर तीर्थ पीठ का सङ्कल्प करे ॥ ३-५ ॥

गङ्गां तत्र स्मरेद्विष्णोर्वामपादविनिःसृताम्।
अर्घ्यमस्यै निवेद्याथ ततो हृत्वा जलाञ्जलिम् ॥ ६ ॥
स्वमूर्ध्नि सिञ्चेत् त्रिस्तावत्सप्तकृत्वोऽभिमन्त्रितम्।
निमग्नस्तत्र देवस्य पादाब्जन्यस्तमस्तकः ॥ ७ ॥
यथाशक्ति जपेन्मन्त्रं तस्य ध्यानपरायणः।

सर्वप्रथम विष्णु के वाम पाद से निकलने वाली गङ्गा का स्मरण करे। तदनन्तर उन्हें अर्घ्य प्रदान कर जलाञ्जली हाथ में लेकर सात बार उसका अभिमन्त्रण करे। तीन बार उस जल से शिर का अभिषेक करे। तदनन्तर जल में डुबकी लगाकर भगवान् के चरण कमलों में शिर नवाकर उसी ध्यान में निमग्न हो यथाशक्ति मन्त्र का जप करे ॥ ६-८ ॥

तत उत्तीर्य चाचम्य धृत्वा वस्त्रोत्तरीयके ॥ ८ ॥
धृतोर्ध्वपुण्ड्रः स्वाचान्तो देवादीनच्युतात्मकान्।
ध्यात्वा सन्तर्पयेदन्यदाह्निकं विधिवच्चरेत् ॥ ९ ॥

तदनन्तर जल से बाहर निकलकर वस्त्र और उत्तरीय धारण कर आचमन करे। आचमन के अनन्तर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे और सभी देवों में अच्युत की भावना करे। इस प्रकार ध्यान करते हुये देवताओं का सन्तर्पण करे तथा अपना सभी आह्निक कृत्य सम्पादन करे ॥ ८-९ ॥

यागभूमिमथागम्य क्षालिताङ्घ्रिकरो वशी।

आराधनोपक्रमः

आचम्य वाग्यतो भूत्वा प्रारभेत समर्चनम् ॥ १० ॥
चतुर्द्वारयुतं रम्यं गत्वा शरणमात्मवान्।
द्वाःस्थानशेषानभ्यर्च्य ततो मण्डपमाश्रयेत् ॥ ११ ॥

पुनः यज्ञभूमि में जाकर हाथ पैर धो कर जितेन्द्रिय होकर आचमन करे और मौन ग्रहण कर भगवदर्चन आरम्भ करे। जिसमें चारों ओर द्वार हों, ऐसे यज्ञमण्डप के पास जाकर सर्वप्रथम द्वारपालों की पूजा कर पश्चात् मण्डप में प्रवेश करे ॥ १०-११ ॥

मण्डपवर्णनम्

तुङ्गं मङ्गलसंयुक्तं मणिकुट्टिमभूषितम्।
सौवर्णैर्बहुभिः स्तम्भैर्मणिविद्रुमभूषितैः ॥ १२ ॥
उपेतं दीपिकाजालैर्जातिरूपमयैर्वृतम्।

विचित्राभिः पताकाभिस्तोरणैरुपशोभितम् ॥ १३ ॥
मणिकिङ्किणिजालैश्च वितानैः क्षौमकल्पितैः ।
विराजमानं सर्वत्र मणिपीठविराजितम् ॥ १४ ॥

वह यज्ञमण्डप ऊँचा एवं माङ्गलिक वस्तुओं (ध्वज, तोरण आदि) से युक्त हो। उसका फर्श मणि जटित कर बनाया गया हो। जगह-जगह मणियों और विद्रुमों से जड़े हुये सुवर्ण के बहुत से खम्भे जिसमें लगे हों, जो सुवर्ण निर्मित दीपकों से जगमगा रहा हो तथा विचित्र विचित्र पताकाओं और तोरणों से जो सुशोभित हो, जिसमें रेशमी चँदवाँ लगा हो और मणिनिर्मित घुँघुरुओं के समूह से जो सुशोभित हो, जहाँ स्थान-स्थान पर मणि-निर्मित आसन रखे गए हों ॥ १२-१४ ॥

तत्र वेदिकानिर्माणम्

तस्य मण्डपरत्नस्य मध्ये परमभास्वराम् ।
पद्मरागमयैः स्तम्भैश्चतुर्भिरुपशोभिताम् ॥ १५ ॥
मुक्तामयवितानेन युक्तां रत्निचतुष्किकाम् ।
वैडूर्यघटितोत्तुङ्गवेदिकां दीपिकायुताम् ॥ १६ ॥
एवं कर्तुमशक्तश्चेदेवं ध्यायीत पूजकः ।

उस रत्न खचित मण्डप के मध्य में जहाँ वैदूर्यजटित वेदी प्रकाश से जगमगा रही हो, जिसके चारों ओर चार पद्मराग के खम्भे लगे हों, जिस पर मोतियों का वितान (= चँदोवा) लगा हो, जिसका प्रमाण चार रत्नि हों तथा जिस पर दीपक जल रहा हो वहाँ पर जावें यदि ऐसी वेदी का निर्माण कर न सके तो साधक उसका ध्यान मात्र कर लेवे ॥ १५-१६ ॥

तत्र सपरिवारभगवद्ध्यानम्

एवं चतुष्किकामध्ये चक्राब्जमयविष्टरे ॥ १७ ॥
आधारशक्तिकमठानन्तधर्मादिधारिते ।
पद्मे सोमरविज्योतिः सत्त्वादिपरिवारिते ॥ १८ ॥
एवमुक्तप्रकारेण परिवारैर्निषेवितम् ।
वेदैर्मन्त्रैस्तथा शस्त्रैरस्त्रैः शक्तिभिरावृतम् ॥ १९ ॥
ध्यायेत् तदासने देवं समासीनः समासने ।

इस प्रकार की वेदी के ऊपर रखी गयी चौकी पर जहाँ चक्रमय पद्म का विष्टर (आसन) बनाया गया है तथा जिसकी चारों ओर की आधार शक्ति कमठ, अनन्त एवं धर्म द्वारा धारण की गई हो, उस पीठ पर बने हुये कमलरूप आसन पर, जिसके चारों ओर सोम, रवि, अग्नि तथा सत्त्वादि का परिवार हो, ऐसे परिवार मण्डलों से निषेवित वेद मन्त्रों अस्त्र-शस्त्रों तथा शक्तियों के सहित देवाधिदेव का ध्यान साधक अच्छी तरह से बैठकर करे ॥ १७-२० ॥

भगवत्प्रार्थना

अर्चयामि त्वदीयोऽहं त्वद्दत्तैरौपचारिकैः ॥ २० ॥
सांस्पर्शिकैरिति ब्रूयाद् देवमाभ्यवहारिकैः ।

ध्यान करने के अनन्तर प्रार्थना करे कि हे भगवन्! मैं आपका भक्त हूँ। आपके द्वारा प्रदत्त सामग्री से आपकी अर्चना करता हूँ और यदि भोजन करना हो तो कहे कि हे भगवन्! मैं आपके द्वारा संस्पृष्ट भोजन करता हूँ। इसके बाद भूतशुद्धि इस प्रकार से करे ॥ २०-२१ ॥

भूतशुद्धिक्रमः

संहरेद् देहतत्त्वानि प्रतिसञ्चरवर्त्मना ॥ २१ ॥
ततः स्थूलमिदं देहं शोषयित्वाथ संदहेत् ।
प्राणायामेन चाद्येन मन्त्रं नाभ्यां तु विन्यसेत् ॥ २२ ॥
तदुद्भूतेन नादेन सुषुम्नामध्यवर्तिना ।
वायुमण्डलमभ्येत्य तदुत्थेनैव वायुना ॥ २३ ॥
संशोषयेदिमं देहं स्थूलं सुरमुने ततः ।
प्राणायामद्वितीयेन हृदये विन्यसेन्मनुम् ॥ २४ ॥
मन्त्रोत्थेनाग्निना देहं दहेन्मण्डलवर्तिना ।

प्रतिसञ्चर (संहार) मार्ग से देहतत्त्वों का उपसंहार करे। तदनन्तर इस स्थूल शरीर का शोषण कर उसे जलावे, इसका क्रम इस प्रकार है—सर्वप्रथम प्राणायाम कर नाभि में मन्त्र का न्यास करे। फिर सुषुम्नामध्यवर्त्ती मन्त्र से उठे हुये नाद के द्वारा मन्त्र को वायुमण्डल में ले जाकर उसकी उठी हुई वायु से इस स्थूल शरीर का शोषण करे। फिर दूसरा प्राणायाम कर मन्त्र को हृदय में सन्निविष्ट करे और गोलमण्डल के मध्य में रहने वाले मन्त्रोत्थित अग्नि से उस स्थूल शरीर को जला डाले ॥ २१-२५ ॥

तृतीयेन स्वमात्मानं प्राणायामेन देशिकः ॥ २५ ॥
अधो निवेशयन् विष्णोर्वामपादाम्बुजस्य वै ।
स्वं तदङ्गुष्ठनिष्ठ्यूतपीयूषाप्लावितं स्मरेत् ॥ २६ ॥

फिर आचार्य तृतीय प्राणायाम से अपने को विष्णु पादकमल के नीचे ले जाकर, उनके नखाङ्गुष्ठ से चूते हुये पीयूषामृत से आप्लावित होने का स्मरण करे ॥ २५-२६ ॥

पञ्चोपनिषदैर्मन्त्रैस्ततः सञ्जातविग्रहः ।
न्यस्ताङ्गो मन्त्रविन्मन्त्रैश्चिन्तयित्वा सुदर्शनम् ॥ २७ ॥
आवाह्य ब्रह्मरन्ध्रेण हृत्पद्मे सूर्यमण्डलात् ।
प्रारभेत ततः पूजां करन्यासं विधाय वै ॥ २८ ॥

फिर उपनिषदों में कहे गए पाँच मन्त्र (तत्त्वमसि सोऽहं ब्रह्म इत्यादि) से अपने को नया शरीर धारण किया समझे। इस प्रकार मन्त्रवेत्ता वह साधक मन्त्र से शरीर का न्यास

कर सुदर्शन का ध्यान करे। पुनः हृदय रूपी कमल में सूर्यमण्डल से ब्रह्मरन्ध्र द्वारा भगवान् का आवाहन करे। फिर करन्यास कर पूजा कार्य प्रारम्भ करे ॥ २७-२८ ॥

हृद्यागं प्रथमं कुर्यान्नियतेन्द्रियमानसः।
आत्मनो दक्षिणे पार्श्वे वासितैः पावनैर्जलैः ॥ २९ ॥
पूरितं स्थापयेत् पात्रं मूलमन्त्रेण मन्त्रितम्।
वामपार्श्वे तथा सर्वं विन्यसेत् साधनान्तरम् ॥ ३० ॥

सर्वप्रथम अपनी इन्द्रियों को वश में कर हृदय में यज्ञ करे और अपने दाहिने भाग में शुद्ध पवित्र जल से पूर्ण पात्र को मूलमन्त्र पढ़ते हुये स्थापित करे। तदनन्तर अपनी बाईं ओर पूजा की शेष सामग्री स्थापित करे ॥ २९-३० ॥

ततो विस्तीर्य पुरतः शाटिकामतिनिर्मलाम्।
तस्यामाग्नेयदिग्भागे विन्यसेदर्घ्यपात्रकम् ॥ ३१ ॥
पाद्यपात्रमथो न्यस्येत् कोणे दक्षिणपश्चिमे।
पात्रमाचमनीयस्य विन्यसेत् पश्चिमोत्तरे ॥ ३२ ॥
स्नानीयपात्रं दिग्भागे विन्यसेच्छाङ्करे ततः।

तदनन्तर अपने आगे अत्यन्त शुद्ध तथा स्वच्छ वर्ण की साड़ी फैला दें। उस साड़ी के आग्नेय कोण में अर्घ्य पात्र स्थापित करे और दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्य) के कोने में पाद्य (पैर को धोने वाला) पात्र भी स्थापित करे। पश्चिमोत्तर (वायव्य) कोण में आचमनीय पात्र तथा ईशान कोण में स्नानीय (स्नान के लिए जल युक्त) पात्र स्थापित करे ॥ ३१-३३ ॥

अर्घ्यादिषु प्रक्षेप्यद्रव्याणि

सिद्धार्थमक्षतं चैव कुशाग्रं तिलमेव च ॥ ३३ ॥
यवं गन्धं फलं पुष्पमष्टाङ्गं चार्घ्यमुच्यते।
दूर्वा च विष्णुपर्णी च श्यामाकं पद्ममेव च ॥ ३४ ॥
पाद्यद्रव्याणि चत्वारि सोदकानि प्रकल्पयेत्।
लवङ्गजातीतक्कोलद्रव्याण्याचमनीयके ॥ ३५ ॥
सिद्धार्थकादि स्नानीये पूर्ववत् कल्पयेद् बुधः।

सिद्धार्थक (पीली सरसों), अक्षत, कुशाग्र, तिल, यव, गन्ध, फल तथा पुष्प यह अष्टांग अर्घ्य कहा गया है। दूर्वा, विष्णुपर्णी, श्यामाक और पद्म ये चार जलयुक्त करने से पाद्य द्रव्य कहे गए हैं। लवङ्ग, जाती तथा तक्कोल ये जल मिश्रित होने पर आचमनीय द्रव्य कहे जाते हैं। पूर्व में कहे गए सिद्धार्थकादि द्रव्यों (द्र० २८.३३) को स्नान वाले पात्र में डालकर स्नानीय जल का निर्माण करे ॥ ३३-३६ ॥

तत्र मन्त्रासनं प्रथमम्

अर्घ्यं सङ्कल्पयामीति स्पृशेज्जप्त्वार्घ्यमादितः ॥ ३६ ॥
पाद्यपात्रादिकेष्वेवं ब्रूयात् सुरमुने क्रमात्।

गन्धतोयेन सम्पूर्य पात्राण्येतानि सर्वशः ॥ ३७ ॥

सर्वप्रथम 'अर्घ्यं समर्पयामि' इस मन्त्र को पढ़कर अर्घ्यपात्र का स्पर्श करे। इसी प्रकार हे नारद! 'पाद्यं समर्पयामि' इस मन्त्र को पढ़कर पाद्य समर्पण करे। इसी प्रकार गन्धजल से सम्पूरित कर अन्यत्र पात्रों में भी मन्त्रों की कल्पना करे ॥ ३६-३७ ॥

अर्घ्यात् किञ्चित् समुद्धृत्य जलं पात्रान्तरेण तु।
देवस्य दक्षिणे पाणौ मूलमन्त्रेण विन्यसेत् ॥ ३८ ॥
पुष्पं दत्त्वाथ पाद्येन पादौ देवस्य सेचयेत्।
वस्त्रेण मार्जयित्वाथ दद्यादाचमनीयकम् ॥ ३९ ॥

अब अर्घ्यदान की प्रक्रिया बताते हैं कि किसी दूसरे पात्र से अर्घ्य पात्र का जल निकाल कर मूलमन्त्र से देवाधिदेव को समर्पित करे। तत्पश्चात् पाद्य से पुष्प सहित जल निकाल कर देवाधिदेव के पैर को सिञ्चित करे। तदनन्तर वस्त्र से पैर पोंछकर आचमनीय प्रदान करे ॥ ३८-३९ ॥

अर्घ्यादिदत्तशिष्टानि क्षिपेत् पात्रान्तरे तदा।
चन्दनं माल्यदानं च धूपं दीपं दिशेत् ततः ॥ ४० ॥
पुनराचमनीयं च मुखवासमतः परम्।
ताम्बूलं च निवेद्याथ प्रणम्यात्मनिवेदनम् ॥ ४१ ॥

अर्घ्यादि देने के अनन्तर जो जल बचे उसे दूसरे पात्र में रख देना चाहिए फिर चन्दन, माल्यदान, धूप और दीप प्रदान करे। फिर आचमनीय प्रदान करे। मुख में सुगन्धित द्रव्य तथा ताम्बूल प्रदान करे। तदनन्तर प्रणाम कर आत्मनिवेदन करे। यहाँ तक अर्घ्यदान की विधि कही गई ॥ ४०-४१ ॥

स्नानासनं द्वितीयम्

विधाय स्नानपीठं तु गन्धपुष्पादिनार्चयेत्।
विज्ञाप्य पादुके दत्त्वा देवे स्नानासनं गते ॥ ४२ ॥
वस्त्रभूषणमाल्यानि व्यपनीय ततः परम्।
स्नानार्थं शाटिकां दद्यात् पाद्यमाचमनीयकम् ॥ ४३ ॥
पादपीठप्रदानं च दन्तकाष्ठं दिशेत् ततः।
जिह्वानिर्लेखनं चैव मुखशोधमथो दिशेत् ॥ ४४ ॥

अब दूसरे स्नान आसन की विधि कहते हैं। भगवान् के स्नान के लिए आसन निर्माण कर उसे गन्धपुष्पादि द्वारा समर्चित करे। फिर पादुका देकर जब भगवान् स्नानासन के पास चले जावें तब उनका वस्त्र, आभूषण एवं माल्य शरीर से उतार कर स्नान के लिए धोती आदि वस्त्र समर्पित करे। फिर पाद्य, आचमनीय तथा बैठने के लिए आसन प्रदान कर दन्त काष्ठ (दतुअन) प्रदान करे। फिर जिह्वा छीलने के लिए जिह्वालेखन देकर मुख शुद्ध करने के लिए कुल्ली करावे ॥ ४२-४४ ॥

पुनराचमनीयं च तथादर्शोपदर्शनम्।
पुनस्ताम्बूलदानं च तैलाभ्यङ्गमतः परम्॥ ४५ ॥
उद्वर्तनविधानं च दानमामलकस्य च।
तोयदानं ततः कुर्यात् कङ्कतप्लोतमेव च॥ ४६॥
ततो विदद्याद् देवस्य देहशोधनशाटिकाम्।
हरिद्रालेपनं कुर्यात् प्रक्षालनमतः परम्॥ ४७ ॥

फिर आचमन के लिए जल दे कर आदर्श (शीशा) दिखावे। फिर ताम्बूल प्रदान कर तैलाभ्यङ्ग प्रदान करे और उबटन लगावे। फिर आमलक प्रदान कर जल देवे। कङ्घे से बाल झाड़े, फिर देह पोछने के लिए रूमाल या अंगोछा देवे, हरिद्रालेपन कर पुनः उसे धो देवे॥ ४५-४७ ॥

वस्त्रोत्तरीयके दद्यादुपवीतं तथैव च।
पाद्याचमनके कुर्याद् विचित्रं चन्दनं तथा॥ ४८ ॥
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमाचमनं तथा।
नृत्तवादित्रगीतादिसर्वमङ्गलसंयुतम् ॥ ४९ ॥
अभिषेकं ततः कुर्यान्नीराजनविधिं ततः।
प्लोतवस्त्रोत्तरीये च उपवीतमतः परम्॥ ५० ॥

फिर पहनने के लिए वस्त्र एवं उत्तरीय देवे तथा यज्ञोपवीत धारण करावे और पाद्य आचमनीय देकर चित्र-विचित्र चन्दन लगाये। फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं आचमन देवे। नृत्य, बाजा और सङ्गीतादि से युक्त उनका अभिषेक करे, आरती उतारे, फिर वस्त्र उत्तरीय प्रदान कर पश्चात् यज्ञोपवीत प्रदान करे॥ ४८-५०॥

तृतीयमलङ्कारासनम्

तत आचमनीयं च दत्त्वा देवाय देशिकः।
अलङ्कारासनं पश्चादभ्यर्च्य प्रोक्षणादिना॥ ५१ ॥
विज्ञाप्य पादुके दत्त्वा देवे विष्टरमाश्रिते।
अर्घ्यादीन्यथ पात्राणि पूर्ववत् कल्पयेत् ततः॥ ५२ ॥

फिर देशिक देवाधिदेव को आचमन देकर प्रोक्षण कर अलङ्कारासन की अर्चना करे। फिर पादुका प्रदान करे। जब भगवान् बिस्तर (आसन) पर बैठ जावें तब पुनः अर्घ्यादि पात्र पूर्ववत् स्थापित करे॥ ५१-५२ ॥

अर्घ्यं पाद्यं ततो दद्यात् तत आचमनीयकम्।
गन्धवच्चन्दनाद्यैश्च द्रव्यैश्चार्घ्यादिकं चरेत्॥ ५३ ॥

फिर अर्घ्य तथा पाद्य देकर आचमन करावे। तदनन्तर सुगन्धित चन्दन एवं पूर्वोक्त द्रव्यादि युक्त (द्र० २८.३४) अर्घ्य प्रदान करे॥ ५३ ॥

ततश्चित्राणि वासांसि प्रयच्छेद् भूषणानि च।

यज्ञोपवीतदानं च तत आचमनीयकम् ॥ ५४ ॥

तदनन्तर विचित्र विचित्र प्रकार के वस्त्र एवं आभूषण प्रदान करे तत्पश्चात् यज्ञोपवीत तथा आचमन प्रदान करे ॥ ५४ ॥

गन्धपुष्पप्रदानं चाप्यादर्शस्य प्रदर्शनम् ।
धूपदीपौ तथा दद्यात् पुनराचमनीयकम् ॥ ५५ ॥

गन्धपुष्प देकर आदर्श प्रदर्शित करे । तदनन्तर धूप एवं दीप देकर पुनः आचमन प्रदान करे ॥ ५५ ॥

ततः स्तोत्रं जपेच्छत्रचामराणां प्रदर्शनम् ।
दर्शनं वाहनानां च ततः शङ्खरवं तथा ॥ ५६ ॥

फिर स्तोत्र का पाठ करे । छत्र चामर प्रदर्शित करे और वाहन (सवारी) दिखा कर शङ्ख ध्वनि करे ॥ ५६ ॥

वीणाकाहलभेर्यादिनिनादश्रावणं तथा ।
नृत्तवादित्रगीताद्यैरर्चयेन्मन्त्रतस्ततः ॥ ५७ ॥

वीणा, काहल (ढोल) और भेरी (नगाड़े) का शब्द सुनावे और नाच-गाना, बजाना करने के पश्चात् मन्त्र द्वारा अर्चन करे ॥ ५७ ॥

मूलमन्त्रेण दद्यात्तु पुष्पं देवाय देशिकः ।
पुष्पाञ्जलिं प्रतिदिशं प्रदक्षिणपुरःसरम् ॥ ५८ ॥

फिर आचार्य मूल मन्त्र पढ़कर देवाधिदेव को पुष्प प्रदान करे । पुनः प्रदक्षिण क्रम से प्रत्येक दिशाओं में पुष्पाञ्जलि प्रक्षिप्त करे ॥ ५८ ॥

दत्त्वा पुनः प्रणम्याथ स्तोत्रैर्देवं स्तुवीत वै ।
स्वमात्मानं भगवते किङ्करत्वाय वेदयेत् ॥ ५९ ॥

पुनः प्रणाम कर देवाधिदेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करे और अपने को किङ्कर रूप में भगवान् को समर्पित करे ॥ ५९ ॥

ततो ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं यथाशक्ति समाहितः ।
आचार्यं गन्धपुष्पाद्यैः समभ्यर्च्य मुने ततः ॥ ६० ॥
सर्वभोगैस्तु सम्पूर्णान् मन्त्रांस्तस्मै निवेदयेत् ।
मुखवासं ततो दद्यात् ताम्बूलं चार्घ्यमेव च ॥ ६१ ॥

फिर ध्यान कर एकाग्रचित्त हो यथाशक्ति मन्त्र का जप करे । तदनन्तर गन्ध पुष्पादिकों से आचार्य की अर्चना करे । फिर सम्पूर्ण भोगों से युक्त मन्त्र प्रदान कर मुखवास ताम्बूल एवं अर्घ्य समर्पित करे ॥ ६०-६१ ॥

चतुर्थं भोज्यासनम्

भोज्यासनमथाभ्यर्च्य देवं विज्ञाप्य पादुके ।

दद्यात् तत्रोपविष्टेऽस्मिन् पाद्यमाचमनं ततः ॥ ६२ ॥

अब भोज्यसान की अर्चना बतलाते हैं। भोज्य आसन (भोजन के लिए आसन पीढ़ा) की अर्चना कर भगवान् को पादुका (= पीढ़ा) प्रदान करे। जब भगवान् पीढ़ा पर बैठ जावें तब पाद्य एवं आचमन प्रदान करे ॥ ६२ ॥

अर्हणं च ततः कृत्वा दध्याज्यक्षीरमाक्षिकान्।
गन्धं च पात्रे निक्षिप्य शोषणादिकमाचरेत् ॥ ६३ ॥
सम्प्रोक्ष्यार्घ्यजलेनैव मधुपर्कमथो दिशेत्।
ततो दद्यात् सुवर्णं च गां च रत्नानि पूजकः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार पूजा करने के पश्चात् दधि, घृत, दूध, माक्षिक (मधु) एवं गन्ध किसी पात्र में रख कर शोषण आदि क्रिया करे। तदनन्तर अर्घ्य जल से उसे धोकर भगवान् को मधुपर्क निवेदन करे। तदनन्तर सुवर्ण, गाय और रत्न समर्पित करे ॥ ६३-६४ ॥

हविर्निवेदनम्

सुसंस्कृतान्नमाज्यं च दधिक्षीरमधूनि च।
मूलानि मोदकान् स्निग्धान् व्यञ्जनानि फलानि च॥ ६५ ॥
यानि कालोपपन्नानि शुचीनि गुणवन्ति च।
स्वादिष्टानि प्रभूतानि हृद्यान्यन्यानि यानि च ॥ ६६ ॥
विशोध्य शोषणाद्यैस्तु सम्प्रोक्ष्यार्घ्यजलेन तु।
विधाय रक्षामस्त्रेण हविरर्हणपूर्वकम् ॥ ६७ ॥
मुद्रां तु सुरभिं कृत्वा देवायैतन्निवेदयेत्।
अनुवासं ततो दद्याद् दर्पणं च ततः परम् ॥ ६८ ॥
दद्यादाचमनीयं च हस्तमार्जनचन्दनम्।
मुखवासं च ताम्बूलं प्रदायास्मै प्रणम्य च ॥ ६९ ॥

अच्छी तरह से पकाया हुआ अन्न, घृत, दधि, क्षीर, मधु, कन्दमूल, मोदिक चिकने-चिकने व्यञ्जन, उत्तम फल, इसके अतिरिक्त उन-उन ऋतुओं में प्राप्त होने वाले पवित्र गुणकारक, स्वादिष्ट एवं हृद्य तथा अन्यान्य हविष्य पदार्थ भी शोषणादि क्रिया से शुद्धकर अर्घ्य जल से प्रोक्षित कर अस्त्र मन्त्र (हुं फट्) मन्त्र से रक्षा कर सुरभी मुद्रा दिखा कर भगवान् को निवेदित करे। फिर अनुवासन देकर दर्पण दिखावे, आचमन करा कर हाथ घुमावे और चन्दन मुखवास और ताम्बूल देकर उन्हें प्रणाम करे ॥ ६५-६९ ॥

पुनर्मन्त्रासनं पञ्चमम्

अथ मन्त्रासनं न्यस्य कूर्चेन परिमृज्य च।
गन्धपुष्पादिनाभ्यर्च्य दद्याद् विज्ञाप्य पादुके ॥ ७० ॥
तथाधिरूढे देवेशे माल्यादिकमपोह्य तु।
पाद्याचमनके दत्त्वा ततो धूपं निवेदयेत् ॥ ७१ ॥

इसके अनन्तर कूर्च (कुशों) के समूह से मन्त्रासन का न्यास करे। फिर गन्ध पुष्पादि द्वारा अर्चना कर पादुका सामने रखे। जब भगवान् इस प्रकार मन्त्रासन पर अधिरूढ़ हो जावें तब उनके माल्यादि को उतार कर पाद्य आचमनीय प्रदान करं धूप निवेदन करे ॥ ७०-७१ ॥

स्वादिष्ठानि फलान्यस्मै दद्यात् ताम्बूलमेव च।
गीतवादित्रनृत्ताद्यैर्देवमभ्यर्चयेत् ततः ॥ ७२ ॥
प्रदक्षिणं विधायास्मै प्रणमेद् दण्डवत् ततः।

पुनः स्वादिष्ट फल देकर ताम्बूल दे और सङ्गीत, बाजा तथा नाच द्वारा उनका अर्चन कर प्रदक्षिणा कर साष्टाङ्ग दण्डवत् करे ॥ ७२-७३ ॥

षष्ठं पर्यङ्कासनम्

अथ पर्यङ्कमभ्यर्च्य देवं विज्ञापयेत् ततः ॥ ७३ ॥
ततः पादप्रदानेन देवे पर्यङ्कमास्थिते।
पाद्यमाचमनीयं च पुनर्दत्त्वा समाहितः ॥ ७४ ॥

इसके बाद पर्यङ्क (शय्या) की पूजा कर देवाधिदेव को निवेदन करे। तदनन्तर (पादुका) प्रदान से जब भगवान् पर्यङ्कासन पर आसीन हो जावें तब एकाग्रचित्त हो पाद्य और आचमनीय प्रदान करे ॥ ७३-७४ ॥

माल्यभूषणकादीनि व्यपनीय महामते।
शयनोचितमाल्यानि भूषणान्यंशुकानि च ॥ ७५ ॥
सुखस्पर्शानि चान्यानि दद्याद्यज्ञोपवीतकम्।
दद्यादाचमनीयं च गन्धं पुष्पमथो दिशेत् ॥ ७६ ॥

तदनन्तर, हे महामते नारद! पूर्वधारित भगवान् के माल्य एवं आभूषणादिकों को दूर कर शयनोचित्त माल्य जो स्पर्श में सुखदायक हों, उन्हें समर्पित करे और साथ में यज्ञोपवीत भी दे। पुनः आचमन कराकर गन्ध तथा पुष्प प्रदान करे ॥ ७५-७६ ॥

मुखवासं च ताम्बूलं दत्त्वा स्तोत्रैः स्तुवीत तम्।
अष्टाङ्गेन प्रणामेन प्रणम्य शरणं व्रजेत् ॥ ७७ ॥
प्रदक्षिणसमेतेन देवं योगासनस्थितम्।
मनोबुद्ध्यभिमानेन सह न्यस्य धरातले ॥ ७८ ॥
कूर्मवच्चतुरः पादाञ्छिरस्तत्रैव पञ्चमम्।

मुखवास दान के पश्चात् ताम्बूल देकर अनेक स्तोत्रों से उनकी स्तुति करे। पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनकी शरण में जावे। योगासन पर स्थित भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करने की विधि इस प्रकार है—पहले प्रदक्षिणा करे। फिर मन, बुद्धि तथा अभिमान के साथ दोनों हाथ तथा दोनों पैरों को कछुए के समान पृथ्वी पर रख कर शिर सहित भगवान् को प्रणाम करे ॥ ७७-७९ ॥

दास्यप्रार्थना

अज्ञानादथवा ज्ञानादशुभं यत् कृतं मया ॥ ७९ ॥
क्षन्तुमर्हसि तत् सर्वं दास्येन च गृहाण माम् ।
एवमाराधनं कुर्यादुभयत्र मुखे हरिम् ॥ ८० ॥

पश्चात् प्रार्थना करे कि हे भगवन् ! ज्ञान से अथवा अज्ञान से जो पाप कर्म मैंने किया है आप उसे क्षमा करे और मुझे अपना दास समझ कर अनुगृहीत करे । इस प्रकार उभयत्र (नृसिंह एवं विष्णु) रूप वाले श्रीहरि की आराधना करे ॥ ७९-८० ॥

एवमनुष्ठितस्याराधनस्य मोक्षसाधनत्वम्

सुदर्शनं नृसिंहं च विष्णुरूपं सुदर्शनम् ।
समाराधयतस्त्वेवमेकाहमपि नारद ॥ ८१ ॥
मुक्तिः करे स्थिता तस्य सर्वे कामाश्च किं पुनः ।

हे नारद ! सुदर्शन युक्त नृसिंह की अथवा विष्णु रूप मात्र सुदर्शन की जिसने इस प्रकार एक दिन पर्यन्त भी आराधना की उसके हाथ में मुक्ति स्थित हो जाती है । अन्य कामनाओं की तो बात ही क्या है? ॥ ८१-८२ ॥

आनुषङ्गिकफलसाधनत्वं कैमुतिकम्

अनेन लोकपालाश्च सर्वे देवगणास्तथा ॥ ८२ ॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च नागाश्चाप्सरसां गणाः ।
सर्वे वश्या भवन्तीह किं पुनर्भुवि मानवाः ॥ ८३ ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डाश्च विनायकाः ।
प्रेष्यास्तस्य भविष्यन्ति साधकस्य महात्मनः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार की आराधना से सभी लोकपाल एवं सभी देवगण, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, नाग एवं अप्सराओं के समूह भी वशीभूत हो जाते हैं फिर पृथ्वी में रहने वाले मनुष्यों की बात ही क्या? भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड तथा विनायक सभी उस महात्मा साधक के किङ्कर बन जाते हैं ॥ ८२-८४ ॥

परिवाराद्यर्चनविधिः

तथास्य परिवाराणां देवानां शक्तियोषिताम् ।
मन्त्राणामस्त्रशस्त्राणां स्वैः स्वैर्नामभिरर्चनम् ।
नमोऽन्तैरुपचारैश्च कुर्यात् षोडशभिः क्रमात् ॥ ८५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां भगवदाराधनविधि-निरूपणं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १६९६ ॥

—*—

इसी प्रकार भगवान् के मन्त्र, अस्त्र तथा शस्त्रों की भी पूजा, उनके नाम के आगे चतुर्थी विभक्ति लगा कर और अन्त में नमः शब्द का उच्चारण कर षोडशोपचारों के साथ, क्रमशः करे ॥ ८५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के भगवदाराधन विधि निरूपण नामक अट्ठाइसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २८ ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

काम्याराधनविधिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पापसमूहों को नष्ट कर देता है । हम उन सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

भगवदाराधनस्यानुषङ्गिकफलसाधनत्वकथनताप्रश्नः

नारदः—

एतदाराधनैः कस्य कथं देवादयः सुराः ।
अन्ये चोक्ता वशं यान्ति तन्मे ब्रूहि यथातथम् ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—किसके द्वारा और किस प्रकार की आराधना से देवतादि सुरगण वशीभूत हो जाते हैं? हे अहिर्बुध्न्य ! उसे यथार्थ रूप से मुझसे कहिये ॥ १ ॥

तत्प्रतिवचनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

क्षत्रियस्य विशेषेण जयार्थित्वान्महामुने ।
येनार्चनविशेषेण विश्वे वश्या भवन्ति हि ॥ २ ॥
शृणुष्व तं समासेन कथयामि यथातथम् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महामुने ! जय की इच्छा करने वाले क्षत्रिय का ही उसमें विशेष अधिकार है । उन्हीं के विशेष आराधन से सारा विश्व वशीभूत हो जाता है । अब उस अर्चाविधि को आप सुनिए । मैं जैसी विधि है उसी प्रकार से संक्षेप में कह रहा हूँ ॥ २-३ ॥

तत्तदाराधनविशेषाणां तत्तद्दिग्विजयसाधनत्वम्

यदीच्छेद्विजयं दिक्षु सर्वासु च महीपतिः ॥ ३ ॥
आराधनविशेषैस्तु तत्तद्विजयमाप्नुयात् ।

यदि राजा सभी दिशाओं में अपनी विजय चाहता है तो वह तत्तद्दिशाओं के विजय के लिए विशेष-विशेष आराधन कर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ ३-४ ॥

तत्र प्राचीदिग्विषये

नृपेभ्यो विजयाकाङ्क्षी प्राच्येभ्यश्चेन्महीपतिः ॥ ४ ॥
आराधयेद्विशिष्टैस्तु द्रव्यैर्देवं सुदर्शनम् ।
सितपुष्पैः सितैर्वस्त्रैरङ्गरागैः सितैरपि ॥ ५ ॥
शाल्योदनैश्च दध्याढ्यैरर्चयित्वा सुदर्शनम् ।
मण्डपे मण्डिते शुद्धे पूर्वोक्ते देवसन्निधौ ॥ ६ ॥
प्रासादलक्षणे कुण्डे चतुष्कोणपरिस्तृते ।
तत्र वह्निमथादाय काष्ठैः प्रज्वाल्य बैल्वकैः ॥ ७ ॥
आसीनः प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिस्तत्र समाहितः ।
तस्मिन् फलानि बैल्वानि सर्पिःसिक्तानि नारद ॥ ८ ॥
नियुतं मूलमन्त्रेण जुहुयाज्ज्वलितेऽनले ।
होमैरेभिः समुद्रान्ता प्राची वश्या भवेन्मही ॥ ९ ॥

यदि राजा पूर्व दिशा के राजाओं पर विजय प्राप्त करना चाहता है तो वह विशिष्ट द्रव्यों से सुदर्शन की आराधना करे। इस प्रकार सफेद पुष्पों, सफेद वस्त्रों, सफेद अङ्गरागों एवं दधि से युक्त शालिधान्य के ओदनों से सुदर्शन की अर्चना करे। पूर्वोक्त क्रम से कहे गए महामण्डित शुद्ध मण्डप में, जहाँ देवता का स्थापन किया गया हो, ऐसे प्रासाद में बनाये गए चतुष्कोण युक्त कुण्ड में अग्नि स्थापन करे। बिल्व की लकड़ी से उसे प्रज्वलित करे। इसके बाद अत्यन्त पवित्रतापूर्वक पूर्वाभिमुख बैठ कर उस कुण्ड में घृत से संसिक्त बिल्वफलों से मूल मन्त्र द्वारा जलती हुई अग्नि में दश लाख होम करे। इस प्रकार के होम से पूर्व दिशा की समुद्रान्ता सारी मही उसके वश में हो जाती है ॥ ३-९ ॥

फलानां कोटिहोमेन बैल्वानां वशमेष्यति ।
प्लक्षद्वीपस्य देशस्तु प्राच्यः सह महीपतिः ॥ १० ॥
कोटिद्वयेन चैतेषां शाल्मलो वशमेष्यति ।
देशः प्राच्यः सभूपालः स्वदेश इव नारद ॥ ११ ॥
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करद्वीपसंज्ञितः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्कैः प्राच्याः क्रमेण वै ॥ १२ ॥
कोटीनां फलहोमानां वशं यास्यन्ति भूपतेः ।
द्वीपानामपि चैतेषां प्राची माधवती पुरी ॥ १३ ॥
दशकोट्या तु होमानां वशं यास्यति सा ध्रुवम् ।
पालनार्थं तु लोकानामेकेनांशेन वासवः ॥ १४ ॥
तत्रैव वर्तते सोऽपि साहाय्यं तस्य यास्यति ।

बिल्व फलों द्वारा किये गए करोड़ों होम से प्लक्ष का देश राजा सहित साधक के वश में हो जाता है। राज्य से क्रमशः, हे नारद! पूर्व के जितने भी देश कुश, क्रौञ्च, शाक एवं पुष्कर द्वीप हैं ये सभी एक, दो, तीन-चार, पाँच और छः करोड़ की सङ्ख्या में

होम से स्वदेश के समान उस राजा के वश में हो जाते हैं। इन सभी द्वीपों से पूर्व में रहने वाली इन्द्र की पुरी दश करोड़ सङ्ख्याक बिल्व होम से निश्चय ही वशीभूत हो जाती है। इन लोकों को पालन करने के लिए वासव भी, जो वहीं विद्यमान है वह, अपने एक अंश में रह कर उस राजा की सहायता करने वाले बन जाते हैं ॥ १०-१५ ॥

स्त्रीभिरन्नैश्च पानैश्च वाजिभिः परमैर्गजैः ॥ १५ ॥
यथा स्वस्मिन् पुरे राजा विहरत्यविशङ्कया।
चिन्तितोपनतैरेव तैर्द्रव्यै रंस्यते नृपः ॥ १६ ॥
अस्य प्रभावतः सर्वे विष्टब्धाः सर्वसागराः।
गन्तुं योग्या भविष्यन्ति स्यन्दनेन यथा स्थली ॥ १७ ॥
हारं च वासवस्तस्य चक्रवर्तित्वलक्षणम्।
सर्वरत्नमयं दिव्यमुपनेष्यति च स्वयम् ॥ १८ ॥

जिस प्रकार राजा अपने नगर में स्त्रियों के साथ अन्न से, पान से, घोड़े एवं हाथियों से युक्त होकर निःशङ्क विहार करता है उसी प्रकार वह राजा भी वहाँ अपने मनोऽभिलषित द्रव्यों को प्राप्त कर हर्षित होता है। इसके प्रभाव से समस्त सागर स्थिर हो जाते हैं और वे इस प्रकार उसके गमन के लिए सुलभ हो जाते हैं जैसे रथ द्वारा स्थल में रहने वाले सुलभ हो जाते हैं। स्वयं इन्द्र चक्रवर्तित्व लक्षण युक्त सम्पूर्ण रत्नों से जटित दिव्य हार उसे उपहार में समर्पित करते हैं ॥ १५-१८ ॥

दक्षिणदिग्विषये

दक्षिणाशाजयाशा चेदजनिष्ट महीपतेः।
पूर्वोक्ते मण्डपे देवं दक्षिणाभिमुखं नयेत् ॥ १९ ॥
रक्तमाल्याम्बरधरं रक्तचन्दनरञ्जितम्।
रक्ताम्बरधरं देवमभ्यर्च्योक्तेन वर्त्मना ॥ २० ॥
गुडौदनं हविस्तस्मै निवेद्य तिलमिश्रितम्।
अर्धचन्द्रोपमं कुण्डं कृत्वा प्रासादलक्षणम् ॥ २१ ॥
कुशैः पुष्पैश्च लाजैश्च परिष्कृतमविक्षतम्।
दक्षिणाभिमुखस्तत्र समासीनोऽग्रतो विभोः ॥ २२ ॥

यदि साधक राजा को दक्षिण दिशा जीतने की इच्छा उत्पन्न हो गई हो तो पूर्वोक्त मण्डप में देवाधिदेव सुदर्शन को दक्षिणाभिमुख स्थापित करे। रक्त वर्ण की माला एवं रक्त चन्दन से संरञ्जित तथा रक्ताम्बर धारण किये हुये उन सुदर्शन देव का पूर्वोक्त विधान से पूजन करे। तिलमिश्रित गुड और ओदन का उन्हें नैवेद्य निवेदित करे। फिर प्रासादलक्षण युक्त अर्धचन्द्र कुण्ड का निर्माण करे। उसे कुशा, पुष्प एवं लावा से विशुद्ध कर पूर्ण बनावे। फिर उन विभु के सामने दक्षिणाभिमुख बैठ जावे ॥ १९-२२ ॥

मन्त्रेण वह्निमादाय काष्ठैः प्रज्वाल्य खादिरैः।
पद्मानां चैव रक्तानां नियुतैर्होममाचरेत् ॥ २३ ॥

ततः सा दक्षिणा पृथ्वी सागरान्ता वशा भवेत् ।
सोपहाराश्च राजानस्तत्रत्या द्वारि वारिताः ॥ २४ ॥
प्रतीक्षमाणाः स्थास्यन्ति कालं तस्य महात्मनः ।
ततो दक्षिणदिग्भागे षट्सु द्वीपेषु सम्मताः ॥ २५ ॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिर्वश्याः सभूभुजः ।
रक्तपद्माहुतीनां च कोटीनां तु यथाक्रमम् ॥ २६ ॥
एषा दक्षिणतो रम्या याम्या संयमिनी पुरी ।
सा रक्तपद्महोमानां दशकोट्या वशा भवेत् ॥ २७ ॥

फिर मन्त्र द्वारा अग्नि स्थापित करे । खैर की लकड़ी से उसे प्रज्वलित करे । तदनन्तर घृताक्त १० लाख लाल कमलों का होम करे । ऐसा करने से सागरान्त दक्षिण दिशा की पृथ्वी वशीभूत हो जाती है । उस दिशा के समस्त राजा उस महात्मा के काल (=यम) का उपहार ले कर उस विजयी राजा के द्वारा ठुकराये जाने पर भी प्रतीक्षा करते हुये द्वार पर खड़े रहते हैं । इस दक्षिण दिशा के भाग क्रमशः छः द्वीपों को एक, दो, तीन, चार, पाँच और छः करोड़ रक्त पद्मों की आहुतियाँ देकर साधक राजा उन सभी द्वीपों के राजाओं को वश में कर लेता है । दक्षिण दिशा में विद्यमान सर्वतोरम्य संयमिनी पुरी दश करोड़ रक्तपद्मों के होम से वश में आ जाती है ॥ २३-२७ ॥

यमोऽपि तस्य भावेन प्रसन्नः प्रीतमानसः ।
राज्ञो मनीषितं यत् तन्नान्यथा वर्तयिष्यति ॥ २८ ॥
अकालमरणं किञ्चित् तद्देशे न भविष्यति ।
ये पुर्यां संयमिन्यां च यमस्य वशवर्तिनः ॥ २९ ॥
ते सर्वे तस्य वशगा भविष्यन्ति न संशयः ।
दिव्ये रक्ताङ्गदे रम्ये सार्वभौमत्वलक्षणे ॥ ३० ॥
यमस्तु स्वयमादाय प्रीतस्तस्मै प्रयच्छति ।

स्वयं यमराज भी उस विजयी राजा के घर प्रसन्नतापूर्वक रहकर उसकी सारी अभिलाषायें पूर्ण करते हैं । उसके विरुद्ध कुछ भी व्यवहार नहीं करते । उसके राज्य में कभी किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती । यमराज के वशवर्त्ती उस संयमिनी पुरी के जितने लोग हैं वे सभी उसके वश में हो जाते हैं इसमें संशय नहीं । स्वयं यमराज भी प्रसन्नता-पूर्वक उस विजयी राजा को सार्वभौमत्व लक्षण वाले दिव्य दो रक्ताङ्गद उपहार में प्रदान करते हैं ॥ २८-३१ ॥

पश्चिमदिग्विषये

पश्चिमाशां प्रति यदा जिगीषुर्नृपतिस्तदा ॥ ३१ ॥
मण्डपेऽलङ्कृते देवं पश्चिमाभिमुखं नयेत् ।
चित्रमालाधरं चित्रैरंशुकैः समलङ्कृतम् ॥ ३२ ॥
चित्राङ्गरागैश्चित्राभिर्भूषाभिरुपशोभितम् ।

मध्वोदनं हविः कृत्वा देवायैतन्निवेदयेत् ॥ ३३ ॥

जब राजा को पश्चिम दिशा जीतने की इच्छा हो तब सब प्रकार से अलङ्कृत मण्डप में सुदर्शन देवता को पश्चिमाभिमुख स्थापित करे। वे देव चित्रमाला धारण करने वाले चित्र वस्त्र पहने हुये चित्रवर्ण का अङ्ग राग तथा चित्र वर्ण के अलङ्कारों से सुसज्जित होकर, उनको मधु संयुक्त ओदन बना कर भोग लगावे ॥ ३१-३३ ॥

पद्मोपमानं प्रासादं कुण्डं कृत्वास्वलङ्कृतम्।
तत्राधायाग्निमासित्वा देवस्य पुरतो वशी ॥ ३४ ॥
काष्ठैः शमीमयैरग्निं प्रज्वाल्याथ समाहितः।
मध्वक्तैः करवीरैस्तु नियुतं जुहुयान्मनुम् ॥ ३५ ॥
ततः ससागरा पृथ्वी जम्बूद्वीपस्य पश्चिमा।
वर्तिष्यते वशे तस्य राज्ञः सनृपतिस्तदा ॥ ३६ ॥
करवीराहुतीनां च कोट्या कोटिद्वयेन च।
कोटित्रयचतुःपञ्चषट्कैस्ते च यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥
षड् द्वीपखण्डाः पाश्चात्त्या वशं यास्यन्ति भूपतेः।

पद्म के आकार का कुण्ड बना कर उसे सब प्रकार से अलङ्कृत करे। उस कुण्ड में अग्नि स्थापित कर उन देव के सामने बैठ जावे। पुनः शमी के काष्ठों से अग्नि प्रज्वलित कर समाहित हो मधु में डुबोये हुये करवीर पुष्पों की समन्त्रक १० लाख आहुती देवे। ऐसा करने से सागर समेत जम्बूद्वीप की पश्चिम दिशा की पृथ्वी तथा उसके राजा सभी उस साधक राजा के वश में हो जाते हैं। इसी प्रकार करवीर पुष्पों की एक करोड़ दो करोड़, तीन करोड़, चार करोड़, पाँच करोड़ एवं छः करोड़ की आहुतियाँ देने से उपर्युक्त छः द्वीपों के पश्चिमी भाग के सारे भूभाग उस राजा के वश में हो जाते हैं ॥ ३४-३८ ॥

सुखाख्या वारुणी रम्या पुरी परमभास्वरा ॥ ३८ ॥
सदा सन्निहितैर्भोज्यैर्लेह्यैः पेयैश्च पूरिता।
दिव्यपादपसंयुक्तैर्नन्दनैरुपशोभिता ॥ ३९ ॥
सदोत्फुल्लाम्बुजाढ्याभिः सरसीभिः परिष्कृता।
आक्रीडपर्वतैर्युक्ता नानारत्नविभूषितैः ॥ ४० ॥
प्रासादैर्मण्डपैस्तुङ्गैर्मण्डिता सा हिरण्मयैः।
एवंविधा पुरी तस्य राज्ञो भोग्या भविष्यति ॥ ४१ ॥
वरुणोऽपि स्वयं छत्रं मणिविद्रुमभूषितम्।
मुक्तादामभिराकीर्णममृतस्यन्दि वन्दितम् ॥ ४२ ॥
चिह्नं तच्चक्रवर्तीनां राज्ञे प्रीतः प्रदास्यति।

उसी दिशा में सुख नाम वाली परम मनोहर प्रकाश युक्त वरुण की नगरी है। वह सभी प्रकार के भोज्य, लेह्य एवं पेय पदार्थों से परिपूर्ण रहती है। नन्दन वन से जहाँ अनेक प्रकार के दिव्य पादप हैं उससे शोभित है। फूले हुये कमलों से समृद्ध वहाँ की

नदियाँ हैं। नाना रत्न विभूषित क्रीड़ा स्थलों वाले पर्वतों से परिपूर्ण, सुवर्ण निर्मित ऊँचे-ऊँचे प्रासाद एवं मण्डपों से मण्डित हैं। इस प्रकार की वह वारुणी पुरी उस राजा के भोग्य हो जाती है। वरुण भी मणि विद्रुम विभूषित मोतियों की माला से व्याप्त अमृत बिन्दु की वर्षा करने वाले छत्र को, जो चक्रवर्त्तियों का चिह्न है, प्रसन्न होकर उसे दे देते हैं ॥ ३८-४३ ॥

उत्तरदिग्विषये

उदीचीं दिशमुद्युक्तो जेतुं यदि महीपतिः ॥ ४३ ॥
चक्राब्जविष्टरे देवमुत्तराभिमुखं नयेत्।
पीताम्बराणि बिभ्राणं पीतपुष्पैरलङ्कृतम् ॥ ४४ ॥
विद्रुमाभरणैर्युक्तं कुङ्कुमक्षोदरञ्जितम्।
घृतौदनं हविः कृत्वा तेनाभ्यर्च्य सुदर्शनम् ॥ ४५ ॥

यदि राजा उत्तर दिशा को जीतने के लिए उद्यत है तो चक्र कमल के विष्टर पर देवता को उत्तराभिमुख स्थापित करना चाहिए जो पीत परिधान धारण किये हुये, पीत-पुष्पों से अलङ्कृत, विद्रुम निर्मित आभूषण धारण किये हुये तथा कुङ्कुम के अङ्गराग से रञ्जित हों। ऐसे देवता को घी तथा भात का नैवेद्य निवेदन कर उन सुदर्शन की अभ्यर्चना करे ॥ ४३-४५ ॥

कुर्यात् तस्याग्रतः कुण्डं वृत्तप्रासादलक्षणम्।
उदङ्मुखोऽग्निमाधाय कुण्डे मण्डपसंश्रिते ॥ ४६ ॥
काष्ठैरौदुम्बरैर्वह्निं प्रज्वाल्य ज्वलितेऽनले।
नन्द्यावर्तप्रसूनैस्तु नियुतं जुहुयात् पुरः ॥ ४७ ॥
तेनेदं भारतं वर्षं काञ्चनाचलसंयुतम्।
सराजकं तस्य वशे भविष्यति न संशयः ॥ ४८ ॥
लक्षद्वयेन होमानां वर्षं किंपुरुषाह्वयम्।
सभूपं भूपतेस्तस्य वशमेष्यत्यसंशयम् ॥ ४९ ॥
लक्षत्रयेण वश्यं स्याद्धरिवर्षं सराजकम्।
होमलक्षचतुष्केण भद्राश्वं वशमेष्यति ॥ ५० ॥

फिर उनके आगे गोलाकार प्रासाद लक्षण कुण्ड का निर्माण कर उत्तराभिमुख हो अग्नि स्थापन करे। फिर मण्डप के मध्य में बने उस कुण्ड में गूलर के काष्ठों से अग्नि प्रज्वलित कर जलती हुई अग्नि में नन्द्यावर्त के फूलों से १० लाख प्रथम होम करे। ऐसा करने से यह भारत वर्ष सुवर्ण शृङ्ग वाला सुमेरुपर्वत सहित उन-उन देशों के राजा के साथ वश में आ जाता है इसमें संशय नहीं। दो लाख की आहुति देने से राजा सहित किंपुरुष नामक वर्ष उस राजा के वश में हो जाता है इसमें संशय नहीं। तीन लाख के होम से राजा सहित हरिवर्ष उस राजा के अधीन हो जाता है और ४ लाख की सङ्ख्या में होम करने से भद्राश्व वर्ष उनके वश में हो जाता है ॥ ४६-५० ॥

पञ्चषट्सप्तभिर्होमलक्षाणां पृथिवीपतेः ।
इलावृतं केतुमालं रम्यकं च वशे भवेत् ॥ ५१ ॥
हिरण्मये मेरुवर्षे अष्टाभिर्नवभिस्तथा ।
वशे भविष्यतो होमलक्षाणां समहीश्वरे ॥ ५२ ॥
षण्णां प्लक्षमुखानां तु द्वीपानां भोगभूमयः ।
उक्तसङ्ख्यायुतैर्होमैर्वशमेष्यन्ति नारद ॥ ५३ ॥

पाँच लाख की आहुति से इलावृत वर्ष, छः लाख की आहुति से केतुमाल और ७ लाख की आहुति से रम्यक वर्ष राजा समेत उस राजा के अधीन हो जाते हैं । हिरण्मय और मेरुवर्ष आठ तथा नव लाख की क्रमशः आहुति देने से राजा समेत उसके वश में हो जाते हैं । इसी प्रकार प्लक्षादि छः द्वीपों की उत्तर दिशा की भूमि, उक्त सङ्ख्या से युक्त होम से, हे नारद ! उस साधक राजा के वश में हो जाती है ॥ ५१-५३ ॥

सर्वेषां द्वीपवर्षाणामुत्तरत्र पुरी वरा ।
विभावरीति विख्याता सोमस्य परमाद्भुता ॥ ५४ ॥
दशकोट्या वशे तस्य होमानां सा भविष्यति ।
ये तस्यां देवतावर्गाः सोमस्य वशवर्तिनः ॥ ५५ ॥
ते सर्वे भूपतेस्तस्य वर्तिष्यन्ते वशे मुने ।
तस्य प्रभावतः सोमः स्वयमादाय चामरे ॥ ५६ ॥
स्वज्योत्स्नासञ्चयप्रख्ये रत्नालसमन्विते ।
विश्वाधिराज्यचिह्ने ते शुभ्रे शीतलदर्शने ॥ ५७ ॥
प्रीतः प्रदास्यति श्रीमानस्मै विस्मितकर्मणे ।

विदिशां विषये

महादिशां जयात् सिद्धो विदिशां वशिनो जयः ॥ ५८ ॥
उपहारान् प्रदास्यन्ति तत्तद्दिक्पालकाः परे ।

सभी द्वीपों एवं सभी वर्षों के उत्तर में सोम राजा की विभावरी नाम की परमाद्भुत एवं श्रेष्ठ नगरी है । वह पुष्पों द्वारा दश करोड़ आहुति देने से उस साधक राजा के वश में हो जाती है । उस नगरी में सोम के वशवर्त्ती जितने भी देवगण हैं । हे मुने ! वे सभी उस राजा के वशवर्त्ती हो जाते हैं । उस राजा के प्रभाव से स्वयं श्रीमान् सोम राजा दोनों चामरों को लेकर, जिसमें उनकी अपनी समस्त किरणें सञ्चित रूप से स्थित हैं, जिसमें रत्नों का दण्ड लगा हुआ है, जो विश्वाधिराज का चिह्न है ऐसे शुभ्रवर्ण वाले दर्शन से शीतलता प्रदान करने वाले, उन दोनों चामरों को प्रसन्न होकर कर्म से आश्चर्य चकित कर देने वाले उस राजा को स्वयं प्रदान करते हैं । इस प्रकार महादिशाओं के जीत लेने के बाद वह वशी विदिशाओं (चारों कोणों) को विजित कर लेता है । इस कारण उन उन दिशाओं के दिक्पाल उसे उपहार समर्पण करते हैं ॥ ५४-५९ ॥

ऊर्ध्वलोकस्य विषये

ऊर्ध्वलोकजयोद्योगो यद्यवर्तिष्ट भूपतेः ॥ ५९ ॥
देवं मण्डपरत्ने तु प्राङ्मुखासनमर्हयेत् ।
गन्धवन्माल्यसंवीतं मुक्ताभूषणभूषितम् ॥ ६० ॥
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं क्षौमैः कल्पितवाससम् ।
एवमभ्यर्च्य विधिना पायसं खण्डसंमितम् ॥ ६१ ॥
आज्याढ्यं हविरावेद्य सर्वपक्वफलान्वितम् ।
प्रासादकुण्डमष्टाश्रं सर्वमङ्गलसंयुतम् ॥ ६२ ॥
कारयित्वास्त्रमन्त्रेण वह्निमादाय मन्त्रवित् ।
कृष्णागुरुमयैः काष्ठैर्ज्वलयेज्जातवेदसम् ॥ ६३ ॥
तत्राज्यहोमं कुर्याद्वै शतकोटिसमन्वितम् ।
अन्तरिक्षं ततस्तेन होमेन वशमेष्यति ॥ ६४ ॥

विजिगीषु राजा को ऊर्ध्वलोक के विजय की इच्छा हो तो वह ऐसा उद्योग करे कि सुदर्शन देव को पूर्वभिमुख रत्न मण्डप में आसन देकर पधरावे जो गन्धयुक्त माल्यों को धारण किये हों और मोती के आभूषण से अलङ्कृत हों। दिव्य चन्दन जिनके श्रीअङ्गों में अनुलिप्त हो, जो रेशमी परिधान धारण किये हों, इस प्रकार उनकी अर्चना कर खण्ड एवं घृतमिश्रित हवि एवं सभी प्रकार के पके फलों का नैवेद्य समर्पित करे। फिर आठ कोणों वाले सम्पूर्ण मङ्गल द्रव्यों से सुसज्जित कुण्ड का निर्माण करवा कर अस्त्र मन्त्र (हुं फट्) द्वारा अग्नि स्थापन कर काले अगुरु द्वारा उस अग्नि को प्रज्वलित करे। फिर उसमें १०० करोड़ की सङ्ख्या में आहुति देवे। ऐसा करने से समस्त अन्तरिक्ष उस राजा के वश में हो जाता है ॥ ५९-६४ ॥

तल्लोकवासिनः सर्वे सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ।
यक्षाः किंपुरुषाश्चैव चारणाः साङ्गनागणाः ॥ ६५ ॥
वीणावेणुमृदङ्गैश्च वाद्यैस्तालैश्च सर्वशः ।
तस्यापदानचरितगर्भा भोगवलीः पराः ॥ ६६ ॥
गायन्तः परिवार्यैनं हर्षयिष्यन्ति भूपतिम् ।
कोटिकोट्या तु होमानां स्वर्गो वश्यो भविष्यति ॥ ६७ ॥
तत्र देवैर्महेन्द्रोऽपि देव्या शच्या समन्वितः ।
आरुह्यैरावतं नागमप्सराणां गणैः सह ॥ ६८ ॥
तमभ्येत्य महात्मानमवरुह्य मुदान्वितः ।
मणिपीठं समारोप्य वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥ ६९ ॥

उस लोक में रहने वाले सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष एवं किंपुरुष और चारण गण अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ वीणा वेणु मृदङ्गादि वाद्यों से नाना प्रकार के सभी विजयी तालों से उसके निर्दोष चरित्र से युक्त (भोगबली ?) सर्वोत्कृष्ट का गान करते हुये उस

राजा को हर्षित करते रहते हैं। करोड़ का करोड़ आहुतियों के प्रदान से स्वर्ग भी उसके वश में हो जाता है। वहाँ महेन्द्र देवताओं एवं अपनी स्त्री शची के साथ नागों एवं अप्सरागणों को साथ में लेकर ऐरावत पर सवार हो उसकी अगवानी करने के लिए प्रसन्नता पूर्वक ऐरावत से स्वयं उतर कर मणिमय आसन पर उसे बिठा कर उसके लिए मङ्गल पाठ करवाते हैं ॥ ६५-६९ ॥

नृत्तैर्गीतैश्च वाद्यैश्च दिव्यदुन्दुभिनिस्वनैः।
शङ्खकाहलनादैश्च सह तीर्थाहृतैर्जलैः।
वासवश्चक्रवर्तित्वे राजानमभिषेक्ष्यति ॥ ७० ॥
मणिमुकुटमथास्मै वारणं दिव्यमेकं
हयमनिलसमानं पुष्पकाभं विमानम्।
सरसिजपरिक्लृप्तां काञ्चनीं दिव्यमाला-
मपि च हरुषजुष्टो दास्यति स्वात्मसाम्यम् ॥ ७१ ॥
हयमेधशतेन याजयित्वा
नृपतिं सर्वमहीपतिं विधाय।
शतमप्सरसः प्रदाय तस्मै
त्रिदिवं यास्यति वृत्रहा सदेवः ॥ ७२ ॥

तदनन्तर नृत्य, गीत, बाजे, नगाड़े के शब्दों शङ्ख, मृदङ्ग के नादों के साथ तीर्थों द्वारा लाये गए जल से उसका चक्रवर्तित्व पद पर अभिषेक करते हैं। फिर उसे मणिजटित मुकुट, दिव्य हाथी, वायु के समान वेगवान् घोड़ा, पुष्पक के समान विमान, कमलों से अलङ्कृत काञ्चनी दिव्यमाला (हरुषजुष्ट ?) देकर उसे अपने समान बना देते हैं। फिर उससे १०० अश्वमेध यज्ञ कराकर सबका राजा बना कर १०० अप्सरायें उसे भेंट करते हैं। ऐसा कर वे वृत्र का वध करने वाले इन्द्र स्वर्ग लौट जाते हैं ॥ ७०-७२ ॥

नागलोकस्य विषये

नागलोकेषु जाता चेज्जिगीषा चक्रवर्तिनः।
पद्मरागमयैर्दिव्यैर्भूषणैरुपशोभितम् ॥ ७३ ॥
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गं देवं पद्मैः समर्चयेत्।
पिष्टौदनं गुडाढ्यं च हविस्तस्मै निवेद्य च ॥ ७४ ॥
प्रासादलक्षणे कुण्डे षट्कोणे ज्वलितानले।
अपूपानां तु कोटीनां कोट्या होमं समाचरेत् ॥ ७५ ॥
तेन तक्षकमुख्यानां नागानां परमा पुरी।
वश्या भवेद्भोगवती स्वपुरीवास्य भूपतेः ॥ ७६ ॥

चक्रवर्त्तित्व पद पर स्थित उस राजा के मन में यदि नागलोक के विजय की इच्छा हो तो पद्मराग मणियों से निर्मित दिव्य भूषणों से सुसज्जित, रक्तचन्दन से अनुलिप्त देवाधिदेव सुदर्शन की कमलों से पूजा कर उन्हें गुड़ से मिश्रित, पिष्ट ओदन का नैवद्य

समर्पित करे। फिर प्रासाद लक्षण के षट्कोण कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित कर करोड़ अपूपों की करोड़ सङ्ख्या में आहुति प्रदान करे। ऐसा करने से मुख्य तक्षक नागों की सर्वोत्कृष्ट भोगपुरी उसके वश में होकर अपनी पुरी के समान हो जाती है ॥ ७३-७६ ॥

तस्य प्रभावमवलोक्य स नागराजो
रत्नानि भास्वरतराणि महान्ति भान्ति।
द्वे कुण्डले मणिमये च सहाङ्गनाभि-
रादाय सत्यमुपयास्यति सार्वभौमम् ॥ ७७ ॥

उसकी तेजस्विता देख कर वहाँ के राजा नागराज अत्यन्त चमकदार, दीप्तियुक्त, नाना प्रकार के रत्नों के सहित, मणिमय दो कुण्डलों की एवं स्त्रियों सहित उस सार्वभौम लक्षण युक्त राजा की अगवानी कर उपहार में सत्यतः उसे भेंट दिया करते हैं ॥ ७७ ॥

सामान्यपरिभाषा

उक्तानामप्यनुक्तानां शृणु नारद लक्षणम्।
सामान्यं येन सिद्धिः स्यादीप्सितार्थस्य मन्त्रिणः ॥ ७८ ॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टनवात्मकाः।
विहारास्त्रिचतुःपञ्च समुखान्तायतोच्छ्रिताः ॥ ७९ ॥
दिग्विदिक्षु तथा मध्ये नवकाः परिकीर्तिताः।
दिक्षु मध्ये तथा पञ्च शेषाः प्राङ्मुखपङ्क्तयः ॥ ८० ॥

हे नारद! जिसे हमने कहा है और जिसे नहीं कहा है तथा मन्त्रज्ञ साधक की जिससे सिद्धि होती है, उसके सामान्य लक्षणों को सुनिए। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ एवं नौ विहार (परिक्रमा स्थान) की रचना करनी चाहिए अथवा तीन, चार, एवं पाँच की रचना करनी चाहिए, जिनके मुख (अग्रभाग) सुन्दर हों जो लम्बे तथा ऊँचे हों। दिशाओं में एवं उनके कोणों ८वाँ तथा ९ वाँ मध्य में बनवाना चाहिए अथवा दिशाओं के मध्य में पाँच शेष चार पूर्वाभिमुख पङ्क्तिरूप में होना चाहिए ॥ ७८-८० ॥

एकद्व्यादियुगाश्चैव शान्तिपुष्ट्योः प्रकीर्तिताः।
एकत्र्याद्ययुजश्चैव क्षुद्रेषु नवकं विना ॥ ८१ ॥
पलाशौदुम्बराश्वत्थखदिराद्याश्च यज्ञियाः।
दूर्वाद्याश्च तिलाद्याश्च प्रशस्ताः शुभकर्मणि ॥ ८२ ॥
कारस्करादयः क्षुद्रे कटुबीजादयस्तथा।
सहस्राद्या लक्षमध्याः कोट्यन्ता होमजातयः ॥ ८३ ॥
एको द्वौ बहवो वापि यथदर्ध्या ऋत्विजः स्मृताः।
एकस्मिन् वह्निकुण्डे चेज्जुहुयुः प्रागुदङ्मुखाः ॥ ८४ ॥
वासुदेवालयोद्यानमन्दिरेषु शुभा क्रिया।
अशुभा तु श्मशानादावथ कालविधिक्रमः ॥ ८५ ॥
युक्षु कुर्याद् दिनर्क्षेषु शुभामन्यामथान्यथा।

व्यस्तैरथ समस्तैर्वा यद्वा कामविकल्पितैः ॥ ८६ ॥

शान्ति एवं पुष्टिकर्म में एक-एक के बाद दो-दो सम सङ्ख्या में बनवाना चाहिए। क्षुद्र कर्म में नव को छोड़कर १, ३ आदि विषम सङ्ख्या में बनवाना चाहिए। पलाश, उदुम्बर, अश्वत्थ तथा खदिरादि वृक्षों के काष्ठ यज्ञिय कहे गए हैं। दूर्वादि एवं तिलादि शुभ कर्म में प्रशस्त कहे गए हैं। क्षुद्र कार्य के लिए कारस्करादि वृक्ष, जो कटुबीज वाले हैं, वे ग्राह्य हैं। एक-एक सहस्र का सामान्य होम, एक लक्ष का मध्य होम और एक करोड़ का होम उत्कृष्ट होम है। एक दो अथवा तीन अथवा जैसी समृद्धि हो उसके अनुसार उससे भी अधिक ऋत्विक वरण का विधान है। ये सभी एक वह्निकुण्ड में पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर हवन कर सकते हैं। शुभ कार्य के लिए विष्णु मन्दिर, विष्ण्वालय या विष्णु उद्यान के स्थान प्रशस्त कहे गए हैं। अशुभ कार्यों के लिए श्मशानादि स्थान का विधान है। इसी प्रकार शुभ कार्य शुभ दिनों में तथा अशुभ कार्य क्रूर दिनों में करने का विधान है। कार्य के गौरव और लाघव के अनुसार उसे बृहत् तथा संक्षेप रूप में करना चाहिए। इस प्रकार काम को विकल्प के अनुसार प्रयोग व्यस्त (बड़ा) और समस्त (संक्षेप) में करना चाहिए ॥ ८१-८६ ॥

समिदाज्यादिभिर्लक्षकोटिहोमादयः स्मृताः।
एवमभ्यूह्य कुर्वीत मन्त्रेणेष्टस्य साधनम् ॥ ८७ ॥
अनुक्तमिव यत् किंचित् तान् स्वगृह्योक्तमाचरेत्।
अपूर्वो वा भवेद्धोमो नाघारादिसमन्वितः ॥ ८८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां काम्याराधनविधि-
निरूपणं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥
॥ आदितः श्लोकाः १७८४ ॥

समिधा तथा घी की आहुति सङ्ख्या में लक्ष होने पर लक्ष होम और करोड़ सङ्ख्या में होने पर कोटि होम कहा जाता है। साधक अपने मन से इन सब बातों का विचार कर मन्त्र द्वारा इष्टसाधन करे। जो बात यहाँ नहीं कही गई है उसे अपने गृह्यसूत्र के अनुसार आचरण करे क्योंकि अपूर्व होम आघार की आहुति के बिना नहीं करना चाहिए ॥ ८७-८८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के काम्या-
राधनविधिनिरूपण नामक उन्तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

अस्त्राणां जन्मनामनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार ध्यान करते ही अनेक जन्मों के करोड़ों पापपुञ्जों को विनष्ट करता है हम सुदर्शन देव के उन अरों का ध्यान करते हैं ।

ब्राह्माद्यस्त्राणां देवपरिवारत्वकथनाप्रश्नः

नारदः—

कथं ब्रह्मास्त्रमुख्यानां महतां शक्तिशालिनाम् ।
अस्त्राणामप्रमेयाणां देवस्य परिवारता ॥ १ ॥

तेषां जन्मनामप्रश्नः

कस्मादेतानि जातानि महास्त्राणि महेश्वर ।
अमीषां कानि नामानि तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ २ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! अत्यन्त शक्तिशाली महान् से महान् अप्रमेय बल वाले ब्रह्मास्त्रादि अस्त्रों को भगवान् की परिवारता किस प्रकार हुई ? फिर हे महेश्वर ! ये महान् अस्त्र किससे उत्पन्न हुये और उनके नाम क्या-क्या हैं? उसे मैं आपसे पूछ रहा हूँ कृपा कर बताइये ॥ १-२ ॥

तत्प्रतिवचनार्थमाख्यायिकारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

पुरा नारायणो देवः स्वयमेव व्यवस्थितः ।
प्राक् सृष्टेर्न रतिं लेभे लीलोपकरणादृते ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—पूर्व काल में भगवान् नारायण देव अकेले ही थे । सृष्टि न थी । इसलिए किसी लीलोपकरण के रहने से उन्हें आनन्द नहीं हुआ ॥ ३ ॥

लीलार्थं भगवतो बहुभवनम्

ततो लीलार्थमात्मानं बह्वकल्पयदीश्वरः ।

पुरुषाधिष्ठितप्रधानसृष्टिः

अथ प्रधानमसृजत् पुरुषाधिष्ठितं स्वतः ॥ ४ ॥

फिर उन ईश्वर ने लीला के लिए अपने को बहुत रूपों में निर्मित किया। उन्होंने स्वतः अपने से ही पुरुषाधिष्ठित प्रधान तत्त्व की रचना की ॥ ४ ॥

प्रधानान्महतः सृष्टिः

ततो महान्तमव्यक्ताज्जनयामास नारद।

महतोऽहङ्कारसृष्टिः

गुणत्रयात्मकं तस्मादहङ्कारमतः परम् ॥ ५ ॥

फिर, हे नारद! उन्होंने उस अव्यक्त से महत्तत्त्व की रचना की। फिर उस महत्तत्त्व से गुणत्रयात्मक अहङ्कार की रचना की ॥ ५ ॥

सात्त्विकाहङ्कारादेकादशेन्द्रियसृष्टिः

इन्द्रियाणि दशैतानि ज्ञानकर्मात्मकानि वै।
मनश्च सात्त्विकात् तस्मादहङ्कारादजीजनत् ॥ ६ ॥

फिर उन्होंने उस सात्त्विक अहङ्कार से पाँच ज्ञानेन्द्रियों की और पाँच कर्मेन्द्रियों की तथा मन की रचना की ॥ ६ ॥

तामसाहङ्कारात् भूतसूक्ष्माणां भूतानां च सृष्टिः

भूतानि भूतसूक्ष्माणि दशैतानि महामुने।
असृजत् तामसात् तस्मादहङ्काराज्जनार्दनः ॥ ७ ॥

फिर, हे महामुने! उन्होंने उस तामस अहङ्कार से पञ्चमहाभूतों की और पञ्च-तन्मात्राओं की उत्पत्ति की ॥ ७ ॥

सप्तावरणवेष्टिताण्डसृष्टिः

महदादिविशेषान्तैरेतैरण्डमजीजनत्।
दशोत्तरैरावरणैः सप्तभिः परिवेष्टितम् ॥ ८ ॥

इन महदादि विशेषान्त रूप दश आवरणों से तथा सप्त आवरणों से परिवेष्टित इस अण्ड की उन्होंने रचना की ॥ ८ ॥

अण्डे चतुर्मुखसृष्टिः

तस्मिन्नण्डे स्वयं विष्णुः प्रजापतिमथाकरोत्।
उच्चावचानां भूतानां कर्तारं निजशक्तिभिः ॥ ९ ॥

उस अण्ड में विष्णु ने स्वयं प्रजापति (ब्रह्मदेव) का निर्माण किया, जिन्होंने अपनी शक्तियों की सहायता से ऊँचे नीचे भूतों की सृष्टि की ॥ ९ ॥

भगवच्छक्तिभूतस्य कालस्य सृष्टौ सहकारित्वम्

हरिः स्वशक्तिरूपेण कालेन च समन्वितः।
महदादिषु सृज्येषु सृष्टिं चक्रे जगन्मयः ॥ १० ॥

जगन्मय भगवान् विष्णु ने अपने शक्तिरूप भूतकाल को सहकारी कारण बना कर महदादि सृज्यमान पदार्थों से स्वयं सृष्टि की ॥ १० ॥

चतुर्मुखव्याजेन भगवत एव विचित्रजगत्स्रष्टृत्वम्

विष्णुर्ब्रह्मापदेशेन चिदचिन्मिश्रितं जगत् ।
विचित्रं जनयामास तत्तच्छक्तिसमन्वितः ॥ ११ ॥

स्वयं विष्णु ही ब्रह्मा बन कर तत्तच्छक्तियों से युक्त हो कर चेतन एवं अचेतनात्मक मिश्रित इस विचित्र जगत् के स्रष्टा बने ॥ ११ ॥

वेदशब्देभ्य एव देवादीनां नामरूपव्याकरणम्

वेदानालोच्य भूतानां देवादीनां यमः प्रभुः ।
नामरूपे च विविधे यथापूर्वमकल्पयत् ॥ १२ ॥

सबके नियन्ता उन ब्रह्मदेव प्रभु ने वेदों की आलोचना कर अनेक प्रकार के नाम रूपों वाली सृष्टि, जैसी पूर्व कल्प में था उसको बनाया ॥ १२ ॥

आप्तकामस्यापि स्रष्टृत्वोपपत्तिः

सर्वदावाप्तसकलकामोऽपि परमेश्वरः ।
जन्तुभिर्निजसृष्टैश्च लीलारसमथान्वभूत् ॥ १३ ॥

सर्वदा अवाप्ता सकल पूर्ण काम परमेश्वर ने अपने द्वारा सृष्ट जगत् के जन्तुओं से लीलारस का अनुभव किया ॥ १३ ॥

भगवत एव पालकत्वम्

अनालोच्यैव जगतां त्रातारमपरं हरिः ।
स्वयमेवांशरूपेण पालयत्यखिलं जगत् ॥ १४ ॥

जब भगवान् ने देखा कि मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा इस जगत् का पालन करने में समर्थ नहीं है तब उन्होंने स्वयं ही अपने अंश से इस सृष्टि का पालन किया ॥ १४ ॥

दुष्टनिरसनं विना पालनस्याशक्यत्वम्

दैतेयानां दानवानामन्तरेण निबर्हणम् ।
न शक्यते पालयितुं सदेवासुरमानवम् ॥ १५ ॥

दुष्टनिबर्हणाय भगवत एव चक्रात्मनावस्थानम्

अतश्च भगवान् विष्णुश्चक्ररूपी व्यवस्थितः ।
हन्यन्ते तेन चक्रेण विश्वे दैतेयदानवाः ॥ १६ ॥

फिर उन्होंने जब देखा कि दैत्य और दानवों के विनाश के बिना देव, असुर एवं मानव की इस सृष्टि का पालन बहुत असम्भव कार्य है तब उन्होंने चक्र सुदर्शन का स्वरूप धारण किया, जिस चक्र से समस्त दैत्य और दानवों का वध होता है ॥ १५-१६ ॥

देवादीनां सुदर्शनधारणासामर्थ्यम्

देवादीनां सुराणां च विशेषाच्च महीक्षिताम् ।
न शक्यते धारयितुं सुदर्शनमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

भगवान् को स्वयं चक्र रूप में अवतरित होने से देवता, सुर तथा विशेष कर के राजाओं को भी उसके धारण करने की शक्ति नहीं है ॥ १७ ॥

शस्त्रास्त्ररूपेण तस्य विभागः

अतस्तेषां विभक्तानि विविधानि बहूनि च।
अस्त्राणि शस्त्रजातानि शत्रुनाशाय नारद॥ १८ ॥

हे नारद ! इसलिए भगवान् ने उनके धारण करने के लिए अनेक प्रकार के और बहुत से अस्त्र शस्त्रों के समूह शत्रुनाश के लिए प्रविभक्त किये ॥ १८ ॥

भगवदात्मकात् सुदर्शनादस्त्राणामुत्पत्तिः

अस्त्राणि तानि निर्जग्मुर्विष्णुरूपात् सुदर्शनात्।
अमोघानिततोऽस्त्राणि भीषणानि महान्ति च॥ १९ ॥
प्रजाः स्रष्टुं मनश्चक्रे चक्ररूपी जगत्पतिः।
स्रष्टुमस्त्राणि सर्वाणि स्वस्माद्रूपान्महामुने॥ २० ॥

इस प्रकार विष्णु रूप सुदर्शन से अत्यन्त भीषण एवं महान् तथा अमोघ अस्त्रों की उत्पत्ति हुई। हे महामुने ! जगत्पति जनार्दन ने चक्र रूप अपने स्वरूप से वहाँ भी सम्पूर्ण अस्त्र रूप प्रजा की सृष्टि की इच्छा की ॥ १९-२० ॥

तस्माद्देवो भीममापद्य चोग्रं रूपं पिङ्गं पिङ्गलावृत्तनेत्रम्।
दंष्ट्रानिर्यत्पावकप्लुष्टकाष्ठं भीमं केशैःपिङ्गलैर्विद्युदाभैः॥ २१ ॥

इस कारण उन देवाधिदेव ने भीम, उग्र तथा पिङ्गल वर्ण का रूप धारण किया उनके नेत्र पीले थे। उनके दाँतों से निकलती हुई अग्नि काष्ठ को भस्म करने में समर्थ थी। विद्युत् के समान पीतवर्ण के केशों से वे महाभयानक प्रतीत हो रहे थे ॥ २१ ॥

तत्र मुखजातान्यस्त्राणि

नारायणं पाशुपतं ब्राह्ममस्त्रं तथैव च।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम विष्णुचक्रं च जृम्भणम्॥ २२ ॥
कालपाशमथाग्नेयमस्त्रं हयशिरस्तथा।
प्रस्वापनं तापसं च कालास्त्रममितप्रभम्॥ २३ ॥
दण्डचक्रं कालचक्रं धर्मचक्रं तथैव च।
शैवं शूलं रौद्रमस्त्रं त्रिशूलं घोरमेव च॥ २४ ॥
अस्त्राण्येतानि मुख्यानि मुखतो जज्ञिरे विभोः।

नारायण, पाशुपत, ब्राह्म, ब्रह्मशिर, विष्णुचक्र, जृम्भण, कालपाश, आग्नेयास्त्र, हयशिर, प्रस्वापन, तापस, अमित तेजस्वी कालास्त्र, दण्डचक्र, कालचक्र, धर्मचक्र, शैवास्त्र, शूल, रौद्रास्त्र और घोर त्रिशूल इतने नाम वाले मुख्य-मुख्य अस्त्र उन भगवान् के मुख से उत्पन्न हुये ॥ २२-२५ ॥

वक्षोजातान्यस्त्राणि

सम्मोहनं तथैषीकमैन्द्रं चक्रं महाद्युति॥ २५ ॥

अशनी द्वे च शुष्कार्द्रासंज्ञितं सर्वभीषणे।
पैनाकमस्त्रं कङ्कालं कापालमतिदारुणम्॥ २६ ॥
सौर्यं वारुणपाशं च सन्तापनमरिंदमम्।
अस्त्रं वारुणमत्युग्रं धर्मपाशं तथैव च॥ २७ ॥
एतान्यस्त्राणि देवस्य निर्जग्मुर्वक्षसस्तथा।

सम्मोहन, ईषीक, ऐन्द्र, देदीप्यमान चक्र, अशनी, महाभयानक शुष्क संज्ञक एवं आर्द्र संज्ञक ये दोनों पैनाकास्त्र, कङ्काल, अत्यन्त भयानक कापालास्त्र, सौर्यास्त्र, वारुणपाश, शत्रुओं को नष्ट करने वाला सन्तापन अस्त्र, अत्यन्त उग्र वारुणास्त्र तथा उसी प्रकार का धर्म पाश ये सभी उन देवाधिदेव के वक्षःस्थल से उत्पन्न हुये॥ २५-२८ ॥

ऊरुजातान्यस्त्राणि

शक्तिद्वयं च वायव्यमस्त्रं मौसलमेव च॥ २८ ॥
गान्धर्वं दर्पणं चास्त्रं शोषणं परदारणम्।
तेजःप्रभं च पैशाचमैन्द्रमस्त्रं सुदारुणम्॥ २९ ॥
याम्यं विलापनं चास्त्रं वैद्याधरममित्रहम्।
कङ्कणीं मोदकीं चैव शिखरं क्रौञ्चमेव च॥ ३० ॥
एतानि जनयामास निजोर्वोरुरुविक्रमः।

दो प्रकार की शक्तियाँ, वायव्यास्त्र, मौसलास्त्र, गान्धर्व दर्पण, शोषण, परदारण, तेजःप्रभ, पैशाच एवं अत्यन्त दारुण ऐन्द्रास्त्र, याम्य, विलापन, वैद्याधर, अमित्रहन्, कङ्कणी, मोदकी, शिखर एवं क्रौञ्च इन अस्त्रों को प्रचण्ड पराक्रम वाले भगवान् ने अपने दोनों ऊरुओं से उत्पन्न किया॥ २८-३१ ॥

पादजातान्यस्त्राणि

असिरत्नं प्रशमनं कन्दर्पदयितं तथा॥ ३१ ॥
मदनं सौमनं चास्त्रं सत्यं संवर्तनं तथा।
मायाधरं च सोमास्त्रं त्वाष्ट्रं शीतेषुमेव च॥ ३२ ॥
भगास्त्रमस्त्राण्येतानि पद्भ्यां जातानि नारद।

असिरत्न, प्रशमन, कन्दर्पदयित, मदन, सौमन, सत्य, संवर्त्तन, मायाधर, सोमास्त्र, त्वाष्ट्र, शीतेषु (ठण्डे वाण) और भगास्त्र, हे नारद ! ये अस्त्र भगवान् के पैर से उत्पन्न हुये।

अपराङ्गजातान्युपसंहारास्त्राणि

संदामनं सत्यवन्तं धरणं धृष्टमेव च॥ ३३ ॥
भृशाश्वतनयं चैव सत्यकीर्तिं तथैव च।
मोहनं रभसास्त्रं च सर्वनाहं पराङ्मुखम्॥ ३४ ॥
जृम्भकं प्रतिहारं च तथा वरणमुत्तमम्।
अवाङ्मुखं धनं धान्यं वृषाक्षं कामरूपकम्॥ ३५ ॥

दृढनाहं कामरुचिं सुनाभं मकरं तथा।
दशाक्षं वृत्तिमन्तं च दशवक्त्रं तथापरम्॥ ३६ ॥
रुचिरं दशशीर्षं च योगन्धरममित्रहम्।
अनिद्रं मकरं चैव भोक्तारं कङ्कणीं तथा॥ ३७ ॥
शतोदरं सौमनसं पद्मनाभं तथैव च।
महानाभं प्रमथनं ज्यौतिषं क्रथनं तथा॥ ३८ ॥
त्रैराशिं सार्चिमालिं च विमलां धृतिकां तथा।
सृष्टिं तथा विषामास्त्रं सुध्याताहं तथैव च॥ ३९ ॥
विधूतं कृशनं चैव लक्षाक्षं कर्शनं तथा।
उपसंहाररूपाणि सर्वाण्यस्त्राण्यमूनि वै।
जनयामास देवोऽसौ स्वापराङ्गात् परन्तपः॥ ४० ॥

संदामन, सत्यवान्, धरण, धृष्ट, भृशाश्वतनय, सत्यकीर्त्ति, मोहन, रभसास्त्र, सर्वनाह, पराङ्मुख, जृम्भक, प्रतिहार, वरण, अवाङ्मुख, धन, धान्य, वृषाक्ष, कामरूप, दृढ़नाह, कामरुचि, सुनाभ, मकर, दशाक्ष, वृत्तिमान् तथा अन्य दशवक्त्र, रुचिर, दशशीर्ष, योगन्धर, अमित्रहम्, अनिद्र, मकर, भोक्ता, कङ्कणी, शतोदर, सौमनस, पद्मनाभ, महानाभ, प्रमथन, ज्यौतिष, क्रथन, त्रैराशि, सार्चिमाली, विमला, धृतिका, सृष्टि, विषामास्त्र, सुध्याताह, विधूत, कृशन, लक्षाक्ष तथा कर्शन इतने उपसंहार रूप वाले अस्त्रों को परन्तप भगवान् ने अपने अपर अङ्ग से उत्पन्न किया ॥ ३३-४० ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

एवमुक्तानि नामानि जन्मान्यपि च नारद।
अस्त्राणामपि माहात्म्यं यन्त्रस्यास्य समासतः॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां अस्त्राणां जन्मनाम-निरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ आदितः श्लोकाः १८२५ ॥

हे नारद ! इस प्रकार हमने उन-उन अस्त्रों के नाम तथा जन्म स्थान और इस यन्त्र का माहात्म्य भी संक्षेपतः वर्णन किया ॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अस्त्रों के जन्मनामनिरूपण नामक तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३० ॥

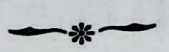

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

योगाङ्गयमनियमासननिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार ध्यान करने से अनेक जन्म के करोड़ों समूहों के पाप को नष्ट करता है, हम उस सुदर्शन देव के तेज का ध्यान करते हैं ।

हृद्यागस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

प्रथमं बाह्ययागस्य हृदयाराधनं परम् ।
उक्तं त्वया तत्स्वरूपं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आप ने पहले कहा था कि बाह्य याग से पहले हृदय याग करना आवश्यक है (द्र० २८-२९) इसलिए उसका स्वरूप मुझसे कहिये ॥ १ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

साधु पृष्टं त्वया तस्य स्वरूपं शृणु नारद ।
येन प्रीणाति भगवान् सर्वलोकनमस्कृतः ॥ २ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आपने अच्छी बात मुझसे पूछी । अब उसका स्वरूप सुनिए जिसके करने से सर्वलोक से नमस्कृत भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

हृद्यागलक्षणम्

यैर्बाह्ययागः क्रियते साधनैस्त्रिविधैरिह ।
सङ्कल्पसिद्धैस्तैरेव देवं प्रति समर्चनम् ॥ ३ ॥
हृदयाराधनं प्रोक्तमेतत् सर्वार्थसाधनम् ।

जिन तीन प्रकार के साधनों से इस लोक में बाह्य याग किया जाता है उन्हीं साधनों से अपने सङ्कल्प के द्वारा देवाधिदेव का अर्चन करना सर्वोत्कृष्ट हृदयाराधन नामक यज्ञ है, जिससे सारे अर्थों की सिद्धि होती है ॥ ३-४ ॥

आत्मसमर्पणस्य हृद्यागतुल्यत्वम्

यद्वा भगवते तस्मै स्वकीयात्मसमर्पणम् ॥ ४ ॥
वियुक्तं प्रकृतेः शुद्धं दद्यादात्महविः स्वयम् ।
विशिष्टदैवतायास्मै चक्ररूपाय मन्त्रतः ॥ ५ ॥

उन भगवान् को अपना सर्वस्व समर्पण करना ही हृद्याग है, जिस हृद्याग में अपनी प्रकृति से वियुक्त हुये विशुद्ध आत्मा की चक्ररूप विशिष्ट देवता के लिए मन्त्र द्वारा और स्वयं के द्वारा आहुति दी जाती है ॥ ४-५ ॥

प्रकृतिवियुक्तात्मस्वरूपविषयकः प्रश्नः

नारदः—

वियुक्तं प्रकृते रूपमात्मनो वक्तुमर्हसि ।
केनोपायेन तत्प्राप्तिस्तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ ६ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! अपनी प्रकृति से विच्युत आत्मा किस उपाय से अपने प्रकृति को प्राप्त करता है, उसे निश्चयपूर्वक कहिए ॥ ६ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु तत् परमं सूक्ष्मं सर्वगं सर्वभृत् तथा ।
ज्ञानरूपमनाद्यन्तमविकारि निरामयम् ॥ ७ ॥
अचक्षुःश्रोत्रमस्पर्शमपाणिचरणं ध्रुवम् ।
नामजात्यादिरहितमवर्णमगुणं त्वपि ॥ ८ ॥
विश्वश्रवो विश्वचक्षुर्विश्वपाणिपदं परम् ।
असक्तमचरं शान्तं स्वयंज्योतिरनौपमम् ॥ ९ ॥
दूरस्थमन्तिकचरं ज्ञानगम्यं निरञ्जनम् ।
भूतभर्तृ समज्योतिर्ज्योतिषां तमसः परम् ॥ १० ॥
अक्षरं सर्वभूतस्थं तद्विष्णोः परमं पदम् ।

योगकर्मणोर्विविक्तात्मस्वरूपप्राप्तिसाधनता

तत्प्राप्तिसाधनं योगः कर्म च श्रुतिचोदितम् ॥ ११ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आप आत्मा के प्रकृति प्राप्ति का उपाय सुनिए—

परम, सूक्ष्म, सर्वग, सर्वभृत, ज्ञानरूप, आदि अन्त से रहित, अविकारी, निर्भय, अचक्षुः, अश्रोत्र, अस्पर्श, अपाणिपाद एवं नामजाति से रहित अवर्ण अगुण विश्वश्रव, विश्वचक्षु, विश्वपाणि पाद, सबसे परे, असक्त, अचर, शान्त स्वयंज्योति अनुपम दूर तथा अन्तिम सर्वत्र व्याप्त ज्योतियों की ज्ञानगम्य, मायारहित, प्राणियों का पोषण करने वाला समज्योति, तम से परे, अक्षर एवं सर्व भूतस्थ ऐसी प्रकृति वाले आत्मरूप विष्णु के

परम पद स्वरूप को प्राप्त करने के साधन को योग कहा जाता है। वह कर्म वेद में विहित है ॥ ७-११ ॥

तद्विषयकः प्रश्नः

नारदः—

कीदृशं कर्म विज्ञेयं योगः कीदृश उच्यते।
याभ्यां सम्प्राप्यते चात्मा केवलं प्रकृतेः परः ॥ १२ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन्! वह कर्म कैसा है? किसे योग कहते हैं? जिससे प्रकृति से परे आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

शृणुष्व प्रथमं कर्म द्विविधं तदिहोच्यते।

कर्मणां द्वैविध्यम्

एकं प्रवर्तकं प्रोक्तं निवर्तकमथापरम् ॥ १३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद! सर्वप्रथम कर्म किसे कहते हैं? उसे सुनिए। यह दो प्रकार का कहा गया है, प्रथम प्रवर्त्तक तथा दूसरा निवर्त्तक ॥ १३ ॥

प्रवर्तकनिवर्तककर्मणोः क्रमादभ्युदय-
निःश्रेयससाधनत्वम्

प्रवर्तकं च स्वर्गादिफलसाधनमुच्यते।
निवर्तकाख्यं देवर्षे विज्ञेयं मोक्षसाधनम् ॥ १४ ॥

हे देवर्षे! स्वर्गादि फल उत्पन्न करने वाला साधन प्रवर्त्तक कर्म है और मोक्ष का साधनभूत निवर्त्तक कर्म कहा जाता है, ऐसा समझना चाहिए ॥ १४ ॥

जीवपरसंयोगस्याष्टाङ्गयोगशब्दार्थता

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।
अष्टाङ्ग एष कथितो येनात्मा दृश्यतां गतः ॥ १५ ॥

जीवात्मा तथा परमात्मा का संयोग योग कहा जाता है। इस योग के आठ अङ्ग हैं, जिनसे आत्मा का साक्षात्कार होता है ॥ १५ ॥

योगाङ्गपरिगणनम्

अष्टाङ्गान्यस्य वक्ष्यामि पृथक् तानि निशामय।
यमश्च नियमश्चैवमासनं तदनन्तरम् ॥ १६ ॥
प्राणायामस्ततः प्रोक्तः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं तथा समाधिश्चाप्यङ्गान्येतानि नारद ॥ १७ ॥

अब मैं उस योग के आठ अङ्गों का पृथक्-पृथक् वर्णन करता हूँ, आप उसे सुनिए। यम, नियम, आसन, उसके बाद प्राणायाम, फिर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि, हे नारद ! यही योग के आठ अङ्ग हैं ॥ १६-१७ ॥

यमस्वरूपनिरूपणम्

सत्यं दया धृतिः शौचं ब्रह्मचर्यं क्षमार्जवम्।
मिताहारस्तथास्तेयमहिंसेति यमा दश ॥ १८ ॥

सत्य, दया, धैर्य, शौच, ब्रह्मचर्य, क्षमा, आर्जव, मिताहार, अस्तेय और अहिंसा—ये दश यम कहे जाते हैं ॥ १८ ॥

सत्यादीनां स्वरूपनिरूपणम्

हितरूपं वचः सत्यं यथादृष्टार्थगोचरम्।
दया दुःखासहिष्णुत्वं सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ १९ ॥
आपद्यपि स्वकार्येषु कर्तव्यत्वस्थितिर्धृतिः।
शौचं सर्वेन्द्रियाणां च वैधकर्मसु योग्यता ॥ २० ॥
ब्रह्मचर्यं स्वयोषित्सु भोग्यताबुद्धिवर्जनम्।
अविकारमनस्त्वं तु क्षमा विकृतिहेतुषु ॥ २१ ॥
वाङ्मनःकायवृत्तीनामेकरूपत्वमार्जवम्।
मिताहारस्त्वाश्रमिणां श्रुतिचोदितभोजनम् ॥ २२ ॥
अस्तेयमस्पृहान्येषां वित्ते वाक्कायमानसैः।
अहिंसा वाङ्मनःकायैः परपीडानिवर्तनम् ॥ २३ ॥

सत्यादि यमों का लक्षण—प्राणियों का जिससे हित हो ऐसे वचन को सत्य कहते हैं। अथवा जैसा देखा या सुना हो उसे उसी रूप में कहना सत्य है—सर्वदा सभी प्राणियों के दुःख को न सह सकने का नाम दया है। आपत्ति आने पर भी अपने कर्त्तव्य कार्य से विचलित न होने का नाम धृति है। वैध कर्म के लिए सभी इन्द्रियों में योग्यता सम्पादन का नाम शौच है। अन्यों की तो क्या अपनी स्त्री में भी भोग्यता बुद्धि का न होना ब्रह्मचर्य है। विकार हेतु के उपस्थित होने पर भी मन में विकार न होने का नाम क्षमा है। जो वाणी, मन तथा शरीर की एक रूपता का नाम आर्जव है। आश्रमियों के लिए वेदविहित भोजन का नाम मिताहार है। दूसरों के द्वारा अर्जित धन में वाणी, शरीर तथा मन के द्वारा किसी भी प्रकार अपनी इच्छा को उत्पन्न न होने देना अस्तेय है। वाणी मन तथा शरीर से दूसरे को पीड़ा उत्पन्न न करना अहिंसा है। ये दश यम के लक्षण कहे गए ॥ १९-२३ ॥

नियमस्वरूपनिरूपणम्

सिद्धान्तश्रवणं दानं मतिरीश्वरपूजनम्।
सन्तोषस्तप आस्तिक्यं ह्रीर्जपश्च तथा व्रतम् ॥ २४ ॥

एते तु नियमाः प्रोक्ता दश योगस्य साधकाः ।

सिद्धान्त श्रवण, दान, मति, ईश्वर पूजन, सन्तोष, तप, आस्तिक्य, ह्री (लज्जा) जप तथा व्रत ये दश नियम कहे गए हैं जो योग के साधक हैं ॥ २४ ॥

सिद्धान्तश्रवणादीनां स्वरूपनिरूपणम्

सिद्धान्तश्रवणं प्रोक्तं वेदान्तश्रवणं बुधैः ॥ २५ ॥
दानं न्यायार्जितार्थस्य सत्पात्रे प्रतिपादनम् ।
विहिते कर्मणि श्रद्धा मतिरित्यभिधीयते ॥ २६ ॥
यथाशक्त्यर्चनं भक्त्या विष्णोरीश्वरपूजनम् ।
सन्तोषोऽलमनेनेति प्रीतिर्यादृच्छिकेन वै ॥ २७ ॥
कृच्छ्रचान्द्रायणाद्यैश्च तपो देहविशोषणम् ।
आस्तिक्यमस्ति वेदैकगम्यं वस्त्विति निश्चयः ॥ २८ ॥
निषिद्धकर्मकरणे व्रीडा ह्रीः प्रोच्यते बुधैः ।
गुरूपदिष्टस्वाध्यायमन्त्राभ्यासो जपः स्मृतः ॥ २९ ॥
सदाचार्योपदिष्टेषूपायत्वप्रग्रहो व्रतम् ।

बुद्धिमानों ने वेदान्तश्रवण को सिद्धान्त श्रवण कहा है । न्यायपूर्वक अर्जित धन का सत्पात्र में प्रतिपादन दान कहा है । वेदविहित कर्म में श्रद्धा रखना मति है । विष्णु की भक्तिपूर्वक यथाशक्ति अर्चना करना ईश्वर पूजन है, यदृच्छा से प्राप्त होने वाले धन में प्रीति रखना और जो प्राप्त हुआ है उसे अधिक न चाहने का नाम सन्तोष है । कृच्छ्र चान्द्रायणादि के द्वारा देह का शोषण करना तप है । वेद में ऐसी बात कही गई है, इसलिए उस पर श्रद्धा रखना आस्तिक्य है और निषिद्ध कर्म करने में लज्जा करना इसी को बुद्धिमानों ने ह्री कहा है । गुरु के द्वारा उपदिष्ट स्वाध्याय तथा मन्त्राभ्यास जप है । सर्वदा आचार्य से उपदिष्ट उपाय का अवलम्बन करते रहना व्रत है ॥ २५-३० ॥

अथासनानां स्वास्थ्यहेतुत्वम्

आसनानि प्रवक्ष्यामि मुख्यानि विविधानि च ॥ ३० ॥
आस्थायैषामन्यतमं योगिनो यान्ति निर्वृतिम् ।

मुख्यासनपरिगणनम्

चक्रं पद्मासनं कूर्मं मायूरं कौक्कुटं तथा ॥ ३१ ॥
वीरासनं स्वस्तिकं च भद्रं सिंहासनं तथा ।
मुक्तासनं गोमुखं च मुख्यान्येतानि नारद ॥ ३२ ॥

हे नारद ! अब मैं मुख्य मुख्य आसन, जो अनेक प्रकार के हैं, उनका वर्णन करता हूँ । उनमें से किसी एक आसन का अभ्यास करने से योगी जन सुख प्राप्त करते हैं । चक्र, पद्मासन, कूर्म, मायूर, कौक्कुट, वीरासन, स्वस्तिक, भद्र, सिंहासन, मुक्तासन तथा गोमुख, हे नारद ! मुख्य रूप से इतने आसन कहे गए हैं ॥ ३०-३२ ॥

चक्रासनम्

सव्योरुं दक्षिणे गुल्फे दक्षिणं दक्षिणेतरे।
निदध्यादृजुकायस्तु चक्रासनमिदं परम्॥ ३३ ॥

बायें ऊरु को दाहिने गुल्फ पर और दाहिने ऊरु को बायें गुल्फ पर रख कर मेरुदण्ड को सीधे कर बैठने से चक्रासन होता है॥ ३३ ॥

पद्मासनम्

ऊर्वोरुपरि संस्थाप्य उभे पादतले सुखम्।
पद्मासनमिदं प्रोक्तं सर्वकिल्बिषनाशनम्॥ २९ ॥

दोनों ऊरु तलों पर दोनों पादतल सुखपूर्वक स्थापित करे तो इसे पद्मासन कहते हैं, जो सारे पापों को नष्ट कर देता है॥ ३४ ॥

कूर्मासनम्

गुदं निपीड्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।
एतत् कूर्मासनं प्रोक्तं योगसिद्धिकरं परम्॥ ३५ ॥

व्युत्क्रम से (उल्टे क्रम से अर्थात् बायें से दायाँ और दायें से बायाँ) एकाग्र-चित्त होकर दाहिने गुल्फ से गुदा का बायाँ भाग तथा बायें गुल्फ से गुदा का दाहिना भाग दबा कर स्थापित करे तो इसे कूर्मासन कहते हैं। यह सर्वोत्कृष्ट योग-सिद्धिकारक आसन है॥ ३५ ॥

मयूरासनम्

निवेश्य कूर्परौ सम्यङ् नाभिमण्डलपार्श्वयोः।
अवष्टभ्य भुवं पाणितलाभ्यां व्योम्नि दण्डवत्॥ ३६ ॥
समोन्नतशिरःपादो मायूरासनमिष्यते।
एतत् सर्वविषघ्नं च सर्वव्याधिनिवारणम्॥ ३७ ॥

दोनों कूर्परों को नाभिमण्डल के पार्श्वभाग में अच्छी प्रकार से स्थापित कर दोनों हाथ के तलवों से जमीन का आश्रय ले कर आकाश में दण्ड के समान शिर और पैर को ऊपर रखे तो इसे मायूरासन कहते हैं। इस आसन के करने से मलरूप विष का नाश हो जाता है और सारे रोग एवं शोक दूर हो जाते हैं॥ ३६-३७ ॥

कुक्कुटासनम्

पद्मासनमधिष्ठाय जान्वन्तरविनिःसृतौ।
करौ भूमौ निवेश्यैतद्व्योमस्थं कुक्कुटासनम्॥ ३८ ॥

पद्मासन से बैठ कर जानु के भीतर से निकले हुये दोनों हाथों से पृथ्वी को थाम कर ऊपर उठ जाने का नाम कुक्कुटासन है॥ ३८ ॥

वीरासनम्

एकत्रोरौ तु संस्थाप्य पादमेकमथेतरम्।

ऊरुं पादे निवेश्यैतद्वीरासनमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

एक ऊरु पर एक पैर रखे, फिर दूसरे ऊरु को दूसरे पैर पर रखे तो इसे वीरासन कहा जाता है ॥ ३९ ॥

स्वस्तिकासनम्

उभे पादतले कृत्वा जानूर्वोरन्तरे दृढम् ।
ऋजुकायः समासीत स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते ॥ ४० ॥

दोनों पैर के तलवों को दोनों जानु के भीतर भली प्रकार रख कर सीधे-सीधे बैठे तो उस आसन को स्वास्तिकासन कहते हैं ॥ ४० ॥

भद्रासनम्

सीवन्याः पार्श्वयोर्गुल्फौ निवेश्याग्रपदे दृढम् ।
बद्ध्वा कराभ्यां तत् प्रोक्तं भद्रासनमघापहम् ॥ ४१ ॥

सीवनी के दोनों पार्श्वभाग में दोनों गुल्फों को स्थापित कर दोनों पैर के अग्रभाग को दोनों हाथों से भली प्रकार बाँधे तो उसे भद्रासन कहते हैं । यह समस्त पापों को दूर करने वाला है ॥ ४१ ॥

सिंहासनम्

सीवन्याः पार्श्वयोर्गुल्फौ व्युत्क्रमेण निवेश्य च ।
करौ जान्वोर्निधायोभौ प्रसार्य निखिलाङ्गुलीः ॥ ४२ ॥
नासाग्रन्यस्तनयनो व्यात्तवक्त्र ऋजुः सुधीः ।
एतत् सिंहासनं प्रोक्तं सर्वदेवाभिपूजितम् ॥ ४३ ॥

सीवनी के पार्श्वभाग में व्युत्क्रम से (दाहिने से बायाँ और बायें से दाहिना) दोनों गुल्फ स्थापित कर दोनों हाथों को, जिसमें अङ्गुलियाँ फैली रहें, दोनों जानुओं पर स्थापित करे । नासाग्र भाग में नेत्र स्थापित कर सिंह के समान मुख खोलकर सीधे-सीधे बैठना यह सिंहासन कहा गया है । सभी देवगण इस आसन की प्रशंसा करते हैं ॥ ४२-४३ ॥

मुक्तासनम्

मेढ्रादुपरि विन्यस्य सव्यगुल्फमिहेतरम् ।
गुल्फं विन्यस्य पाणी चाप्यङ्गमध्ये निवेश्य च ॥ ४४ ॥
मुक्तासनमिदं प्रोक्तं स्थिता यत्र मुमुक्षवः ।

दाहिने अण्डकोश पर बायाँ गुल्फ और बायें पर दाहिना गुल्फ स्थापित कर दोनों हाथों को ठीक अपने अङ्गमध्य में स्थापित करे तो उसे मुक्तासन कहते हैं । मुमुक्षु लोग इसी आसन से बैठते हैं ॥ ४४-४५ ॥

गोमुखासनम्

उभयोर्गुल्फयोः कृत्वा पृष्ठपार्श्वावुभावपि ॥ ४५ ॥

व्युत्क्रमेणाथ पाणिभ्यां विन्यस्ताभ्यां विगृह्य च ।
पृष्ठगाभ्यां पदाङ्गुष्ठावेतद् गोमुखमुच्यते ॥ ४६ ॥

दोनों गुल्फों पर दोनों पृष्ठ और पार्श्वभाग स्थापित कर दोनों हाथों को व्युत्क्रम के अनुसार फैला कर पीछे रहने वाले पादाङ्गुष्ठ को पकड़ना इसे गोमुख आसन कहते हैं ॥ ४५-४६ ॥

प्राणायामसिद्धये नाडीशुद्ध्यावश्यकता

प्राणायामप्रसिद्ध्यर्थं नाडीशुद्धिमनन्तरम् ।
देहस्थवायुभिः कुर्यात् साग्निभिश्च तपोधन ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां योगाङ्गयमनियमासन-
निरूपणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १८७२ ॥

प्राणायाम की सिद्धि के लिए प्रथम नाड़ी शुद्धि कर ले । फिर साधक देह अग्नि के सहित देहस्थ वायु के द्वारा प्राणायाम करे ॥ ४७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के योगाङ्ग यम
नियम आसन निरूपण नामक इकतीसवें अध्याय की शैवागमावतार
महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ०
सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३१ ॥

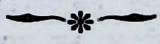

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

नाडीशुद्धिवायुजययोगाङ्गप्राणायामादिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने पर संसार के करोड़ों पापसमूहों को नष्ट करता है, हम उस चक्र सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

नाडीसङ्ख्यास्थानादिप्रश्नः

नारदः—

नाडयः कति तिष्ठन्ति कीदृश्यः किंप्रमाणकाः ।
क्व वर्तन्ते शरीरेऽस्मिन् कथमासां विशोधनम् ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् कितनी नाड़ियाँ हैं । उनका स्वरूप कैसा है ? तथा उनका प्रमाण क्या है? इस शरीर में वे कहाँ-कहाँ रहती हैं और किस प्रकार उनकी शुद्धि की जाती है ॥ १ ॥

वायुसङ्ख्यादिप्रश्नः

वायवः कति तिष्ठन्ति किंनामानश्च कीदृशाः ।
कानि कर्माण्यमीषां तु तत् सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

इस शरीर में कितने वायु हैं? उनके नाम क्या हैं? और वे कैसे हैं? तथा इनके क्या कार्य हैं? वह सब हमें बताइये ॥ २ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

तदेतत् परमं गुह्यं शृणुष्वानन्यमानसः ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! ये सभी बातें बड़ी गोपनीय हैं । सावधान होकर सुनिए ॥ ३ ॥

शरीरस्य षण्णवत्यङ्गुलपरिमाणत्वम्

शरीरं सर्वजन्तूनामङ्गुलीभिरनामयम् ॥ ३ ॥
स्वाभिः स्वाभिः सुरमुने षण्णवत्यङ्गुलात्मकम् ।

शरीरमध्यभागनिर्णयः

शरीरमध्यः क इति शुश्रूषा चेन्महामुने ॥ ४ ॥
श्रूयतां पायुदेशात्तु द्व्यङ्गुलात् परतः परम् ।
मेढ्रदेशादधस्तात्तु द्व्यङ्गुलान्मध्य उच्यते ॥ ५ ॥

हे नारद ! सभी जन्तुओं का शरीर स्वस्थ रहने पर उनकी-उनकी अङ्गुलियों के प्रमाणानुरूप अङ्गुल का मान होता है । हे महामुने ! यदि आपको इस बात की शुश्रूषा (= सुनने की इच्छा) हो कि शरीर का मध्य भाग कहाँ है? तो उसे सुनिए । पायु स्थान से दो अङ्गुल परे और मेढ्र स्थान से दो अङ्गुल नीचे शरीर का मध्यस्थान माना गया है ॥ ३-५ ॥

शरीरस्थवह्निमण्डलस्वरूपम्

चतुष्कोणं त्रिकोणं तद् वृत्तमाग्नेयमण्डलम् ।
चतुष्पदां नृणां चैव विहङ्गानां यथाक्रमम् ॥ ६ ॥

चतुष्पदों (जानवरों) का आग्नेयमण्डल चतुष्कोण, मनुष्यों का आग्नेयमण्डल त्रिकोण तथा पक्षियों का आग्नेयमण्डल वृत्ताकार होता है ॥ ६ ॥

नाडीमूलस्थानम्

मेढ्रान्नवाङ्गुलादूर्ध्वं नाडीनां कन्द उच्यते ।
चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुलमायतम् ॥ ७ ॥
अण्डाकारं परिवृतं मेदोमांसास्थिशोणितैः ।

नाभिचक्रस्थानम्

तत्रैव नाभिचक्रं तु द्वादशारं प्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥
शरीरं ध्रियते येन तस्मिन् वसति कुण्डली ।

मेढ्र से नव अङ्गुल ऊपर सभी नाड़ियों का कन्द है । जिसकी ऊँचाई चार अङ्गुल तथा लम्बाई भी चार अङ्गुल तथा मोटाई भी चार अङ्गुल है । वह मेद, मांस अस्थि तथा शोणित से परिपूर्ण है तथा अण्डे के आकार में स्थित है । उसी में १२ अरों वाली नाभिचक्र प्रतिष्ठित है । उसी के द्वारा शरीर धारण किया गया है । उसी में कुण्डली निवास करती है ॥ ७-९ ॥

नाभिचक्रस्थारेषु सुदर्शनमन्त्रवर्णन्यासः

सौदर्शनस्य मन्त्रस्य यानि वर्णानि सन्ति वै ॥ ९ ॥
विभज्य तानि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरांस्तथा ।
चक्रेऽस्मिन् विन्यसेत् तानि प्राच्याद्यारेषु च क्रमात् ॥ १० ॥

शिष्टाक्षराणां चक्रमध्ये न्यासः

शेषाणि विन्यसेन्मध्ये चक्रस्यास्य समाहितः ।

नाभिचक्रं परितः कुण्डल्यवस्थितिः

वर्तते परितश्चक्रमष्टवक्त्राथ कुण्डली ॥ ११ ॥

सुदर्शन मन्त्र में जितने भी वर्ण कहे गए हैं, उन्हीं स्वर व्यञ्जन वर्णों को प्रविभक्त कर इस चक्र के पूर्वादि स्थित अरों में क्रमशः विन्यस्त करे तथा जो शेष रहे उसे चक्र के मध्य में समाहित चित्त हो विन्यस्त करे। ऐसे चक्र के चारों ओर आठ मुख वाली कुण्डली का निवास है ॥ ९-११ ॥

अष्टप्रकृतिरूपेण भोगेनावेष्ट्य वैष्णवी।
ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्नायाः पिदधाति मुखेन वै ॥ १२ ॥

यह विष्णु देवताक कुण्डली आठ प्रकृति वाले भोग (= फन) से उस चक्र को घेरकर सुषुम्ना से जाने वाले ब्रह्मरन्ध्र को अपने मुख से आच्छादित किये हुये है ॥ १२ ॥

चक्रमध्ये अलम्बुसासुषुम्नयोः स्थितिः

अलम्बुसा सुषुम्ना च मध्ये चक्रस्य तिष्ठतः।

अन्यासां द्वादशनाडीनां स्थानभेदाः

अरे प्राच्ये सुषुम्नायाः कुहूर्नाडी वसत्यसौ ॥ १३ ॥
अनन्तरारयुग्मे च वारुणा च यशस्विनी।
दक्षिणारे सुषुम्नायाः पिङ्गला वर्तते क्रमात् ॥ १४ ॥
तदनन्तरयोः पूषा वर्तते च पयस्विनी।
सुषुम्नापश्चिमे चारे स्थिता नाडी सरस्वती ॥ १५ ॥
शङ्खिनी चैव गान्धारी तदनन्तरयोः स्थिते।
उत्तरे च सुषुम्नाया इडाख्या निवसत्यरे ॥ १६ ॥
अनन्तरं हस्तिजिह्वा ततो विश्वोदरा स्थिता।
प्रदक्षिणक्रमेणैव चक्रस्यारेषु नाडयः ॥ १७ ॥
वर्तन्ते द्वादशस्वेता द्वादश ब्रह्मणः सुताः।

अलम्बुसा और सुषुम्ना ये दो नाड़ियाँ चक्र के मध्य में रहती हैं। सुषुम्ना के तथा पूर्व वाले के मध्य अरों में कुहू नामक नाड़ी का निवास है। उसके बाद वाले अरे में यशस्विनी एवं वारुणा नाड़ी का निवास है। सुषुम्ना तथा दक्षिण वाले अरे में क्रमशः पिङ्गला का निवास है। पुनः उसके बाद वाले दो अरे में पयस्विनी तथा पूषा का निवास है। सुषुम्ना तथा पश्चिम वाले अरे के मध्य में सरस्वती नाड़ी का निवास है। उसके बाद दो अरों में शङ्खिनी तथा गान्धारा नाड़ी का निवास है। सुषुम्ना तथा उत्तर के अरे के मध्य में इड़ा नाम की नाड़ी है। उसके अनन्तर वाले अरे में हस्तिजिह्वा तथा विश्वोदरा का निवास है। इस प्रकार चक्र के द्वादशारों में दाहिने क्रमानुसार ये बारह नाड़ियाँ जो ब्रह्मदेव की कन्यायें कही जाती हैं स्थित हैं ॥ १३-१८ ॥

मुख्यानां चतुर्दशनाडीनां नामानि

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च सरस्वती ॥ १८ ॥
कुहूः पयस्विनी चैव वारुणा च यशस्विनी।

विश्वोदरा हस्तिजिह्वा गान्धारी शङ्खिनी तथा ॥ १९ ॥
अलम्बुसा च पूषा च मुख्यास्त्वेताश्चतुर्दश ।

देहवर्तिनाडीसङ्ख्या

द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीनां देहवर्तिनाम् ॥ २० ॥

मुख्यास्तिस्रो नाड्यः

तासु तिस्रो मुख्यतमाः सुषुम्नेडा च पिङ्गला ।

इड़ा, पिङ्गला सुषुम्ना, सरस्वती, कुहू, पयस्विनी, वारुणा, यशस्विनी, विश्वोदरा, हस्तिजिह्वा, गान्धारी, शङ्खिनी, अलम्बुसा तथा पूषा ये १४ नाड़ियाँ मुख्य नाड़ियाँ कही गई हैं । ऐसे तो शरीर में रहने वाली कुल ७२ हजार नाड़ियाँ कही गई हैं । जिसमें सुषुम्ना, इड़ा और पिङ्गला ये तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं ॥ १८-२१ ॥

तास्वपि सुषुम्ना मुख्यतमा

तासां सुषुम्ना मुख्या स्यादामूर्धान्तं व्यवस्थिता ॥ २१ ॥

जीवस्य नाडीचक्रे भ्रमणम्

प्राणारूढो भवेज्जीवश्चक्रेऽस्मिन् भ्रमते सदा ।
ऊर्णनाभिर्यथा तन्तुपञ्जरान्तर्व्यवस्थितः ॥ २२ ॥

इन तीनों में भी सुषुम्ना मुख्य है जो मूर्धान्त चली गई है । यह जीव प्राणवायु पर सवार होकर इसी चक्र में सर्वदा घूमा करता है । जैसे मकड़ी अपने तन्तुपञ्जर में नियमतः चलती रहती है ॥ २१-२२ ॥

सुषुम्नाया मध्यमरन्ध्रस्य कुण्डल्या पिधानम्

पञ्चरन्ध्राः सुषुम्नायाश्चत्वारो रक्तपूरिताः ।
कुण्डल्या पिहितं शश्वद् ब्रह्मरन्ध्रं तु मध्यमम् ॥ २३ ॥

सुषुम्ना में पाँच छिद्र हैं जिसमें चार तो रक्त से परिपूर्ण हैं । बीच का छिद्र जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं वह कुण्डली से आच्छादित है ॥ २३ ॥

नाडीनां परिमाणनिरूपणम्

प्राच्यः पार्श्वः सुषुम्नाया ललाटान्तं समुच्छ्रितः ।
प्रतीच्यः कन्धरान्तस्तु द्वौ पार्श्वौ सव्यदक्षिणौ ॥ २४ ॥
आ पार्श्वशिरसः प्राप्तौ गुह्यमेतदुदाहृतम् ।

सुषुम्ना का पूर्वभाग ललाटान्त ऊँचा चला गया है । पश्चिमी भाग कन्धे के अन्त तक चला गया है । बायाँ और दाहिना भाग दोनों बगल से शिर पर्यन्त चला गया है । यह हमने गुह्य (गोपनीय) बात कही ॥ २४-२५ ॥

अलम्बुसाख्या नाडी स्यादापादान्तं व्यवस्थिता ॥ २५ ॥
आमेढ्रान्तं कुहूः प्राप्ता वारुणा विश्वदेहगा ।

आदक्षिणपदाङ्गुष्ठं सम्प्राप्ताथ यशस्विनी ॥ २६ ॥
प्राप्ता दक्षिणनासान्तं पिङ्गलाख्या तु नाडिका ।
पूषा पयस्विनी चैव दक्षिणाक्षिश्रुती गते ॥ २७ ॥

अलम्बुसा नाम की नाड़ी पैर के अन्त तक चली गई है । कुहू मेढ्रान्त तक तथा वारुणा चारों ओर शरीर में फैली है । यशस्विनी दाहिने पैर के अङ्गूठे तक और पिङ्गला नामक नाड़ी नासिका के दाहिने भाग तक एवं पूषा तथा पयस्विनी दाहिनी आँख तथा दाहिने कान तक गई हैं और सरस्वती नामक नाड़ी जिह्वा के मूलभाग पर्यन्त गई हैं ॥ २५-२८ ॥

जिह्वामूलमभिप्राप्ता नाडी नाम्ना सरस्वती ।
शङ्खिनी वामकर्णं च गान्धारी वामलोचनम् ॥ २८ ॥
वामघ्राणं गता नाडी इडा नाम्नेति विश्रुता ।
प्राप्ता वामपदाङ्गुष्ठं हस्तिजिह्वा तु नाडिका ॥ २९ ॥
विश्वोदरोदरं प्राप्ता प्रोक्ता नाडीगतिर्मया ।

शङ्खिनी बायें कान तक तथा गान्धारी बाई आँख तक गई है । इडा नाम से प्रसिद्ध नाड़ी बाईं नासिका तक गई हुई है । हस्तिजिह्वा नामक नाड़ी बायें पैर के अङ्गूठे तक तथा विश्वोदरा उदर भाग तक गई हैं यहाँ तक हमने नाड़ियों की गति का वर्णन किया ॥ २८-३० ॥

इडापिङ्गलयोश्चन्द्रसूर्यावस्थितिः

इडायां वर्तते चन्द्रः पिङ्गलायां प्रभाकरः ॥ ३० ॥
द्वावेव कुरुतः कालं भुङ्क्ते तं ब्रह्मनाडिका ।

शारीरवायुवृत्तान्तकथनम्

श्रूयतां वायुवृत्तान्तः शरीरान्तरवस्थितः ॥ ३१ ॥

इड़ा में चन्द्रमा का निवास है तथा पिङ्गला में सूर्य का निवास है । यही दो समय का निर्माण करते हैं और ब्रह्मनाड़ियाँ उसका भोग करती हैं । अब शरीर के भीतर रहने वाले वायु का वृत्तान्त सुनिये ॥ ३०-३१ ॥

शरीरे दश वायवः

प्राणापानसमानाश्चाप्युदानो व्यान एव च ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ३२ ॥

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय ये दश वायु शरीर के भीतर सञ्चरण करते हैं ॥ ३२ ॥

प्राणादिवायूनां स्थाननिरूपणम्

सदा निवसति प्राणो नाभिचक्रे समीरणः ।
आस्यनासिकयोर्मध्ये हृदि प्राणः प्रकाशते ॥ ३३ ॥

अपानो वसति प्रायो गुदमेढ्रोरुजानुषु ।
उदरे वृषणे कट्यां जङ्घानाभ्योः प्रदीपवत् ॥ ३४ ॥
गुदाग्न्यगारयोस्तिष्ठन् मध्येऽपानः प्रकाशते ।

प्राणवायु नियमतः नाभिचक्र में निवास करता है । वह मुख, दोनों नासिका तथा हृदय में प्रकाशित होता है । गुदा, मेढ्र, दोनों ऊरु तथा दोनों जानुओं में अपान का निवास है जो उदर, वृषण, कटि, जङ्घा तथा नाभि स्थान में प्रदीपवत् प्रकाश करता है । गुदा तथा उदराग्नि में रहता हुआ अपान मध्य में प्रकाश फैलाता है ॥ ३३-३५ ॥

व्यानः श्रोत्राक्षिमध्ये च कृकाट्यां गुल्फयोरपि ॥ ३५ ॥
घ्राणे गले च स्फिग्देशे वसत्यत्र न संशयः ।
उदानः सर्वसंधिस्थः पादयोर्हस्तयोरपि ॥ ३६ ॥
समानः सर्वगात्रेषु सर्वं व्याप्य व्यवस्थितः ।

व्यान श्रोत्र तथा आँख के मध्य में, कृकाटी, दोनों गुल्फ, घ्राण, गला तथा स्फिग (नितम्ब) देश में निवास करता है, इसमें संशय नहीं । समस्त पैर और हाथ की सन्धियों में उदान रहता है । समान सारे शरीर को व्याप्त कर व्यवस्थित रूप में निवास करता है ॥ ३५-३७ ॥

प्राणादीनां वृत्तिनिरूपणम्

निश्वासोच्छ्वासकादीनि प्राणकर्म इतीष्यते ॥ ३७ ॥
हानोपादानकर्मैव व्यानकर्मेति चेष्यते ।
उदानकर्म तत् प्रोक्तं देहस्योन्नयनादिकम् ॥ ३८ ॥
पोषणादि समानस्य शरीरे कर्म कीर्तितम् ।
उद्गारादिगुणो यस्तु नागकर्मेति चेरितम् ॥ ३९ ॥

निश्वास (श्वास का नीचे आना) उच्छ्वास (श्वास का ऊपर जाना) ये प्राण के कर्म हैं । ग्रहण तथा त्याग व्यान के कर्म हैं । उदान का कर्म वह है जिससे शरीर चलता है ऊपर उठता है । शरीर पोषणादि समान कर्म हैं । उद्गार आदिगुण (डकार निकालना) यह नाग कर्म कहा गया है ॥ ३७-३९ ॥

निमीलनादि कूर्मस्य क्षुतं कृकरकस्य च ।
देवदत्तस्य देवर्षे तन्द्रीकर्मेति चेरितम् ॥ ४० ॥
धनञ्जयस्य शोफादि सर्वकर्म प्रकीर्तितम् ।
एवं वायुगतिः सर्वा कर्म तेषां च कीर्तितम् ॥ ४१ ॥

निर्मीलन (बन्द करना) यह कूर्म का कार्य है तथा छींकना कृकर का काम है । देवदत्त का काम जँभाई लेना है । धनञ्जय का काम शरीर में शोफ उत्पन्न करना है । इस प्रकार सभी वायु का कार्य हमने कहा । साथ ही साथ वायु जिस प्रकार शरीर में चलते हैं, उसे भी कहा ॥ ४०-४१ ॥

नाडीशोधनविधिः

ततश्च सर्वनाडीनां कुर्याच्छोधनमात्मवान् ।

तच्छोधनप्रकारः

इडया वायुमापूर्य बाह्य षोडशमात्रकैः ॥ ४२ ॥
धारयन्नुदरे वायुं मात्रा द्वात्रिंशतं ततः ।
स्मरेत् स्वमण्डले वह्निं तत्र रेफं सबिन्दुकम् ॥ ४३ ॥
नासाग्रे शशिनो बिम्बं स्मरेत् पीयूषवर्षिणम् ।
स्मृत्वा चन्द्रे वकारं च सबिन्दुं रेचयेत् ततः ॥ ४४ ॥
पुनः पिङ्गलयापूर्य यथोक्तेनैव वर्त्मना ।
धृत्वा च मातरिश्वानमिडया रेचयेत् पुनः ॥ ४५ ॥
एवं त्रिसन्ध्यां त्रिः कृत्वा कुर्यान्नित्यं समाहितः ।

उक्तक्रमेण शोधयतो मासत्रयेण नाडीशुद्धिसिद्धिः

एवं नियमयुक्तस्य कुर्वतः सर्वनाडयः ॥ ४६ ॥
मासत्रयेण शुद्धाः स्युरिति योगविदो विदुः ।

इसलिए आत्मावान् पुरुष को उचित है कि वह अपनी सभी नाडियों का शोधन करे। उनकी शुद्धि का प्रकार इस प्रकार है—षोडश मात्रात्मक बाह्य वायु द्वारा इडा नाडी को परिपूर्ण करे। फिर ३२ मात्रात्मक काल पर्यन्त उस वायु को उदर में धारण करे और अग्निमण्डल में 'रं' इस अग्नि बीज का स्मरण करे। फिर नासाग्रभाग में पीयूषवर्षी चन्द्र बिम्ब का स्मरण कर 'वं' इस बीज का जप करते हुये उस वायु का त्याग कर देवे। फिर उसी प्रकार कही गई विधि के अनुसार पिङ्गला से पूर्ण कर उतने ही काल तक उसे भीतर रख कर ईडा नाड़ी द्वारा उसे त्याग देवे। इस प्रकार तीनों सन्ध्या काल में तीन-तीन प्राणायाम समाहित चित्त से करे। इस प्रकार नियमपूर्वक ऐसा करने वाले पुरुष की समस्त नाडियाँ तीन मास में शुद्ध हो जाती हैं, ऐसा योगियों का कहना है ॥ ४२-४७ ॥

ततो वायुजयः

ततश्च मरुतां कुर्युर्विजयं देहवर्तिनाम् ॥ ४७ ॥

वायुजयान्मनसः स्थैर्यम्

ततश्च वायवो देहे यत्र यत्र वसन्ति वै ।
तत्र तत्र मनःस्थैर्यं वह्निना सह नारद ॥ ४८ ॥

इसके बाद शरीर में रहने वाले वायु पर विजय प्राप्त करे। उसकी विधि इस प्रकार है—इस शरीर में जहाँ-जहाँ वायु का निवास कहा गया है, हे नारद ! वहाँ पर अग्नि बीज (रं) का स्मरण करते हुये मन को स्थिर रखने का प्रयास करे ॥ ४७-४८ ॥

प्राणायामविधिः

प्राणायामं ततः कुर्यात् सर्वपापप्रणाशनम् ।

शिखादिस्थानेषु मनोः षडक्षरन्यासः

शिखास्थाने नाभिचक्रे हृदयाम्बुरुहे ततः ॥ ४९ ॥
कण्ठकूपे भ्रुवोर्मध्ये जिह्वामूले तथैव च ।
मनोः षडक्षराण्येषु क्रमेणैव विचिन्तयेत् ॥ ५० ॥

इसके बाद सारे पापों का नाश करने वाले प्राणायाम को प्रारम्भ करे । शिखास्थान में, नाभिचक्र में, हृत्कमल में, कण्ठकूप में, दोनों भ्रुवों में तथा जिह्वा के मूल में इन छः स्थानों में षडक्षर मन्त्र का क्रमशः स्मरण करे ॥ ४९-५० ॥

प्राणायामप्रकारः

वायुं षोडशमात्राभिरिडयापूर्य चिन्तयेत् ।
हृन्मध्ये परमात्मानं चक्ररूपिणमव्ययम् ॥ ५१ ॥
यावच्छक्ति जपेन्मन्त्रमिमं सौदर्शनं स्मरन् ।
पुनः षोडशमात्राभी रेचयेत् पिङ्गलाह्वया ॥ ५२ ॥
अनया पुनरारोप्य धृत्वा चेतरया त्यजेत् ।
पूरणे कुम्भके चैव रेचने प्रणवं जपेत् ॥ ५३ ॥
दश पञ्चाशतं चैव चतुर्दश शतं क्रमात् ।
गायत्रीं यदि वा जप्त्वा कुर्यादुक्तेन वर्त्मना ॥ ५४ ॥
एवं प्रतिदिनं कुर्यात् प्राणायामांस्तु षोडश ।
एते पुनन्ति मासेन महापातकिनं नरम् ॥ ५५ ॥

षोडश मात्रात्मक काल पर्यन्त वायु को ईडा से परिपूर्ण कर हृदय के मध्य में अव्यम चक्र स्वरूप परमात्मा का स्मरण करे और अपनी शक्ति के अनुसार इस सुदर्शन मन्त्र का जप करे । तदनन्तर षोडशमात्रात्मक काल पर्यन्त पिङ्गला नाडी द्वारा उसे छोड़ता रहे । इसी प्रकार पिङ्गला से वायु पूर्ण कर ईडा नाडी से उसे त्यागे । वायु को पूर्ण करते समय एवं उसे रोकते समय तथा रेचन करते समय प्रणव का जप करे । प्राणायाम की यह क्रिया पाँच सौ अथवा चौदह सौ गायत्री जप करने के पश्चात् उक्त प्रकार से करे । इस प्रकार प्रतिदिन १६-१६ प्राणायाम करे । तो साधक कृत ये प्राणायाम एक महीने के भीतर महापातकी मनुष्यों को भी पवित्र कर देते हैं ॥ ५१-५५ ॥

प्रत्याहारनिरूपणम्

प्रत्याहारं ततः कुर्यादङ्गैः पञ्चभिरन्वितम् ।
स्वभावेनेन्द्रियार्थेषु प्रवृत्तं मानसं बुधैः ॥ ५६ ॥
तद्दोषदर्शनात् तेभ्यः समाहृत्य बलेन तु ।
निवेशनं भगवति प्रत्याहार इति स्मृतः ॥ ५७ ॥

प्राणायाम के अनन्तर पाँच अङ्गों से युक्त प्रत्याहार करे । बुद्धिमान् पुरुष स्वभाव से इन्द्रियार्थों में (इन्द्रियों के तत्तद्विषय रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द) प्रवृत्त मन को उन

विषयों में दोष दर्शन करते हुये उससे अलग हटावे। इस प्रकार विषयों से मन को पृथक् हटा कर उसे भगवान् में लगाना ही प्रत्याहार है ॥ ५६-५७ ॥

धारणानिरूपणम्

विषयेषु च वैराग्यादभ्यासाद् गुणदर्शनात्।
परमात्मनि संरोधो मनसो धारणा स्मृता ॥ ५८ ॥

मन से विषयों में वैराग्य का अभ्यास करे। परमात्मा में गुणदर्शन करे। तदनन्तर उसे परमात्मा में लगावे तब मन की इसी प्रक्रिया को विद्वज्जन धारणा कहते हैं ॥ ५८ ॥

ध्याननिरूपणम्

तदेवं धृतचित्तस्तु चक्ररूपं जनार्दनम्।
ध्यायीत नियतस्तस्मिन् युञ्जानः प्रथमं मनः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार धारणा द्वारा चक्ररूपी भगवान् जनार्दन को स्मरण करते हुये पहले उसमें अपना मन लगाकर नियमपूर्वक ध्यान करे ॥ ५९ ॥

वर्णाश्रमधर्माणां ध्यानेतिकर्तव्यतात्वम्

रमणीये शुचौ देशे विविक्ते सजले वने।
वर्णाश्रमोचिते धर्मे वर्तमानः प्रसन्नधीः ॥ ६० ॥
शान्तः सर्वगुणोपेतः सममासनमास्थितः।
ऋजुकायः स्वनासाग्रन्यस्तदृग् भक्तिमान् हरौ ॥ ६१ ॥
प्राणायामोत्थितेनैव वायुना साग्निना मुखम्।
कुण्डल्यास्तु विनिर्भिद्य सुषुम्नामध्यवर्तिना ॥ ६२ ॥
विकास्य हृदयाम्भोजे तदाकाशे शिखास्पदे।
स्फुरद्वह्निशिखामध्ये चिन्तयेदद्भुताकृतिम् ॥ ६३ ॥

अब परमात्मा के ध्यान की विधि कहते हैं—रमणीय पवित्र स्थान में जहाँ बिल्कुल एकान्त हो अथवा किसी जलाशय के सन्निकट अथवा वन में वर्णाश्रमोचित धर्म में स्थित रहने वाला प्रसन्न चित्त, शान्त तथा सभी गुणों से संयुक्त रहने वाला साधक सम आसन पर बैठकर शरीर के मेरु दण्ड को बिल्कुल सीधा रख कर विष्णु में भक्ति रखते हुये अपने नेत्रों को नासाग्रभाग में लगावे। फिर प्राणायाम के द्वारा उठे हुए अग्नि सहित वायु से जो सुषुम्ना के मध्य भाग से बह रहा हो उससे कुण्डलिनी का मुख भेदन करे पुनः उसे फैला कर अग्निज्वाला से देदीप्यमान हृत्कमल रूपी आकाश में अद्भुत आकृति का ध्यान करे। अब उस ध्येय के अद्भुत आकार का वर्णन करते हैं ॥ ६०-६३ ॥

ध्यानालम्बनभूतध्येयस्वरूपनिरूपणम्

पिङ्गाक्षं पिङ्गकेशाढ्यं ज्वलज्ज्वलनतेजसम्।
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीभीमदर्शनम् ॥ ६४ ॥
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशैरूर्ध्वकेशैर्विराजितम्।

विचित्रानन्दमाणिक्यमुक्ताढ्यमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ६५ ॥
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशमणिताटङ्कमण्डितम् ।
भुजाभिरष्टभिर्युक्तं रत्नाम्बरधरं विभुम् ॥ ६६ ॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गमुसलैः परमायुधैः ।
पाशाङ्कुशाम्बुजैरन्यैरुपेतं परदारुणैः ॥ ६७ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यचन्दनचर्चितम् ।
हारकेयूरकटककाञ्चीमञ्जीरमण्डितम् ॥ ६८ ॥
अन्यैश्च विविधैश्चित्रैर्भूषणैरुपशोभितम् ।
पद्मासनस्थं भक्तानां विश्वेषामभयप्रदम् ॥ ६९ ॥
एवं ध्यायन् विमुच्येत मुक्तः सकलकिल्बिषैः ।

पीले-पीले आँखों वाले और पीले-पीले केशों वाले, जलती हुई अग्नि के समान तेज वाले, बड़े-बड़े दाँतों से भयङ्कर मुख वाले, भुकुटी की कुटिलता से महाभयङ्कर दिखाई पड़ने वाले, बिजली के समान पीले-पीले ऊपर की ओर उठे हुये केशों से विराजमान, विचित्रानन्द से परिपूर्ण, मुक्ता और मणियों से जटित मुकुट धारण किये हुये, पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मणि का कुण्डल धारण किये हुये, आठ भुजाओं से युक्त एवं रक्त वर्ण का वस्त्र धारण किये, शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग एवं मुशल आदि श्रेष्ठ आयुधों से तथा शत्रु विनाशकारी पाश, अङ्कुश एवं कमल से युक्त दिव्य माल्याम्बर धारण किये हुये, दिव्य चन्दन चर्चित, हार, केयूर, कटक, काञ्ची तथा मञ्जीर से मण्डित और इसी प्रकार अन्यान्य अनेक विचित्र आभूषणों से विभूषित पद्मासन से विराजमान अपने समस्त भक्तों को अभय प्रदान करने वाले ऐसे चक्राकार विष्णु का ध्यान कर मनुष्य अपने समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है ॥ ६४-७० ॥

समाधिनिरूपणम्

तदेवं स्मृतिसन्तानजनितोत्कर्षणं क्रमात् ॥ ७० ॥
अर्थमात्रावभासं तु समाधिं योगिनो विदुः ।

इस प्रकार के निरन्तर स्मरण से क्रमशः उत्कर्ष प्रदान करने वाला तथा अर्थ मात्र से अवभासित होने वाला विशेष ध्यान समाधि कहा जाता है, ऐसा योगियों ने कहा है ॥ ७०-७१ ॥

समाधिनिष्ठस्य महिमानुवर्णनम्

ततः समाधिमास्थाय तन्मयत्वमुपागतः ॥ ७१ ॥
तस्य प्रभावमखिलमश्नुते शक्तिशालिनः ।
अणिमादिगुणाः सर्वे भवन्त्यस्य महात्मनः ॥ ७२ ॥

समाधिनिष्ठ साधक की महिमा—इस प्रकार समाधि में लीन हो कर तन्मयता को प्राप्त हुआ साधक उस शक्तिशाली चक्र के सम्पूर्ण प्रभावों का भोक्ता बन जाता है और उस महात्मा में अणिमादि गुण अपने आप आ जाते हैं ॥ ७१-७२ ॥

निःसहायः सपत्नानामनीकानि बहून्यपि ।
हिनस्त्येष यथा चक्रं चक्रं दैतेयरक्षसाम् ॥ ७३ ॥
मनीषितानि सर्वाणि स्वयमस्योपयान्ति वै ।
सिद्धा विद्याधरा यक्षाः कैंकर्यं तस्य कुर्वते ॥ ७४ ॥
देवाश्च ऋषयः सर्वे गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
तदाज्ञाकारिणः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ७५ ॥
निखिलभुवनजन्मस्थेमभङ्गैकहेतु-
र्भवति सकलवेत्ता सर्वदृक् सर्वशक्तिः ।
अभिमतबहुरूपो दैत्यरक्षांसि निघ्नन्
परिहृतपरिवारो वर्तते पूर्णकामः ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां नाडीशुद्धिवायुजय-योगाङ्गप्राणायामादिनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १९४८ ॥

बिना किसी की सहायता के अपने शत्रुओं की बहुत सी सेना का विनाश कर देता है जिस प्रकार अकेला चक्र अनेक दैत्यों एवं राक्षसों का विनाश कर देता है । ऐसे समाधिनिष्ठ पुरुष के सभी अभिलषित पदार्थ स्वयं उपस्थित हो जाते हैं । सिद्ध, विद्याधर तथा यक्ष उसके आज्ञाकारी हो जाते हैं । सभी देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सराओं के समूह, पिशाच, उरग और राक्षस भी उसके वशवर्त्ती हो जाते हैं । वह सारे संसार को जन्म देने वाला, उसे विनष्ट करने वाला, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् हो जाता है । सारे लोग उसके अनुरूप हो जाते हैं तथा वह दैत्यों एवं राक्षसों का विनाश कर डालता है । उसका कोई परिवार तो नहीं होता पर वह पूर्णकाम अवश्य बन जाता है ॥ ७१-७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के नाडीशुद्धि-वायुजययोगाङ्गप्राणायामादिनिरूपण नामक बत्तीसवें अध्याय की शैवागमा-वतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३२ ॥